इकाई –1 भारतीय वित्तीय प्रणाली – एक अवलोकन

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 वित्तीय प्रणाली का अर्थ एंव परिभाषा
1.3 वित्तीय प्रणाली के कार्य
1.4 वित्तीय प्रणाली की विशेषताए
1.5 भारतीय वित्तीय प्रणाली की संरचना
1.6 भारतीय वित्तीय प्रणाली के अवयव
    1.6.1 वित्तीय संस्थान
    1.6.2 वित्तीय बाजार
    1.6.3 वित्तीय साधन
    1.6.4 वित्तीय सेवाऍं
1.7 आधुनिक अर्थव्यवस्था में वित्तीय प्रणाली की भूमिका एंव योगदान
1.8 सारांश
1.9 शब्दावली
1.10 बोध प्रश्न
1.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.12 स्वपरख प्रश्न
1.13 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्‌देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- वित्तीय प्रणाली के अर्थ को समझ सके एंव इसे परिभाषित कर सके।
- वित्तीय प्रणाली के विभिन्न कार्यो का वर्णन कर सके।
- वित्तीय प्रणाली की विशेषताओ की व्याख्या कर सके।
- वित्तीय प्रणाली की संरचना को समझ सके।
- भारतीय वित्तीय प्रणाली के अवयवो का विस्तृत वर्णन कर सके।

1.1 प्रस्तावना

विश्व के प्रत्येक देश की आर्थिक उन्नति तथा विकास सशक्त वित्तीय प्रणाली पर निर्भर करता है। वित्तीय बाजार तथा वित्तीय संस्थान दोनो ही वित्तीय प्रणाली में, अनेक समुदाय को विभिन्न प्रकार की वित्तीय सेवाये प्रदान करके महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है एंव इन दोनो में आपस में घनिष्ठ संबध होता है। इस इकाई में आप वित्तीय प्रणाली का अर्थ, विभिन्न कार्य, वित्तीय प्रणाली की विशेषताएँ व भारतीय वित्तीय प्रणाली के अवयवो का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

1.2 वित्तीय प्रणाली का अर्थ एंव परिभाषा

वित्तीय प्रणाली वित्तीय संस्थानों की उपप्रणाली का एक समूह है जैसे वित्त बाजार, वित्त अभिलेख तथा सेवाये, जिसके द्वारा पूजी का निर्माण होता है। यह एक ऐसी युक्ति प्रदान करती है

जिसके द्वारा बचतो का निवेश किया जाता है। इस प्रकार वित्तीय प्रणाली देश की उन्नति में आधिक्य कोषो को इकठ्ठा करके तथा उत्पादन प्रयोजन के लिये प्रभावी ढ़ंग से इसका प्रयोग करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

वित्त प्रणाली की एक विशेषता यह होती है कि यह एक एकीकृत, संगठित तथा नियमित वित्तीय बाजार है, एंव वह संस्थान है जो कि घरेलू तथा निगम क्षेत्रो की अल्पकालिन तथा दीर्घकालिन वित्तीय आवश्यकताओ को पूर्ण करता है।

वित्तीय प्रणाली की कुछ प्रमुख परिभाषाये निम्न प्रकार है :

i. जे. एफ. ब्रेडले के अनुसार,'' वित्तीय प्रणाली व्यवसायिक प्रबंध का वह क्षेत्र है जिसका संबध पूॅजी का सम्यक प्रयोग एंव पूॅजी के साधनो के सतर्कतापूर्ण चयन से है ताकि व्यवसाय को इसके उद्देश्यो की पूर्ति की दिशा में निर्देशित किया जा सके।''

ii. राबिंसन् के अनुसार, ''किसी भी देश की अर्थव्यवस्था में विनियोगकर्ताओ तथा वित्त की आवश्यकता वाले लोगो के मध्य सेतु के रूप में जो तंत्र कार्य करता है उसे वित्तीय प्रणाली कहा जाता है।''

iii. इजरा सोलोमन के अनुसार, ''वित्तीय प्रणाली का कोषो व्यवस्था करने से संबधित एक स्टाफ गतिविधि के रूप में नही देखा जाना चाहिये, अपितु समग्र–प्रबंध के एक अभिन्न अंग के रूप में परिभाषित किया जाना चाहिये।''

1.3 वित्तीय प्रणाली के कार्य

वित्तीय प्रणाली का क्षेत्र व्यापक होने के कारण इसके कार्यो में भी विविधता दिखाई देती है, जिसे निम्नानुसार स्पष्ट किया जा सकता है–

i. वित्तीय नियोजन – वित्तीय नियोजन के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्यो का समावेश होता हैः

(क) उद्देश्यो का निर्धारण

(ख) नीतियो का निर्धारण

(ग) कार्य–विधि का निर्धारण

(घ) वित्तीय योजना का निर्माण

- पूॅजीकरण अर्थात व्यवसाय के लिये आवश्यक वित्त की मात्रा का पूर्वानुमान
- पूॅजी–ढ़ॉचे का निर्माण, जिसके अंतर्गत यह निश्चय करना होता है कि पूॅजी प्राप्ति के विभिन्न साधन कौन–कौन से होगे तथा प्रत्येक साधन से कितनी मात्रा में एंव किस अनुपात में पूॅजी उपलब्ध की जायेगी

(ड.) भविष्य में संभावित परिवर्तन के समायोजन हेतु अग्रिम आयोजन की व्यवस्था

ii. वित्त प्राप्ति की व्यवस्था – वित्त प्राप्ति की व्यवस्था से आशय पूर्वानुमानित पूॅजीकरण एंव प्रस्तावित पूॅजी–ढ़ाचे के अनुसार विभिन्न स्त्रोतो से व्यवसाय के संचालन के लिये अपेक्षित पूॅजी संकलन से सम्बद्ध आवश्यक कार्यो को सम्पन्न करना है।

iii. वित्तीय प्रशासन– इसके अन्तर्गत निम्नलिखित कार्यो को निम्न प्रकार से उपविभाजित किया जा सकता हैः

(क) वित्त कार्य का संगठन – वित्तीय विभाग एंव उप विभागो का संगठन एंव कोषाध्यक्ष और नियंत्रक के कार्यो, अधिकारो एंव दायित्वो का निर्धारण एंव समस्त लेखा–पुस्तको के उचित रख–रखाव की व्यवस्था।

(ख) सम्पत्तियो का प्रभावपूर्ण प्रबन्ध : स्थिर एंव चल सम्पत्तियो की समयानुकूल पूर्ति की व्यवस्था करना, सम्पत्तियो के प्रबंध से सम्बद्ध नीतियो के निर्धारण में उच्च स्तर पर प्रबन्धको को सलाह देना, जैसे–स्थिर सम्पत्तियों के प्रबन्ध की नीति, विक्रय एंव वसूली नीति, विक्रय मूल्य निर्धारण, रोकड़–नीति, इनवेण्ट्री प्रबन्ध नीति, सेविवर्गीय प्रबन्ध नीति के वित्तीय पहलुओ को निरूपित करना एंव उनके निर्धारण एंव कियान्वयन में सक्रिय सहयोग करना।

(ग) वित्तीय नियंत्रण – यह वित्तीय प्रणाली का एक प्रमुख अंग है। वस्तुतः इसके बिना व्यावसायिक लक्ष्यों की पूर्ति करना सम्भव नहीं होता है। वित्तीय नियन्त्रण की आधुनिक विधियों के द्वारा ही वित्त–विभाग व्यवसाय के सभी विभागों द्वारा वित्तीय परिसीमाओं के अतिक्रमण को रोकने में सफल होता है। पूॅजी बजट, रोकड़ बजट तथा लोचपूर्ण बजटिंग प्रणालियों के द्वारा वित्त–विभाग इस कार्य को पूरा करता है।

iv. वार्षिक वित्तिय विवरणों का निर्माण एंव लाभ का निर्धारण : इसके अन्तर्गत तुलन–पत्र एंव आय विवरण अथवा लाभ–हानि लेखा आदि विवरणों का वैधानिक नियमों एंव प्रचलित व्यावसायिक चलन के अनुसार निर्माण तथा आवश्यक व्ययों, प्रावधानों, ब्याज एंव करों आदि के समायोजन के बाद शुद्व लाभ की मात्रा का निर्धारण सम्मिलित होता है।

v. शुद्व लाभ का आबंटन – अंशधारियो को शुद्व लाभ का कितना भाग लाभांश के रूप में वितरित किया जाये तथा कितना भाग व्यवसाय में संचित कोषो के रूप में धारित किया जाये ? इस प्रकार के निर्णयों का सम्बन्ध लाभांश एंव प्रतिधारित आय के पारस्परिक अनुपात से जुड़ा होता है, जिसका निर्णायक प्रभाव कम्पनी के अंशो के भावी बाजार मूल्यों पर पड़ता है। अतः लाभांश–नीति का निर्माण वित्तीय प्रणाली का एक प्रमुख दायित्व माना जाता है। इसी प्रकार यदि आवश्यक हो तो कर्मचारियों को लाभ में भागीदारी अथवा बोनस के भुगतान की व्यवस्था और यदि कोषों के पूॅजीकरण का प्रश्न है तो अंशधारियो को बोनस अंशों के निर्गमन की व्यवस्था करना भी इस क्षेत्र का ही उत्तरदायित्व है।

vi. वित्तीय निष्पत्ति का मूल्याँकन – विगत वर्षो की प्रगति की तुलना में चालू वर्ष की कार्य–निष्पत्ति का समीक्षात्मक मूल्याँकन करना तथा इसके लिये वित्तीय विश्लेषण की आधुनिक विधियों का उपयोग, जैसे अनुपात विश्लेषण, प्रवृत्ति विश्लेषण, कोष प्रवाह विश्लेषण, लागत–लाभ–मात्रा विश्लेषण, वितरणांश विश्लेषण आदि। इसी प्रकार उस क्षेत्र में कार्यरत अन्य समान कम्पनियों की तुलना में प्रस्तुत कम्पनी की कार्य निष्पत्ति का मूल्याँकन करना भी वित्तीय–प्रणाली के दायरे में ही आता है।

इसके लिये अन्तर–वर्ष तुलना तथा अन्तर–फर्म तुलना की विधियों का प्रयोग किया जाता है। प्रथम विधि के अन्तर्गत कम्पनी की चालू वर्ष की कार्य–निष्पत्ति की तुलना विगत वर्षो में उसके द्वारा की गयी कार्य–निष्पत्ति के स्तर से की जाती है। इसका प्रयोजन यह ज्ञात करना होता है कि पिछले वर्षो में कम्पनी की प्रगति कैसी रही है। द्वितीय विधि के अन्तर्गत कम्पनी की चालू वर्ष की कार्य–निष्पत्ति का तुलनात्मक मूल्यांकन उसी क्षेत्र अथवा उद्योग में कार्यरत कम्पनियों की उसी वर्ष की कार्य–निष्पत्ति से किया जाता है।

मूल्यांकन का यह कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है क्योकि सही एंव निष्पक्ष मूल्यांकन के आधार पर ही प्रबन्धकों के समक्ष कमियों एंव त्रुटियों को प्रस्तुत किया जा सकता है, ताकि अगले वर्ष के लिये नीतियों एंव कार्य विधियों में वांछित परिवर्तन किया जा सके।

vii. विकास एंव विस्तार के लिये अतिरिक्त पूँजी की व्यवस्था – पूँजी की लागत, स्वामित्व, नियन्त्रण, जोखिम एंव आय पर पड़ने वाले प्रभावों के सन्दर्भ में अतिरिक्त वित्त–प्राप्ति के विभिन्न वैकल्पिक साधनों पर विचार–विमर्श करके उचित परामर्श देना। आवश्यकता पड़ने पर विकास, विस्तार, एकीकरण एंव संविलयन की योजनाओं के वित्तीय पहलुओं की जाँच करना तथा तत्सम्बन्धित प्रासंगिक को सम्पन्न करना।

1.4 वित्तीय प्रणाली की विशेषताए

वित्तीय प्रणाली की प्रमुख विशेषताए निम्नलिखित है :

i. निर्णयन का केन्द्र बिन्दु – व्यवसाय के निरंतर बढ़ते हुए आकार एंव कठिन प्रतियोगिता के इस युग में प्रत्येक व्यवसायी विगत अनुभव तथा अंतः प्रेरणा के साथ–साथ एक ऐसा वैज्ञानिक विश्लेषण है जो सांख्यिकीय आंकड़ो एंव तथ्यों के आधार पर किसी अथवा किन्ही विशिष्ट परिस्थितियों में हानि अथवा लाभ का सही मूल्यॉकन प्रस्तुत कर सके ताकि उसके अनुरूप निर्णय लेकर जोखिम को न्यूनतम किया जा सके। व्यावसायिक प्रबन्ध के एक अति महत्वपूर्ण स्तम्भ के रूप में वित्तीय प्रणाली आज अत्यन्त परिपक्व स्वरूप प्राप्त कर चुकी है – एक ऐसा स्वरूप जो वर्णनात्मक कम तथा विश्लेषणात्मक अधिक है। अब प्रशासनिक निर्णय मोटे अनुमानों पर आधारित नहीं होते है। सांख्यिकीय विश्लेषण से सम्बद्व ऐसे अनेक सूत्र अब वित्तीय विश्लेषण के लिये उपयोगी होते हैं जिनके द्वारा प्रबन्ध तन्त्र प्रस्तुत आन्तरिक एंव बाह्य परिस्थितियों कें सन्दर्भ में अनेक उपलब्ध विकल्पों में से सर्वोत्तम विकल्प का चयन करता है तथा उच्च स्तर पर प्रबन्धकों द्वारा उचित निर्णय लेने की प्रक्रिया में सहायता प्रदान करता है।

ii. सतत् प्रशासनिक कार्य – परम्परागत रूप में वित्तीय–प्रणाली का प्रमुख दायित्व कोषों की व्यवस्था करने तक ही सीमित था। आधुनिक अर्थ में वित्तीय प्रणाली का कार्य एक सतत् प्रशासनिक कार्य है, क्योंकि व्यवसाय के सफल संचालन के लिये कोषों के लाभपूर्ण एंव सम्यक् उपयोग का दायित्व भी अब इस क्षेत्र की परिधि में आता है। यही कारण है कि अब वित्तीय–प्रबन्धक की भूमिका के महत्व को प्रत्येक संगठन में मान्यता दी जाने लगी है। पहले व्यावसायिक–प्रबन्ध में वित्त का स्थान उपेक्षित था जिसे व्यवसाय के दिन–प्रतिदिन के कार्यकलापों में कोई महत्व प्राप्त नहीं था। अब स्थिति यह है कि वित्त को एक निर्णायक भूमिका प्राप्त है। इस क्षेत्र में पूँजी–बजटिंग के साथ–साथ अब कार्यशील पूॅजी के प्रबन्ध के कार्य को भी सम्पन्न करना होता है, जो कि एक आधुनिक विशाल निगम में वित्तीय प्रबन्धक के लिए निरन्तर बना रहने वाला सिरदर्द है।

iii. व्यावसायिक सफलता का निर्णायक – भारत में भी अब यह स्वीकार किया जाने लगा है कि उच्च स्तर पर व्यावसायिक प्रबन्ध को सफल बनाने में वित्त–प्रबन्धकों का महत्वपूर्ण योगदान होता है तथा अपने क्षेत्र के विशेषज्ञों के रूप में इनके द्वारा किये गये विश्लेषण और दिये गये परामर्श पर सर्वोच्च स्तर पर प्रबन्धको द्वारा पूरा ध्यान दिया जाना अपरिहार्य हो जाता है। आधुनिक विशाल निगमों में वित्तीय निर्णय अब वस्तुतः सर्वोच्च स्तर पर ही लिये जाते है। अनेक निगमों में वित्त–नियन्त्रक निदेशक–मण्डल का ही एक सदस्य होता है। यही नहीं स्वामित्व एंव

प्रबन्ध में विच्छेद के कारण व्यावसायिक प्रबन्धक निर्णय–प्रक्रिया को इतना परिष्कृत बना देना चाहते हैं जिसके अन्तर्गत जोखिम को न्यूनतम तथा व्यावसायिक सफलता को सुनिश्चित किया जा सकें। यह निर्विवाद सत्य है कि प्रत्येक वित्तीय कम्पनी के लिये जोखिम की मात्रा में परिवर्तन लाने का कारण बनता है तथा यह परिवर्तन कम्पनी के अंशों के बाजार मूल्य में परिवर्तन उत्पन्न करता है। निर्णय चाहे किसी भी क्षेत्र से सम्बन्धित हो उसका वित्तीय–पत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है जिसके सही विश्लेषण पर ही कम्पनी की भावी सम्पन्नता एंव सफलता निर्भर होती है।

iv. कार्य निष्पत्ति का मापक – वित्त व्यवसाय का साधन ही नहीं साध्य भी है। वित्त के आधार पर संचालित व्यवसाय का मूल उद्देश्य लाभोपार्जन के द्वारा अधिक वित्त प्राप्त करना ही होता है। अतः वित्तीय परिणामों के आधार पर ही व्यवसाय की कार्य–निष्पत्ति का मूल्याँकन किया जाता है। ''वित्तीय–निर्णय आय की मात्रा तथा व्यावसायिक जोखिम इन दोनों को प्रभावित करते है।'' ऐसे वित्तीय निर्णय जो जोखिम में वृद्धि करते हैं, फर्म के मूल्यांकन के स्तर को कम कर देते हैं। दूसरी ओर ऐसे वित्तीय निर्णय जो लाभदायकता में वृद्धि करते हैं, फर्म के मूल्यांकन के स्तर को बढ़ा देते है। न जोखिम के बिना व्यवसाय संचालित हो सकता है और न लाभदायकता के बिना व्यवसाय संचालन की कोई सार्थकता प्रतीत होती है। अतः वित्तीय प्रणाली इन दोनों परस्पर विरोधी कारकों में सन्तुलन स्थापित रखते हुए फर्म के मूल्यांकन के स्तर को यथासम्भव उच्च से उच्चतर बिन्दु पर बनाये रखती है।

v. व्यावसायिक समन्वय – वस्तुतः वित्त ही वह साधन है जो व्यावसायिक गतिविधियों को एक सूत्र में बांधता है। व्यवसाय के सुचारू संचालन के लिये इस प्रकार समन्वय अत्यन्त आवश्यक है। यही नहीं, समन्वय के अभाव में व्यावसायिक लागतों को उचित सीमाओं में रखना तथा पूर्व–नियोंजित–लाभ के लक्ष्य को प्राप्त करना सम्भव नहीं होता है। व्यवसाय के विभिन्न क्रिया–कलापों के समन्वित संचालन का कार्य बजटरी नियन्त्रण के द्वारा सम्पन्न किया जाता है जिसके अन्तर्गत विभिन्न कार्यो एंव उत्पादन प्रक्रियाओं के लिये अपेक्षित समय एंव लागतों के प्रमाप निर्धारित किये जाते है। इस प्रकार उपलब्ध साधनों का अनुकूलतम आबंटन एंव उनका अधिकतम उपयोग सम्भव हो जाता है। वित्तीय प्रणाली के क्षेत्र का यह एक बड़ा दायित्व है।

vi. केन्द्रीय प्रकृति – व्यावसायिक प्रबन्ध के समस्त क्षेत्रों मे वित्तीय प्रबन्ध ही एक ऐसा क्षेत्र है जिसकी प्रकृति मूलतः केन्द्रीयकृत है। आधुनिक उपक्रम में विपणन एंव उत्पादन के कार्यो का विकेन्द्रीकरण तो सम्भव है, किन्तु वित्त–कार्य का विकेन्द्रीकरण व्यावसायिक दृष्टि से वांछनीय नही होता है, क्योंकि वित्तीय समन्वय एंव नियन्त्रण की स्थिति केन्द्रीयकरण के द्वारा ही स्थापित की जा सकती है। इस स्थिति को स्थापित किये बिना व्यवसाय के उद्देश्यों की पूर्ति सम्भव नहीं होगी। यही कारण है कि व्यवसाय में वित्त की तुलना मानव शरीर के उदय संस्थान से की जाती है जिसकी कि मूल प्रकृति ही केन्द्रीयकृत है और जो शरीर के विभिन्न अवयवों में फैले स्नायु तन्त्रों के द्वारा शारीरिक एंव मानसिक गतिविधि में समन्वय एंव नियन्त्रण स्थापित करता है।

vii. औद्योगीकरण का आधार – वित्त औद्योगीकरण का आधार है। वित्त के बिना औद्योगिक सम्भव नहीं है। भारत में उद्योगों का विकास न होने का प्रमुख कारण वित्त का अभाव है। प्रथम महायुद्व तक तो भारत में उद्योगों का विकास बहुत ही कम था। भारतीय औद्योगिक आयोग के अनुसार, ''औद्योगिक प्रणाली का असन्तुलित व अपर्याप्त विकास हुआ और कुछ उल्लेखनीय अपवादों को

छोड़कर देश के अधिकांश पूँजीपतियों ने या तो देश के भौतिक साधनों का उपयोग ही नहीं किया है अथवा कच्चे माल के निर्माण, उससे प्राप्त होने वाले लाभों को अन्य देशों के लिये छोड़ दिया है।'' भारत में प्राकृतिक व मानव साधन बहुतायत से उपलब्ध हैं, किन्तु इनके उचित प्रयोग न होने के कारण देश अभी भी अविकसित हैं इन साधनों का उचित प्रयोग न होने के कारण देश में वित्त का अभाव है। भारत में वित्त की कमी है। देश में राष्ट्रीय व प्रति व्यक्ति आय कम होने से बचत क्षमता कम है व बचत क्षमता कम होने से देश में पूँजी का अभाव है। इसी कारण सरकार ने अनेक वित्तीय संस्थाओं, जैसे–औद्योगिक वित्त निगम, राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम, औद्योगिक साख विनियोग निगम, कृषि पुनर्वित निगम, औद्योगिक विकास बैंक व प्रत्येक राज्य में राज्य वित्त निगम की स्थापना की है जिससे देश में वित्त का अभाव दूर हो सके व देश औद्योगीकरण के मार्ग पर अग्रसर हो सके।

viii. आर्थिक नीतियाँ – देश की आर्थिक नीतियाँ भी वित्त से ही प्रभावित होती है। विदेशी सहायता सम्बन्धित नीति, राष्ट्रीय आय नीति, कर नीति, व्यय नीति, औद्योगिक नीति आदि सभी देश में वित्त की उपलब्धि से प्रभावित होती है। भारत में वित्त की कमी के कारण ही विदेशी पूँजी का स्वागत किया गया व विभिन्न प्रकार की विदेशी सहायता ली गयी। देश में अपार पूँजी विनियोग हो रहा है। वित्त की आवश्यकता पूरी करने के लिये ही देश में घाटे की अर्थव्यवस्था अपनायी गयी हैं। विकास कार्यो के कारण राष्ट्रीय आय में वृद्वि होने से बचत व पूँजी निर्माण में वृद्वि हुयी है। वित्त के अभाव के कारण ही आर्थिक कार्यो में सरकार का योगदान बढ़ा है। वित्तीय प्रणाली का न केवल आर्थिक विकास में महत्व होता है वरन् अर्थव्यवस्था में अनेक पक्ष ऐसे है जिनकी सफलता या असफलता, लाभदायकता या लाभहीनता वित्तीय प्रणाली पर ही निर्भर करती है।

1.5 भारतीय वित्तीय प्रणाली की संरचना

भारतीय वित्तीय प्रणाली से आशय कोषों को उधार लेने अथवा देने की प्रणाली या सरकार कम्पनियो, संस्थानो और व्यक्ति विशेष के माँग पर कोषों की पूर्ति करने की प्रणाली से है। सामान्यतः वित्तीय प्रणाली को निम्न भागो में वर्गीकृत किया गया है :

i. औद्योगिक वित्त : उद्योगों एंव व्यापारों के संचालन हेतु अपेक्षित वित्त को औद्योगिक वित्त कहते है।

ii. कृषिक वित्त : कृषि, कृषि सम्बंधी एंव कृषि से जुड़े हुए कार्यो के निष्पादन हेतु आवश्यक वित्त को कृषिक वित्त कहते है।

iii. विकास वित्त : विकास कार्यो (औद्योगिक, कृषि एंव अन्य) के लिये आवश्यक वित्त को विकास वित्त कहा जाता है।

iv. सरकारी वित्त : सरकारी आवश्यकताओ की माँग पूर्ति से संबधित वित्त को सरकारी कहते है।

भारतीय वित्तीय प्रणाली अनेक संस्थाओ और प्रक्रियाओ को खुद में समाविष्ट करता है जो कि समाज द्वारा की गयी बचतो की गतिशीलता को प्रभावित करते है। वित्तीय प्रणाली को सुव्यवस्थित रूप से संचालित करने हेतु इसमें कई पहलू सम्मिलित होते हैं वित्तीय तन्त्र जब सन्तुलित होकर क्रियाशील होता है तभी विकासात्मक लक्ष्य प्राप्त किये जा सकते है। भारत की वित्तीय प्रणाली में हमें यह महत्वपूर्ण विशेषता दिखायी देती है कि यहाँ बैंकिंग संस्थाओ के अतिरिक्त गैर बैंकिगं संस्थायें भी अपना प्रभुत्व रखती है। जहाँ तक वित्तीय बाजारों का प्रश्न है मुद्रा बाजार

तथा पूँजी बाजार विकसित देशों की तरह पूर्णतः संगठित नहीं हैं। वित्तीय उपकरणों में सरकारी प्रतिभूतियाँ अपना उच्च स्थान बनाये हुये है। वित्तीय सेवाओ का विस्तार अभी बहुत अधिक नहीं हुआ है।

1.6 भारतीय वित्तीय प्रणाली के अवयव

भारतीय वित्तीय प्रणाली में मुख्य रूप से निम्न चार चीजो को शामिल किया जाता है :

i. वित्तीय संस्थान
ii. वित्तीय बाजार
iii. वित्तीय साधन
iv. वित्तीय सेवाएं

भारतीय वित्तीय प्रणाली के अवयव

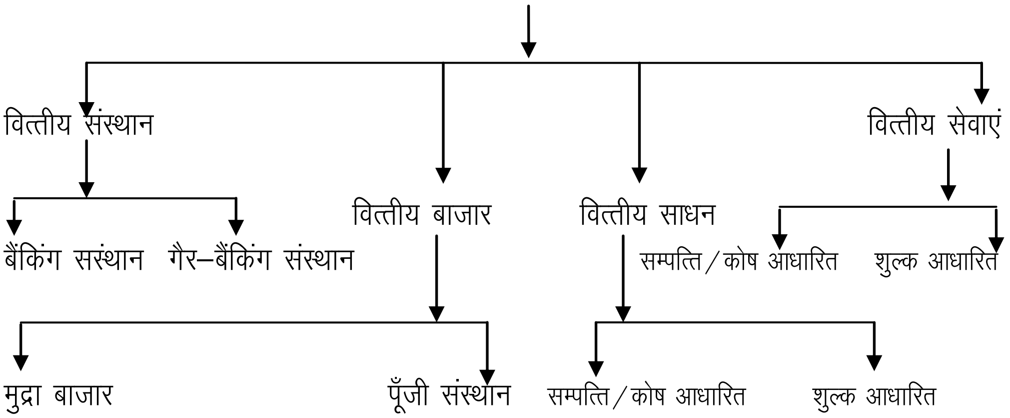

1.6.1 वित्तीय संस्थान

वित्तीय संस्थान बिचौलिये है जोकि निवेशक तथा उधार देने वाले, दोनों को मिलाकर वित्तीय प्रणाली को सही ढ़ंग से चलाने में सहायता करते है। वे अधिक्य इकाई की बचतों को इकठ्ठा करती है तथा उन्हें उत्पादित क्रियाओं में लगा देते हैं ताकि अच्छी प्रत्याय दर मिल सके। वित्तीय संस्थान अपनी सेवाएं कई हस्तियों (जैसे व्यक्तियों, व्यवसाय तथा सरकार आदि) को भी प्रदान करतें है जोकि निर्माण से विस्तारक योजनाओ को अपनाना चाहते है। वे उन लोगो (व्यक्ति, व्यवसाय, सरकार) को पूर्ण सेवाएं प्रदान करते है। जोकि बाजार या किसी अन्य जगह से धन/कोष लेना चाहते है।

वित्तीय संस्थानो को वित्तीय बिचौलिया भी कहा जाता है क्योकि ये निवेशक तथा उधार लेने वाले के बीच एक माध्यम है। बैंक भी एक बिचौलिए की तरह कार्य करता है क्योंकि यह उपभोक्ताओं के समूह (बचतकर्ता) से पैसा लेकर जमा करता है तथा धन को दूसरे उपभोक्ता के समूह (उधार लेने वाले) को दे देता है। इसी प्रकार निवेशक संस्थाएं जैसे कि जी.आई.सी., एल.आई.सी., म्यूचुअल फण्ड आदि भी बचतों को इकठ्ठा करते है। तथा उन्हे उधार लेने वालों को उधार के रूप में दे देते हैं, इस प्रकार ये भी वित्तीय बिचौलिये का कार्य कर रहे है।

वित्तीय संस्थानो को मुख्यतः दो भागो में विभक्त किया जा सकता है :

i. बैंकिंग संस्थान
ii. गैर बैंकिंग संस्थान

I. बैंकिंग संस्थान

भारतीय बैंकिंग उद्योग के उपर केद्रिय बैंक का नियंत्रण है (वह है भारतीय रिजर्व बैंक)। एक शीर्ष संस्था की हैसियत से भारतीय रिजर्व बैंक देश की मौद्रिक तथा वित्तीय प्रणाली को संगठन, चालन, निरीक्षण, नियमन तथा विकास करता है। मुख्य जिसके अन्तर्गत भारत में व्यवसायिक बैंको को नियंत्रित किया जाता है वह है बैंकिंग रेगुलेशन एक्ट, 1949 भारतीय बैंकिंग संस्थाओं को विस्तृत रूप से दो भागों में विभाजित किया जाता है :–

1. संगठित क्षेत्र
2. असंगठित क्षेत्र

1. संगठित क्षेत्र

संगठित बैंकिंग क्षेत्र में व्यावसायिक बैंक सहकारी बैंक तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक शामिल है।

a) व्यावसायिक/वाणिज्यिक बैंक – व्यावसायिक बैंक अनुसूचित बैंक या गैर–अनुसूचित बैंक हो सकते है। व्यावसायिक बैंको में, 27 पब्लिक बैंक, निजी क्षेत्र के बैंक तथा विदेशी बैंक, शामिल हैं। 1969 से पहले भारतीय स्टेट बैंक को छोड़कर बाकी सभी बैंक निजी क्षेत्र में थे। पब्लिक क्षेत्र के बैंको की ओर जो महत्वपूर्ण कदम उठाया गया जब 14 मुख्य निजी बैंक, जिसकी जमा राशि 50 करोड़ या उससे ज्यादा थी का राष्ट्रीयकरण किया गया। 1980 में भी 6 बैंको को राष्ट्रीयकृत किया गया तथा राष्ट्रीयकृत बैंको की संख्या 20 हो गई। बैंको के राष्ट्रीयकरण का मुख्य उद्देश्य, बैंकिंग प्रणाली को सर्वजन अभिमुखी बनाना था।

जिसके परिणामस्वरूप शाखाओं का विस्तार तथा उच्च उन्नति दर अस्तित्व में आई। 1951 में अनुसूचित बैक की संख्या 92 थी जोकि 1986 में बढ़कर 273 तथा जून,1997 में 297 हो गई। भारत में दिसंबर 2000 तक व्यावसायिक बैंकिंग प्रणाली में 297 अनुसूचित बैंक (जिसके अन्तर्गत विदेशी बैंक भी शामिल हैं) तथा गैंर अनुसूचित बैंक एक थे।

पारम्परिक रूप में, व्यावसायिक बैंक जमा राशि को स्वीकार करते थे तथा उद्योगो की मध्यकालीन तथा अल्पकालीन आवश्यकताओ को पूरा करते थे। परन्तु अब, 1990 से, बैंको से उद्योगो की दीर्घकालीन कोषों की आवश्यकताओं, जो कि अधोसंरचना क्षेत्र में थी को भी पूरा किया है। भारतीय अर्थव्यवस्था में वैश्वीकरण माप को भी लाया गया, जिसके परिणामस्वरूप देश में 1993 में बड़ी संख्या में निजी क्षेत्रीय बैंको का आगमन हुआ। जिसकी वजह से पब्लिक तथा निजी क्षेत्रीय बैंको के मध्य प्रतिस्पर्धा पैदा हो गई है तथा जिसके परिणामस्वरूप सेवाओं की गुणवत्तो में सुधार हुआ है। सबसे मुख्य विकास जो कि भारतीय बैंकिंग उद्योग में हुआ है वह है मर्चेन्ट बैंकिंग के क्षेत्र में बड़े बैंको का आगमन। मर्चेन्ट बैंकर, वित्तीय बिचौलिये होते हैं जोकि निगमो तथा निवेशकों को वित्तीय सहायताएं प्रदान करते है। मर्चेन्ट बैंकंर की क्रियाओ में जारी प्रबंध, अभिगोप, परियोजन परामर्श, विलयन एंव अधिग्रहण सलाह संविभाग प्रबंध सेवाएं , आदि शामिल है।

व्यवसायिक बैंको की संरचना उनकी निवेश नीतियों आदि के बारे में विस्तृत रूप से व्याख्या इसी पाठयक्रम के एक उप–अध्याय ''व्यावसायिक बैंकिंग'' में किया गया है।

b) सहकारी बैंक – भारतीय बैंकिंग के संगठित क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण अपविभाग है सहकारी बैंकिंग। यह उप–विभाग सोसायटियों का एक समूह होता है जोकि राज्य की सहकारी से

सम्बधित होता है। वास्तव में सहकारी उपक्रम उधार देने वाली उपक्रम या न उधार देने वाली उपक्रम हो सकती है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में विभिन्न प्रकार की सहकारी उपक्रम पारिचालित की जा रही है।

इन संस्थाओ को विस्तृत रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–

a) ग्रामीण उधार सोसायटी जोकि प्राथमिक रूप से कृषि खेतीबाड़ी से सम्बन्धित है।

b) शहरी उधार सोसायटी जोकि प्राथमिक रूप से गैर–खेतीबाड़ी के कार्यो से सम्बन्धित है। कृषि से सम्बन्धित उधार प्राप्त करने के लिए कई प्रकार की सहकारी उधार संस्थाएं विभिन्न प्रकार की धन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए शुरू की गई है। उदाहरण के लिए, अल्प तथा मध्यकालीन उधार त्रिस्तरीय फेडरल संरचना द्वारा प्रदान किया जाता है।

सबसे शीर्ष पर है उच्च संस्था वह है राज्य सहकारी बैंक : मध्य क्रमांक में जिला सहकारी बैंक या केन्द्रीय सहकारी बैंक है तथा अन्त में है ग्रामीण स्तर पर जो कि प्राथमिक रूप से खेतीबाड़ी के उधार प्रदान करती है। खेतीबाड़ी के लिए, मध्यकालीन तथा दीर्घ कालीन ऋण के लिए विशेष प्रकार की सहकारी उपक्रम बनाई गई। इन्हें लैण्ड डेवलेपमेण्ट बैंक कहा गया। लैण्ड डेवलेपमेण्ट बैंक का आन्दोलन 1929 में चला। शुरू में इन्हें केन्द्रिय भूमि ऋण बैंक कहा गया, लैण्ड डेवलेपमेण्ट बैंक को Two Tier संरचना कहा गया। राज्य स्तर पर राज्य या केन्द्रीय धरती विकास बैंको (Central Land Development Bank) का निर्माण किया गया। ये धरती के विकास से सम्बधित बैंक प्रत्यक्ष रूप से किसानों से मिलते हैं या प्राथमिक धरती विकास बैंको (Land Development Bank) के द्वारा। राष्ट्रीय स्तर पर उन्हें अखित भारतीय धरती विकास बैंक संघ (All India Development Bank Union) का निर्माण किया हुआ है।

c) क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक – क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक राज्य सरकार द्वारा स्थापित किए जाते हैं तथा ग्रमीण अर्थव्यवस्था के विकास के उद्देश्य से व्यवसायिक बैंको को भी स्पोंसर किया जाता है। क्षेत्रीय ग्रमीण बैंक ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग सेवाओं के रूप में छोटे किसानों, छोटे उद्यमियों को उधार प्रदान करता है। क्षेत्रीय ग्रमीण बैंक इस सोच को ध्यान में रखकर बनाए गए थें कि कमजोर वर्ग को उधार की सहूलियत हो सके। क्योंकि वे भारतीय वित्तीय वास्तु कला (Indian Financial Architecture) का एक अभिन्न अंग हैं अब सन् 2002, जून में भारत में 196 क्षेत्रीय ग्रमीण बैंक है जोकि 1981 में 107 तथा 1975 में (6) छः थे।

भारतीय रिजर्व बैंक ने बैंक की दरों से 3 प्रतिशत कम रियायती दरों पर पुनर्वित्त सहायता प्रदान की हैं क्षेत्रीय ग्रामीण विकास अधिनियम (RRB Act) के अनुसार NIDBI, NABARD तथा SIDBI को भी प्रंबधकीय तथा वित्तीय सहायता, क्षेत्रीय ग्रामीण विकास बैंकों को देनी होगी।

1994–95 में भण्डारी कमेंटी की सिफारिश पर सरकार ने RRB’s पुर्नसंरचना के बारे में निर्णय लिया है। इसके परिणाम स्वरूप पुनर्सरचना कार्यक्रम के अन्तर्गत 360 करोड़ रूपये आबंटित किये। भारतीय सरकार ने 1994–98 के मध्य 1867.65 करोड़ रूपये क्षेत्रीय ग्रमीण बैंको की पूँजीकरण के लिए दिए। 196 में से 175 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का पूर्ण रूप से पूँजीकरण हो गए।

NABARD ने RRB's के समग्र निष्पादन को सुधारने के लिए कई नीतियाँ बनाई हैं जैसे कि साल में चार/दो बार स्पोन्सर बैंक के द्वारा RRB's का पुनरावलोकन, किसान उधार कार्डो की उत्पत्ति तथा स्वंय सहायता समूह आदि का सृजन किया है।

d) विदेशी बैंक – ब्रिटिशों के दिनों से विदेशी बैंक भारत में है। ANZ Grindlays Bank 56 शाखाओं के साथ कई स्थानों पर स्थित है। The Standared & Chartered Bank की 24 तथा Hong-Kong बैंक की 21 शाखांए है। बाकी सभी विदेशी बैंको की 10 से कम शाखाएं है। स्पष्ट रूप से, ये बैंक निगम के ग्राहकों (Corporate Clients पर केन्द्रित हैं तथा अन्तर्राष्ट्रीय बैंकिंग के क्षेत्र में ये कुशल है। 1993 में बैंको की नियंत्रण मुक्ति के साथ ही कई विदेशी बैंक भारत में आ गए या उन्हें पारपत्र मिल गये।

2. असंगठित क्षेत्र

असंगठित बैंकिंग क्षेत्र में देशी बैंकर हैं, मुद्रा उधार देने वाले, सेठ, साहुकार आदि हैं जोकि बैंकिंग का कार्य करते है।

a) देशी बैंकर – देशी बैंक आधुनिक व्यावसायिक बैंको के जन्मदाता है। ये व्यक्तिगत रूप से या सांझेदारी फर्म के रूप में बैंकिंग का कार्य करते हैं। ये वित्तीय विचौलियों के रूप में कार्य करते हैं। जैसे की देशी शब्द यह संकेत देता है कि वह लोकल बैंकर है। व्यावसायिक बैंकों की अपेक्षा, भौगोलिक क्षेत्र का ज्यादा हिस्सा देशी बैंकों के अन्तर्गत आता है। वे देश के सभी भागों में पाये जाते हैं चाहे इनके नाम, कार्य–शैली तथा कार्य–निष्पादन का तरीका अलग क्यों न हो। दक्षिण भारत में इन्हे गुजराती शराफस (Gujrati Shroffs) या मारवाड़ी के नाम से जाना जाता है। पश्चिमी भारत में इन्हें चेट्टियर (Chettiars) कहा जाता है, उत्तरी भारत में इन्हें साहूकार कहा जाता है आदि।

देशी बैंकों का इतिहास प्राचीन काल से ही अस्तित्व में है। देशी बैंकों के प्रभाव को इस तथ्य से ही जाना जा सकता है कि वे न केवल व्यापार एंव वाणिज्य ही को उधार प्रदान करते हैं बल्कि ब्रिटिशों के आगमन के बाद यूरोपीयन बैंकों ने अपना स्वामित्व भी स्थापित कर लिया।

संयुक्त स्कंध वाणिज्यिक बैंक तथा सहकारी बैंकों के उदगम ने देशी बैंकों के दायरे को और भी छोटा कर दिया। अभी भी किसी विशिष्ट समुदाय के हजारों ही परिवार देशी बैंकिंग के व्यापार में लगे हुए हैं।

a) उधार देने वाले – उधार देने वालों को कार्यशील पूँजी के रूप में सारा धन अपने कोषों में से लगाना होता है। उधार देने वाले ग्रामीण या शहरी, पेशेवर या अव्यावसायिक भी हो सकते हैं। वे बड़े किसान, व्यापारी, आढ़तिया, सुनार, गाँव के दुकानदार, मजदूरों के सरदार आदि हो सकते है। हर एक उधार देने वाले की कार्य–विधि तथा परिचालन क्षमता अलग–अलग होती है।

उधार देने वालों की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार से हैं :

1. उनके कोष अपने कोष होते हैं।
2. उनके ग्राहक मुख्य रूप से समाज के कमजोर वर्ग के लोग होते हैं।
3. उनके ऋण अत्यधिक शोषक होते हैं तथा वे ब्याज की उच्च दरें वसूल करते हैं।
4. उनके संचालन पूर्ण रूप से अनियमित होते हैं।
5. उधार शीघ्र तथा लोचशील होता है।

वे कमजोर वर्ग का शोषण करते हैं क्योकि कमजोर वर्ग रूप से इन पर आश्रित होता है। वे अपने परिचालन क्षेत्रों में एकाधिकार का आनन्द लेते हैं।

II. गैर बैंकिंग संस्थांए

गैर बैंकिंग संस्थाओं को भी विस्तृत रूप से दो समूहों में विभाजित किया जा सकता है :

a) संगठित वित्तीय संस्थाएं

b) असंगठित वित्तीय संस्थाएं

a) संगठित वित्तीय संस्थाएं – संगठित गैर–बैंकिग वित्तीय संस्थाओं में शामिल हैः

1. विकास वित्तीय संस्थान – इसमें शामिल है :

i. अखिल भारतीय स्तर की संस्थाएं जैसे कि ICICI, IFCI, IIBI, IRDC आदि।

ii. राज्य वित्त निगम राज्य औद्योगिक विकास निगम राज्य स्तर की आदि।

iii. कृषि विकास वित्त संस्थान जैसे कि NABARD, IDBS आदि।

विकास बैंक, निगमों तथा औद्योगिक क्षेत्रों को मध्यम तथा दीर्घकालीन वित्त प्रदान करते हैं तथा देश के आर्थिक विकास के लिए प्रवर्तक क्रियाएं भी करते है।

2. निवेश संस्थाएं – ये वे वित्तीय संस्थाएं हैं जोकि जनता से बचतों के रूप में विभिन्न स्कीमों के द्वारा बड़े पैमाने दर धन इकठ्ठा कर लेते हैं तथा इन कोषों को निगम तथा सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश कर देते हैं। इनके अन्तर्गत आते हैं, LIC, GIC, UTI, तथा म्यूचुअल फंड आदि।

b) असंगठित वित्तीय संस्थान – असंगठित गैर–बैंकिंग संस्थाओं (के अन्तर्गत) में कई प्रकार की गैर–बैंकिंग वित्तीय कम्पनी हैं जोकि कई प्रकार की वित्तीय सेवाएं प्रदान करती है। इनमें शामिल है किराया क्रय एंव उपभोक्ता वित्त कम्पनियां, पट्टा कम्पनियां, भवन वित्त कम्पनियां, आढ़तिया कम्पनियां, साख निर्धारण अभिकरण, मर्चेन्ट कम्पनियाँ आदि। NBFC’s जनता से कोषों को इकठ्ठा करती है तथा कोषों को ऋण के रूप में प्रदान करती है। 1990 के बाद से इन कम्पनियों की संख्या में अद्वितीय रूप से वृद्धि हुई है।

1.6.2 वित्तीय बाजार

आधुनिक व्यवसाय के लिए वित्त परम आवश्यक तत्व है तथा वित्तीय संस्थान, आर्थिक प्रणाली में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। वित्तीय बाजारों तथा संस्थानों के द्वारा ही अर्थव्यवस्था की वित्तीय प्रणाली कार्य करती हैं। वित्त बाजार, संस्थागत प्रंबध करते हैं तथा वित्तीय सम्पत्तियों तथा विभिन्न प्रकार के साख प्रपत्र जैसे कि मुद्रा, चैक, बैंक जमा, बिल तथा बांड आदि का व्यापार किया जा सके।

वित्त बाजार को विस्तृत रूप से ऋण बाजार एंव खुले बाजार में विभाजित किया जा सकता है। ऋण बाजार वह बाजार होता है जिसमें ऋण देने वाला तथा ऋण लेने वाला दोनों ही व्यक्तिगत रूप से ऋण अनुबंध की शर्तो को तय करते है। उदाहरण के लिए, एक व्यवसाय का मालिक एक बैंक या एक छोटी ऋण कम्पनी से उधार पैसा लेता है। दूसरी तरफ खुला बाजार एक अव्यक्तिगत बाजार होता है जिसमें प्रमापित प्रतिभूतियां बड़ी संख्या मे खर्च की जाती हैं। स्कन्ध बाजार, खुले बाजार का उदाहरण है। संक्षिप्त रूप से, वित्त बाजार, ऐसे उधार देने वाले बाजार होते है जोकि विभिन्न प्रकार की उधार की जरूरतों, चाहे वे व्यक्तिगत हो, फर्म की हो, या संस्था की को पूरा करती है। उधार अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन दोनों आधारों पर दिया जाता है।

कार्य :

वित्त बाजार के मुख्य कार्य इस प्रकार से हैं :–

i. उधार तथा नकदी का निर्माण तथा आबंटन करना।

ii. बचतों को इकठ्ठा करने के लिए बिचौलिये के रूप में कार्य करना।

iii. सन्तुलित आर्थित वृद्धि की प्रक्रिया में सहायता प्रदान करना।

iv. वित्तीय सुविधाएं प्रदान करना और

v. व्यावसायिक भवनों की विभिन्न प्रकार की उधार की जरूरतों को पूरा करना।

वित्त बाजार के प्रकार :

अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन उधार की आवश्यकताओं के आधार पर वित्त बाजारों का दो भागों में वर्गीकरण किया जा सकता है:–

1. मुद्रा बाजार
2. पूँजी बाजार

मुद्रा बाजार –

शब्द मुद्रा बाजार को संयुक्त रूप से वित्तीय संस्थानो के अर्थ के रूप में प्रयोग किया गया है जोकि अर्थव्यवस्था में अल्पकालीन कोषों से सम्बध रखती है। यह एक ऐसा संस्थागत प्रबंध है जोकि अल्पकालीन समय के लिए उधार लेने तथा देने में सहायता करता है। मुद्रा बाजार उधार देने वाले को जिसके पास अल्पकाल के लिए आधिक्य है तथा वह निवेश करना चाहता है तथा उधार लेने वाले को, जिसे अल्पकाल के लिए कोषों की आवश्यकता है को आपस में मिलवाता है। मुद्रा बाजार में अल्पकाल के लिए, एक दिन, एक सप्ताह, एक महीने या 3 से 6 महीने के लिए ऋण लिया जा सकता है तथा कोई न कोई प्रपत्र जैसे विनिमय पत्र, बैंकर को स्वीकृति, या बौण्ड आदि जिनसे कि आसानी से मुद्रा मिल जाए रखनी पड़ती है। इसलिए मुद्रा बाजार को काउथर के द्वारा इस प्रकार से परिभाषित किया गया है। ''विभिन्न प्रकार की फर्मो तथा संस्थाओं का संयुक्त रूप से दिया गया नाम जोकि मुद्रा के विभिन्न किस्मों जोकि तटस्थ है, से व्यवहार करती है।''

भारतीय रिजर्व बैंक ने मुद्रा बाजार को इस प्रकार से परिभाषित किया है, ''मौद्रिक सम्पत्तियों में, मुख्य रूप से अल्पकाल के लिए, व्यापार का केन्द्र जहां पर उधार लेने वाली अल्पकालीन आवश्यकताएं पूरी हो जाती हैं तथा, उधार देने वाले को नकदीय तरलता मिल जाती है।'' मुद्रा बाजार में, ऋण लेने के लिए आमतौर पर मर्चेन्ट, ट्रेडर्ज, उत्पादक, बड़े–बड़े व्यवसाय, दलाल यहां तक कि सरकारी संस्थाएं भी होती है। मुद्रा बाजार में ऋण देने वालों में देश का केन्द्रीय बैंक, व्यावसायिक बैंक, बीमा कम्पनियां तथा वित्तीय संस्थाए शामिल होते है।

मुद्रा बाजार का संगठन किया जाता है। यहां पर उधार लेने तथा देने के लिए कोई निश्चित स्थान या जगह नहीं है। यह भी आवश्यक नहीं है कि ऋण देने वाले तथा ऋण लेने वाले के बीच व्यक्तिगत सम्पर्क हो। Parties के मध्य बातचीत दूरभाष, टेलीग्राफ या डाक द्वारा भी की जा सकती है। इस प्रकार मुद्रा बाजार एक साधारण तथा आसान प्रबंध है जिसके अन्तर्गत उधार देने तथा लेने वाले के बीच प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्पर्क होता है।

मुद्रा बाजार के कार्य

मुद्रा बाजार निम्नलिखित प्रकार के कार्य करती है:–

1. मुद्रा बाजार का आधार भूत कार्य, व्यावसायिक बैंकों, व्यापारिक निगमों तथा दूसरे गैर–बैंक वित्तीय संस्थानों की तरलता स्थिति को समायोजित करने में सहायता करना है।

2. यह व्यावसायिक बैंकों, व्यापारिक निगमों, गैर–बैंक वित्तीय संस्थानों तथा दूसरे निवेशकों को अपने अल्पकालीन आधिक्यों को निवेश करने का मौका/अवसर प्रदान करती है।
3. यह विभिन्न प्रकार के ऋण लेने वाले जैसे कि व्यापारी, उद्योगपतियों, ट्रेडर्स आदि को अल्पकाल के लिए ऋण उपलब्ध करवाने का कार्य करती है।
4. मुद्रा बाजार, अल्पकाल के लिए सरकारी संस्थानों को भी ऋण प्रदान करती है।
5. मुद्रा बाजार में ऋण को नियंत्रित करने के लिए एक योग्य तकनीक होती है। यह देश के केन्द्रीय बैंक के द्वारा उधार के निर्माण को नियंत्रिण करने में, एक माध्यम के रूप में कार्य करती है।
6. यह व्यापारी को इस योग्य बना देती है कि वह अपने अल्पकालीन आधिक्यों को कहीं निवेश कर सके।
7. यह महत्वपूर्ण प्रयोगों के लिए, कोषों के प्रवाह में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

पूँजी बाजार –

शब्द 'पूँजी बाजार एक ऐसा संस्थागत प्रबंध है जिसके द्वारा दीर्घकालीन समय के लिए कोषों को उधार दिया तथा लिया जाता है। विस्तृत रूप में, यह एक ऐसी कड़ी है जिसके द्वारा समुदाय की बचतों को उद्योगो एंव व्यावसायिक उद्यमों एंव सार्वजनिक उपक्रमों के लिए उपलब्ध किया जाता है। यह उन निजी, व्यक्तिगत तथा निगम बचतों से सम्बन्धित होता हैं जिन्हें नई पूँजी जारी करके निवेश में परिवर्तित किया जाता है एंव सरकारी एंव अर्ध सरकारी उपक्रमों के द्वारा नये सार्वजनिक ऋण के रूप में प्रवाहित भी किया जाता है।

एक पूँजी बाजार को एक संगठित यंत्र रचना जिसके अन्तर्गत पूँजी मुद्रा या वित्तीय संसाधनों को प्रभावी ताकि निपुण तरीके से निवेशक पक्षकारों से हस्तांरित किया जाता है, के रूप में पारिभाषित किया जा सकता है। यहां पक्षकारों का अर्थ है, व्यक्ति या उद्यमियों के लिए संस्था के बचतकर्ता जो कि एक अर्थव्यवस्था में, एक उद्योग, वाणिज्य निजी या सार्वजनिक क्षेत्र में है।

पूँजी बाजार के उद्देश्य एंव महत्व

आर्थिक विकास के लिए एक दक्ष पूँजी बाजार परम आवश्यक है। एक संगठित तथा विकसित पूँजी बाजार जो कि स्वतंत्र बाजार अर्थव्यवस्था में परिचालित हो रहा हैः–

i. एक तरफ तो बचतों के प्रवाह तथा दूसरी तरफ निवेश के प्रवाह जिसके द्वारा पूँजी का निर्माण होगा तथा इन सभी के बीच सुदृढ़ समन्वय तथा सन्तुलन को निश्चित करती है।

ii. बचतों के प्रवाह को लाभदायक माध्यम की ओर निर्देशित करती है तथा इस बात का निश्चय करती है कि वित्तीय साधनों को संतुलित बिन्दु तक उपयोग किया जा रहा है।

इस प्रकार वित्तीय बाजार वह है जहां पर वित्त को उद्योग की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए प्रमुख सहायक के रूप में प्रयोग किया जाता है। किसी भी मिश्रण के लिए वित्त सही दर की प्रत्याय पर उपलब्ध हो जाता है, जिससे उधार के उपर आशान्वित प्रतिफल प्राप्त हो जाता है। इससे बचतों, मध्यस्थ संस्थानों के सही संगठन एंव लोगो में उद्यमियों के गुणों का विकास होता है। पूँजी बाजार में पूँजी की गतिशीलता उच्च्य प्रतिफल के बिंदु तक होनी चाहिए।

इस प्रकार पूँजी बाजार का कार्य हैः–

i. राष्ट्रीय आयों का आर्थिक विकास के लिये केन्द्रीयकरण या इकठ्ठा करना।

ii. विदेशी पूँजी एंव निवेश को इकठ्ठा एंव आयात करना ताकि वित्तीय संसाधनों के घाटों को पूर्ण किया जा सके ताकि आशान्वित आर्थिक दर को प्राप्त किया जा सके।

पूँजी बाजार के कार्य

पूँजी बाजार द्वारा निष्पादित किए जाने वाले मुख्य कार्य इस प्रकार से है।

i. राष्ट्रीय स्तर पर वित्तीय साधनों को इकठ्ठा करना।

ii. विदेशी पूँजी तथा ज्ञान (अनुभव) को सुरक्षित रखना ताकि जरूरी साधनों में कमीं को पूरा किया जा सके, जिससे आर्थिक विकास/वृद्धि की दर तीव्र रहे।

iii. इकठ्ठे किए गए वित्तीय साधनों का आबंटन इस प्रकार से किया जाए या तो उनको उन परियोजनाओ में लगाया जाए जिससे उच्च लाभदायकता प्राप्त हो या उन परियोजनाओं में जो सन्तुलित आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है।

मुद्रा तथा पूँजी बाजार दोनों को संयुक्त रूप से वित्तीय बाजार कहा जाता है। मुद्रा बाजार एक ऐसा बाजार है जहां पर अल्पकालीन ऋण दिए जाते हैं तथा इसकी अवधि एक साल या उससे कम होती है। दूसरी तरफ, पूँजी बाजार दीर्घकालीन ऋणों के लिए है, यह अवधि एक साल से ज्यादा समय की होती है। अपने उपकरणों के आधार पर ये दोनो बाजार अलग–अलग हो जाते हैं। मुद्रा बाजार प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय पत्र तथा ट्रेजरी बिल आदि से कार्य करता है, जहां तक वित्तीय संस्थानो की मुद्रा बाजार में बात है तो बिल, ब्रोकर्स डिस्काउण्ट हाउसेस तथा व्यावसायिक बैंक इसका एक हिस्सा हैं। दूसरी तरफ पूँजी बाजार में वित्तीय संस्थान हैं इनवेस्टमेंट ट्रस्ट, बीमा कम्पनियां, वित्त भवन आदि। कम विकसित देश में मुद्रा विकसित देश में मुद्रा, तथा पूँजी बाजार दोनो असंगठित होते हैं इसलिए वहां इन दोनों में भेद नहीं किया जा सकता।

1.6.3 वित्तीय साधन

वित्तीय प्रणाली का एक महत्वपूर्ण संघटक है वित्तीय सम्पत्तियां/ अभिलेख /साधन आदि। वे भविष्य में दूसरों की सम्पत्ति तथा आय पर दावे को प्रस्तुत करती है। दूसरे शब्दों में, वित्तीय अभिलेख किसी व्यक्ति या संस्थान के विरूद्व, किसी इकठ्ठी राशि के भुगतान या ब्याज या लाभांश के रूप में आवधिक अदायगी के लिए किसी विशेष भविष्य तिथि पर दावा प्रस्तुत करते हैं।

वित्तीय बाजार में, कई प्रकार के निवेशक परिचालित किए जाते हैं। उनकी आवश्यकताओं के अनुसार कम्पनियां तथा वित्तीय संस्थान कई प्रकार की प्रतिभूतियां जारी करती है। दूसरे शब्दों में वित्तीय/बाजार प्रणाली रचनात्मक वित्तीय उत्पादों के विकास को बढावा देती है जिससे विविध निवेशकों की निवेश आवश्यकताओं को पूरा किया जाता है।

वित्तीय प्रतिभूतियों को विस्तृत रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता हैः–

1. प्राथमिक प्रतिभूतियां – इन्हें प्रत्यक्ष प्रतिभूतियां भी कहा जाता है क्योकि ये अन्तिम बचतकर्ता या निवेशक के द्वारा अन्तिम उधार लेने वाले को प्रत्यक्ष रूप से जारी की जाती हैं। प्राथमिक प्रतिभूतियों में समता अंश, पूर्वाधिकार अंश तथा ऋणपत्र शामिल होते हैं।

2. गौण प्रतिभूतियां – इन प्रतिभूतियों को अप्रत्यक्ष प्रतिभूतियां भी कहा जाता है क्योंकि इन्हे प्रत्यक्ष रूप से अन्तिम उधार लेने वाले को जारी नहीं किया जा सकता क्योंकि ये अंतिम बचतकर्ता को वित्तीय विचौलियों द्वारा जारी किए जाते हैं। बीमा पत्र, संयुक्त कोषों की इकाइयां तथा बैंक जमा आदि गौण प्रतिभूतियों की उदाहरण है।

वित्तीय संस्थान वित्त बाजार तथा वित्तीय बिचौलिये के द्वारा उधार देने वाले से उधार लेने वाले के बीच एक महत्वपूर्ण पात्र अदा करते हैं। हर एक अभिलेख अपनी विपणता, जोखिम, प्रत्याय, तरलता तथा लेन–देन की लागतों के आधार पर अलग–अलग होता ळें 1990 से, निगम तथा वित्तीय संस्थाओं द्वारा जारी किए गए वित्तीय उपकरणों में आश्चर्यजनक रूप से वृद्धि हुई है।
कोषों को इकठ्ठा करने के लिए नवनिर्माणित उपकरण नीचे दिए गए हैं:–

1. समता अधिपत्र
2. Secured Premium Notes
3. Callable Bonds
4. Floating/Variable Or Abjustable Rate Bonds
5. Deep Discount Bonds (Ddb's)
6. Inflation Adjusted Bonds (Iab's)
7. Easy Exit Bond With A Floating Interest Rate.
8. Regular Income Bonds
9. Retirement Bonds
10. Index Bonds
11. Encash Bonds
12. Growth Donds
13. Capital Bonds आदि।

1.6.4 वित्तीय सेवाएं

वित्तीय प्रणाली की कार्यकुशलता मुख्य रूप से वित्तीय सेवाओं की गुणवत्ता तथा प्रकार के पर निर्भर करती है जोकि वित्तीय मध्यस्थों के द्वारा प्रदान की जाती है। शब्द वित्तीय सेवाओं को इस प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है, ''वे क्रियाएं, लाभ तथा संतुष्टियां जोकि मुद्रा के विक्रय से जुड़ी होती हैं तथा उन्हें उपयोगकर्ताओं तथा अपभोक्ताओं को दिया जाता है, वित्तीय मूल्यों से सम्बधित होती हैं।'' वित्तीय सेवा संगठन अपनी सेवाएं औद्योगिक उद्यमों तथा अन्तिम उपभोक्ता बाजार तक पहुंचाते हैं।

वित्तीय सेवा उद्योग में मुख्य क्षेत्र हैं बैंक, वित्तीय संस्थान तथा गैर–बैंकिंग वित्तीय कम्पनियां वित्तीय सेवाओं की आपूर्ति में निम्नलिखित संस्थान शामिल होते है।

1. बैंक तथा वित्तीय संस्थान
2. भवन निर्माण उपक्रम
3. बीमा कम्पनियां
4. साख पत्र निर्गमन करने वाले कम्पनियां
5. निवेश प्रयास एवं सहयोग निधि
6. स्कन्ध विनियमों
7. पट्टा कम्पनियां/उपकरण कम्पनियां/उपभोक्ता वित्त पोषण कम्पनियां
8. यूनिट ट्रस्ट

वित्तीय सेवाओं की विशेषताएं

वित्तीय सेवाओं की निम्नलिखित विशेषताएं होती हैः–

1. अदृश्य – वित्तीय सेवाएं उपभोक्ता के द्वारा, न तो छुई, सूंघी, देखी या सुनी जा सकती है। इस प्रकार एक संगठन, जोकि वित्तीय सेवाएं दे रहा है कि प्रभावशीलता, गुणवत्ता, तथा सेवाएं देने की आकर्षण क्षमता का अनुमान पूर्ण रूप से, जनता से प्राप्त सुझाव एवं फीडबैक के उपर निर्भर रहता है।
2. प्रत्यक्ष विक्रय – प्रत्यक्ष विक्रय ही संभव रूप से विक्रय का एकमात्र वितरक जरिया है। इनके बीच कोई मध्यस्थ नहीं होता। इस बात का विश्वास दिलाने के लिए, कि सेवाएं सही स्थान, सही समय पर उपलब्ध हैं, इसके लिए सेवा संगठन, समान रूप से वित्तीय सेवाओं के उत्पादन तथ वितरण का कार्य करता है।
3. विविधता – विभिन्न क्षेत्रों के, विभिन्न उपभोक्ताओं की विभिन्न वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वित्तीय सेवा संगठनों को उत्पादों तथा सेवाओ की एक विस्तृत रेंज प्रस्तुत करनी पड़ती है। वे औद्योगिक उपभोक्ताओं को एक प्रबंधन रहित सेवा प्रदान करते हैं एंव बीमा, मुद्रा प्राप्ति तथा भण्डारण आदि के लिए एक परचून सेवा प्रदान करते है।
4. माँग में अस्थिरता – विशेष प्रकार के वित्तीय सेवाओं की मांग जैसे कि जीवन बीमा आदि, सामान्य आर्थिक क्रियाओं के अनुसार घटती, बढ़ती रहती है। यह घटक बीमा कम्पनियों संगठनों की विपणन की क्रियाओं तथा विनिमय के उपर ज्यादा तनाव पैदा करता है।
5. उपभोक्ता के हित को सुरक्षित रखना – प्रत्येक वित्तीय सेवाओं का उत्तरदायित्व उपभोक्ता के हितों की रक्षा करना होना चाहिए। हितों की रक्षा केवल बैंकिंग तथा बीमा क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि हर वित्तीय सेवा के क्षेत्र में होनी चाहिएं।
6. श्रम वृद्धिकर – व्यक्तिगत सेवाएं बनाम स्वचालित यंत्र, वास्तव में वित्तीय सेवाओं में एक महत्वपूर्ण विषय है। वित्तीय सेवाओं का क्षेत्र उच्च रूप से श्रम वृद्धिकर है। इससे उत्पादन लागत बढ़ जाती है तथा मुख्य रूप से वित्तीय सेवाओं का मूल्य प्रभावित होता है। उच्च कर्मचारी लागत तथा उपभोक्ताओं की सुविधाओं को देखते हुए तकनीकी का प्रयोग किया जाने लगा है।
7. भौगोलिक व्याप्ति – वित्तीय सेवाओं की आग्रह तथा उपयोगिता दोनो होनी चाहिएं। इस बात को निश्चित करने के लिए, सेवाएं प्रदान करने वाले संगठन की शाखाओं का एक नैटवर्क होना चाहिए ताकि लाभों तथा सुविधाओं को अन्तर्राष्ट्रीय तथा लोकल उपभोक्ताओं को आसानी से उपलब्ध करवाया जा सकें।
8. विशेष पहचान की कमी – उपभोक्ता आमतौर पर नजदीक बैंक की शाखा या वित्तीय संस्थानों में ही जाते हैं क्योंकि यह उनके लिए ज्यादा सुविधाजन होता है। जैसे कि विभिन्न सेवा संगठनों के द्वारा प्रदान किये जाने वाले प्रतिस्पर्धा उत्पाद एक समान ही होते हैं, ऐसी स्थिति में उत्पाद की अपेक्षा पैकेज पर अधिक ध्यान दिया जाता है। पैकेज में शाखा का पता, स्टाफ, सेवाएं, प्रतिष्ठा, विज्ञापन तथा समय–समय पर दी जाने वाली नई सेवाओं की आन्तरिक गुणवत्ता की अपेक्षा, प्रवर्तक पहलुओं पर ज्यादा ध्यान देते है। प्रत्येक संगठन को अपनी पहचान बनाने के लिए कदम उठाने चाहिएं एवं पहचान को लोगों के दिमागों में प्रतिरोपित करना चाहिएं।
9. सूचना पर आधारित – वित्तीय सेवा उद्योग सूचनाओं पर आधारित उद्योग है। इसमें, रचनात्मकता, फैलाव, सूचनाओं का उपयोग शामिल होता है। वित्तीय सेवाओ के उत्पादन

के लिए सूचना एक महत्वपूर्ण अवयव है। सूचनाओ की प्रक्रिया लागतें वित्तीय सेवाओं के लाभदायक उत्पादन में प्रसंगिक है।

10. गुणवत्ता मजदूरों की जरूरत – वित्तीय सेवाओं के अन्तर्गत, बाजार मे सूचनाओ तथा सवंहन आदि संबन्धित कार्य करने के लिए उच्च क्षमताकी मजदूरों की आवश्यकता होती है। साधारण कार्य करने वाले कर्मचारियों से लेकर जटिल विश्लेषण तथा समझौता के लिए योग्य कर्मचारियों के लिए अनुभवी तथा प्रशिक्षित कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। मजदूरी लागत के महत्व तथा वित्तीय सेवाओं के उत्पादन में मानवीय निवेश के मूल्य को, उन्हें दिये जाने वाले वेतन से मापा जा सकता है। वित्तीय सेवाएं प्रदान करने वाली फर्मो को मानवीय संसाधनों को आकर्षित, अभिप्रेरित तथा प्रतिधारित करने के लिए ज्यादा प्रयत्न करने पड़ते हैं तभी वे भविष्य में जीवित, वृद्धि तथा खुशहाल रह सकते है।

वित्तीय सेवाओं के प्रकार

विभिन्न वित्तीय संस्थानों, वाणिज्यिक बैंकों तथा मर्चेन्ट बैंकरो के द्वारा प्रदान की जाने वाली वित्तीय सेवाएं, विस्तृत रूप से दो भागों में वर्गीकृत की गई हैः–

1. सम्पत्ति आधारित/कोष आधारित सेंवाएं
2. फीस आधारित/सलाहकार सेवाएं

मुख्य कोष आधारित सेवाओं में शामिल हैं

1. उपकरण पट्टा/ आर्थिक प्रबंध
2. किराया क्रय एवं ग्राहक साख
3. बिलो को भुनाना
4. साहसिक/जटिल पूँजी
5. भवन वित्त पोषण
6. बीमा सेवाएं
7. आढ़तिया

फीस आधारित/सलाहकार सेवाओं में शामिल है।

1. जारी प्रबंध
2. संविभाग प्रबंध
3. निगम परामर्श
4. ऋण संघ द्वारा प्रकाशन
5. विलयन एंव अधिग्रहण
6. पूँजी पुनसंरचना
7. उधार निर्धारण
8. स्कंध दलाली

1.7 आधुनिक अर्थव्यवस्था में वित्तीय प्रणाली की भूमिका एंव योगदान

1. यह बचतकार तथा विनियोक्ता के बीच कड़ी का कार्य करती है। यह विभिन्न बचतकारों की बचतों को इकठ्ठा करके सही तथा प्रभावी तरीके से लगाने में सहायता करती है। यह बचतों को उत्पादक निवेश में बदलती है।
2. यह उन योजनाओ का चुनाव करने में सहायता करती है जिनमे वित्त लगाना चाहिए तथा समय–समय पर इन परियोजनाओं के निष्पादन का मूल्यांकन भी करती है।

3. यह वस्तुओ तथा सेवाओं के विनिमय की अदायगी के लिए एक तकनीक प्रदान करती है।
4. यह साधनों को भौगोलिक क्षेत्रों से बाहर भेजने अर्थात् हस्तांतरित करने के लिए भी एक तकनीक प्रदान करती है।
5. यह बचतों का इकठ्ठा करने एंव उधार के आबंटन में शामिल जोखिम को व्यवस्थित करने तथा नियंत्रित करने के लिए भी तकनीक प्रदान करती है।
6. यह बचतों की आपूर्ति तथा विनियोगिक कोषों की माँग को इकठ्ठा करके पूँजी निर्माण की प्रक्रिया को बढ़ावा देते है।
7. यह लेनदेन की लागतों को कम करके एंव प्रत्याय को बढ़ाने में सहायता करती है।
8. यह बाजार के परिचालकों को पूर्ण सूचना प्रदान करती है जैसे कि व्यक्ति, व्यापारिक भवन तथा सरकार आदि।

1.8 सारांश

- वित्तीय प्रणाली, वित्तीय संस्थानों की उपप्रणाली का एक समूह है जैसे वित्त बाजार, वित्त अभिलेख तथा सेवाये, जिसके द्वारा पूँजी का निर्माण होता है। यह एक ऐसी युक्ति प्रदान करती है जिसके द्वारा बचतों का निवेश किया जाता है।
- भारतीय वित्तीय प्रणाली की संरचना को वित्त के दृष्टिकोण से निम्न चार भागो में बाटा गया है।
  i. औद्योगिक वित्त
  ii. कृषिक वित्त
  iii. विकास वित्त
  iv. सरकारी वित्त
- भारतीय वित्तीय प्रणाली के मुख्य रूप से चार अवयव है जो कि निम्नानुसार है :
  i. वित्तीय संस्थान
  ii. वित्तीय बाजार
  iii. वित्तीय साधन
  iv. वित्तीय सेवाएं

1.9 शब्दावली

- RRB - क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक
- NABARD – राष्ट्रीय कृषि एंव ग्रामीण विकास बैंक
- NBFC - गैर बैंकिंग वित्तीय संस्था
- IDBI – भारतीय औद्योगिक विकास बैंक
- SIDBI - भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक

1.10 बोध प्रश्न

(क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजियेः

i. विश्व के प्रत्येक देश की आर्थिक उन्नति तथा विकास सशक्त .... पर निर्भर करती है।

ii. भारतीय वित्तीय प्रणाली की संरचना को वित्त के दृष्टिकोण से .... भागो में बाटा गया है।

iii. भारतीय वित्तीय प्रणाली के मुख्य अवयव वित्तीय संस्थान, बाजार, साधन एवं .... है।

iv. भारतीय बैंकिंग संस्थाओं की विस्तृत रूप से संगठित एंव .... में विभाजित किया जाता है।

v. वित्तीय प्रतिभूतियों के दो प्रकार क्रमशः .... है।

1.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

i. वित्तीय प्रणाली
ii. चार
iii. सेवायें
iv. असंगठित
v. प्राथमिक एंव गौण

1.12 स्वपरख प्रश्न

i. वित्तीय प्रणाली से आप क्या समझते है ?
ii. वित्तीय प्रणाली की परिभाषा बताईयें।
iii. वित्तीय प्रणाली के प्रमुख कार्यो का वर्णन कीजिये।
iv. वित्तीय प्रणाली की विशेषताओं को बताईये।
v. वित्तीय प्रणाली के विभिन्न अवयवो को समझाइये।
vi. ''वित्तीय बाजार एंव वित्तीय सस्थान वित्तीय प्रणाली में महत्वपूर्ण पात्र अदा करते है'' क्या आप इस कथन से सहमत है ? व्याख्या कीजिये।

1.13 सन्दर्भ पुस्तकें

- सेठी, टी0टी0 (2015), मुद्रा बैंकिंग एवं लोक वित, आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिसर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- गुप्ता, शान्ति के0 और अग्रवाल, निशा, इंडियन फाइनैन्शियल सिस्टम्स, कल्याणी पब्लिसर्स, 2016।
- प्रतियोगिता दर्पण, जुलाई 2016।
- इंडियन इकोनोमी, जुलाई 2016।
- अग्रवाल, दीपक (2010), मुद्रा बैंकिंग, लोक वित्त एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, हिमालया पब्लिशिंग हाउस मुबई।
- बिशनोई, आर0के0, बीमा के सिद्धांत, साहित्य भवन पब्लिसर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा।
- श्रीवास्तव, आर0एम0 और निगम, दिब्या मैनेजमैन्ट ऑफ इंडियन फाइनैन्शियल इंस्टीट्यूशन्स
- विभिन्न इंटरनैट साइट्स।
- जैन, टी0आर0 इंडियन फाइनैन्शियल सिस्टम्स, वी0के0 ग्लोबल पब्लिकेशन्स और खन्ना, ओ0पी0, प्राईवेट लिमिटेट, 2014–15।

इकाई – 2 भारत में वित्तीय प्रणाली का क्रमिक विकास

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 भारतीय वित्तीय प्रणाली का क्रमिक इतिहास
2.2.1 स्वतन्त्रता से पहले
2.2.2 स्वतन्त्रता के बाद 1990 तक
2.2.3 1990 के बाद
2.3 भारतीय वित्तीय प्रणाली से संबधित नियामक संस्थाए
2.3.1 भारतीय रिजर्व बैंक
2.3.2 भारतीय बीमा नियामक एंव विकास अधिकरण
2.3.3 कृषि एंव ग्रामिण विकास बैंक
2.3.4 भारतीय प्रतिभूति एंव विनिमय बोर्ड
2.3.5 पेंशन फंड नियामक एंव विकास अधिकरण
2.3.6 वायदा बाजार आयोग
2.4 सारांश
2.5 शब्दावली
2.6 बोध प्रश्न
2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.8 स्वपरख प्रश्न
2.9 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- भारतीय वित्तीय प्रणाली को कालक्रमानुसार विस्तृत रूप से वर्णन कर सकें।
- भारतीय वित्तीय प्रणाली में हुए बदलावो की व्याख्या कर सकें।
- नियामक संस्थाओं की संरचना को समझ सकें।
- विभिन्न नियामक संस्थाओं का वर्णन कर सके।
- नियामक संस्थाओ के कार्यो और अधिकारों को समझ सके।

2.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था के उदारीकरण तथा वैश्वीकरण के कारण इसकी वित्तीय प्रणाली की संरचना में काफी परिवर्तन हुए है। स्वतंत्रता के बाद नियोजित आर्थिक विकास पर जोर दिया गया। स्टेट पॉलिसी के निदेशित सिद्धान्तो के अनुसार, 1951 में नियोजित आर्थिक विकास की योजना का उद्‌गम हुआ जिसका उद्‌देश्य राज्य की आर्थिक एंव सामाजिक उद्‌देश्यो की प्राप्ति था। इस इकाई में आप भारतीय वित्तीय प्रणाली में हुए बदलावों, नियामक संस्थाओं की संरचना व नियामक संस्थाओ के कार्यो और अधिकारों का विस्तृत अध्ययन करेंगे ।

2.2 भारतीय वित्तीय प्रणाली का क्रमिक इतिहास

किसी देश की आर्थिक उन्नति एंव विकास मुख्य रूप से उस देश की वित्तीय प्रणाली की कार्यकुशलता तथा विकास पर निर्भर करती है। वित्तीय क्षेत्र की उन्नति, देश के आर्थिक विकास की प्रतीक है।

वित्तीय प्रणाली में बदलावों का तीन स्तरों पर अध्याय किया जा सकता है।

1. स्वतंत्रता से पहले
2. स्वतंत्रता के बाद 1990 तक
3. 1990 के बाद

2.2.1 प्रथम स्तर : स्वतंत्रता से पहले

स्वतंत्रता से पूर्व वित्तीय प्रणाली में निम्नलिखित विशेषताएँ थी :–

1) प्रणाली असंगठित थी।
2) पूँजी स्कंध विपणि में बहुत कम औद्योगिक प्रतिभूतियां थी जिनका प्रतिभूति बाजार में व्यापार किया जाता था।
3) वहां पर कोई अलग निर्गमन संस्थान नहीं था।
4) उद्योगों के दीर्घकालीन वित्तयन के लिए वित्तीय मध्यस्थों की सांझेदारी शून्य थी।
5) उद्योगो द्वारा बाहरी बचतों का एक्सेस भी प्रतिबंधित था।

उपरलिखित अनुसार, उद्यौगिक उन्नति प्राप्त करने में, वित्तीय प्रणाली पूर्ण रूप से अयोग्य थी, विशेष रूप से नई एंव नवप्रवर्तनशील उद्यमों की उन्नति के लिए अयोग्य थी।

2.2.2 दूसरा स्तर : स्वतंत्रता के बाद (1948–90)

भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय के आधार पर आर्थिक उन्नति को भी सुरक्षित रखने पर जोर दिया। जिसके परिणामस्वरूप पंचवर्षीय योजना शुरू हुई। सार्वजनिक एंव निजी दोनों क्षेत्रो को अर्धव्यवस्था में औद्योगिक उन्नति एंव विकास को प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण पात्र अदा करना पड़ा। पंचवर्षीय योजनाओं में, वरीयता एंव अनुकूलता के आधार पर वित्तीय प्रणाली में संसाधनों का वितरण, नियोजन के लिये आवश्यक था। इसका मुख्य उद्देश्य सरकार का उधार एंव वित्त वितरण के उपर नियंत्रण का होना था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कई विकास कार्य वित्तीय प्रणाली में हुए जो कि इस प्रकार से है :

निजी क्षेत्र से सार्वजनिक क्षेत्र में स्वामित्व का हस्तांतरण

स्वतंत्रता के बाद, दूसरे चरण में, सबसे ज्यादा जोर निजी क्षेत्र के स्वामित्व को सार्वजनिक क्षेत्र में हस्तांतरित करने एंव सार्वजनिक क्षेत्र में नए संस्थान स्थापित करने पर दिया गया।

भारतीय रिजर्व बैंक का राष्ट्रीयकरण

निजी क्षेत्र से सरकारी क्षेत्र में स्वामित्व के हस्तांतरण की शुरूआत तब हुई जब, रिजर्व बैंक को रिजर्व बैंक अधिनियम, 1948 के अन्तर्गत राष्ट्रीयकृत किया गया एवं सारी अंश पूँजी केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिग्रहित की गई।

स्टेट बैंक ऑफ इंडिया की स्थापना

पहली पंचवर्षीय योजना 1951 में शुरू हुई, जिसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्र का विकास था। अखिल भारतीय अधार सर्वेक्षण समिति, 1951, जोकि आर.बी.आई. द्वारा स्थापित की गई तथा 1954 में दिये गए प्रतिवेदन में इम्पीरियल बैंक की कार्यप्रणाली की आलोचना की गई। यह निश्चय किया गया कि इम्पीरियल बैंक तथा बाकी सहायक बैंकों को अधिग्रहित करके स्टेट बैंक की स्थापना की जाए। इसी अनुसार 1 जुलाई 1935 को भारतीय स्टेट बैंक बना, जिसने भारतीय स्टेट बैंक अधिकनियम,

1935 के अन्तर्गत इम्पीरियल बैंक को अधिग्रहित किया, तथा भारतीय रिजर्व बैंक की निर्गमित पूँजी का 92 प्रतिशत हिस्सा दिया।

जीवन बीमा व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण

राष्ट्र के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण मील पत्थर था 1956 में 245 जीवन बीमा कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण। परिणामस्वरूप 1 सितम्बर, 1956 को भारतीय जीवन बीमा निगम अस्तित्व में आया तथा एक संविधानिक संस्थान की हैसियत से एल.आई.सी. अधिनियम 1956 के तहत उसमें समामेलित हुआ। राष्ट्रीयकरण से संगठनों में महत्वपूर्ण बदलाव आए जैसे कि क्षेत्र तकनीक, तथा इसके संचालन के विस्तार के लिए प्रबंध एंव निवेश केन्द्र आदि।

वाणिज्य बैंकों का राष्ट्रीयकरण

दूसरा महत्वपूर्ण कदम, जिसके अन्तर्गत निजी वित्तीय संस्थानों को सार्वजनिक नियंत्रण में लाया गया था 1 जुलाई 1969, जब 14 वाणिज्य बैंको, जिनका निक्षेप आधार 50 करोड़ या उससे ज्यादा था को रष्ट्रीयकृत किया गया। 1980 में दोबारा 6 निजी क्षेत्रीय बैंकों को राष्ट्रीयकृत किया गया जिससे राष्ट्रीयकृत बैंकों की संख्या 20 हो गई।

GIC का राष्ट्रीयकरण

दूसरी सबसे बड़ी उपलब्धि थी जनरल इंश्योरेन्स बिजनेस का का राष्ट्रीयकरण एंव 1972 में जनरल इंश्योरेन्स बिजनेस अधिनियम 1972 के तहत जनरल इंश्योरेन्स कारपोरेशन की स्थापना। 107 इन्श्योरेन्स जिनमें विदेशी कम्पनियों की शाखाएं जो कि भारत में परिचालित हो रही थीं, का संविलयन किया गया तथा चार सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियों में वर्गीकृत किया गया जिनके नाम हैंः भारतीय बीमा कम्पनी लिमिटेड दी न्यू इंडिया इन्श्योरंस कम्पनी लितिटेड, दी ओरिएंटल इन्श्योरेंस कंपनी लिमिटेड एवं दी यूनाईटेड इंडिया इन्श्योरेंस कंपनी लितिटेड, तथा इनके दफ्तर कलकता, बम्बई मद्रास तथा दिल्ली में थें।

वित्तीय संस्थानों की स्थापना

उधार एंव वित्त के स्त्रोतों पर सरकार के नियंत्रण से पब्लिक क्षेत्र में कई वित्तीय संस्थानो की स्थापना हुई। इसका मुख्य उद्‌देश्य निगम क्षेत्र को अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन उद्योगिक वित्त उपलब्ध करवाना था।

विकास वित्त संस्थान

विकास बैंक वे संस्थान हैं जोकि उद्योग, कृषि तथा दूसरे मुख्य क्षेत्रों के विकास तथा प्रवर्तन कार्यो में लगे होते हैं। असंख्य विकास वित्त संस्थान राष्ट्रीय/अखिल भारतीय स्तर के साथ–साथ क्षेत्रीय/राज्य स्तर पर स्थापित किए गए।

भारत में विदेशी शासको ने देश में औद्योगिक विकास के बारे में जरा भी नही सोचा। वे भारत से इंग्लैण्ड कच्चा माल ले जाने तथा वहां से तैयार माल लाने में खुश थे। सरकार ने किसी ऐसे संस्थान की स्थापना के बारे में नहीं सोचा जो उद्योग को वित्त प्रदान कर सके। 1931 में केन्द्रीय बैंकिंग पूछताछ आयोग ने अपनी सिफारिश में, औद्योगिक वित्तयन संस्थान की स्थापना के बारे में कहा, लेकिन इस पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया गया। 1949 में रिजर्व बैंक ने विशिष्ट संस्थानों की आवश्यकता के बारे में गहन अध्ययन किया। 1948 में पहला विकास बैंक जिसका अर्थ है आई. एफ.सी.आई. की स्थापना हुई। इस वक्त आई.एफ.सी.आई. को एक पूरक के रूप में प्रस्तुत किया गया न कि वर्तमान वित्तीय संस्थानों के प्रतिस्पर्धक के रूप में। यह आशा की गई कि आई.एफ.सी.आई.

तब मध्यम एंव दीर्घकालीन उधार औद्योगिक इकाइयो को प्रदान करेगा। जब वे आवश्यक वित्त पूँजी के द्वारा या सामान्य बैंकिंग क्रियाओं द्वारा न जुटा सकें।

देश के विशाल आकार एंव अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए क्षेत्रीय विकास बैंको को स्थापित करने का निर्णय लिया गया ताकि वे छोटे तथा मध्यम उद्यमों की वित्त की आवश्यकताओं को पूरा कर सकें। 1951 में संसद ने राज्य वित्तीय निगम अधिनियम को पास किया। इस अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकारें अपने क्षेत्रीय इलाकों मे वित्तीय निगमों की स्थापना कर सकती थी। वर्तमान समय में भारत में 18 राज्य वित्तीय निगम हैं।

आई.एफ.सी.आई. तथा राज्य वित्तीय निगमों ने सीमित उद्देश्य ही पूरे किए।

अब एक ऐसी संस्था की आवश्यकता थी जो कि सच्ची विकास अभिकरण के रूप में परिचालित हो सके। राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम की स्थापना 1954 में इस उद्देश्य से की गई ताकि उन उद्योगो को बढ़ावा किया जाए जो अपने निहित उत्तरदायित्व को पूरा नहीं कर पाई थी एंव शीघ्र ही यह कॉटन तथा जूट टेस्टाइल इण्डस्ट्रीज को आधुनिकीकरण करने के लिए वित्त प्रदान करने वाली एजेन्सी बन गई।

भारतीय औद्योगिक उधार एंव निवेश निगम लि. 1955 में एक ज्वाइंट स्टॉक कॅम्पनी के रूप में स्थापित हुई। आई.सी.आई.सी.आई. को भारत सरकार, विश्व बैंक कॉमन वेल्थ डेवलोपमेन्ट फाइनेन्स कॉरपोरेसन तथा दूसरे विदेशी संस्थानों ने सहायता प्रदान की। यह टर्म लोन प्रदान करती है तथा औद्योगिक इकाइयों के अंशों में प्रत्यक्ष निवेश तथा अवलेखन में सक्रिय भाग लेती है। यद्यपि आई.एफ. सी.आई. एक निजी संस्थान है, लेकिन इसकी अंशधारण का तरीका तथा कोषों को इकठ्ठा करने की विधियों की विशेषताएं पब्लिक क्षेत्र के वित्तीय संस्थानों से मिलती जुलती हैं। आई.एफ.सी.आई. अब आई.एफ.सी.आई. बैंक में विलयित हो गया है।

दूसरा संस्थान, रिफाइनेन्स कॉरपोरेशन फॉर इन्डस्ट्रिज लिमिटेड 1958 में भारतीय रिजर्व बैंक, एल.आई.सी. तथा वाणिज्य बैंकों के द्वारा स्थापित किया गया। आर.सी.आई का कार्य वाणिज्य बैंकों एंव एस.एफ.सी. को टर्म लोन के विरूद्ध पुनः वित्त प्रदान करना था जो कि उनके द्वारा निजी क्षेत्र में औद्योगिक वित्त के क्षेत्र में एक शीर्ष संस्थान के रूप में स्थापित हुआ। आर.सी.आई., आई.डी. बी.आई. के विलयित हो गई। आई.डी.बी.आई. भारतीय रिजर्व बैंक की पूर्ण अधीस्थ सहायक संस्था थी तथा इससे आशा की गई कि यह विभिन्न संस्थानों जैसे कि वित्तीयन, प्रवर्तक एवं औद्योगिक विकास में जुड़े संगठन की क्रियाओं की समंचित करेगी।

परन्तु भारतीय रिजर्व बैंक की यह ज्यादा समय तक पूर्ण अधीनस्थ सहायक संस्था नही रही। अभी हाल ही में इसने अपनी पूँजी बढ़ाने के लिए अंशों का सार्वजनिक निर्गमन किया है।

राज्य में उद्योगों को उन्नत करने के लिए दूसरा संस्थान जिसका नाम है राज्य औद्योगिक विकास निगम की स्थापना 60 के दशक में की गई ताकि मध्यम पैमाने की इकाइयों को उन्नत किया जा सके। राज्य के नियमों ने असंख्य परियोजनाओं जो कि संयुक्त क्षेत्र एंव सहायक क्षेत्र में थी, को प्रमोट किया। वर्तमान समय में भारत में 28 एस.आई.डी.सी.'एस. है। राज्य लघु उद्योग विकास निगम की भी स्थापना की गई ताकि राज्य स्तर के उद्योगों की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके। ये निगम औद्योगिक इस्टेट का प्रंबध करती है जिसके अन्तर्गत ये उन्हें कच्चा माल प्रदान करती है, सामान्य सेवाएँ उपलब्ध करवाती है, तथा यह स्थापित किए गये हैं ताकि आधारभूत संरचना, एवं कृषि उद्योगों आदि का विकास किया जा सके।

निवेश संस्थान

असंख्य दूसरे संस्थानों ने भी, सार्वजनिक बचतों को इकठ्ठा करके, बीमा योजनाओं तथा सहयोग निधि के द्वारा औद्योगिक वित्तयन में अपना पदार्पण किया। इन संस्थानों को निवेश संस्थान भी कहा जाता है जिसमें शामिल हैं भारतीय यूनिट ट्रस्ट जो कि 1964 में स्थापित किया गया, भारतीय जीवन बीमा निगम जो कि 1956 में स्थापित हुआ तथा जनरल इन्श्योरेन्स कॉरपोशन जो कि 1973 में स्थापित हुआ।

अन्य संस्थान

कुछ और इकाइयां भी स्थापित की गई ताकि कुछ विशेष क्षेत्रों जैसे कि रूग्ण इकाइयां को कृषि एंव ग्रामीण विकास आदि। भारतीय औद्योगिक पुनः निर्माण लिमिटेट सन् 1971 में रूग्ण इकाइयों को पुनर्वासन के लिए स्थापित किया गया। 1982 में आयात निर्यात बैंक स्थापित किया गया ताकि आयातकों तथा निर्यातकां को वित्तीय सहायता प्रदान की जा सके। कृषि एवं ग्रामीण क्षेत्र की उधारी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए भारतीय कृषि एंव ग्रामीण विकास बैंक की स्थापना सन् 1982 में की गई। यह कृषि तथा सहायक क्रियाओं को अल्पकालीन, मध्यमकालीन एंव दीर्घकालीन वित्त उपलब्ध करवाता है। संस्थान जैसे कि फिल्म वित्त निगम चाय रोपण वित्त योजना, समाचार वित्त निगम, हथकरघा वित्त निगम, गृह निर्माण विकास वित्त निगम भी विभिन्न क्षेत्रो में वित्तीय सहायता प्रदान करते है।

वाणिज्य बैंकों का बदलता स्वरूप

शुरू में वाणिज्यिक बैंको का कार्य निक्षेपों को स्वीकार करना एंव व्यापार तथा वाणिज्य को अल्पकालीन आवश्यकताओं के लिए वित्त प्रदान करना था। भारतीय रिजर्व बैंक ने उधार नियंत्रण में जब परिवर्तन किया तो बैंक उधार का कार्य सन् 1951 में औद्योगिक क्षेत्र को दे दिया। धीरे–धीरे वाणिज्यिक बैंक पूँजी के निर्गमन के अवलेखन एवं आवधिक ऋणदान के क्षेत्र में आ गये। उद्योग की पुनर्वित्त निगम को भारतीय रिजर्व बैंक की एक सहायक के रूप में स्थापित किया गया, जिसका उद्देश्य था वाणिज्यिक बैंकों के द्वारा को पुनः वित्त प्रदान करना। यह सन् 1964 में आई.डी.बी.आई. के साथ विलय हो गई जिसने ऋणों को छोटे एंव मध्यम पैमाने के उद्योगों तक विस्तृत किया।

औद्योगिक क्षेत्र में बढ़ती हुई माँग के कारण, बैंक उधार एक जरूरत बन गई है। धीरे–धीरे निगम क्षेत्र का कुल बैंक उधार के अंश का स्तर गिर रहा है। बैंक वित्तयन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण विकास था मुख्य मर्चेंट बैंकिंग के बैंकों का आगमन, नई जारी प्रबंध, निगम परामर्श, पूँजी निर्माण एंव संविभाग प्रबंध आदि। मुख्य बैंकों द्वारा कई सहायक इकाइयों को स्थापित किया गया जैसे कि Can Bank Financial Services Ltd., PNB Capital Services Ltd., SBI Capital Market Ltd. आदि ताकि औद्योगिक क्षेत्र में दीर्घकालीन वित्तयन किया जा सके। सहयोग निधि को भी उद्योगों में निवेश किया गया । यहां तक कि सातवीं पंचवर्षीय योजना में पूँजी बाजार के विकास पर जोर दिया गया ताकि वित्त पोषण उद्योग का विकास किया जा सकें। इन सभी विकासों ने भारतीय वित्तीय प्रणाली में वाणिज्यिक बैंकों के स्वरूप में महत्वपूर्ण बदलाव किया है।

2.2.3 तीसरी स्थिति/तृतीय चरण 1990 के बाद

सन् 1991 की नई आर्थिक नीतियों की घोषणा के बाद भारतीय वित्तीय प्रणाली में बड़े परिवर्तन आये हैं। वैश्वीकरण की नीति ने भारत की बढती़ अर्थव्यवस्था को खोल दिया है। औद्योगिक निगम के ढ़ाचे में भी काफी परिवर्तन आए हैं उनका कारण है उद्योगो कों लाइसेंस से छूट, वित्तीय क्षेत्र सुधार या बैंकिंग के सुधार/पूँजी बाजार, सार्वजनिक क्षेत्र को उपक्रम विनिवेश, कराधान एंव कम्पनी नियम में सुधार आदि। वित्त और उधार के वितरण में सरकार का स्तर लगातार गिर रहा

है। वित्तीय संस्थानों ने अपना सारा ध्यान पूँजी बाजार के विकास पर दे दिया है जोकि एक मुख्य अभिकरण के रूप में उभर कर सामने आई है तथा सार्वजनिक, निजी क्षेत्र एंव राज्य सरकारों को संसाधनों का आबंटन करती है।

मुख्य विकास जोकि भारतीय वित्तीय प्रणाली में हुए हैं उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार से हैः–

निजी क्षेत्र का आगमन

सन् 1990 से वित्तीय संस्थानो पर सरकारी नियंत्रण कम हो गया है। सार्वजनिक/विकास वित्तीय संस्थानों को कम्पनियों में बदल दिया गया है तथा उन्हें जनता को समता/बद्धपत्र जारी करने का आदेश भी दिया गया है। सरकार ने निजी क्षेत्रों को बैंकिंग तथा बीमा क्षेत्र में आने का निमंत्रण भी दिया है। आई.एफ.सी.आई. को एक सार्वजनिक कम्पनी के रूप में रूपान्तरित कर दिया गया है।

विकास वित्तीय संस्थानों का बदलता स्वरूप

विकास वित्तीय संस्थानों ने आवधिक ऋण संस्थाये के रूप में कार्य किया है तथा वे ऋण देती हैं, परियोजना वित्त पोषण अभिगोपन, पट्टा वित्त पोषण आदि। वे सरकार एंव भारतीय रिजर्व बैंक से कोष प्राप्त करते है।

परन्तु अब विकास वित्तीय संस्थानों के क्रियाकलापों में अद्वितीय रूप से परिवर्तन हुआ है।

a) विकास वित्तीय संस्थान अब कोष रहित आधारित क्रियाओं में शामिल है जैसे कि मर्चेन्ट बैंकिंग, परियोजना परामर्श, संविभाग प्रंबध सेवाएं वित्तयन एंव अधिग्रहण, नया जारी प्रबंध आदि।

b) DFIs अपने कोष उन बंध–पत्रों को जारी करके करती है जिन पर ब्याज की प्रवाहित दर होती है या वे बधंपत्र जिन पर सरकार की कोई गारंटी नहीं होती।

c) अभी हाल ही में DFIs ने आधार संरचना संस्थाओं को भी स्पांसर किया है जैसे कि तकनीक परामर्श संगइन, प्रबंध विकास संस्थान एंव वित्तीय प्रबंध एंव खोज के लिए संस्थान उसके बाद, पूँजी बाजार के विकास पर सारा ध्यान केन्द्रित किया गया।

जिसके परिणामस्वरूप DFIs ने निम्नलिखित संगठनों को प्रमोट कियाः–

1. भारतीय उधार निर्धारण सूचना सेवा लिमिटेड
2. निवेश सूचना एंव उधार निर्धारण अभिकरण लिमिटेड
3. उधार विश्लेषण एवं अनुसन्धान लिमिटेड
4. ओवर द् काउंटर स्टाक एक्सचेंज ऑफ इंडिया लिमिटेड
5. राष्ट्रीय स्कंध विपणि लिमिटेड
6. Stock Holding Corporations Of India Limited
7. IFCI Financial Services Ltd.
8. IFCI Investment Services Ltd.
9. IFCI Custodial Services Ltd
10. ICICI- Securities And Finance Ltd

गैर–बैंकिंग वित्तीय संस्थानों का उदय

असंगठित गैर–बैकिंग क्षेत्र में, कई गैर–बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं का उदय हुआ है जिन्होने आंशिक रूप से शुल्क आधारित एंव आंशिक रूप से सम्पत्ति/कोष आधारित, वित्तीय सेवाएं प्रदान की हैं। उनके क्रियाकलापों में शामिल है उपकरण पट्टा, किराया क्रय वित्त बिलों को भुनाना

ऋण/निवेश, साहसिक पूँजी, गृह वित्त पोषण आदि। शुल्क आधारित सेवाओं में शामिल हैं संविभाग प्रबंध, जारी प्रबंध ऋण सिंडीकेशन, वित्तयन एंव अधिग्रहण आदि।

सहयोग निधि उद्योग की वृद्धि

आरम्भ में भारतीय यूनिट ट्रस्ट ही एकमात्र ऐसी संगठन थी जोकि सहयोग निधि इकाइयों का निर्गमन करती थी। वर्तमान सम में सहयोग निधि न केवल UTI द्वारा जारी किए जाते हैं बल्कि बैंकों, बीमा संगठनों, FIIs, तथा निजी क्षेत्र द्वारा भी जारी किए जाते हैं। वहां पर अंश रहित देशों के कोषों के द्वारा FIIs एव भारतीय FIs को प्रायोजित किया जाता है। सहयोग निधि छोटे निवेशकों के मध्य दिन–प्रतिदिन लोकप्रिय होते जा रहे हैं क्योकि :–

i. सहयोग निधि की वजह से आय पर कर की छूट।
ii. यदि सहयोग निधि की इकाइयों को 12 महीने तक अपने पास रखा जाये तो दीर्घकालीन सम्पत्ति बन जाती है जिससे पूँजीगत कर में राहत मिलती है।

इन इकाइयों में न्यूनतम निवेश की मात्रा प्राथमिक बाजार में 1,000 रू. से लेकर 5.000 तक है।

भारतीय प्रतिभूति एंव विनिमय बोर्ड

भारतीय प्रतिभूति एंव विनिमय बोर्ड, सेबी अधिनियम 1992 के तहत निम्नलिखित उद्‌देश्यों के लिए स्थापित किया गया :–

1. प्रतिभूतियों में निवेशकों के हितों की रक्षा करना
2. प्रतिभूति बाजार के विकास को प्रमोट करना
3. प्रतिभूति बाजार का विनियमन करना एंव
4. इससे सम्बन्धित या आनुंषगिक विषयो का देखना

गौण बाजार/स्कंध बाजार में विकास

पूँजी बाजार में अद्वितीय रूप से बदलाव आया है। अंसख्य विकास कार्य हुए हैं। इनमें शामिल हैं:–

1. SEBI के द्वारा दलालों, उपदलालो, अंशो–ऋणपत्रों में लेन–देन करने वालो आदि के लिए विनियम जारी।
2. व्यापार एंव भुगतान/निपटारा अभ्यासों में ज्यादा पारदर्शिता।
3. बदला व्यापार का विनियम/अमौलिक (व्युत्पादित) बाजार की उत्पत्ति (भविष्य/विकल्प व्यापार)।
4. राष्ट्रीय स्कंध विनिमयों की स्थापना एंव OTCEI की स्थापना।
5. अंश के पतन (समाप्ति) के द्वारा NSDL एंव CDSL एंव इलेक्ट्रॉनिक व्यापार प्रणाली की स्थापना।

वित्तीय प्रणाली में महत्वपूर्ण बदलाव

पिछले कुछ सालों में महत्वपूर्ण बदलाव हुए हैं, जिनका वित्तीय प्रणाली पर बुरा प्रभाव भी पड़ा है, को नीचे दिखाया गया है:–

1. भारतीय यूनिट ट्रस्ट अग्रणी सहयोग निधि संगठन का भारतीय यूनिट ट्रस्ट अधिनियम की परिणामों के तहत दो भागों में विभाजन।
2. निजी क्षेत्र को बीमा क्षेत्र में आने की आजादी। परिणामस्वरूप भारतीय जीवन बीमा निगम, GIC का एंकाधिकार भंग। GIC को इसकी चार सहायक कंपनियो से अलग किया गया।

3. ड़ेरिवेटिव ट्रेडिंग की उत्पत्ति जिसमें शामिल है सूचकांक स्कन्ध भविष्य ब्याज तथा विकल्प भी एक महत्वपूर्ण विकास है जिससे वित्तीय प्रणाली के लिए उलझन पैदा हुई हैं।
4. ICICI Ltd. एंव IDBI का क्रमशः ICICI bank एंव IDBI Bank में अधिग्रहण तथा IFCI का पंजाब नैशनल बैंक में प्रस्तावित अधिग्रहण।

2.3 भारतीय वित्तीय प्रणाली से संबधित नियामक सस्थाएं

वित्तीय प्रणाली के उद्देश्यो की पूर्ति, प्रभावपूर्ण प्रदर्शन और कार्यकुशलता के लिये विभिन्न सस्थाओ के नियमन हेतु सरकार द्वारा विभिन्न नियामक संस्था की स्थापना की गयी निम्न चार्ट द्वारा आसानी से समझा जा सकता है।

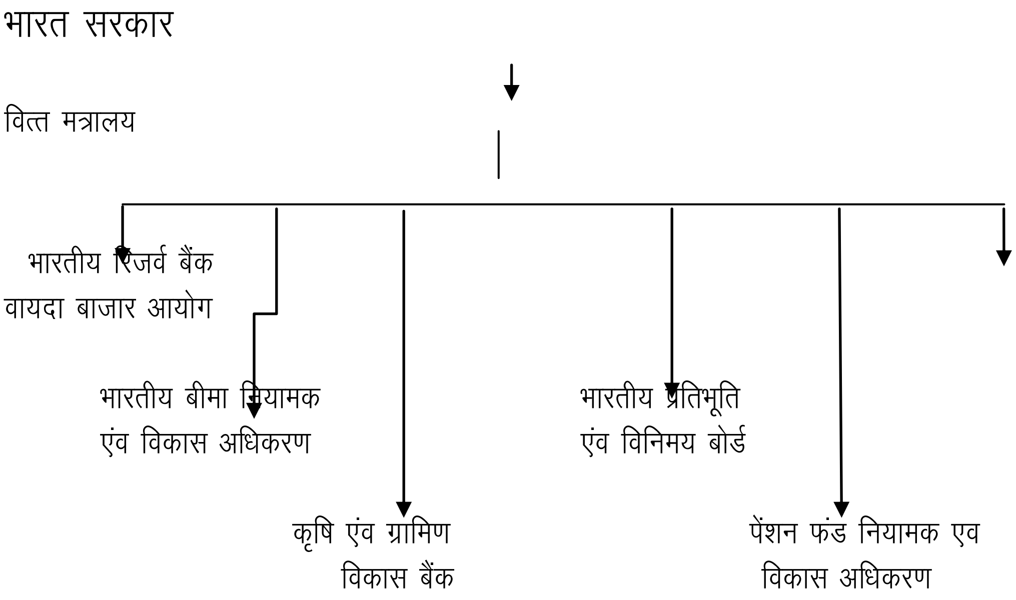

2.3.1 भारतीय रिजर्व बैंक – रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया भारतीय वित्तीय प्रणाली की सर्वोच्च मौद्रिक एंव बैंकिंग संस्था है : इसलिए इसे देश का केन्द्रीय बैंक भी कहते है। देश की वित्तीय प्रणाली को नियन्त्रित करने का दायित्व इसी पर है।

रिजर्व बैंक द्वारा सम्पादित किये जाने वाले प्रमुख केन्द्रीय बैंकिंग सम्बन्धी कार्य निम्नलिखित है।

I. नोट निर्गमन के कार्य – भारत में रिजर्व बैंक को नोट छापने का एकाधिकार प्राप्त है। वर्तमान में रिजर्व बैंक रू 10, 20, 50, 100, 500, तथा रू 2000 तक का बैंक के नोटों का प्रकाशन कर रहा है। रिजर्व बैंक का नोट छापने का एक अलग विभाग है। जिसे नोट निर्गमन विभाग कहते है। जनता का कागजी मुद्रा में विश्वास रखने के लिए रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया एक्ट के अनुसार नोटों के आरक्षित निधि रखने की व्यवस्था की गयी है। सन् 1956 से न्यूनतम कोष प्रणाली के आधार पर नोट जारी किये जाते है। आधार पर नोट जारी किये जाते है। इस समय कम–से–कम रू 200 करोड़ का कोष इस कार्य के लिऐ रखा जाता है। इसमें रू 115 करोड़ का सोना तथा रू 85 करोड़ की प्रतिभूतियाँ शामिल है।

II. सरकार के बैंकर के रूप में कार्य – रिजर्व बैंक केन्द्रीय व प्रान्तीय सरकारों के बैंकर के रूप में भी कार्य करता है और इस रूप में सरकार को निम्न सेवाएँ प्रदान करता है।

a) यह विभिन्न सरकारों तथा सरकारी संस्थाओं से रूपया प्राप्त करता है और इस तरह जितना रूपया जमा होता है, उसी सीमा तक सरकार के आदेश से भुगतान भी करता है। रिजर्व बैंक सरकारी जमा राशियॉ पर किसी प्रकार का ब्याज नहीं देता।

b) सरकार के सार्वजनिक ऋणों की व्यवस्था भी रिजर्व बैंक करता है। जैसे– ऋणों की राशि को एकत्र करना, ऋणों के ब्याज और मूलधन का भुगतान करना तथा ऋणों का हिसाब–किताब रखना।

c) रिजर्व बैंक आवश्यकता पड़ने पर सरकार की ओर से टेण्डर द्वारा ट्रेजरी बिल्स बेचने की भी व्यवस्था करता है।

d) यह सरकार के लिए विदेशी विनिमय का प्रबन्ध करता है और सरकारी कोषों का स्थानान्तरण करता है।

e) रिजर्व बैंक स्वयं भी सरकार को ऋण दिया करता है जो या तो माँग पर तुरन्त ही अथवा काम–चलाउ अग्रिम के रूप में 90 दिनों के अन्दर शोधनीय होते है। ये ऋण पर्याप्त जमानत प्राप्त करके ही दिये जाते है।

III. बैंको का बैंक – केन्द्रीय बैंक होने के कारण रिजर्व बैंक सब बैंको का बैंकर होता है और इस सम्बन्ध में आवश्यकता पड़ने पर रिजर्व बैंक अन्य बैंको का मार्गदर्शन, नियन्त्रण एंव संगठन करता है। संकटकाल में अन्तिम ऋणदाता के रूप में आर्थिक सहायता प्रदान करता है, उन्हें कर्ज देता है। सन् 1949 के बैंकिंग कम्पनीज एक्ट के अनुसार रिजर्व बैंक को अनेक अधिकार प्राप्त हो गये हैः जैसे– बैंकों को लाइसेन्स देना, बैंकों की संख्या तथा शाखाओं पर नियन्त्रण रखना, बैंकों के एकीकरण की योजनाओं की जाँच करना तथा स्वीकृति देना, बैंकों से विवरण प्राप्त करना, ऋण नीति की जाँच करना, सुझाव तथा सलाह देना आदि।

IV. विदेशी विनिमय का क्रय–विक्रय तथा विनिमय नियन्त्रण – रिजर्व बैंक एक्ट की धारा 10 के अनुसार रिजर्व बैंक रूपये के बाह्य मूल्य को स्थिर रखने के लिए विदेशी विनिमय का क्रय–विक्रय केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित दरों पर करता है। यह क्रय–विक्रय केवल अधिकृत व्यक्तियों के साथ ही किया जा सकता है और केवल मुम्बई, कोलकाता, चेन्नई और दिल्ली के कार्यालयों में ही होता है। अधिकृत व्यक्ति वे लोग अथवा संस्थाएं हैं, जिनको विदेशी विनिमय नियन्त्रण कानून, 1949 के अन्तर्गत विनिमय के क्रय–विक्रय का अधिकार प्राप्त है।

V. साख का नियन्त्रक – रिजर्व बैंक का एक महत्वपूर्ण कार्य मौद्रिक नीति का निर्माण एंव उसकी व्यवस्था करना है। मौद्रिक नीति के क्रियान्वयन के लिए रिजर्व बैंक साख नियन्त्रण के विभिन्न उपायो का अपनाता हैं साख नियन्त्रण के लिए रिजर्व बैंक परिमाणात्क एंव गुणात्मक या चयनात्मक दोनों ही प्रकार के उपायों को उपनाता है साख नियन्त्रण का प्रमुख उद्देश्य नियन्त्रित मौद्रिक विस्तार को प्राप्त करना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए रिजर्व बैंक को मुख्य रूप से दो कार्य करने पड़ते है– (क) साख की पूर्ति को नियन्त्रित करना, ताकि अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी प्रवृत्तियो का दमन हो सकेः : (ख) पर्याप्त तरलता उपलब्ध कराना, ताकि व्यापार, वाणिज्य, उ़द्योग, कृषि आदि की विकासात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके।

1949 के बैंकिंग कम्पनीज अधिनियम के अनुसार रिजर्व बैंक को यह अधिकार है कि वह बैंक विशेष कर सभी बैंको को यह निर्देश दे सकता है कि वह व्यक्तियों को कुछ प्रकार की प्रतिभूतियों के विरूद्व उधार प्रदान न करें 1957–57 के पश्चात् रिजर्व बैंक ने चयनात्मक साख नियन्त्रण नीति का बडी मात्रा में प्रयोग किया है।

VI. अन्य केन्द्रीय बैंकिंग सम्बन्धी कार्य – रिजर्व बैंक केन्द्रीय बैंकिंग सम्बन्धी कुछ अन्य कार्य भी करता है जो निम्न प्रकार है।

I. बैंकिंग शिक्षा का विकास करना।
II. आर्थिक सूचनाएॅ और ऑकड़े एकत्र करना व उन्हें प्रकाशित करने का कार्य करना।
III. समाशोधन–गृह का कार्य करना।
IV. मुद्रा के हसतान्तरण का कार्य करना।
V. निर्यात सहायता।
VI. मुद्रा परिवर्तन का कार्य।

साधारण बैंकिंग कार्य – उपर्युक्त कार्यो के अतिरिक्त बैंक निम्नलिखित साधारण बैंकिंग के कार्य भी करता है।

I. निक्षेप स्वीकार करना।
II. व्यापारिक एंव वाणिज्यिक बिलों का क्रय–विक्रय करना।
III. कृषि बिलों का क्रय–विक्रय करना।
IV. ऋण देना।
V. विदेशी प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय करना।
VI. ऋण लेना।
VII. मूल्यवान धातुओं का क्रय–विक्रय करना।
VIII. अन्य देशों के बैंकों से व्यवहार करना।

2.3.2 भारतीय बीमा नियामक एंव विकास अधिकरण – भारत सरकार ने बीमा क्षेत्र को निजी क्षेत्र की देशी एंव विदेशी कम्पनियाँ खोलने के उपरान्त उनकी क्रियाओं पर नियन्त्रण के उद्देश्य से रिजर्व बैंक की भाँति बीमा क्षेत्र की सभी देशी तथा विदेशी कम्पनियाँ के कार्य–कलापों में एक समानता लाने से सम्बन्धित निर्देश जारी करने के लिए केन्द्रीय एजेन्सी की स्थापना की जिसे बीमा नियामक एंव विकास अधिकरण कहा जाता है।

2.3.3 कृषि एंव ग्रामिण विकास बैंक – देश में कृषि एंव ग्रामीण विकास कार्यो की वित्त व्यवस्था करने के लिए 12 जुलाई 1982 को एक शीर्षस्थ बैंक के रूप में राष्ट्रीय कृषि एंव ग्रामीण विकास बैंक की स्थापना उल्लेखनीय ऐतिहासिक घटना है। नाबार्ड का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्र में, लघु एंव कुटीर उद्योग, दस्तकारी एव ग्रामीण कला के विकास हेतु वित्तीय सुविधा प्रदान करना है।

कार्य – नाबार्ड को निम्नलिखित कार्य सौंपे गये है।

1) ग्रामीण विकास के लिए धन देने वाली संस्थाओं, जैसे– राज्य भूमि विकास बैंक, राज्य सहकारी बैंक अनुसूचित वाणिज्य बैंक तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को पुनर्वित देने के लिए शीर्ष संस्था के रूप में कार्य करना।
2) ग्रामीण साख संस्थाओं के निर्माण एंव उन्हे सबल बनाने सम्बन्धी कार्य करना।
3) ग्रामीण साख प्रदान करने वाली सभी संस्थाओं की क्रियाओं में समन्वय स्थापित करना।
4) जिन परियोजनाओं के लिए पुनर्वित की व्यवस्था की गयी है, उनका निरीक्षण तथा मूल्यांकन करना।

प्रगति – नाबार्ड की पुनर्वित सुविधा राज्य भूमि विकास बैंकों, राज्य सहकारी बैंकों अनुसूचित वाणिज्यिक बैंको और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको को उपलब्ध है, जबकि निवेश ऋण के जरिये व्यक्ति, भागीदारी वाली फर्म, कम्पनियाँ, शासकीय स्वामित्व वाले निगम आदि अन्ततः लाभान्वित हो सकते है।

1995–96 से नाबार्ड ग्रामीण ढाँचागत विकास कोष के अन्तर्गत ग्रामीण ढ़ाँचागत परियोजनाओं के लिए राज्य सरकारों को वित्त उपलब्ध करा कहा है। यह कोष 31 अनुमोदित गतिविधियों के लिए राज्य सरकारों की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति करता है जिनमें सिंचाई, ग्रामीण सड़कें, पुल, स्वास्थ्य, शिक्षा, मृदा संरक्षण, जल आपूर्ति आदि महत्वपूर्ण हैं

वर्ष 2014–15 के बजट में RIDF-XX के तहत रू 25000 करोड़ की धनराशि आवंटित की गई। 31 मार्च 2014 तक RIDF के अन्तर्गत कुल रू 144931.25 करोड़ की धनराशि जमा हुई तथा रू 61068. 42 करोड़ वितरित किया गया।

1995 में स्थापित ग्रामीण अधोरचना विकास कोष में 31 मार्च, 2015 तक कुल रू 166000 करोड़ का ऋण वितरित किए जा चुके हैं, भारत में लगभग 115 ग्रामीण अधोरचना विकास, ग्रामीण अधोरचना विकास कोष से ही हुआ है। इस कोष से वित्त पोषित परियोजनाओं से 254 लाख हेक्टेअर भूमि को सिंचित बनाया जा चुका है।

2.3.4 भारतीय प्रतिभूति एंव विनिमय बोर्ड – पूॅजी बाजार में निवेश को संरक्षण प्रदान करने तथा करने तथा निवेशको में विश्वास की भावना उत्पन्न करने के उद्देश्य से 12 अप्रैल, 1988 को भारतीय प्रतिभूति एंव विनिमय बोर्ड की स्थापना की गयी तथा 30 जनवरी 1992 को एक अध्यादेश जारी करके इस संस्था को वैधानिक दर्जा प्रदान कर दिया गया। इसका मुख्यालय मुम्बई में है तथा इसके क्षेत्रीय कार्यालय कोलकाता, दिल्ली तथा चेन्नई में है।

स्थापना के समय SEBI की प्रारम्भिक पूॅजी रू 7.5 करोड़ थी। पूॅजी के प्रवर्तक थे– IDBI, ICICI तथा IFCI

सेबी के कार्य –

1. प्रतिभूतियों में विनियोग करने वाले विनियोक्ताओं के हितों की रक्षा करना तथा आवश्यक उपाय कर प्रतिभूति बाजार का नियमन एंव विकास सुनिश्चित करना।
2. सेबी निम्नलिखित कार्यो को भी सम्पादित करेगाः
    1. स्कन्ध विपणियों तथा अन्य प्रकार के प्रतिभूति बाजारों के व्यवसाय का नियमन करना।
    2. दलालों, उपदलालों, अंश अन्तरण अभिकर्ता निर्गमन बैंकर, अभिगोपक, निर्गमन पंजीयक, मर्चेण्ट बैंक, विनियोग सलाहकारों आदि के क्रियाकलापों का पंजीयन एंव नियमन करना।
    3. सहयोग निधियों सहित सामूहिक विनियोग योजनाओं के क्रियाकलापों का पंजीयन एंव नियमन करना।
    4. स्वयं नियमित संगठनों का विकास एंव नियमन करना।
    5. प्रतिभूति बाजार से सम्बन्धित अनुचित व्यापार व्यवहारों एंव जालसाजी आदि पर नियन्त्रण करना।
    6. विनियोजक शिक्षा एंव प्रतिभूति बाजार के मध्यस्थों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।
    7. प्रतिभूतियों के आन्तरिक व्यापार पर रोक लगाना।
    8. अंशों के महत्वपूर्ण भाग के क्रय एंव कम्पनियों के अधिग्रहण का नियमन करना।
    9. स्कन्ध विपणियों, मध्यस्थों तथा नियमित संगठनों के व्यवहारों की जॉच, लेखा अंकेक्षण, निरीक्षण आदि करना तथा आवश्यक सूचनाऍ मॉंगना।

सेबी द्वारा किये गये प्रमुख प्रयास – सेबी द्वारा पूॅजी बाजार को सुदृढ़ एंव स्वस्थ बनाने के लिए निम्नलिखित प्रमुख उपाय अपनाये गये है।

1. शेयरों के मूल्य एंव प्रीमियमों का निर्धारण किया है।

2. व्यावसायिक बैंको में स्टाफॅ इन्वेस्ट योजना लागू करवाई है।
3. म्युचुअल फण्डों का नियमन किया है।
4. विदेशी संस्थागत निवेशकों पर नियन्त्रण लगाया है।
5. अण्डर राइटर्स नियमों को नियमित किया है तथा सम्बन्धित व्यक्तियों/संस्थाओं को चेतावनी दी है कि निर्गम के गैर–अभिदत्त भाग की खरीद में किसी आकार की अनियमितता किये जाने पर उनका पंजीकरण निरस्त कर दिया जायेगा।

2.3.5 पेंशन फंड नियामक एंव विकास अधिकरण – पेंशन कोष नियामक एंव विकास प्राधिकरण विधेयक 2011 को 4 सितंबर 2013 को लोकसभा और राज्यसभा ने 6 सितंबर 2013 को पारित किया था जबकि राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी ने 19 सितंबर 2013 को मंजूरी प्रदान की थी जिसके पश्चात यह पेंशन कोष नियामक एंव विकास प्राधिकरण अधिनियम 2013 बना।

इसके बाद यह प्राधिकरण एक वैधानिक संस्था बन गयी जो कि पहले एक गैर वैधानिक संस्था थी। इस अधिनियम के लागू हो जाने से प्राधिकरण को नयी पेंशन प्रणाली के नियमन का अधिकार मिल गया। नई पेंशन प्रणाली धन अर्जन के साथ धन बचत के सिद्वांत पर आधारित है।
इस प्रकार पेंशन से संबधित सभी नियमों एंव लेन–देनों का नियमन पेंशन फण्ड नियामक एंव विकास प्राधिकरण करता है।

2.3.6 वायदा बाजार आयोग – वायदा बाजार आयोग वायदा कारोबार का प्रमुख नियामक है जिसका मुख्यालय मुम्बई में स्थित है। खाद्य वस्तुओं से जुड़े होने के कारण इसकी स्थापना उपभोक्ता कार्य मत्रांलय के अधिन किया गया था परन्तु इसमें वित्तीय सक्रियता बढ़ने के कारण इस आयोग की जिम्मेदारी 2013 में वित्त मंत्रालय को सौप दी गयी। यह आयोग 22 एक्सचेंजो में वायदा कारोबार की अनुमति देता है जिनमें से 6 राष्ट्रीय है।
सरकार 28 सितंबर 2015 से प्रभाव के साथ इसका विलय भारतीय प्रतिभूति एंव विनिमय बोर्ड के साथ कर दिया गया। वित्त मंत्री अरूण जेटली ने अपने बजट भाषण में, वायदा बाजार के नियमन को मजबूत करने के लिये पूॅजी नियामक बाजार सेबी के पास वायदा बाजार आयोग के विलय की घोषणा की थी।

2.4 सारांश

- भारतीय अर्थव्यवस्था के उदारीकरण तथा वैश्वीकरण के कारण इसकी वित्तीय प्रणाली में काफी परिवर्तन हुआ है।
- स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले भारतीय वित्तीय प्रणाली औद्योगिक उन्नति प्राप्त करने में और विशेष रूप से नयी एंव अभिनव उद्यमों की उन्नति के लिये आयोग्य थी।
- स्वतंत्रता के बाद नियोजित आर्थिक विकास पर जोर दिया गया जिसमें निजी क्षेत्र से सार्वजनिक क्षेत्रो में स्वामित्व का हस्तांतरण, बैंको का राष्ट्रीयकरण, विभिन्न वित्तीय संस्थानो की स्थापना, इत्यादि शामिल है।
- प्रतिकूल व्यापार संतुलन एंव भुगतान संतुलन को अनुकुल बनाने एंव निर्यात प्रोत्साहन हेतु आयात–निर्यात बैंक की स्थापना की गयी।
- 1991 की नई आर्थिक नीतियों की घोषणा के बाद भारतीय वित्तीय प्रणाली में बड़े परिवर्तन आये है और अर्थव्यवस्था में मजबूती देखने को मिला है।

- वित्तीय प्रणाली के कुशल संचालन एंव प्रभावपूर्ण नियंत्रण हेतु विभिन्न नियामक संस्थाए कार्यरत है जिनमे रिजर्व बैंक, सेबी, नाबार्ड, आदि प्रमुख सरस्थान है ।

2.5 शब्दावली

उदारीकरण : उदारीकरण से आशय अर्थव्यवस्था मे नियमों को उदार बनाकर आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा देने की प्रक्रिया से है।

वैश्वीकरण : वैश्वीकरण वह प्रक्रिया है जिसमे व्यापार, सेवाओं एंव तकनीकियो का पूरे संसार में वृद्वि विकास और विस्तार किया जाता है।

राष्ट्रीयकरण : वह प्रक्रिया जिसके तहत निजी सम्पत्तियों को सार्वजनिक क्षेत्र की सम्पत्ति के रूप में परिवर्तित किया जाता है, राष्ट्रीयकरण कहलाती है।

2.6 बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये।

I. भारतीय अर्थव्यवस्था के उदारीकरण एंव .... के कारण इसकी वित्तीय प्रणाली के काफी परिवर्तन हुआ है।

II. .... की स्थापना की गयी ताकि आयातको और नियतिको को वित्तीय सहायता प्रदान की जा सके।

III. नई आर्थिक नीतियो की घोषणा .... में की गयी जिसके बाद भारतीय वित्तीय प्रणाली में अनेक बड़े परिवर्तन हुए है।

IV. .... भारतीय वित्तीय प्रणाली की सर्वोच्च मौद्रिक एंव बैंकिंग संस्था है।

V. .... की स्थापना पूॅजी बाजार में निवेश को संरक्षण प्रदान करने और निवेशको में विश्वास की भावना की भावना उत्पन्न करने के लिये किया गया है।

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

i. वैश्वीकरण

ii. आयात निर्यात बैंक

iii. 1991

iv. भारतीय रिजर्व बैंक

v. भारतीय प्रतिभूति एंव विनिमय बोर्ड

2.8 स्वपरख प्रश्न

I. भारतीय वित्तीय प्रणाली के क्रमिक विकास का वर्णन कीजिये।

II. आजादी से पूर्व भारतीय वित्तीय प्रणाली की क्या विशेषताए थी ?

III. स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय वित्तीय प्रणाली में क्या बदलाव आये है ?

IV. नई आर्थिक नीतियों के पश्चात वित्तीय प्रणाली में हुए परिवर्तनों की व्याख्या कीजिये।

V. नियामक संस्थाओ का अर्थ बताइये एंव उदाहरण प्रस्तुत कीजिये।

VI. भारतीय रिजर्व बैंक एंव इसके कार्यो के बारे में बताईये।

VII. नाबार्ड की स्थापना के उद्देश्य एंव कार्यो को बताईये।

VIII. भारतीय प्रतिभूति एंव विनिमय बोर्ड की स्थापना के उद्देश्य एंव कार्यो को बताईये।

2.9 सन्दर्भ पुस्तकें

- सेठी, टी0टी0 (2015), मुद्रा बैंकिंग एवं लोक वित, आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिसर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- गुप्ता, शान्ति के0 और अग्रवाल, निशा, इंडियन फाइनैन्शियल सिस्टम्स, कल्याणी पब्लिसर्स, 2016।
- प्रतियोगिता दर्पण, जुलाई 2016।
- इंडियन इकोनोमी, जुलाई 2016।
- अग्रवाल, दीपक (2010), मुद्रा बैंकिंग, लोक वित्त एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, हिमालया पब्लिशिंग हाउस मुबई।
- बिशनोई, आर0के0, बीमा के सिद्धांत, साहित्य भवन पब्लिसर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा।
- श्रीवास्तव, आर0एम0 और निगम, दिब्या मैनेजमैन्ट ऑफ इंडियन फाइनैन्श्यिल इंस्टीट्यूशन्स
- विभिन्न इंटरनैट साइट्स।
- जैन, टी0आर0 इंडियन फाइनैन्शियल सिस्टम्स, वी0के0 ग्लोबल पब्लिकेशन्स और खन्ना, ओ0पी0, प्राईवेट लिमिटेट, 2014–15।

इकाई – 3 वित्तीय प्रणाली एंव आर्थिक विकास

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 आर्थिक विकास हेतु सरकार द्वारा अपनाये जाने वाले उपाय (कार्य)
3.2.1 प्रत्यक्ष उपाय
3.2.2 अप्रत्यक्ष उपाय
3.3 भारतीय अर्थव्यवस्था में सरकार की बदलती हुई भूमिका
3.4 आर्थिक विकास में वित्तीय निगमों की भूमिका
3.5 आर्थिक विकास में विदेशी पूँजी की भूमिका
3.6 सांराश
3.7 शब्दावली
3.8 बोध प्रश्न
3.9 बोध प्ररनों के उत्तर
3.10 स्वपरख प्रश्न
3.11 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- आर्थिक विकास को विस्तृत रूप में समझ सके।
- आर्थिक विकास हेतु सरकार द्वारा किये जाने वाले कार्यो की व्याख्या कर सके।
- भारतीय अर्थव्यवस्था में सरकार की भूमिका का वर्णन कर सके।
- विभिन्न वित्तीय निगमों द्वारा आर्थिक विकास हेतु किये गये प्रयासो को समझ सके।
- आर्थिक विकास में विदेशी पूँजी की भूमिका की व्याख्या कर सके।

3.1 प्रस्तावना

आधुनिक युग में राज्य का प्रमुख आर्थिक कार्य आर्थिक विकास समझा जाता है। तीव्र आर्थिक विकास के लिए आर्थिक व सामाजिक पूॅजी का निर्माण एक आवश्यक शर्त है। निजी क्षेत्र साधनों की सीमितता के कारण आर्थिक विकास को पर्याप्त गति प्रदान करने की स्थिति में नहीं होते। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के सर्वागीण विकास के लिए आवश्यक होता है कि व्याप्त क्षेत्रीय एंव औद्योगिक असमानताओ को समाप्त किया जाए। ऐसे देशों में निजी विनियोगी द्वारा भी उद्योगों का संचालन होता है, किन्तु राज्य उद्योगों का राष्ट्रीकरण करके एंव नये उद्योगों को स्वयं प्रारम्भ करके औद्योगीकरण में सहायता कर सकता है। इससे विकास को अत्यधिक बल मिलता है। इस इकाई में आप आर्थिक विकास हेतु सरकार द्वारा किये जाने वाले कार्य भारतीय अर्थव्यवस्था में सरकार की भूमिका का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

3.2 आर्थिक विकास हेतु सरकार द्वारा अपनाये जाने वाले उपाय

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास में वित्तीय प्रणाली की भूमिका एंव आवश्यकता का अध्यन एंव विश्लेषण, अर्थशास्त्रियों एंव विश्लेषको के लिये चिरकाल से ही महत्वपूर्ण रहा है। आधुनिक युग में राज्य का प्रमुख आर्थिक कार्य आर्थिक विकास समझा जाता है।

देश के आर्थिक विकास और आर्थिक जीवन को प्रोत्साहित करने के लिये आधुनिक समय में सरकार द्वारा अपनाये जाने वालो उपायो को दो वर्गो में विभाजित किया जा सकता है

i. प्रत्यक्ष उपाय
ii. अप्रत्यक्ष उपाय

I. प्रत्यक्ष उपाय या कार्य

1. आर्थिक व सामाजिक उपरि पूँजी की व्यवस्था करना

तीव्र आर्थिक विकास के लिए आर्थिक व सामाजिक पूँजी का निर्माण एक आवश्यक शर्त है। आर्थिक व सामाजिक सुविधाओं के विस्तृत होने पर राष्ट्रीय विनियोग बढ़ते है, मितव्ययिताएँ उत्पन्न होने लगती हैं और पूँजी गुणांक घट जाती है। ध्यान रहे, इस क्षेत्र का विकास निजी क्षेत्र द्वारा किया जाना सम्भव नहीं है क्योंकि

i. इन क्षेत्रों में विशाल धनराशि के विनियोजन की आवश्यकता होती है तथा
ii. यह विनियोजन कम लाभप्रद समझा जाता है।

2. तीव्र आर्थिक विकास

निजी क्षेत्र साधनों की सीमितता के कारण आर्थिक विकास को पर्याप्त गति प्रदान करने की स्थिति में नहीं होते। आर्थर लुईस ने ठीक ही कहा है कि कोई भी देश अपनी प्रबुद्ध सरकार का सहयोग पाये बिना आर्थिक विकास नहीं कर सकता। सरकार निजी क्षेत्र की तुलना में साधनों के जुटाव में अपेक्षाकृत अधिक समर्थ होती है। दूसरा, देश की विकास सम्बन्धी आवश्यकताओं को केवल सरकार ही अच्छी तरह से देख सकती है और विकास प्रक्रिया में गति भी प्रदान कर सकती है।

3. पूँजी निर्माण में योगदान

अर्द्धविकसित देशों में बचत की दर, विनियोग की आवश्यकता की तुलना में नीची होती है। अपर्याप्त बचत–विनियोग के कारण सरकार के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि पूँजी निर्माण के कार्य को बढ़ावा दिया जाये।

प्रत्यक्ष रूप से अपने अनावश्यक व्यय को कम करके, मुद्रा प्रसार पर रोक लगा करके, सार्वजनिक उद्योगो की स्थापना कर लाभ अर्जित करके, जनता पर कर लगाकर, अनिवार्य बचत करके, देश में बचत के विनियोग हेतु बैंक, बीमा कम्पनियॉ व अन्य वित्तीय संस्थाओं की स्थापना करके तथा मौद्रिक व राजकोषीय व राजकोषीय नीतियों को अपनाकर पूँजी निर्माण कर सकता है।

अप्रत्यक्ष रूप से देश में, पूँजी बाजार को सुदृढ़ करके, कर सम्बन्धी छूटें देकर, उत्पादन सम्बन्धी सुविधाएँ प्रदान कर तथा साख निर्माण कर पूँजी निर्माण कर सकता है।

जिन देशों में पूँजी का अभाव होता है इन देशों में राज्य पूँजी निर्माण हेतु घाटे की वित्त–व्यवस्था का सहारा लेता है। राज्य विदेशीं से पूँजी का आयात कर सकता है।

4. सन्तुलित आर्थिक विकास

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के सर्वागीण विकास के लिए आवश्यक होता है कि व्याप्त क्षेत्रीय एंव औद्योगिक असमानताओ को समाप्त किया जाए। निजी क्षेत्र द्वारा अपनी औद्योगिक इकाइयों की स्थापना केवल सुविधा उपलब्ध क्षेत्रों एंव विकसित बाजारों के निकट की जाती हैं और पिछड़े हुए क्षेत्रों की उपेक्षा करते है। दूसरे, निजी उद्योग एंव लाभ की मात्रा को ध्यान में रखकर विनियोजन

करते हैं। उनका हित औद्योगिक विकास में न होकर लाभ में होता है। अतः इन प्रवृत्तियों को रोकने एंव देश के सन्तुलित आर्थिक विकास के लिए राज्य को सक्रिय रूप से हस्तक्षेप करना आवश्यक हो जाता है।

5. संस्थान परिवर्तन

राज्य इन देशों में भूमि–सुधार, उत्तराधिकार के नियमों में सुधार एवं पट्‌टेदारी अधिनियम में सुधार करके कृषकों की स्थिति में परिवर्तन लाता है। प्रतियोगिता का नियमन करता है और एकाधिकार की व्यवस्था समाप्त कर उपभोक्ताओं और उद्योगों की स्थिति में सुधार करता है। ग्रामीण क्षेत्रों में नेतृत्व की जागृति लाने की व्यवस्था, पंचायतों एवं समकक्ष संस्थाओं का विकास करके करता है। सामुदायिक विकास योजनाओं, सहकारी समितियों और अन्य इसी प्रकार के कार्यक्रमों द्वारा ऐसे देशों के ग्रामीण व्यक्तियों में सुधार लाता है। नगरीय स्तर पर भी राज्य नियमों और अधिनियम का निर्माण करके बड़े उद्योगों में श्रम और उद्योग संचालकों में अच्छे सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। विभिन्न नियमों एवं परिस्थितियों में सुधार लाकर उनकी आर्थिक स्थिति एंव रहन–सहन के स्तरों में सुधार लाया जा सकता है और पुराने रूढ़िवादी वातावरण को समाप्त किया जा सकता है।

6. औद्योगीकरण

ऐसे देशों में निजी विनियोगी द्वारा भी उद्योगों का संचालन होता है, किन्तु राज्य उद्योगों का राष्ट्रीकरण करके एंव नये उद्योगों को स्वयं प्रारम्भ करके औद्योगीकरण में सहायता कर सकता है। इससे विकास को अत्यधिक बल मिलता है। आधुनिक समय में यह देखा जाता है कि राज्य स्वयं ही ऐसे उद्योगों की स्थापना करता है जो आधारभूत एवं प्रमुख उद्योग है। इस उद्योग की सहायता से बहुत से अन्य उद्योगों की स्थापना को बल मिलता है। विभिन्न विकासशील देशों के औद्योगिक इतिहास को देखने से यह ज्ञात होता है कि राज्य इस दिशा में पर्याप्त रूप से काम कर रहा है। पर राज्य के द्वारा उद्योगों की स्थापना एवं संचालन का तात्पर्य यह नहीं होता कि राज्य का भाग अत्यधिक बढ़ जाय और समाजवादी व्यवस्था का रूप प्रत्येक देश धारण कर ले। समाजवादी देशों में तो राज्यों द्वारा सभी उद्योगों का संचालन होता ही है, किन्तु पूॅजीवादी अर्थव्यवस्था में भी राज्य द्वारा बहुत से उद्योगों की स्थापना एंव संचालन सर्वसाधारण बात हो गयी है। सच पूछा जाय तो अर्द्धविकसित देशों की बहुत सी ऐसी विशेषताएॅ है कि यदि राज्य विशेष उद्योगों की स्थापना स्वयं न करे तो तीव्रगति से औद्योगीकरण नहीं होगा। भारत इसका उपयुक्त उदाहरण है। स्वतन्त्रता के पूर्व तक निजी क्षेत्रों में बहुत से उद्योग थे, किन्तु निजी साहसी लोग ऐसे उद्योगों की स्थापना नहीं करते थे जो औद्योगीकरण की कुंजी है। उनमें अधिक पूॅजी की आवश्यकता थी, लाभ की कम सम्भावना थी और लाभ के लिए अधिक समय तक प्रतीक्षा करने की आवश्यकता थी। अतः राज्य द्वारा इस कार्य को प्रारम्भ किया गया जिससे हमारे औद्योगीकरण में पर्याप्त सहायता मिली।

7. कृषि विकास

अर्धविकसित देशों में कृषि अत्यन्न पिछड़ी अवस्था में होती है। देश की जनसंख्या का 60 से 75 प्रतिशत भाग इसमें लगा होने पर भी कम उत्पादकता के कारण, खाद्यान्न आयात करने पड़ते है। कृषि के पिछड़े होने से द्वितीयक व तृतीयक व्यवसाय भी नहीं पनप पाते है। अतः राज्य अपनी क्रियाओं व नीतियों द्वारा कृषि विकास को प्रेरित कर सकता है।

भूमि को कृषि के योग्य बनाना, भू–क्षरण की रोकथाम, भूमि की चकबन्दी करना, सहकारी कृषि प्रारम्भ करना, सिंचाई व शक्ति के साधन उपलब्ध कराना, आधुनिक औजारों की व्यवस्था करना, कृषि पदार्थो की कीमतों में उच्चावचन रोकना या मूल्य समर्थन नीति अपनाना, कृषि अनुसन्धान

करवाकर इसका लाभ पहुँचाना तथा राज्य–कृषि फार्मो द्वारा कृषि की उन्नत तकनीक का प्रदर्शन करना, कृषकों को सस्ती व सुगम साख उपलब्ध करवाना, उत्तम बीज, खाद, कीटनाशक दवाइयों की व्यवस्था करना, मालगोदामों की व्यवस्था करना व कृषि विपणन की व्यवस्था करना आदि कार्य आते है। इससे कृषि का विकास होगा, उत्पादन बढ़ेगा जिससे कृषि पर निर्भर अल्प व्यवसायों का भी विकास होगा।

8. आय के वितरण को न्यायपूर्ण बनाना

अर्द्ध विकसित देशों में राज्य का एक प्रमुख कार्य आय–वितरण की विषमताओं को कम करना हैं। फिर समाजवादी समाज के लिए आर्थिक असमानताओं को कम करना और भी आवश्यक हो जाता है। सरकार को चाहिए कि वह ऐसे कदम उठाये जिससे उत्पादन की प्रेरणाओं को कम किये बिना धन एवं आय के वितरण की विषमताओं को दूर किया जा सकें।

9. श्रम बाजार संगठित करना

श्रम उत्पादन का सक्रिय एंव अनिवार्य साधन हैं इसकी समस्याओं की ओर ध्यान देकर कुशलता एंव उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है। इन देशों में निर्धनता, कम आय, शोषण, कार्यकारी दशाएँ ठीक से न होना आदि कारणों से श्रम की उत्पादकता अत्यन्त कम होती है। सरकार श्रम कल्याण एंव सामाजिक सुरक्षा अधिनियमों द्वारा, रोजगार कार्यालयों द्वारा, औद्योगिक संघर्षो को निपटाने की कुशल एंव शीघ्र व्यवस्था द्वारा इन समस्याओं को कम कर सकती है। इससे श्रम की कार्य के प्रति रूचि उत्पन्न होगी व उत्पादन में वृद्वि होगी जिससे आर्थिक विकास को बल मिलेगा।

10. आर्थिक स्वामित्व

आर्थिक अस्थिरता का विकास की प्रक्रिया पर बुरा प्रभाव पड़ता है। तेजी एंव मन्दी काल में व्यावसायिक क्रियाकलाप असुरक्षित रहते है। अपेक्षाकृत अधिक तेजी की अवस्था में मूल्य वृद्धि के कारण उपभोक्ताओं का शोषण होता है। मन्दीकाल में पर्याप्त माँग के अभाव में उत्पादन स्तर गिराना पड़ता है तथा उद्योग के बन्द होने की स्थिति आ जाती है। अतः सरकार को तेजी–मन्दी, माँग, उत्पादन विनियोग पूर्ति तथा मूल्य आदि तत्वों पर नियन्त्रण करने के लिए विभिन्न नीतियाँ कियान्वित करके व्यवसाय में हस्तक्षेप करना आवश्यक हो जाता है। सरकारी हस्तक्षेप से अधिक स्थिरता सुनिश्चित की जा सकती है।

11. श्रम कल्याण एंव सामाजिक सुरक्षा

निजी उद्योगपतियों द्वारा श्रमिकों के हितों की उपेक्षा के कारण औद्योगिक विवादों को जन्म मिलता है। विभिन्न श्रम सुविधाओं के अभाव में श्रम असन्तोष बढ़ता है और औद्योगिक अशान्ति फैलती है। अतः श्रमिको को श्रम कल्याण एंव सामाजिक सुरक्षा सुविधाएँ प्रदान करके उनका सर्वांगीण विकास करने के लिए व्यवसाय में सरकार का हस्तक्षेप आवश्यक होता है।

II. अप्रत्यक्ष उपाय या कार्य

सरकार के परोक्ष उपायों में निम्नलिखित को सम्मिलित किया जा सकता है।

1) प्रशुल्क नीति

प्रशुल्क नीति आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण आधार है। इसके अन्तर्गत उन वित्तीय यन्त्रों अर्थात् करारोपण, सार्वजनिक व्यय, सार्वजनिक ऋण तथा हीनार्थ इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है जो कि आर्थिक स्थिति के कुछ प्रमुख भागों को प्रभावित करने के उद्‌देश्य से प्रयुक्त किये जाते है।

आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने के लिए अपनायी गयी प्रशुल्क नीति के निम्नलिखित उद्‌देश्य होते है।

i. उपभोग को नियन्त्रित करके राष्ट्रीय आय और बचत के अनुपात में वृद्धि करना।
ii. अर्थव्यवस्था में विनियोग दर की वृद्धि करना।
iii. विनियोग प्रवाह को उत्पादन कार्यो के लिए प्रोत्साहित करना।
iv. उत्पादन के विभिन्न घटकों की उत्पादन–क्षमता में वृद्धि करना।
v. आय तथा सम्पत्ति की बड़ी–बड़ी असमानताओं को यथासम्भव घटाना।

प्रथम चार उद्देश्यों की पूर्ति से राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि होगी और पॉचवॉ उद्देश्य बढ़ी हुई राष्ट्रीय आय के वितरण से सम्बन्धित है। अर्द्धविकसित देशों में वितरण सम्बन्धी समस्याओं की उपेक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि यदि बढ़ी हुई राष्ट्रीय आय का न्याय तथा समानता के आधार पर वितरण नहीं किया गया तो श्रमिकों में उत्पन्न असन्तोष एंव असहयोग के कारण भावी राष्ट्रीय आय–वृद्धि को खतरा पैदा हो जायेगा।

2) मौद्रिक नीति

मौद्रिक नीति का अर्थ आर्थिक स्थिति में वांछित परिवर्तन लाने के लिए मुद्रा तथा साख की मात्रा में परिवर्तन करना है। सरकार अपनी मौद्रिक नीति को केन्द्रीय बैंक के द्वारा कार्यान्वित करती है।

किसी देश के आर्थिक विकास के सन्दर्भ में अपनायी गयी मौद्रिक नीति के उद्देश्य निम्न प्रकार होने चाहिए।

i. मौद्रिक नीति ऐसी होनी चाहिए जिससे आर्थिक विकास में सहायता मिले और जो सम्बधित अर्थ–व्यवस्था को बराबर आगे बढ़ाये।
ii. नीति इस योग्य हो कि विकास के लिए आवश्यक यन्त्रों का निर्माण कर सकें अथवा निर्माण करने में सहायक हो और देश मे उपलब्ध आवश्यक वित्त की प्राप्ति और समागत उचित एंव आवश्यक दिशाओं में हो सके।
iii. मौद्रिक नीति ऐसी हो जिससे बचत, विनियोग और अन्य आवश्यक गतिविधियो में उपयुक्त सहयोग प्राप्त हो सकें।
iv. आर्थिक विकास की आवश्यकताओं के कारण देश के भुगतान सन्तुलन पर भारी दबाव पड़ते है। जिनको सहज बनाने में मौद्रिक नीति सहायक होनी चाहिए।
v. मुद्रा–प्रसारक प्रवृत्तियॉ जो कि अत्यधिक विनियोग वाले औद्योगिक विकास कार्यक्रम को शीघ्र कार्यान्वित करने की अवधि में प्रायः उत्पन्न हो जाती है, उनको नियन्त्रित करने में मौद्रिक नीति सहायक होनी चाहिए।

3) मूल्य नीति

आर्थिक विकास के दौरान अधिकांश विनियोग पूॅजीगत वस्तुओं के उत्पादन में आर्थिक संरचनाओ अर्थात् परिवहन, प्राविधिक शिक्षा, सिंचाई तथा बन्दरगाहों आदि के विकास पर व्यय होता है। इन प्रायोजनाओं पर व्यय के पश्चात् उत्पादन में वृद्धि देर से आरम्भ होती है, परन्तु बड़े पैमाने पर विनियोग होने से विभिन्न प्रकार की आमदनियों में वृद्धि के कारण वस्तुओं तथा सेवाओं की मॉग बढ़ जाती है। इस प्रकार मॉग के बढने और उत्पादन के उतना न बढ़ने के कारण कीमतों के बढ़ने की प्रवृति को बल मिलता है, किन्तु उपयुक्त विकास के दृष्टिकोण से मूल्यों में एक निश्चित सीमा से अधिक वृद्धि या गिरावट उचित नहीं होती। इसीलिए मूल्य के सम्बन्ध में सुव्यवस्थित नीति का निर्धारण आवश्यक होता है।

4) विदेशी व्यापार नीति

तटकर नीति के द्वारा सरकार देश के उद्योगों को विदेशी प्रतियोगिता से संरक्षण प्रदान कर सकती है, परन्तु प्रारम्भिक अवस्था में किसी उद्योग को संरक्षण देने से पहले ये सोच लेना चाहिए कि उसके विकास के लिए आवश्यक साधन अपलब्ध हैं या नहीं। आयात–निर्यात करने से उत्पादन के साधनों का सृजन नहीं किया जा सकता परन्तु बेकार पड़े साधनों को उत्पादक दिशा की और निर्दिष्ट अवश्य किया जा सकता है।

विदेशी व्यापार की नीति का उद्देश्य विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन देना और विदेशी विनिमय कोषों का अपव्यय न हो सके, इस दृष्टि से सरकार प्रायः विनिमय नियन्त्रण की विभिन्न रीतियॉ अपनाती रहती है।

3.3 भारतीय अर्थव्यवस्था में सरकार की बदलती हुई भूमिका

अभी तक हमने आर्थिक विकास को त्वरित करने में राज्य की भूमिका का अध्ययन किया। इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि स्वतन्त्रता–प्राप्ति के तत्काल बाद बिना सरकार के हस्तक्षेप के देश औद्योगिक आधार को सुदृढ़ करना सम्भव नहीं था परन्तु धीरे–धीरे सार्वजनिक क्षेत्र के कार्य संचालन में राज्य की बहुत–सी विफलताएँ सामने आयीं। फलतः भारत सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र के कार्यभाग को कम करने पर विचार किया और निजी क्षेत्र के लिए बहुत–से क्षेत्र खोल देने के प्रक्रिया 1991 से चालू की। नयी आर्थिक नीति लागू होने के कारण निजीकरण, उदारीकरण व विश्वव्यापीकरण का महत्व बढ़ता जा रहा है तो यह प्रश्न उठता है कि भविष्य में देश के आर्थिक विकास में सरकार की क्या भूमिका होगी ?

भारत जैसे विकासशील देश में यह बाजार का प्रयोग विस्तृत रूप में भी करना है तो इससे राज्य के कार्य भाग के महत्व को समाप्त नहीं किया जा सकता। राज्य विफलताओं के कारण सभी परिस्थितियों में बाजार के प्रयोग को न्यायोचित नही समझा जा सकता। यह बिल्कुल सम्भव है कि बाजार विफलताओं को ठीक करने के लिए नीतियों में परिवर्तन किये जायें या कठोर प्रशासनिक उपाय किये जाये। भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि निम्नलिखित क्षेत्रों में अभी भी सरकार को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगीः

1) निर्धनता उन्मूलन –

2004–05 में भारत की 22 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे जीवन–यापन कर रही थी। इस प्रकार भारतीय समाज का इतना बड़ा भाग जिसकी संख्या 22 करोड़ है, बाजार प्रक्रिया से अछूता रह जाता है। अतः राज्य को इस सम्बन्ध में सकारात्मक भूमिका निभानी होगी और गरीबी दूर करने के लिए शिक्षा व स्वास्थ्य सुविधा उपलब्ध करानी होगी। साथ ही उनके लिए विशेष रोजगार कार्यक्रम चलाने होगें विशेषकर ग्राम क्षेत्रों में जहॉ पर निजी क्षेत्र की भूमिका नगण्य है।

निर्धनता का एक और महत्वपूर्ण कारण है गरीबों का निम्न संसाधन आधार अतः सरकार को ग्रामीण आधार संरचना विकास के भारी कार्यक्रम चलाने चाहिए और साह्मयित दरों पर ऋण उपलब्ध कराना चाहिए, ताकि गरीब सम्पत्ति कायम कर सके और आय अर्जित कर सके।

2) आर्थिक आधार संरचना का निर्माण –

सरकार का दूसरा कार्य भाग आर्थिक संरचना का निर्माण करना है। आर्थिक आधार संरचना में उर्जा, परिवहन, संचार, सिंचाई आदि की व्यवस्था को सम्मिलित किया जाता है। यह अनुभव किया गया है कि निजी क्षेत्र आर्थिक आधार संरचना के कुछ क्षेत्रों, जैसे– टेली–संचार, सड़क निर्माण आदि में प्रोत्साहित करने के लिए कुछ उपाय किये जा रहे हैं परन्तु इस क्षेत्र में निजी क्षेत्र ने अधिक अभिरूचि नहीं दिखायी है। अतः आधारभूत आर्थिक संरचना के उपलब्ध करने में सरकार की भूमिका

को सभी ने स्वीकार किया है। हॉ, निजी क्षेत्र सरकार के इस प्रयास में कुछ सीमा तक सहयोगी बन सकते है।

3) सामाजिक आधार संरचना का निर्माण –

बाजार विफलता सामाजिक आधार संरचना–शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, पोषण आदि क्षेत्रों में भी अनुभव की जाती है। सभी को बुनियादी शिक्षा उपलब्ध कराने का लक्ष्य सभी समाजों में स्वीकार कर लिया गया है। इस उद्देश्य के लिए निजी क्षेत्र स्कूलों में विनियोग के लिए उत्सुक नहीं होगा। उच्चस्तर और विशिष्ट शिक्षा, जैसे– चिकित्सा, इंजीनियरिंग टेक्नोलॉजी, इलैक्ट्रॉनिक्स में शिक्षा की लागत अदा करना निम्न, मध्यम और निर्धन वर्गो की सामर्थ्य के बाहर है। निजी स्कूल जो आम भाषा में पब्लिक स्कूल कहे जाते है, भारी फीस वसूल करते है जो कि निर्धन परिवारों की पहुॅच के बाहर है।

इसी प्रकार स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध कराने के लिए भारी मात्रा में विनियोग करना पड़ता है और यह कार्य सार्वजनिक क्षेत्र को ही करना है, ताकि समाज के गरीब वर्गो का स्वास्थ्य–स्तर उन्नत हो सके क्योंकि गरीबों के लिए निजी क्षेत्र द्वारा उपलब्ध कराये जाने वाली महँगी स्वास्थ्य सुविधाओं के लिए संसाधन जुटाना सम्भव नहीं।

4) सार्वजनिक क्षेत्र के सुधार –

एक अन्य क्षेत्र जिसमें सक्रिय राजकीय हस्तक्षेप होना चाहिए, सार्वजनिक क्षेत्र का आधार है। सार्वजनिक क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था का सर्वोपरि महत्व का क्षेत्र है। इस क्षेत्र का विकास भी योजनाबद्ध तरीके से ही सम्भव है। महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रोत्साहनों और अप्रोत्साहनों की ऐसी व्यवस्था तैयार करनी होगी जो संस्था में कार्यनिष्ठा को उन्नत करे। ऐंसी व्यवस्था कौटिल्य ने विकसित की थी और सार्वजनिक उद्यमों में उत्तरदायित्व कायम करने के लिए नियमावली को कड़ाई से लागू किया था। राज्य सरकार को इस सम्बन्ध में निर्णायक ढंग से कार्य करना होगा और ऐसे उपायों की खोज करनी होगी जो मजदूरी और उत्पादकता में सम्बन्ध स्थापित करें।

5) क्षेत्रीय असमानताओं को कम करना –

क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने की जिम्मेदारी भी निजी उद्यमियों को नहीं सौंपी जा सकती है। अतः क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने में सरकार को अहम् भूमिका निभानी होगी। विकास कार्य में क्षेत्रों के बीच बड़े पैमाने पर मौजूद असमानताओं को दूर करने के लिए एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में संसाधनों का अन्तरण अपेक्षित होता है। अनुभव से पता चला है कि बाजार ताकतें पर्याप्त मात्रा में ऐसा नहीं कर पायी है। आयोजन प्रक्रिया में क्षेत्रीय असमानताओं को तेजी से दूर करने के लिए संसाधनों को एक क्षेत्र से हटाकर दूसरे क्षेत्र में उपलब्ध करवाने की व्यवस्था करनी होगी।

6) अन्य क्षेत्र –

भारत के सन्दर्भ में कई ऐसे क्षेत्र है। जहॉ बाजार व्यवस्था कारगर नहीं हो सकती। बाजार व्यवस्था पर्यावरण, वन और पारिस्थितिकी के संरक्षण के लिए कभी भी पर्याप्त नहीं होगी। इसी प्रकार बाजार ताकतें दुर्लभ खनिजों, भूमि और जल जैसे अपर्याप्त संसाधनों के इस्तेमाल के बारे में मार्गदर्शन करने के लिए पर्याप्त नहीं होगीं। अतः इन क्षेत्रों में एक भावी दृष्टि व सरकार की भूमिका की आवश्यकता होगी।

3.4 आर्थिक विकास में वित्तीय निगमों की भूमिका

वित्तीय निगमों को वित्तीय प्रणाली का एक प्रमुख अवयव माना जाता है। इन संस्थाओं के विकास की प्रक्रिया प्रथम जुलाई सन् 1948 से प्रारम्भ हुई जब भारत के औद्योगिक वित्त निगम की स्थापना की गयी। उसके बाद से अब तक पिछले पॉच दशकों को यह प्रक्रिया निरन्तर सक्रिय रही है और अब स्थिति यह है कि भारत में राष्ट्रीय–स्तर एंव राज्यों के स्तरों पर विकास–बैकों का जाल बिछ चुका है। औद्योगिक विकास के क्षेत्र एवं स्तर में फैलाव के साथ–साथ दीर्घकालीन वित्त प्रदान करने वाली संस्थाओं की स्थापना किया जाना आवश्यक की गयीं और उनका गठन सार्वजनिक निगमों अथवा स्वशासित–निगमों के रूप में संसद द्वारा पारित परिनियमों के अधीन किया गया है। प्रस्तुत इकाई में राष्ट्रीय–स्तर एवं राज्यों के स्तरों पर विकसित विकास–बैकों एवं अन्य विशिष्ट वित्तीय निगमों का विस्तार से वर्णन किया गया है।

1) भारत का औद्योगिक विकास बैंक–

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की स्थापना 1 जुलाई 1964 को की गयी। फरवरी 16, 1976 तक यह रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की एक सहायक संस्था के रूप में कार्य करता रहा। उसके बाद इसे सरकार द्वारा एक स्वायत्तशासी निगम का दर्जा प्रदान कर दिया गया।

औद्योगिक विकास बैंक की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य राष्ट्र के औद्योगिकरण के स्तर को उन्नत बनाना तथा औद्योगिक विकास से सम्बन्धित परियोजनाओं की स्थापना में सक्रिय भाग लेना है। इस मूलभूत उद्देश्य की पूर्ति के साथ–साथ औद्योगिक वित्त की पूर्ति करना भी इस प्रकार के बैंक के लिए अनिवार्य हो जाता हैः क्योकि वित्त–पूर्ति की समुचित व्यवस्था के बिना औद्योगिक विकास सम्भव नहीं होता। अतः ये दोनो उद्देश्य परस्पर अनुपूरक कहे जा सकते है। जिन दो उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सरकार द्वारा औद्योगिक विकास बैंक की स्थापना की गयी, वे इस प्रकार हैः

i. एक केन्द्रीय संस्था के रूप में औद्योगिक वित्त से सम्बन्धित विभिन्न वित्त संस्थाओं की नीतियों एंव उनके कार्यो में समन्वय स्थापित करना तथा सुसंगठित तरीके से औद्योगिक वित्त का विकास करने में उन सबका नेतृत्व करना जिससे कि प्रत्येक संस्था अपने–अपने क्षेत्र में कार्य करते हुए भी समान उद्देश्य की पूर्ति में सहायक हो सके।

ii. देश के औद्योगिक असन्तुलन को दूर करने के उद्देश्य से कुछ विशेष उद्योगो के विकास को प्रोत्साहित करना, जैसे रासायनिक खाद, लौह मिश्रित धातुएॅ, विशेष इस्पात, पेट्रो–रसायन आदि। ये ऐसे उद्योग हैं जिनमें तत्काल अथवा पर्याप्त लाभ की सम्भावनाएॅ कम हैं किन्तु जिनका विकास किया जाना अर्थ–व्यवस्था को गति प्रदान करने की दृष्टि से अत्यन्त आश्यक है।

विकास बैंक के कार्य

बैंक का कार्यक्षेत्र अत्यन्त व्यापक रखा गया है जिसमें उन सभी कार्यों को सम्मिलित किया गया है जो हमारे विद्यमान वित्त निगमों द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं। इनकी कार्य–सूची में वित्त एवं विकास सम्बन्धी सभी कार्य आ जाते हैं जो निम्नलिखित हैः

i. ऋण प्रदान करना –

बैंक सभी प्रकार की औद्योगिक संस्थाओ को दीर्घकालीन ऋण देता है। ऐसी संस्थाओं द्वारा जारी किये गये ऋणपत्रों को खरीदने का अधिकार भी इसे है।

ii. ऋणों की गारण्टी देना –

औद्योगिक संस्थाओं द्वारा पूॅजी–बाजार में अथवा बैंकों से लिये जाने वाले ऋणों तथा निर्यात के स्थगित भुगतानों की गारण्टी देने का अधिकार इस बैंक को प्राप्त है। बैंको तथा अन्य वित्तीय

संस्थाओं द्वारा किये गये अभिगोपन से उत्पन्न दायित्वों के लिए भी बैंक गारण्टी दे सकता है। इससे भारत में संघीय अभिगोपन अथवा संयुक्त अभिगोपन के लिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न हो सकेगा।

iii. पुनर्वित्त की सुविधाएँ देना –

औद्योगिक विकास बैंक निर्दिष्ट वित्तीय संस्थाओं द्वारा 3 से 25 वर्ष तक के दीर्घकालीन ऋणों के लिए तथा अनुसूचित बैंकों द्वारा औद्योगिक संस्थाओं को दिये गये 3 से 10 वर्ष तक के ऋणों के लिए पुनर्वित्त की सुविधाएँ देता है। यह अवधि 10 वर्ष से अधिक भी हो सकती है। इसी प्रकार बैंकों एवं अन्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा निर्यात के सम्बन्ध में दिये गये मध्यमकालीन ऋणों के लिए भी पूनर्वित की सुविधाएँ इस बैंक द्वारा दी जाती है

iv. अंशों में प्रत्यक्ष अभिदान –

विकास बैंक को औद्योगिक संस्थाओं द्वारा जारी किये गये स्कन्ध एंव अशों में प्रत्यक्ष अभिदान करने का भी अधिकार हैं। इस प्रकार के बैंक के लिए ऐसी व्यवस्था होना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि इसके बिना उद्योगों के प्रवर्तन एवं विकास में सक्रिय सहयोग देना बड़ा कठिन होता है।

v. अभिगोपन के कार्य –

औद्योगिक विकास बैंक अन्य औद्योगिक संस्थाओं द्वारा पूँजी बाजार में जारी किये जाने वाले अंशों, ऋणपत्रों एवं बॉण्डों का अभिगोपन कर सकता है।

vi. विकास एवं अन्वेषण सम्बन्धी विविध कार्य –

उपर्युक्त के अतिरिक्त अन्य कई प्रकार के कार्य इस बैंक द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं, जैसे आधारभूत अद्योगों के विकास के उद्देश्य से नयी योजनाओं को मूर्त रूप देने में प्रशासनिक एंव शैल्पिक सहायता देना, विपणन, विनियोग एवं तकनीकी अनुसन्धान तथा सर्वेक्षण, आदि। साथ ही नये उद्योगो के प्रवर्तन, प्रबन्ध प्रशासन आदि में बैंक सहायता प्रदान करता है।

औद्योगिक विकास बैंक सार्वजनिक एवं निजी दोनों ही क्षेत्रों में उद्योगों को सहायता प्रदान करता है। सभी प्रकार के उद्योगों को इससे सहायता मिल सकती है, जैसे रासायनिक खाद, पेट्रो–रसायनिक, फैरो एलौय, विशिष्ट इस्पात तथा अन्य उद्योग, होटल, यातायात आदि। ऋणों की सीमा एवं ऋणों की सुरक्षा के लिए दी गयी जमानत की प्रकृति तथा ऋण प्राप्त करने वाली संस्था के संगठन, आदि के विषय में इस बैंक के लिए कोई प्रतिबन्ध अथवा परिसीमाएँ नहीं हैं जैसा कि अन्य कुछ वित्त निगमों के विषय में हैं हाल ही में औद्योगिक विकास बैंक अधिनियम में किये गये संशोधन के बाद अब अनेक नये उद्योग भी इससे वित्तीय सहायता प्राप्त कर सकते है जैसे उर्जा, खनन–विकास, मेडीकल एवं स्वास्थ्य सेवाएँ, लीजिंग, सूचना–टेक्नोलाजी, टेली–कम्यूनीकेशन्स, इलेक्ट्रोनिक्स, आदि।

2) भारत का औद्योगिक वित्त निगम

भारत सरकार द्वारा सन् 1948 में औद्योगिक वित्त निगम अधिनियम पास किया गया तथा 1 जुलाई, 1948 से औद्योगिक वित्त निगम की स्थापना की गयी। निगम की स्थापना का मुख्य उद्देश्य उद्योगों को दीर्घकालीन एवं मध्यमकालीन ऋण प्रदान करता हैः निगम केवल ऐसी लिमिटेड कम्पनियों का सहकारी समितियों को ऋण दे सकता है। जिनका रजिस्ट्रेशन भारत में हुआ हो और वस्तुओं के निर्माण या प्रकृयण, खनन, विद्युत–शक्ति या अन्य किसी प्रकार की शक्ति के सृजन या वितरण, जहाजरानी एवं जहाज निर्माण, होटल उद्योगों एवं वस्तुओं के संरक्षण में संलग्न उद्योगों से सम्बन्धित हों। निगम से वित्तीय सहायता उसी दशा में प्राप्त की जा सकती है जब किसी उद्योग के लिए पूँजी निर्गमन के द्वारा धन प्राप्त करना सम्भव न हो, अथवा बैंकों द्वारा दी गयी सहायता अपर्याप्त हो।

एक जुलाई 1993 से इस निगम को कम्पनी अधिनियम 1956 के तहत एक लिमिटेड कमपनी के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। अतः अब यह एक सरकारी कम्पनी बन गयी है। अब इसे अपने कार्यक्षेत्र को और अधिक व्यापक बनाकर अधिकाधिक लाभकारी ढ़ंग से व्यवसाय करने की स्वतन्त्रता तथा विश्व के किसी भी कोने से वित्तीय सहयोग प्राप्त करने का अवसर मिलेगा। इसके द्वारा नवम्बर 1993 में 525 करोड़ रूपयों का इक्विटी शेयर निर्गमन किया गया।

निगम के वित्तीय साधन –

निगम का वित्तीय गठन अत्यन्त सुदृढ़ आधार पर किया गया है और इसके पूॅजीकरण के विभिन्न साधनों का उपयोग निगम द्वारा किया गया है, जैसे अंशों या ऋणपत्रों का निर्गमन और आवश्यकतानुसार विभिन्न सूत्रों से मध्यम एवं अल्पकालीन ऋणों की प्राप्ति। निगम के पास पूॅजी के अग्रलिखित स्त्रोत हैं

1. अंश–पूॅजी – नये अंशों के निर्गमन के बाद इसका अब अधिक व्यापक हो गया। 31 मार्च 1997 को इसकी चुकता पूॅजी करोड़ रूपये थी जिस पर इसके द्वारा 1994–95 में 27 प्रतिशत तथा 1995–96 में 25 प्रतिशत लाभांश दिया गया।

2. संचित–कोष – उपर्युक्त चुकता पूॅजी के अतिरिक्त 1350.85 करोड़ रूपये संचित कोष के रूप में इसके पास जमा थे। करों एंव डूबंत ऋणों के लिए प्रावधानों के रूप में जमा 100 करोड़ रूपये इसमें सम्मिलित थे। इस प्रकार संचित कोष इसकी चुकता–पूॅजी से चार गुना से भी अधिक थे।

3. ऋणपत्र – निगम समय–समय पर अपनी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बॉण्ड एवं ऋण जारी कर सकता हैं। किन्तु इसके द्वारा जारी किये गये बॉण्डों, ऋणपत्रों एवं .ऋणों पर दी गयी गारण्टी के रूप में निगम की देनदारियों की कुल राशि निगम की प्रदत्त–पूॅजी एवं संचित कोष के योग से दस गुना से अधिक नहीं होगी।

पब्लिक लिमिटेड कम्पनी में परिवर्तित हो जाने के बाद अब निगम की साख अति उत्तम है तथा अब इसे ऋण लाने के लिए सरकार से गारण्टी की अपेक्षा नहीं है।

निगम द्वारा बाण्डस की अनेक श्रृंखलाये जारी की हुयी हैं जिनकी बकाया राशि अब 4000 करोड़ रूपये है। जुलाई 1996 में इसने 800 करोड़ रूपयों का फेमिली बॉण्डस का एक महा–निर्गमन किया है। ICRA ने इसका साख निर्धारण LAAA किया है। जिसका तात्पर्य उच्चतम सुरक्षा एवं न्यूनतम जोखिम से है।

4. जमा राशि – निगम पॉच साल या इससे अधिक अवधि की जमा राशि जनता से एवं राज्य सरकारों या स्थानीय निकायों से स्वीकार कर सकता है। ऐसी जमा राशि अधिक से अधिक 10 करोड़ रूपये निगम द्वारा स्वीकृत की जा सकती है। किन्तु निगम ने अभी तक इस सुविधा का उपयोग नहीं किया है।

5. रिजर्व बैंक एवं केन्द्रीय सरकार से ऋण – धारा 21 (3) (a) के अधीन निगम रिजर्व बैंक से केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों की प्रतिभूतियों के आधार पर 90 दिन तक का ऋण ले सकता है। निगम अपने ऋणपत्रों पर भी रिजर्व बैंक से 18 महीने के लिए ऋण ले सकता है। किन्तु इस प्रकार ली गयी कुल रकम 15 करोड़ से अधिक किसी भी समय नहीं होनी चाहिए। रिजर्व बैंक इस प्रकार के ऋणों पर 7.5 प्रतिशत ब्याज निगम से वसूल करता है। निगम इस सुविधा का लाभ केवल तभी उठाता है जब उसे धनराशि की अत्यन्त आवश्यकता हो।

इसके अतिरिक्त यह निगम औद्योगिक विकास बैंक एवं भारत सरकार से भी ऋण ले सकता है।

6. विदेशी मुद्रा के ऋण – सन् 1960 के अप्रैल माह में अमरिका सरकार के डेवलपमेण्ट लोन फण्ड (जिसे जब एजेन्सी फार इण्टरनेशनल डेवलपमेण्ट के नाम से बदल दिया गया है) ने निगम को 10 मिलियन डालर का ऋण दिया। सन् 1962 में एजेन्सी फार इण्टरनेशल डेवलपमेण्ट से 20 मिलियन डालर का एक और ऋण मिला। इसके बाद इस एजेन्सी से एवं जर्मन एवं फ्रांस से भी इसे जर्मन एंव फ्रेंक मुद्रा में अनेक ऋण प्राप्त हुए। अमरीकी डॉलर एवं ब्रिटश पौण्ड मुद्रा में भी इसे ऋण प्राप्त हुए हैः

निगम द्वारा प्रदत्त सहायता का स्वरूप –

निगम निम्न प्रकार की वित्तीय सहायता प्रदान कर सकता हैः

a) औद्योगिक संस्थाओं को 25 साल तक की अवधि का ऋण दे सकता है अथवा उनके द्वारा जारी किये गये ऋण पत्रों में धन लगा सकता हैं।
b) औद्योगिक संस्थाओं द्वारा निर्गमित अंशों, ऋणपत्रों एंव बॉण्डो का अभिगोपन कर सकता है किन्तु इस सिलसिले में इसे यदि यदि कुछ प्रतिभूतियॉ लेनी पड़े तो निगम को 7 वर्ष के अन्दर उन्हें बेच देना होगा।
c) औद्योगिक संस्थाओं द्वारा पूॅजी बाजार में लिये जाने वाले ऋणों का गारण्टी दे सकता है। ये ऋण 25 साल तक की अवधि के होने चाहिए।
d) भारतीय आयातकों द्वारा विदेशी निर्माताओ से विलम्बित भुगतान के आधार पर आयात किये माल के मूल्य के भुगतान की गारण्टी दे सकता हैं।
e) केन्द्रीय सरकार या विश्व बैंक द्वारा औद्योगिक संस्थानों को दिये गयें ऋणों के लिए वसूली एवं देखभाल के लिए एक एजेण्ट की भॉति कार्य कर सकता है।

समय–समय पर IFCI अधिनियम में संशोधन किया गया है। सन् 1960 एवं 1985 में IFCI अधिनियम में संशोधन करके इसकी गतिविधियों को नये आयाम प्रदान किये गयें। संशोधन प्रत्यक्ष अभिदान, निलम्बित भुगतानों की गारण्टी तथा देशी एवं विदेशी मुद्रा के ऋणों की गारण्टी के विषय में थे।

3) औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम

औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम की स्थापना 5 जनवरी 1955 को भारतीय कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत एक लिमिटेड कम्पनी की भॉति की गयी और इसने अपना कार्य मार्च 1955 से प्रारम्भ किया। अन्य विशिष्ट निगमों के विपरीत इस निगम की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसका गठन निजी पूॅजी के आधार पर पूर्णतः निजी क्षेत्र के लिए किया गया।

निगम के उद्देश्य

निगम की स्थापना का मुख्य उद्देश्य निजी क्षेत्र में औद्योगिक संस्थानों के विकास में सहयोग प्रदान करना है। विशेष रूप से इसके तीन उद्देश्य हैं, जो इस प्रकार है :

a) निजी क्षेत्र में उपक्रमों के निर्माण, विकास एवं उनके आधुनिकीकरण के कार्य में सहायता करनाः
b) ऐसे उपक्रमों में देश के एवं विदेशों के विभिन्न सूत्रों से निजी पूॅजी के विनियोग को प्रोत्साहित करना एवं
c) औद्योगिक विनियोग के निजी स्वामित्व को प्रोत्साहित करना एवं विनियोग बाजारों का विकास करना।

निगम की सहायता का स्वरूप

निगम द्वारा की जाने वाली सहायता का क्षेत्र काफी व्यापक एंव लोचपूर्ण रखा गया है। निगम निजी क्षेत्र में सब प्रकार के औद्योगिक एवं व्यापारिक संगठनों को वित्तीय सहायता प्रदान कर सकता है। इसके द्वारा प्रदत्त सहायता के निम्नलिखित स्वरूप हो सकते है।

i. दीर्घकालीन एवं मध्यमकालीन सुरक्षित ऋण प्रदान करना जो पन्द्रह वर्ष तक के हो सकते हैं, इस प्रकार के ऋण डिबेन्चर्स के आधार पर भी दिये जा सकते है।
ii. अंशों एवं ऋणपत्रों के सार्वजनिक निर्गमनों का अभिगोपन करनाः
iii. निजी क्षेत्र की औद्योगिक संस्थाओं की साधारण एवं अधिमान्य अंश–पूॅजी में प्रत्यक्ष अभिदान करना।
iv. ऐसी संस्थाओ के ऋणपत्रों या बॉण्डों को खरीदना।
v. रूपयों में चुकाये जाने वाले ऋणों के लिए गारण्टी प्रदान करना। ऐसी गारण्टी की आवश्यकता विलम्बित भुगतान के आधार पर विदेशों से मशीन औजार के रूप में प्राप्त किये गये ऋणों के लिए हो सकती है।
vi. विदेशों से आयात किये जाने वाले पूॅजीगत माल की लागत के लिए विदेशी मुद्रा में ऋण प्रदान करना।
vii. उद्योगों को प्रबन्ध सम्बन्धी एवं तकनीकी तथा प्रशासनिक परामर्श प्रदान करना और इस प्रकार की सेवाओं को उपलब्ध करवाने में सहयोग देना।

निगम द्वारा की जाने वाली सहायता की कोई उच्चतम सीमा निर्धारित नहीं की गयी है। यह किसी एक संस्था को किसी भी सीमा तक ऋण दे सकता है– जैसा भी इसके द्वारा उचित समझा जाय। निम्नतम सहायता की सीमा अवश्य निर्धारित की गयी है और यह पॉच लाख रूपये है। किन्तु सीमा के विषय में कोई कट्टरता नहीं है और इसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सकता है। प्रदान की जाने वाली सहायता प्रायः स्थायी कार्यशील पूॅजी के लिए भी दी जा सकती है।

निगम की भूमिका की समीक्षा

विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं के क्षेत्र में इस निगम की स्थापना एक विशेष महत्व की प्रतीक है। अन्य वित्त निगमों की तुलना में औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम कई बातों में अनोखा है। यह निगम पूर्णतः निजी क्षेत्र में है और इसमें सरकार का किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप नहीं है, सिवाय इसके कि जब तक सरकार द्वारा दिया हुआ ऋण यह नहीं चुका देता तब तक भारत सरकार को इसके संचालक नियुक्त करने का अधिकार रहेगा। इस निगम को भारत के एवं विदेशों के कई अनुभवी एवं साधन–सम्पन्न व्यक्तियों का सक्रिय सहयोग प्राप्त है विश्व बैंक एवं अमरीका की एजेन्सी फॉर इण्टरनेशनल डेवलपमेण्ट का भी सहयोग प्राप्त है और इन सूत्रों से यह अमरीकी डालरों में अनेक ऋण प्राप्त करने में सफल रहा है। साथ ही जर्मनी के पुर्नसंगठन ऋण निगम से भी इसे पश्चिमी जर्मनी की मुद्रा मार्क में ऋण प्राप्त हो चुके है।

पिछले पैंतालीस वर्षो की इसकी प्रगति को देखते हुए कहा जा सकता है कि यह निगम भारत का एक बड़ा विनियोक्ता बन गया है, विशेषतः निजी क्षेत्र में देशी एवं विदेशी विनियोगी को प्रोत्साहित करने में इसका योगदान महत्वपूर्ण रहा है।

सन् 1992–93 में निगम द्वारा दो नवीन योजनायें प्रारम्भ की गयीं एग्रो कल्चरल कमर्शियलाइजेशन एण्ड एन्टरप्राइज तथा ट्रेड इन ऐनवाइरनमेन्ट सर्विसेज एण्ड टेक्नेलोजी ACE का प्रमुख उद्देश्य बागवानी के क्षेत्र में वित्तीय एंव तकनीकी सहायता प्रदान करना है। और इसके लिये इसे USAID से 20 मि. डालर का अनुदान प्राप्त हुआ है। TEST योजना का उद्देश्य पर्यावरण

सुरक्षा के क्षेत्र में तकनीकी सहयोग देना है और इसके लिये USAID द्वारा 25 मि. डालर की वित्तीय सहायता स्वीकृत की गयी है।

निगम द्वारा हाल ही में ICICI Securities & Finance Co. Ltd. की स्थापना एक सहायक कम्पनी के रूप में की गयी है जिसका उद्देश्य निवेश–सेवाये प्रदान करना है। निगम का मर्चेन्ट बैंकिंग व्यवसाय इस सहायक कम्पनी को हस्तान्तरित कर दिया गया है। सन् 1999 में ICICI को न्यूयार्क स्टॉक एक्सचेंज की सूची में शामिल किया गया है। जापान के बाद यह इसकी दूसरी ऐसी संस्था है, जिसे यह गौरव प्राप्त हुआ है।

4) भारत का औद्योगिक विनियोग बैंक

इसकी स्थापना भारत–पाक युद्ध के बाद सन् 1971 में की गयी। वस्तुतः इसकी स्थापना का मूल उद्देश्य देश के उत्तर–पूर्वी प्रदेशों की निष्क्रिय अथवा कमजोर औद्योगिक इकाइयों को पुनः स्थापित करके उनके पुनः निर्माण में सहयोग प्रदान करना था, ताकि वे गिरी हुई दशा से उपर उठकर सामान्य संस्थाओं की भॉति राष्ट्रीय उत्पादन में अपना योगदान दे सकें। इसी दृष्टि से इसका प्रधान कार्यालय कलकत्ता में रखा गया। इसकी सहायता अधिकतर देश के पूर्वी राज्यों को प्राप्त हुई है। किन्तु इधर कुछ वर्षो से इसके कार्यक्षेत्र का विस्तार हुआ है और अब यह बैंक एक अखिल भारतीय संस्था का रूप ले चुका है।

1. उद्देश्य

इस बैंक के उद्देश्यों को अत्यन्त व्यापक रूप दिया गया है फिर भी इसका मूल उद्देश्य बन्द पड़ी हुई अथवा निष्क्रिय अथवा संकटग्रस्त औद्योगिक इकाइयों का पुनर्निर्माण करके उन्हे नवजीवन प्रदान करना है। ऐसी औद्योगिक इकाइयो को जो कि अत्यन्त गिरी हुई दशा में कार्य कर रही है और जिनके बन्द हो जाने की आशंकाएँ है (किन्तु जिन्हें यदि थोड़ा–सा सहारा मिल जाय अथवा अचित मार्गदर्शन प्राप्त हो जाय, तो उनमें पुनः जीवन का संचार किया जा सकता हो) वित्तीय एंव अन्य प्रकार की सहायता प्रदान करके उनकी दशा को उपर उठाने का दायित्व इसको सौंपा गया। बीमार अथवा मृतप्राय औद्योगिक इकाइयों की पुनर्निर्माण एजेन्सी के रूप में यह उनकी समस्याओं एंव कठिनाइयों का विश्लेषण करता है तथा उनके सुधार के लिए वित्तीय, तकनीकि, प्रबन्धकीय सहायता प्रदान करता है।

सन् 1971 में जब इसकी स्थापना की गयी थी तो इसकी प्राधिकृत–पॅूजी 25 करोड़ तथा चुकता–पॅूजी 20 करोड़ रूपये थी। मार्च 1985 में संसद द्वारा पास किये गये अधिनियम के तहत इसका पूनर्गठन करके इसे एक स्वायत्तशासी संगठन का रूप दिया गया तथा इसका नाम IRCI से बदलकर IRBI कर दिया गया। अब इसकी प्राधिकृत–पॅूजी 200 करोड़ रूपये तथा चुकता–पॅूजी 175.3 करोड़ रूपये कर दी गयी। इस प्रकार अपने पुनर्गठित रूप में IRBI अब एक अखिल भारतीय संस्था बन गयी। मार्च 1947 में एक बार फिर इसका पुनर्गठन यिा गया। अब इसका नाम इण्डस्ट्रियल इनवेस्टमेण्ट बैंक ऑफ इण्डिया लिमिटेड कर दिया गया। इस प्रकार अब इसे पूर्णरूपेण विकास बैंक का दर्जा प्राप्त हो गया। बैंक की इक्विटी–पॅूजी 72 करोड़ रूपये हो गयी। सन् 1998 में बैंक द्वारा 40 करोड़ रूपयों के इक्विटी–अंशों का निर्गमन (20 रूपये प्रीमियम प्रति अंश) किया गया।

2. सहायता का स्वरूप एवं शर्ते

यह निगम किसी भी प्रकार की औद्योगिक इकाइयों को सहायता प्रदान कर सकता है जैसे एकाकी स्वामित्व, साझेदारी अथवा कम्पनी, आदि। फिर भी यह इस बात पर बल देता है कि

यथासम्भव ऐसी इकाइयों को कम्पनी रूपी संगठन के रूप में परिवर्तित कर लिया जाय। वस्तुतः निगम द्वारा प्रदत्त सहायता का स्वरूप डूबते हुए को तिनके के सहारे के समान है। संकटग्रस्त इकाइयों के अति आवश्यक दायित्वों का भुगतान करके अथवा उनके पुनर्भुगतान की अनुसूचियों को नया रूप देकर यह निगम उन्हें अपने दैनिक कार्य संचालन के लिए नये ऋण प्रदान करता है, ताकि उनकी स्थायी–पूॅजी एवं कार्यशील पूॅजी की आवश्यकताएॅ पूरी हो सकें और इस प्रकार उन्हें क्रमशः अपनी दशा सुधारने का उत्तरोत्तर अधिक अवसर प्राप्त हो सके। निगम निम्नलिखित प्रयोजनों के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करता हैः

i. विस्तार अभिनवीकरण के लिए
ii. साधनों की कमी को पूरा करने के लिए
iii. चालू स्थिति में असन्तुलन को दूर करने के लिए
iv. अति आवश्यक दायित्वों के भुगतान के लिए
v. अन्य विविध प्रयोजनों के लिए

बैंक की गतिविधियों के नये आयाम

यद्यपि बैंक की सहायता के दो–तिहाई भाग का लाभ पश्चिम बंगाल की बीमार अथवा बन्द पड़ी हुई औद्योगिक इकाइयों को प्राप्त हुआ है, तथापि अब यह अन्य राज्यों में भी अपनी सहायता की राशि में वृद्धि कर रहा है। सीमा राज्यों में पुनर्वास वित्त की सुविधाएॅ भली प्रकार प्रदान करने के उद्देश्य से इसके द्वारा मुम्बई, चेन्नई एवं नई दिल्ली में तीन प्रादेशिक कार्यालय तथा लखनउ में एक शाखा कार्यालय स्थापित किये गये है। साथ ही अपनी गतिविधियों में नवीनीकरण लाने के लिए निम्नलिखित कार्य किये गये हैः

a) लघु उद्योगों को सहायता –

अब तक लाइन ऑफ क्रेडिट योजना के अन्तर्गत राज्य सरकारों द्वारा नामजद राज्यस्तरीय संस्थाओं के माध्यम से 17 राज्यों में लघु औद्योगिक इकाइयों को रियायती ब्याज दर पर 9.5 करोड़ रूपयों की पुनर्वास सहायता दी जा चुकी है जिसमें और अधिक विस्तार लाने के प्रयास किये जा रहे है। वर्ष 1990–91 में लघु उद्योगों को वित्तीय सहायता देने का कार्य भारत के लघु उद्योग विकास बैंक को हस्तान्तरित कर दिया गया।

b) लीजिंग –

अब तक बीमार इकाइयों को भाड़ा क्रय–योजना के अन्तर्गत 9.07 करोड़ रूपयों की सहायता दी जा चुकी है जो मुख्यतः डीजल जैनेरेटिंग सेटों के लिए दी गयी है। सन् 1983 से IIBI ने लीजिंग के क्षेत्र में प्रवेश किया तथा एक वर्ष के अन्दर ही 24 इकाइयों को 4.06 करोड़ रूपये की सहायता दी जा चुकी है जिसके अन्तर्गत डीजल सैटों के अतिरिक्त अन्य मशीन–उपकरण भी भाड़ा क्रय–योजना के अन्तर्गत उपलब्ध कराये गये है।

c) मर्चेण्ट बैंकिंग –

बीमार इकाइयों (जिनका पुनर्वास सम्भव न हो) के अन्य सक्षम औद्योगिक उपक्रमों में एकीकरण एवं संविलयन की योजनाओ को तैयार करने और उन्हें क्रियान्वित करने के उद्देश्य से निगम द्वारा एक पृथक मर्चेण्ट बैंकिंग प्रकोष्ठ की स्थापना की गयी हैं।

अन्त में यह कहना उचित होगा कि 1997 में अपने पुनर्गठन के बाद से इण्डस्ट्रियल इन्वेस्टमेण्ट बैंक ऑफ इण्डिया अखिल भारतीय स्तर का पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक बन गया है।

5) भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक –

लघु क्षेत्र के लिए एक पृथक बैंक की स्थापना करने की आवश्यकता पिछले अनेक वर्षो से अनुभव की जा रही थी। विद्यमान वित्तीय निगमों का संगठन प्रमुखतः बड़े उद्योगो को वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए ही किया गया है, यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से लघु उद्योगों को भी वे निगम अन्य वित्तीय संस्थाओं के माध्यम से सहायता देते है। अतः सन् 1989 में संसद द्वारा एक अधिनियम पास करके भारतीय लद्यु उद्योग बैंक की स्थापना की। सिडबी भारतीय विकास बैंक को पूर्ण स्वामित्व वाली एक सहायक संस्था है। 31 मार्च 1990 को IDBI के दो संभागों – लघु उघोग विकास निधि तथा राष्ट्रीय इक्विटी निधि को सिडबी को सौंप दिया और इस प्रकार 2 अप्रैल 1990 में सिडबी ने अपना कार्य प्रारम्भ किया।

उद्देश्यः इसकी स्थापना के प्रमुख उद्देश्य हैं– (क) लघु एंव अति लघु तथा कुटीर क्षेत्रों मे उद्योगों की स्थापना करना और उनके वित्त पोषण एवं विकास के लिए प्रमुख विकास निगम के रूप में कार्य करना, (ख) इस क्षेत्र में कार्यरत अन्य संस्थाओं की गतिविधियों का समन्वय करना। अपनी स्थापना के बाद से ही यह बैंक लघु, अति लघु एवं कुटीर उद्योगों के बहुआयामी विकास के लिये प्रयत्नशील रहा है।

कार्य

सिडबी को लघु उद्योग क्षेत्र में विकास के लिए निम्नलिखित कार्यो का दायित्व सौंपा गया है – मियादी ऋणी के लिए पुनर्वित की सुविधाएॅ देना, मशीनो/उपकरणों की बिक्री के बिलों की भुनाई एवं पुनः भुनाई, लघु उद्यमियों को बीज–पूॅजी तथा राष्ट्रीय इक्विटी निधि के अन्तर्गत इक्विटी–पूॅजी प्रदान करना, लघु क्षेत्र के संवर्धन, विकास एवं वृद्धि के लिए तकनीकी और अन्य सम्बद्ध सहायक सेवाएॅ प्रदान करना, आदि। इनके अतिरिक्त कच्चे माल की आपूर्ति, लघु इकाइयों के उत्पादों का विपणन, लीजिंग सुविधाओं का विस्तार, औद्योगिक सम्पदाओं की संसाधन सहायता भी प्रदान की जाती है।

इसके कार्यक्षेत्र में मुख्यतः निम्नलिखित कार्य सम्मिलित है–

i. राज्य वित्त निगमों, राज्य उद्योग विकास निगमों, व्यापारिक बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा इस क्षेत्र को प्रदान किये गये मियादी ऋणों के लिये पुनर्वित की सुविधा देना,
ii. लघु क्षेत्र से सम्बन्धित बिलों की बट्टे पर भुनाई तथा पुनः भुनाई की सुविधा प्रदान करना,
iii. विशिष्ट समूहों (जैसे महिला उद्यमियों अवकाश प्राप्त सैनिकों आदि) को इक्विटी पूॅजी/बीज पूॅजीमें सहयोग करना,
iv. लघु उद्योग क्षेत्र में कार्यरत अन्य संस्थाओं को वित्तीय साधनों की पूर्ति में सहयोग देना,
v. औद्योगिक इकाइयों एवं लीज कमपनियों को मियादी ऋण प्रदान करना।

लघु इकाइयों को विलम्बित भुगतान के सिलसिले में आने वाली कठिनाइयों को कम करने के उद्देश्य से सिडबी ने रिजर्व बैंक द्वारा सुनिश्चित प्रमुख बैंकों के साथ मिलकर पृथक फेक्टरिंग कम्पनियॉ स्थापित करने का निर्णय लिया। पश्चिम क्षेत्र के लिए स्थापित SBI Factoring & Commercial Services Private Ltd. की प्रदत्त पूॅजी में 20 प्रतिशत का अंशदान सिडबी द्वारा किया गया है। अन्य क्षेत्रों के लए स्थापित की जाने अन्य फेक्टरिंग कम्पनियों में भी सिडबी शामिल होगा।

6) जीवन बीमा निगम

द्वितीय विश्वयुद्व से पूर्व भारत में जीवन–बीमा का विकास बहुत ही कम था। द्वितीय विश्वयुद्ध की अवधि में इसमें कुछ प्रगति हुई, क्योकि बेकारी कम होने एवं लोगों की आय में कुछ वृद्वि होने से जीवन–बीमा व्यवसाय को प्रोत्साहन मिला। स्वतन्त्रता के पश्चात् इस व्यवसाय में कुछ

और वृद्वि हुई, किन्तु अनेक निजी कम्पनियों की पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता के कारण बीमा व्यवसाय की प्रगति के लिए सुदृढ़ आधार तैयार न हो सका। बीमा कम्पनियॉ प्रायः प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रबन्ध अभिकर्ताओं से सम्बद्ध थीं और इस प्रकार इनमें निहित स्वार्थो के लिए पर्याप्त स्थान था। प्रबन्ध अभिकर्तागण अपने प्रभाव का अनुचित लाभ उठाने का प्रयत्न करते थे, क्योंकि बीमा अधिनियम, सन् 1938 के अधीन केवल यह व्यवस्था थी कि जीवन–बीमा देनदारियों के 55 प्रतिशत भाग का विनियोग सरकारी अथवा सरकार द्वारा अनुमोदित प्रतिभूतियों में रहना चाहिए। शेष भाग का विनियोग इन कम्पनियों द्वारा अन्य किसी भी क्षेत्र में किया जा सकता था। अतः इन प्रन्यास कोषों निहित स्वार्थो द्वारा अपने गुटों के उद्योगों को साख प्रदान करने में अथवा सट्टे में किया जाता था। कुछ कम्पनियॉ इसका अपवाद अवश्य थीं तथा उनकी प्रबन्ध कुशलता और विनियोग नीति उत्तम थी। किन्तु अधिकांश कम्पनियॉ निहित स्वार्थो का गढ़ बन चुकी थीं। भारतीय बीमा कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण वस्तुतः इन्हीं अवांछनीय दशाओं में सुधार करने के उद्देश्य से किया गया।

जीवन–बीमा का राष्ट्रीयकरण

अस्थायी कदम के रूप में जीवन–बीमा का राष्ट्रीयकरण 19 जनवरी 1956 से किया गया, जबकि एक अध्यादेश के द्वारा समस्त भारतीय एवं विदेशी बीमा कम्पनियों का प्रबन्ध सरकार ने अपने हाथ में ले लिया। इस व्यवस्था को स्थायी रूप प्रदान करने के लिए 18 जून 1956 को जीवन–बीमा निगम अधिनियम पास किया गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत जीवन बीमा निगम की स्थापना 1 सितम्बर, 1956 से की गयी। समस्त बीमा कम्पनियों की सम्पत्ति एवं देनदारियॉ जीवन–बीमा को हस्तान्तरित कर दी गयीं। इस प्रकार 243 बीमा कम्पनियॉ समाप्त कर दी गयीं, जिनकी कुल सम्पत्ति 411 करोड़ रूपये थी तथा उनके द्वारा 1250 करोड़ रूपये के बीमित मूल्य के 50 लाख बीमापत्र जारी किये हुए थे।

राष्ट्रीयकरण के बाद से जीवन बीमा निगम के व्यवसाय में आशातीत वृद्वि हुई है। वर्ष–दर–वर्ष नये बीमा–पत्रों की संख्या एवं कुल बीमित राशि में उतरोत्तर बढ़ोत्तरी हुई है। सन् 1956 में वार्षिक बीमा–पत्रों की संख्या 5.67 लाख थी जिन पर बीमित राशि 200.28 करोड़ रू. थी। सन् 1996 में यह संख्या 110.21 लाख एवं बीमित राशि 51815.54 करोड़ रूपये हो गयी।

निगम का प्रधान कार्यालय मुम्बई में है। उसके 5 क्षेत्रीय कार्यालय जो मुम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, चेन्नई एवं कानपुर में स्थित हैं जो 100 सम्भागीय कार्यालयों एवं 2024 ब्रांच कार्यालयों के द्वारा कार्य करते है। अपने 3.17 लाख ऐजेण्टों की सेवाऍ इसे प्राप्त हैं और इस प्रकार अब यह निगम भारत का एक बड़ा संगठन बन चुका है।

7) सामान्य बीमा निगम

सामान्य बीमा निगम की स्थापना 22 दिसम्बर, 1972 को एक सरकारी कम्पनी के रूप में की गयी। उस समय कार्यरत समस्त बीमा कम्पनियों को राष्ट्रीयकरण के फलस्वरूप सामान्य बीमा निगम में 1 जनवरी 1973 को मिला दिया गया।

वर्ष 1998–99 के अन्त में निगम की चुकता–पूॅजी है। इसकी चार सहायक कम्पनियॉ है जो निम्नलिखित हैं– नेशनल इन्श्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड, दी न्यू इण्डिया इन्श्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड, दी ओरिएण्टल फायर एण्ड जनरल इन्श्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड तथा दी यूनाइटेड इण्डिया इन्श्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड इन चारों सहायक कम्पनियों की कम्पनियों की लगभग समस्त अंश–पूॅजी GIC के स्वामित्व में है।

सामान्य बीमे का समस्त कार्य वस्तुतः ये चारों कम्पनियॉ करती है। सामान्य बीमा निगम एक धारक कम्पनी की भॉति इनका नियन्त्रण एवं समन्वय करता है। इन चारों कम्पनियों के कार्यालय समस्त देश में फैले हुए है तथा ये परस्पर सामान्य बीमा के क्षेत्र में प्रतियोगिता करती है। कुल मिलाकर सामान्य बीमा निगम एवं चारों सहायक कम्पनियों के भारत में 31 प्रादेशिक– कार्यालय, 444 डिवीजनल कार्यालय तथा 3730 ब्रान्च कार्यालय कार्यशील है। अपनी सहायक कम्पनियों के माध्यम से निगम को समस्त देश में सामान्य बीमा व्यवसाय का एकाधिकार प्राप्त है। भारत के अतिरिक्त 27 अन्य देशों में भी यह निगम सामान्य बीमे का व्यवसाय करता है।

पिछले सोलह वर्षो में सामान्य बीमा निगम को प्राप्त प्रीमियम आय में पर्याप्त वृद्धि हुई है। सन् 1972 में सामान्य बीमा व्यवसाय की प्रीमियम–आय केवल 160 करोड़ रूपये थी जो बढ़कर 1998 में 5087 करोड़ रूपये हो गयी। व्यवसाय में वृद्वि के साथ–साथ निगम के पास विनियोजन योग्य कोषों की मात्रा में भी तेजी से वृद्वि हुई है। मार्च 1998 के अन्त में सामान्य बीमा व्यवसाय द्वारा किये गये कुल विनियोग 20000 करोड़ रूपयों के थे जिनमें सहायक कम्पनियों द्वारा किये हुए विनियोग भी सम्मिलित थे।

सामान्य बीमा निगम द्वारा किये जाने वाले विनियोगों के विषय में दिशा–निर्देशः

सामान्य बीमा निगम एवं इसकी सहायक कम्पनियों द्वारा किये जाने वाले विनियोगों के विषय में सरकार द्वारा निर्धारित दिशा–निर्देश निम्न प्रकार है।

कुल कोषों के 25 प्रतिशत का विनियोग केन्द्रीय सरकार की प्रतिभूतियों में किया जायगा। इसके अतिरिक्त कुल कोषों के 10 प्रतिशत का विनियोग राज्य सरकारों की प्रतिभूतियों में, तथा सार्वजनिक उपक्रमों द्वारा जारी किये गये अन्य अनुमोदित बॉण्ड एवं ऋणपत्रों में किया जायगा। इसके अतिरिक्त कोषों के 35 प्रतिशत भाग का विनियोग राज्य सरकारों को आवास–सुविधाओं तथा अग्निशमन–सेवाओं के लिए तथा हुडको को ऋणों के रूप में किया जायगा। कोषों के शेष 30 प्रतिशत भाग का विनियोग पूॅजी–बाजार में विनियोगों में किया जायगा।

8) भारत का यूनिट ट्रस्ट

विदेशी एवं सरकारी साधनों के साथ–साथ निजी क्षेत्र की बिखरी हुई पूॅजी को भी आकर्षित करने के लिए उचित प्रबन्ध किया जाना आवश्यक था ताकि छोटी–छोटी बचतों को विकास कार्यो के लिए गतिशील बनाया जा सके तथा देश में पूॅजी–निर्माण को अधिक तेज किया जा सके। भारत सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र में यूनिट ट्रस्ट की स्थापना का निश्चय कदाचित इसी भावना से प्रेरित होकर किया। भारतीय संसद द्वारा यूनिट ट्रस्ट अधिनियम 26 नवम्बर 1963 को पारित किया गया तथा 1 जुलाई 1964 से इससे इकाइयो की बिक्री आरम्भ की गयी।

ट्रस्ट के उद्देश्य

यूनिट ट्रस्ट एक ऐसी संस्था है जो समाज के विभिन्न वर्गो की बचत को विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों में विनियोजित करती है। यह बचतकर्ता को उचित लाभांश तथा पूॅजी के विनियोग के लिए उपयुक्त व्यवस्था की सुविधा प्रदान करती है। बचत की विभिन्न राशियों को इकठ्ठा करने के उद्देश्य से ही ट्रस्ट इकाइयों की बिक्री करता है, तथा इन इकाइयों को खरीद लेने पर विनियोजक ट्रस्ट की पूॅजी के लाभांशो में परोक्ष रूप से हिस्सेदार बन जाता है। ट्रस्ट का मूलभूत उद्देश्य यह है कि सब छोटी या बड़ी रकम लगाने वाले लोग उस विकासशील सम्पन्नता में हिस्सा बॅटा सकें जो देश की औद्योगिक प्रगति के साथ–साथ बढ़ती जा रही है। ट्रस्ट साधारण बचतकर्ताओं के विनियोगीं के जोखिम को कम करता है और उन्हे उचित लाभांश कमाने की सुविधा प्रदान करता है। इसके

अतिरिक्त बचतों को गतिशील बनाकर और पूँजी का विनियोग करके ट्रस्ट राष्ट्र के औद्योगीकरण को प्रोत्साहित करता है।

यूनिट ट्रस्ट ने 1 जुलाई 1964 से इकाइयों की बिक्री प्रारम्भ की। प्रत्येक यूनिट का प्रारम्भिक मूल्य 10 रूपये था तथा दस–दस की दस के गुणितों की संख्या में इन्हें इससे खरीदा जा सकता है। यूनिटों में धन लगाने की कोई सीमा नहीं है। प्रारम्भ में यूनिट योजना 1964 के पर बेचे जाते है। ट्रस्ट इनका विक्रय मूल्य तथा पूनखरीद मूल्य प्रतिदिन घोषित करता रहता है।

यूनिटों में पूँजी विनियोग के लाभ :

1. कम से कम जोखिम पर विविधता का लाभ – यूनिट ट्रस्ट अपनी पूँजी का विनियोजन सन्तुलित एवं सुवितरित संविभाग के निर्माण करने के सिद्वान्त के आधार पर करता है। यदि किसी व्यक्ति के पास केवल दस इकाइयॉ भी है तो वह ट्रस्ट द्वारा लिये गये सरकारी ऋणों, औद्योगिक ऋणपत्रों, अधिमान्य अंशों, सामान्य अंशों के मिले जुले सम्पूर्ण संविभाग में भागीदार बन जाता है और इस प्रकार विविधता का लाभ प्राप्त करके अपने जोखित को न्यूनतम कर देता है।

2. नियमित आय – विनियोजित पूँजी की आय सम्पूर्ण सन्तुलित संविभाग की औसत आय पर आधारित होती है। यूनिट ट्रस्ट की प्रायः सभी योजनाओं पर सन्तोषजनक लाभांश दिये जाने का प्रयास किया जाता है। मासिक आय योजनाओं पर कुछ वर्ष पहले तक 14 से 15 प्रतिशत तक ब्याज दिया जाता था। किन्तु इधर बैक दर में कमी हो जाने के बाद से इन पर ग्यारह प्रतिशत के आस पास ब्याज दिया जा रहा है। यूलिप पर 16.5 मास्टर शेयर पर 16 तथा यू. एस. 64 पर 13.5 प्रतिशत वार्षिक ब्याज दिया जा रहा है।

3. आय–कर में बचत – जहॉ तक यूनिटों से प्राप्त होने वाली आय का प्रश्न है आय कर की धारा 80 एल. के अन्तर्गत 15000 रूपयों तक आय (अन्य विनिर्दिष्ट विनियोगों को सम्मिलित करते हुए) कर मुक्त हो सकती है। इसके अतिरिक्त 5 लाख रूपयों तक के विनियोगों पर सम्पत्ति कर में भी छूट प्राप्त है यूनिट ट्रस्ट द्वारा यूनिट धारकों को आय देते समय स्त्रोत पर कोई कर नहीं काटा जाता है।

4. बचत एवं पूँजी–निर्माण में सहायक – ट्रस्ट सर्वसाधारण की छोटी बड़ी बचतों को गति प्रदान करके उनके लाभपूर्ण विनियोजन में सहायक होता है। इससे देश में पूँजी निर्माण की गति तीव्र हो सकेगी। छोटे एवं मध्यम आकार के बचतकर्ताओं को औद्योगिक प्रतिभूतियों में धन लगाने का अवसर ट्रस्ट के माध्यम से मिल जायेगा।

5. औद्योगीकरण को प्रोत्साहन – सरकारी प्रतिभूतियों के अतिरिक्त ट्रस्ट अपनी पूँजी को औद्योगिक प्रतिभूतियों में भी लगाता है। इससे औद्योगिक विनियोजन का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हो रहा है, अपनी विशेष स्थिति के कारण ट्रस्ट राष्ट्रव्यापी सूत्रों से पूँजी को आकर्षित करता हे और इस योग्य हो गया है कि भारी मात्रा में औद्योगिक प्रतिभूतियों में पूँजी लगा सके। यूनिट ट्रस्ट ने अपने निवेश योग्य कोषों का अधिकांश भाग औद्योगिक प्रतिभूतियों, मियादी ऋणों एवं बैंको में जमा पूँजी के रूप में लगाया हुआ है। पूँजी के निर्गमनों के अभिगोपनों में भी इसका योगदान अब पहले की अपेक्षा अधिक है।

6. तरलता – ट्रस्ट मे पूँजी लगाने का महत्वपूर्ण लाभ यह है कि यूनिट होल्डर इच्छानुसार अपनी पूँजी को वापस प्राप्त कर सकता है। ट्रस्ट द्वारा प्रतिदिन कार्य समाप्ति पर घोषित पुनः क्रय–मूल्य पर कोई भी अपनी इकाइयों को वापस बेच सकता है। इसी प्रकार प्रतिदिन बिक्री–मूल्य

भी ट्रस्ट द्वारा घोषित किया जाता है जिसके आधार पर आवश्यकता होने पर फिर नयी–नयी इकाइयॉ खरीदी जा सकती है।

7. उधार लेने में सुविधा – इकाइयों की समपार्श्विक जमानत पर इकाई धारक बैंकों या अन्य सूत्रों से ऋण प्राप्त कर सकते है।

8. प्रबन्ध कुशलता एवं विशेषज्ञों की सेवाओं का लाभ – ट्रस्ट के प्रबन्ध का अधिकांश उत्तरदायित्व रिजर्व बैंक को सौंपा गया है, क्योंकि ट्रस्टी मण्डल के कार्यकारी–ट्रस्टी के अतिरिक्त मण्डल के अन्य सदस्य की नियुक्ति भी रिजर्व बैंक के द्वारा की जाती है। ट्रस्ट के अध्यक्ष की नियुक्ति भारत सरकार द्वारा रिजर्व बैंक के परामर्श से की जाती है। इसके अतिरिक्त मण्डल के चार सदस्यों की नियुक्ति भारत के औद्योगिक विकास बैंक के द्वारा की जाती है।

9. पूॅजी में वृद्धि – ट्रस्ट द्वारा आय योजनाओं के साथ–साथ वृद्धि योजनायें भी प्रारम्भ की गयी है। इनका स्टॉक एक्सचेन्जों में सूचियन है तथा प्रतिदिन इनके बाजार मूल्यों का प्रकाशन किया जाता है। ट्रस्ट द्वारा भी समय–समय पर इनका शुद्व सम्पत्ति मूल्य प्रकाशित किया जाता है। इन योजनाओं में व्यक्तिओं के साथ–साथ संस्थागत विनियोक्ता (जैसे साझेदारी फर्मे, कम्पनियॉ, प्रन्यास आदि) भी अपनू कोषो का निवेश करते है।

पारस्परिक कोषों अथवा म्यूचुअल फण्डों को भारत में शुरू करने का श्रेय भी यूनिट ट्रस्ट को ही प्राप्त, क्योकि इसने ही देश में सर्वप्रथम मास्टर शेयरों का निर्गमन किया जिन पर उत्तम लाभांश प्रतिवर्ष दिये जाने के साथ–साथ अनेक बार राइट निर्गमनों और बोनस निर्गमनों का लाभ निवेशकर्ताओ को देकर उनकी पूॅजी में अभिवृद्वि का लाभ भी उन्हें प्रदान किया गया है। सात वर्षो के बाद सन् 1993 में निवेशकर्ताओ को इनमें लगी पूॅजी को वापस लेने का विकल्प दिया गया। इस विकल्प का प्रयोग न करने वाले मास्टर शेयर धारियों के लिये इनकी अवधि को आगे दस वर्षो (सन् 2002 तक) बढ़ा दिया गया।

9) भारत का निर्यात–आयात बैंक

इसकी स्थापना भारत सरकार द्वारा 1 जनवरी 1982 को की गयी तथा इसने अपना कार्य 1 मार्च, 1982 से आरम्भ किया। इसकी स्थापना का प्रमुख उद्देश्य भारत के विदेशी व्यापार के विकास एवं विस्तार के लिए आवश्यक वित्तीय एवं अन्य सेंवाएॅ प्रदान करना है।

कार्य

निर्यात–आयाज बैंक भारत के आयात–निर्यात व्यापार के सिलसिले में अनेक कार्य सम्पन्न करता है जो निम्नलिखित है

i. निर्यातको को प्रत्यक्ष वित्तीय सहायता प्रदान करना।
ii. विदेशों में पूॅजी–निवेश के लिए साख सुविधाएॅ देना और तकनीकी तथा परामर्श सेवाओं के निर्यात के लिए साख प्रदान करना।
iii. लदान–पूर्व ऋणों की सुविधाएॅ प्रदान करना।
iv. अन्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा निर्यातको को प्रदान किये गये निर्यात ऋणों के लिए पुनर्वित की सुविधाएॅ देना।
v. विदेशी व्यापार सम्बंन्धी बिलों की पुनर्भुनायी की सुविधा प्रदान करना।
vi. भारतीय निर्यातको की ओर से विदेशी आयातको के हित में गारण्टियॉ देना। इसके द्वारा ऐसी गारण्टियॉ अन्य भारतीय बैंकों के साथ मिलकर भी दी जाती है। यह एक स्वायत्तशासी निगम है जिसकी प्राधिकृत पूॅजी 500 करोड़ रूपये है।

वित्तीय साधन

निर्यात–आयात बैंक की चुकता पूँजी 335 करोड़ रूपयों की है तथा इसके पास आरक्षित निधियॉ 276 करोड़ रूपयों की है। भारत सरकार से इसे 55 करोड़ तथा रिजर्व बैंक से इसे 877 करोड़ रूपयों का ऋण प्राप्त हैं इसके अतिरिक्त विकास बैंक से निर्यात आयात बैंक में अन्तरित अन्तर्राष्ट्रीय ऋण निवेश के लिए विकास बैंक को देय 135 करोड़ रूपयें भी इसके दीर्घकालीन वित्तीय साधनों में शामिल है। इसके द्वारा अमरीकी डालर एवं जापानी येन मुद्राओं में भी कुछ साधन जुटाये गये है। इस प्रकार इसके स्वयं के कुल वित्तीय साधन 1200 करोड़ रूपयों से भी अधिक है। अब तक इसके द्वारा 524 करोड़ रूपयों के बॉण्ड निर्गमित किये जा चुके है। विभिन्न सूत्रों से लिये गये ऋणों की मात्रा 861 करोड़ रू है।

वित्तीय सहायता

आयात–निर्यात बैंक द्वारा विभिन्न प्रकार की आर्थिक सहायता के अन्तर्गत सन् 1997–98 में 1840 करोड़ रूपये की स्वीकृतियॉ प्रदान की गयीं। इसमें से 1370 करोड़ रूपयों का संवितरण किया गया। निर्यात ऋण पुनर्वित योजना के अन्तर्गत विदेशी विनिमय व्यापारी, इन्जीनियरिंग तथा पूँजीगत माल के निर्यात के लिए प्रदाये कियें स्थगित भुगतान ऋणों पर 100 प्रतिशत पुनर्वित की सुविधा इस बैंक द्वारा प्रदान की जाती हैं। विदेशी केता ऋण विदेशी आयातकों को भारतीय माल आयात करने के लिए सीधा प्रदान किया जाता है। वित्तीय सहायता में भारतीय निर्यातको को प्रत्यक्ष वित्तीय सहायता योजना के अन्तर्गत दी गयी राशि में भी पिछले वर्षो में पर्याप्त वृद्वि हुई है। एक्जिम बैंक भारतीय कम्पनियों को विदेशी संयुक्त उद्योगो में इक्विटी सहभागिता के लिए आवश्यक साख की पूर्ति विदेशी निवेश–वित्त योजना के अर्न्तगत करता है। निर्यात–आयात बैंक भारत के उन वाणिज्य बैंकों को पुनर्भुनायी की सुविधा प्रदान करता है। जो विदेशी विनिमय व्यवहार के लिए प्राधिकृत किये जाते है। यह सुविधा अल्पकालीन निर्यात बिलों पर अधिकतम 90 दिनों की अवधि की असमाप्त मियाद के लिए प्रदान की जाती है।

10) भारतीय लद्यु उद्योग निगम लिमिटेड

इसकी स्थापना सन् 1955 में सार्वजनिक क्षेत्र की एक सरकारी कम्पनी के रूप में की गयी। इसके निम्नलिखित कार्य है– किराया खरीद के आधार पर देशी–विदेशी मशीनरी की आपूर्ति कच्चे माल तथा अतिरिक्त पुर्जो की पूर्ति, लघु इकाइयो को उनके माल के विपणन में तथा निर्यात में सहायता देना, प्रोटोटाइप मशीनों का विकास करना तथा लघु क्षेत्र के कामगारों को प्रशिक्षण करना। निगम की चुकता–पूँजी 17 करोड़ रूपये तथा इसकी आरक्षित–निधियॉ 3–3 करोड़ रूपये है।

किराया कय योजना–

निगम द्वारा आसान शर्तो एवं किस्तों पर लघु औद्योगिक इकाइयों को संयन्त्र एवं मशीने प्रदान की जाती है। मार्च 1995 तक इसके द्वारा पिछले चालीस वर्षो मे 50000 से भी अधिक लघु औद्योगिक इकाइयों को 348 करोड़ रूपयों के संयन्त्र एवं मशीनें किराया कय योजना के अन्तर्गत उपलब्ध कराये जा चुके है। इस योजना के नियम एवं शर्ते इस प्रकार है –

i. एक लघु इकाई को अधिकतम 60 लाख रूपये मूल्य तक की आयातित और देशी मशीनें और उपकरण उपलब्ध कराये जा सकते है। बशर्ते कि वर्तमान में स्थापित मशीनों एवं नयी मशीनों का मूल्य 35 लाख रूपये से अधिक न हो।

ii. सहायक उद्योगों की दशा में यह सीमा 75 लाख रूपये है।

iii. किराये पर क्रय मूल्य का भुगतान 5 से 7½ वर्षो की अवधि में 9 से 13 छमाही किश्तों में देय है।

iv. पहली किश्त देय होने से पहले विद्यमान इकाइयों के लिए एक वर्ष तथा नयी इकाइयों के लिए डेढ़ वर्ष की प्रारम्भिक छूट है।

v. नियत देय तिथि को या उससे पहले तुरन्त भुगतान करने पर दो प्रतिशत की छूट को ध्यान में रखते हुए प्रभावी ब्याज–दरें 11 प्रतिशत से 14 प्रतिशत के बीच में है।

vi. अनुसूचित जाति/जनजाति के उद्यमियों, तकनीकि विशेषज्ञों पूर्व रक्षा कर्मचारियों तथा पिछड़े क्षेत्र में स्थित लधु इकाइयों को किराया क्रय योजना के तहत मशीनें उपलब्ध कराये जाने के सम्बन्ध में धरोहर राशि, ब्याज की दरों तथा सेवा–शुल्कों पर रियायती शर्ते दी जाती है।

11) राज्यों के वित्तीय निगम –

राज्य वित्त अधिनियम भारत सरकार द्वारा सितम्बर 1951 में पास किया गया। इस अधिनियम के द्वारा राज्य सरकारों को अपने राज्यों के लिए पृथक् वित्त निगमों की स्थापना का अधिकार प्राप्त हो गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत सर्वप्रथम वित्त निगम स्थापित करने का श्रेय पंजाब को है जहॉ सन् 1953 में राज्य वित्त निगम की स्थापना की गयी। इसके बाद सन् 1961 तक घीर–धीरे सभी राज्यों में वित्त निगम स्थापना कर दिये गये। तमिलनाडु राज्य में तमिलनाडु औद्योगिक विनियोग निगम की स्थापना भारतीय कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत सन् 1949 में ही की जा चुकी थी। शेष 14 राज्य वित्त निगमों की स्थापना राज्य वित्त निगम अधिनियम 1951 के अन्तर्गत की गयी । मद्रास को सम्मिलित करते हुए मार्च सन् 1967 तक भारत में 15 राज्य वित्त निगम थे। अप्रैल 1967 से पंजाब राज्य वित्त निगम का पुनर्सगठन किया गया और इसके अतिरिक्त तीन राज्य स्थापित किये गये हरियाणा राज्य वित्त निगम, हिमाचल प्रदेश राज्य वित्त निगम और दिल्ली एवं चण्डीगढ़ के संघीय क्षेत्र के लिए राज्य वित्त निगम। इस प्रकार वित्त निगमों की संख्या 18 हो गयी है।

वित्तीय सहायता के स्वरूप –

राज्य वित्त निगमों की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य विभिन्न राज्यों की लघु एवं मध्यम आकार वाली औद्योगिक संस्थाओं को दीर्घकालीन ऋण प्रदान करना है। इनमें मुख्यतः प्राइवेट लिमिटेड कम्पनियॉ एवं लघु उद्योग सम्मिलित है। राज्य वित्त निगमों द्वारा प्रदान की जाने वाली वित्तीय सहायता के निम्न स्वरूप है :

1. ऋण प्रदान करना – राज्य वित्त निगम 20 साल की अवधि तक के दीर्घकालीन ऋण प्रदान कर सकते है, किन्तु व्यवहार में यह अवधि दस–बारह वर्ष से अधिक नहीं है। ये ऋण स्थायी सम्पत्ति की जमानत पर दिये जात है। तथा ऐसी स्थायी सम्पत्ति के 50 प्रतिशत तक ही ऋण दिये जात है।

सन् 1985 के SFC अधिनियम में संशोधन के बाद अब राज्यों के वित्तीय निगम SFC कम्पनियॉ एव सहकारी समितियों को 60 लाख रूपयों तक का ऋण दे सकते है। अन्य पक्षों (जैसे साझेदारी एवं एकल–व्यापारी) के लिए ये निगम 30 रूपये तक का ऋण दे सकते है।

2. ऋणपत्रों की खरीद – औद्योगिक संस्थाओं द्वारा जारी किये गये ऐसे ऋणपत्रों में राज्य वित्त निगम धन लगा सकते है। जिनकी अवधि 20 वर्ष से अधिक न हो।

3. ऋणों के लिए गारण्टी प्रदान करना – औद्योगिक संस्थाओं द्वारा अन्य संस्थाओं से लिये जाने वाले ऋणों की गारण्टी भी राज्य वित्त निगम दे सकते है। इस प्रकार लिये जाने वाले ऋणों की अवधि 20 वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए।

4. अंशों एवं ऋणपत्रों का अभिगोपन – राज्य वित्त निगम औद्योगिक संस्थाओं द्वारा निर्गमित अंशों एवं ऋणपत्रों का अभिगोपन कर सकते है। यदि इस प्रकार अभिगोपन प्रतिभूतियों को अपने वचनों की पूर्ति के लिए खरीदना आवश्यक हो जाता है तो राज्य वित्त निगम उन्हे खरीद सकते है। किन्तु शर्त यह है कि इस प्रकार खरीदे गये अंशों या ऋणों को अधिक से अधिक सात वर्ष की अवधि में बाजार में बेच दिया जायेगा।

5. एजेण्ट के रूप में कार्य – दिये जाने वाले ऋणों अथवा खरीदे जाने वाले ऋणों अथवा खरीदे जाने वाले ऋणपत्रों के विषय में राज्य वित्त निगम केन्द्रीय सरकार, औद्योगिक वित्त निगम अथवा सरकार द्वारा अनुमोदित अन्य किसी संस्था के एजेण्ट के रूप में कार्य कर सकता है।

12) राज्य औद्योगिक विकास निगम

द्वितीय योजना के अन्त तक में अखिल भारतीय स्तर के अनेक वित्तीय निगमों की स्थापना हो चुकी थी। राज्य स्तर पर भी अनेक राज्यों द्वारा वित्त निगमों की स्थापना की जा चुकी थी। फिर भी सन् 1960 के बाद यह अनुभव किया जाने लगा कि राज्यों के औद्योगिक विकास को गति प्रदान करने के लिए राज्य वित्त निगमों के अतिरिक्त राज्य औद्योगिक विकास निगमों की स्थापना करना भी आवश्यक होगा। फलस्वरूप सन् 1960 में सर्वप्रथम आन्ध्र प्रदेश एवं केरल में, 1962 में महाराष्ट्र तथा गुजरात में सन् 1964 में मैसूर में सन् 1965 में मध्य प्रदेश में, सन् 1966 में पंजाब में तथा सन् 1967 में पश्चिमी बंगाल एवं जम्मू–कश्मीर राज्यों में औद्योगिक विकास निगमों की स्थापना की गयी। बाद में अन्य राज्यों ने भी ऐसे निगमों की स्थापना की। इस समय देश में 21 राज्य औद्योगिक विकास निगम कार्यशील है। कुछ राज्यों में SIDCs के के अतिरिक्त राज्य औद्योगिक विनियोग निगम भी कार्यशील हैं और मिलाकर ऐसे निगमों की संख्या 26 है।

उद्देश्य एवं कार्य

इन निगमों का प्रमुख उद्देश्य राज्यों में उद्योगों का प्रवर्तन, सुधान तथा विकास करना है। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए औद्योगिक विकास निगमों को अनेक सम्बद्व कार्यो को सम्पन्न करने का अधिकार प्राप्त है जैसे कि औद्योगिक उपक्रमों को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से वित्तीय सहायता प्रदान करना, उनकी अंश–पूॅजी में धन लगाना तथा उनके द्वारा निर्गमित प्रतिभूतियों का अभिगोपन करना। यही नहीं अधिकांश निगमों को स्वयं औद्योगिक उपक्रम स्थापित करने और उन्हें संचालित करने का अधिकार प्राप्त है। कुछ राज्यों में ये निगम औद्योगिक बस्तियों एवं औद्योगिक क्षेत्रों के प्रबन्ध की देखरेख भी करते है। कुछ राज्य औद्योगिक विकास निगमों द्वारा स्वयं अथवा अन्य निजी संस्थाओं के सहयोग से अनेक प्रकार के औद्योगिक उपक्रमों की अपने राज्यों में स्थापना की गयी है। संक्षेप में, इसके कार्यो का निम्न प्रकार से उल्लेख किया जा सकता है :

1. औद्योगिक प्रवर्तन के कार्यो को सम्पन्न करना, जैसे कि परियोजनाओं का प्राक्कलन तथा उन्हें मूर्त रूप देने की दिशा में प्रारम्भिक आयोजन कार्य, आदि। इस सिलसिले में आवश्यक सर्वेक्षण, तकनीकी एवं अन्य साध्यता प्रतिवेदनों को तैयार करने का कार्य करना।

2. परियोजनाओं के कियान्वयन की अवधि में उद्योगियों एवं साहसियों को तकनीकी सहायता प्रदान करना।

3. उद्योगियों एवं साहसियों को आवश्यक प्रशिक्षण प्रदान किये जाने की व्यवस्था करना।

4. राज्य औद्योगीकरण को नये आयाम प्रदान करने के उद्देश्य से औद्योगिक उपक्रमों की स्थापना करना तथा उन्हें संचालित करना।

5. राज्य के निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों को प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से वित्तीय सहायता प्रदान करना।

6. अन्य ऐसे विविध कार्य करना जिन्हें सम्पन्न करने का दायित्व इसे सौंपा जाय– जैसे कुछ राज्यों में औद्योगिक बस्तियों के प्रबन्ध की व्यवस्था एवं विद्युत उत्पादन तथा वितरण की व्यवस्था का कार्य इन निगमों को सौंपा गया है।

वित्तीय साधन

अपने वित्तीय साधनों के लिए राज्य औद्योगिक विकास निगम राज्य सरकारों पर निर्भर है। इनकी कुल चुकता–पूॅजी राज्य सरकारों द्वारा प्रदत्त है। महाराष्ट्र एवं गुजरात में इन निगमों को अंश पूॅजी के अतिरिक्त राज्य सरकारो से अनुदान ऋण एंव अग्रिम राशि के रूप में वित्तीय सहायता प्राप्त हुई है। अतिरिक्त पूॅजी प्राप्त करने के लिए ये निगम ऋणपत्र तथा बॉण्ड निर्गमित कर सकते है तथा इन्हें जनता से निक्षेप प्राप्त करने का अधिकार भी है। केन्द्रीय सरकार, व्यापारिक बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं से भी ये निगम ऋण प्राप्त कर सकतें है।

वित्तीय सहायता

राज्य औद्योगिक विकास निगमों द्वारा प्रदत्त वित्तीय सहायता के निम्न स्वरूप हो सकते है :

1. राज्य के निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र के औद्योगिक उपक्रमों द्वारा निर्गमित अंशों, ऋणपत्रों तथा बॉण्डों में प्रत्यक्ष अभिदान करना।
2. ऐसे उपक्रमो द्वारा निर्गमित पूॅजी का अभिगोपन करना।
3. राज्य के औद्योगिक उपक्रमों को प्रत्यक्ष ऋण प्रदान करना।
4. अन्य संस्थाओ द्वारा ऋणों एवं स्थगित भुगतानों की गारण्टी देना।

इन निगमों द्वारा मार्च 1996 तक स्वीकृत कुल सहायता की राशि 11701 करोड़ रूपये थी जिसमें से 8247 करोड़ रूपयें की सहायता का वितरण किया जा चुका था। इस प्रकार स्वीकृत सहायता की तुलना में वितरित सहायता का प्रतिशत 70.5 था। इस सहायता का दो–तिहाई भाग रूपयों में ऋणों के रूप में था तथा शेष एक तिहाई भाग अभिगोपन अंशों एवं ऋणपत्रों में प्रत्यक्ष अभिदान तथा ऋणों पर दी गयी गारण्टियों के रूप में था।

3.5 आर्थिक विकास में विदेशी पूॅजी की भूमिका

विदेशी सहायता ने भारत के आर्थिक विकास को निम्न रूपों में प्रोन्नत किया है :

1. निवेश का स्तर उन्नत करने में सहायक – विदेशी पूॅजी के फलस्वरूप हमारा राष्ट्रीय निवेश का स्तर उॅचा उठा है। प्रथम पंचवर्षीय योजना के शुरू में वार्षिक निवेश दर राष्ट्रीय आय का 5 प्रतिशत थी जो बढ़कर 1989–90 में 22 प्रतिशत और 2007–08 में 33 प्रतिशत हो गयी। फिर 1970 के दशक से ही देश को विदेशी मुद्रा के संकट का सामना करना पड़ रहा है। इस संकट को दूर करने और आर्थिक विकास को गति प्रदान करने में विदेशी सहायता की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

2. औद्योगिक विकास में योगदान – विदेशी पूॅजी व सहयोग ने देश में भारी व आधारभूत उद्योगों की स्थापना, परिवहन, संचार व विद्युत उत्पादन का विस्तार करके जहॉ एक और देश में औद्योगीकरण के लिए आधारभूत संरचना का विकास किया है, वहीं दूसरी ओर देश के महत्वपूर्ण उद्योगों में विदेशी पूॅजी विनियोग के द्वारा औद्योगिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

3. तकनीकी ज्ञान में विस्तार – देश को विदेशी पूॅजी के अन्तर्गत विदेशी विशेषज्ञों की सेवाएँ, भारतीयों को प्रशिक्षण की व्यवस्था और तकनीकी परामर्श के साथ–साथ अनुसन्धान कार्यो को प्रोत्साहन मिला है।

4. भारतीय उपक्रमियों को लाभ – भारतीय उपक्रमियों को अनुभव और प्रोत्साहन का लाभ मिला है क्योंकि विदशी सहयोगों में कारखाने स्थापित करने से जोखिम, प्रबन्ध में कुशलता और विदेशी अनुभव का लाभ मिला है। यही कारण है कि भारतीय पूॅजी स्वयं बड़ी–बड़ी औद्योगिक इकाइयॉ स्थापित करने में सक्षम है।

5. परिवहन व संचार का विकास – परिवहन व संचार के साधनों के विकास में विदेशी पूॅजी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। कुल विदेशी पूॅजी का 14 प्रतिशत भाग परिवहन व संचार के विकास पर व्यय किया गया है। इनमे से 12 प्रतिशत व्यय रेल परिवहन के विकास पर हुआ।

6. लोहा और इस्पात उद्योग का विकास – किसी भी देश के आर्थिक विकास में लोहा व इस्पात उद्योग का महत्वपूर्ण स्थान होता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारत में यह उद्योग अविकसित अवस्था में था, किन्तु आज हम लोहे का निर्यात कर रहे है। निर्माण उद्योगों के लिए जो विदेशी पूॅजी मिली है, उसके 80 प्रतिशत का प्रयोग लोहा और इस्पात उद्योग को विकसित बनाने के लिए किया गया है। पश्चिमी जर्मनी, रूस तथा ब्रिटेन ने इस उद्योग को विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

7. कीमत स्थायित्व बनाये में सहायक – भारत द्वारा अब तक जितनी विदेशी सहायता का उपयोग किया गया है, उसका लगभग 40 प्रतिशत भाग वस्तुओं, जैसे– खाद्यान्न, कच्चा माल, कल पुर्जे आदि के रूप में रहा है। इससे एक तरफ खाद्यान्न की कीमतों को स्थिर रखने में सहायता मिली है तो दूसरी तरफ आयातित औद्योगिक कच्चे माल से देश के उत्पादन में काफी वृद्धि हुई है।

8. विदेशी विनिमय संकट का निवारण – विदेशी विनिमय संकट को दूर करने में विदेशी सहायता ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यद्यपि निरन्तर विदेशों से ऋण लेने में देश की विदेशी देनदारी में वृद्धि हुई है, परन्तु उससे हमारी अर्थव्यवस्था अधिक सुदृढ़ हुई और निर्यातों में भी वृद्धि हुई है।

9. राजनीतिक सहयोग एवं सद्भावना में वृद्धि – विदेशी सहायता द्वारा अनेक राष्ट्रो से मेल–जोल बढ़ा है। समय–समय पर जो समझौते और वार्ताएँ होती है, इससे अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सहयोग में वृद्धि होती है।

3.6 सारांश

- देश के आर्थिक विकास और आर्थिक जीवन को प्रोत्साहित करने के लिये आधुनिक समय में सरकारों द्वारा अपनाये जाने वाले उपायो को दो वर्गो में विभाजित किया जा सकता है :

1. प्रत्यक्ष उपाय
2. अप्रत्यक्ष उपाय

- नयी आर्थिक नीति लागू होने के कारण निजीकरण, उदारीकरण एंव विश्वव्यापीकरण का महत्व बढ़ता जा रहा है। साथ ही इस बिंदु पर भविष्य में देश के आर्थिक विकास में सरकार की भूमिका भी दर्शनीय होगी।

- वित्तीय निगमों, जो कि वित्तीय प्रणाली के प्रमुख अवयव माने जाते है, के विकास की प्रक्रिया मुख्यतः 1948 में भारतीय औद्योगिक वित्त निगम की स्थापना के साथ प्रारंभ इुई है।

3.7 शब्दावली

अभिगोपन : अभिगोपन वित्तीय जगत का एक महत्वपूर्ण कार्य है जिसमें कोई व्यक्ति अथवा संस्था प्रीमियम अथवा कमीशन पर व्यवसाय अथवा विनियोजन आदि से जुडे जोखिम को उढ़ाता है। यह कार्य मुख्यतः बीमा, बैंकिंग और स्टाक मार्केट से जुड़ा होता है।

ICRA : भारतीय क्रेडिट रेटिंग एजेन्सी

3.8 बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये।

i. आर्थिक विकास हेतु सरकार द्वारा अपनाये गये उपायो को मुख्यतः दो भागों, ... में बाटॉ जा सकता है।

ii. अप्रत्यक्ष उपायो में मुख्य रूप से प्रशुल्क, ..., मूल्य और विदेशी व्यापार नीति शामिल हैं।

iii. नयी आर्थिक नीति लागू होने के कारण निजीकरण, ... और विश्वत्यापीकरण का महत्व बढ़ता जा रहा है।

iv. भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की स्थापना .... को हुई थी।

v. जीवन बीमा निगम का प्रधान कार्यालय .... में है।

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

i. प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष उपाय

ii. मौद्रिक

iii. उदारीकरण

iv. 1 जुलाई 1964

v. मुम्बई

3.10 स्वपरख प्रश्न

i. आर्थिक विकास मे सरकार की भूमिका पर एक लेख लिखिये।

ii. आर्थिक विकास में वित्तीय निगमों के महत्व को स्पष्ट कीजिये।

iii. विभिन्न वित्तीय निगमों का संक्षिप्त वर्णन कीजिये।

iv. राज्य के वित्तीय निगमों के कार्यो का समीक्षात्मक विवेचना कीजिये।

v. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी करे।

   a) भारत का निर्यात–आयात

   b) भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक

   c) सामान्य बीमा निगम

   d) औद्योगिक साख एंव विनियोग निगम

3.11 सन्दर्भ पुस्तकें

- सेठी, टी0टी0 (2015), मुद्रा बैंकिंग एवं लोक वित, आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिसर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- गुप्ता, शान्ति के0 और अग्रवाल, निशा, इंडियन फाइनैन्शियल सिस्टम्स, कल्याणी पब्लिसर्स, 2016।
- प्रतियोगिता दर्पण, जुलाई 2016।
- इंडियन इकोनोमी, जुलाई 2016।
- अग्रवाल, दीपक (2010), मुद्रा बैंकिंग, लोक वित्त एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, हिमालया पब्लिशिंग हाउस मुबई।
- बिशनोई, आर0के0, बीमा के सिद्धांत, साहित्य भवन पब्लिसर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा।
- श्रीवास्तव, आर0एम0 और निगम, दिब्या मैनेजमैन्ट ऑफ इंडियन फाइनैन्शियल इंस्टीट्यूशन्स
- विभिन्न इंटरनैट साइट्स।
- जैन, टी0आर0 इंडियन फाइनैन्शियल सिस्टम्स, वी0के0 ग्लोबल पब्लिकेशन्स और खन्ना, ओ0पी0, प्राईवेट लिमिटेट, 2014–15।

इकाई – 4 वित्तीय बाजार – परिचय

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 वित्तीय बाजार का अर्थ एंव परिभाषा
4.3 वित्तीय बाजार का महत्व
4.4 वित्तीय बाजार का वर्गीकरण
4.5 वित्तीय बाजार मे भाग लेने वाली संस्थाएं
    4.5.1 जमा स्वीकार करने वाली या निक्षेपी संस्थाए
    4.5.2 जमा स्वीकार न करने वाली या गैर निक्षेपी संस्थाए
4.6 भारतीय वित्तीय बाजार के प्रमुख उवयव
    4.6.1 मुद्रा बाजार
    4.6.2 पूँजी बाजार
4.7 मुद्रा बाजार एवं पूँजी बाजार में अंतर
4.8 सारांश
4.9 शब्दावली
4.10 बोध प्रश्न
4.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.12 स्वपरख प्रश्न
4.13 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- वित्तीय बाजार के अर्थ एंव परिभाषा की व्याख्या कर सके।
- भारतीय अर्थव्यवस्था में वित्तीय बाजार के महत्व का वर्णन कर सके।
- वित्तीय बाजार के वर्गीकरण को समझ सके।
- वित्तीय बाजार में भाग लेने वाली विभिन्न संस्थाओं की व्याख्या कर सके।
- वित्तीय बाजार के प्रमुख अवयव (मुद्रा एंव पूँजी बाजार) का व्याख्यान कर सके।
- मुद्रा बाजार एंव पूँजी बाजार में अंतर स्पष्ट कर सकें।

4.1 प्रस्तावना

''वित्तीय बाजार वह क्षेत्र या स्थान विशेष है जिसके द्वारा बचतों को मध्यस्थों द्वारा एकत्रित करके उन्हें अन्तिम निवेशक तक उपलब्ध कराया जाता है।'' वित्तीय बाजार का उद्देश्य बचतों में एकत्रीकरण एवं उनके विभिन्न प्रयोग के लिए विभिन्न निवेशकों के मध्य आवंटित करना है। इस इकाई में आप वित्तीय बाजार का अर्थ, भारतीय अर्थव्यवस्था में वित्तीय बाजार का महत्व, वित्तीय बाजार के प्रमुख अवयव (मुद्रा एंव पूँजी बाजार), व मुद्रा बाजार एंव पूँजी बाजार में अंतर का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

4.2 वित्तीय बाजार का अर्थ एंव परिभाषा

वित्तीय बाजार से आशय उस बाजार से है जिसके न केवल वित्तीय परिसंपत्तियो का निर्माण किया जाता है बल्कि उनका हस्तांतरण भी किया जाता है। इस तरह के बाजार में किसी समान के वास्तविक हस्तांतरण को संपन्न न कर के मुद्रा वास्तविक सामानों और सेवाओं का हस्तांतरण किया जाता है। इसमें विनिमय की व्यवस्था संलग्न होती है। वस्तुतः इस व्यवस्था में वित्तीय हस्तांतरण या वित्तीय साख का सृजन आदि किया जाता है।

वित्तीय बाजार के विस्तृत अर्थ एंव परिभाषा को जानने से पूर्व यह आवश्यक है कि हम वित्त शब्द को भली–भांति समझ ले।

साधारण शब्दों में वित्त का अभिप्राय मुद्रा को उस समय अनुकूल शर्तो पर उपलब्ध करवाना है जिस समय उसकी आवश्यकता है। उचित समय पर आवश्यक वित्त की व्यवस्था व्यवसाय को सफलता की ओर ल जाती है।

वित्त के अर्थ के सम्बन्ध में विभिन्न लेखकों ने अलग–अलग मत प्रकट किये है।

1. हावर्ड व उपटन के शब्दों में, ''वित्त का रोकड़ एवं ऋण व्यवस्था से सम्बन्ध एक ऐसे प्रशासनिक क्षेत्र अथवा किसी संगठन के प्रशासनिक कार्यो के एक ऐसे समूह के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो संगठन को उसके उद्देश्य की यथोचित पूर्ति के लिये आवश्यक साधनों की प्राप्ति में सहयोग प्रदान कर सके।''
2. गुथमैन व डगलस के अनुसार, ''व्यवसाय वित्त का तात्पर्य उन कार्यो से है जो व्यवसाय में लगे कोष के नियोजन, संग्रह तथा व्यवस्था करने से सम्बद्व होते है।''
3. बॉन विले व डिवे के अनुसार, ''वित्त व्यवस्था के अन्तर्गत व्यापार के लिए प्रत्येक प्रकार की पूॅजी को एकत्र करने तथा प्रबन्ध की क्रियायें सम्मिलित की जाती है। यह कार्य व्यवसाय के प्रवर्तन संगठन, नियमित कार्य, पुनर्गठन एवं पुनर्संगठन योजना सभी के लिये आवश्यक हो।''
4. पैश के अनुसार, ''आधुनिक मुद्रा प्रधान अर्थव्यवस्था में वित्त से आशय है मुद्रा को उस समय उपलब्ध करना जब उसकी आवश्यकता हो।''
5. सुरेश सी0 कुच्छल के अनुसार, ''वित्त एक प्रक्रिया है जो संचित कोषों की उत्पादक कार्यो में परिवर्तित करती है।''

उपरोक्त सभी परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वित्त का अभिप्राय ऐसी क्रियाओं से है जिनका सम्बन्ध कोष के आयोजन, प्रयोजन, नियन्त्रण व प्रशासन से है। इसमें न केवल वित्त उपलब्ध कराने की क्रिया ही सम्मिलित की जाती है वरन् उनका प्रशासन व नियन्त्रण भी सम्मिलित किया जाता है जिसमें वित्त का उपयोग किया जा सके।

वित्त का अर्थ समझ लेने के बाद यह भी आवश्यक है कि बाजार शब्द का अर्थ भी भली–भॉती समझ ले। साधारण बोलचाल की भाषा में बाजार शब्द का अर्थ उस स्थान या क्षेत्र विशेष से होता है जहॉ क्रेता एवं विक्रेता पारस्परिक सौदबाजी के आधार पर वस्तुओं या सेवाओं का क्रय विक्रय करते है।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर वित्तीय बाजार से आशय आसानी से समझा जा सकता है जो कि निम्नानुसार है–

वित्तीय बाजार से आशय उस स्थान या क्षेत्र से है जहॉ वित्तीय या वित्तीय उत्पादों सम्पत्तियों का क्रय विक्रय किया जाता है।

4.3 वित्तीय बाजार का महत्व

भारतीय अर्थव्यवस्था में वित्तीय बाजार का महत्व इस प्रकार हैः–

1) रिजर्व बैंक की मौद्रिक नीति लागू करना – वित्तीय बाजार में रिजर्व बैंक की मौद्रिक नीतियों को लागू करने में मुद्रा बाजार का सहयोग मिलता है। साख नीति, बैंकिंग नीति एवं अन्य नीतियों के क्रियान्वयन में वित्तीय बाजार का महत्वपूर्ण योगदान रहता है।

2) देश का आर्थिक विकास – देश का आर्थिक विकास पूॅजी निर्माण अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र के विकास पर निर्भर करता है। वित्तीय बाजार बचत को प्रोत्साहन देकर, उनको एकत्र करके, उनका विनियोग करके देश के अन्दर आधारभूत संरचना का विकास करके कई नई सड़कें, बॉध, कल–कारखानों की स्थापना के द्वारा पूॅजी–निर्माण करते है। इसमें आत्म निर्भरता की स्थिति प्रत्येक क्षेत्र में निर्मित होने लगती है।

3) मौद्रिक तरलता में वृद्वि – वित्तीय बाजारों में वित्तीय संस्थायें ऐसी नीतियॉ संचालित करती है, जिससे कि मौद्रिक तरलता बनी रहे जैसे कि–बैंक साख का निर्माण करते हैं एवं अल्पकालीन, मध्यकालीन, दीर्घकालीन ऋण देकर मुद्रा की मॉग–पूर्ति में सन्तुलन स्थापित करते है। व्यापारिक एवं औद्योगिक क्षेत्रों में कार्यशील पूॅजी से उत्पादन चक्र निरन्तर चलता रहता है और नगदी की कमी नहीं होती ।

4) ऋणदाताओं की कार्यकुशलता में वृद्वि – वित्तीय बाजारों में ऋण योग्य राशि की मॉग पूर्ति में सन्तुलन होता है, तब यह माना जाता है कि ऋणदाता एवं ऋणी पूर्ण कुशलता के साथ कार्य कर रहे है। इस स्थिति को पाने के लिए दोनो पक्ष को कई बातों पर निर्भर रहना पड़ता है। वित्तीय बाजार में ऋण की मॉग, स्टॉक, बॉण्ड, केन्द्रीय सरकार की प्रतिभूतियों, राज्य सरकारों और स्थानीय संस्थाओं के बॉण्ड, चल पूॅजी, व्यावसायिक ऋण, सरकारी ऋण, उपभोक्ता ऋण, आधारभूत ढांचे में विनियोग आदि के रूप में होती है।
ऋणों की पूर्ति करने वाले पक्ष में व्यापारिक बैंक, बचत बैंक म्यूचुअल फण्ड, जीवन बीमा निगम, यू0 टी0 आई0 वित्तीय संस्थायें, गैर–बैंक कम्पनियॉ, व्यक्ति, बचत संगठन आदि होते है। ये पक्ष वित्त बाजार की दशाओं का अध्ययन करके वित्त उपलब्ध कराते है। इस प्रकार वित्तीय बाजार वित्त की मॉग पूर्ति में सन्तुलन बनाकर दोनों पक्षों की कुललता में वृद्वि करते हैं। इसमें भी अर्थव्यवस्था की गतिशीलता आती है और ऋणदाता पूर्ण कुशलता से कार्य करते है।

5) ऋण नीति का क्रियान्वयन – वित्तीय बाजार रिजर्व बैंक की ऋण नीति एवं मौद्रिक नीति का क्रियान्वयन करके अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाते है। समय–समय पर आवश्यकतानुसार इन नीतियों मे परिवर्तन होता रहता है, जिससे कि वित्तीय बाजार में पूर्ण कार्यकुशलता आ जाती है।

6) घरेलू बचतों को प्रोत्साहन – वित्तीय बाजार से घरेलू बचतों को प्रोत्साहन मिलता है विकासशील देशों में लोगों की बचतें कम होती है। और बचतों का बड़ा हिस्सा साने, चॉदी के आभूषण, गहने, सम्पत्तियॉ, अनुत्पादक उपभोग में खर्च किया जाता है तथा नगदी के रूप में घर में रखा जाता है। वित्तीय बाजार घरेलू बचतों को प्रोत्साहित करते है। जनता को प्रतिभूतियों में निवेश के लिए उत्साहित करते है। इस प्रकार की बचतों का प्रयोग देश के विकास व पूॅजी–निर्माण में किया जाता है।

7) बचतों को एकत्र करना – जनता की बचतें बिखरी हुई होती है। बचतों को एकत्र करने का कार्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा किया जाता है। इन बचतों का प्रयोग विभिन्न योजनाओं की पूर्ति में किया जाता है। बचत करने के जो उपकरण अपनाये जाते है, उनमें पोस्ट ऑफिस की बचत योजनायें, बैंकों की बचत खाता, सावधि खाता, आवर्ती जमा, बहुउद्देश्यीय जमा, यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया की यूनिटें जीवन बीमा निगम की पॉलिसियॉ, कम्पनी जमा आदि हैं।

8) बचतों का विनियोग करना – वित्तीय बाजार घरेलू बचतों को न केवल एकत्र करते हैं, वरन् उनके विनियोग की भी व्यवस्था करते है। बचतों का प्रयोग उत्पादक कार्यो में किया जाता है। पूॅजी–निर्माण के कारण विकास की दर में वृद्वि होती है और पूॅजी–निर्माण के लिए विनियोग की दर बढ़ानी पड़ती है। जब विभिन्न प्रतिभूतियों में आपसी प्रतियोगिता होती है तो कीमतें बढ़ने से ब्याज की दर कम हो जाती है। इससे निवेश बढ़ जाता है। इस तरह वित्तीय बाजार विनियोग के प्रबन्ध में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

9) गैर–वित्तीय क्षेत्रों को सहायता – वित्तीय बाजार विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियॉ पूॅजी बाजार में जारी करते हैं। इन प्रतिभूतियों की राशि गैर–वित्तीय व्यवसाय क्षेत्र को हस्तान्तरित करती है। बदले में विनियोगकर्ता को ब्याज या लाभांश मिलता है, जिनका प्रयोग पुनः प्रतिभूतियों के क्रय में किया जाता है व्यवसायी भी विभिन्न योजनाओं के लिए धन उधार लेते है। इस तरह वित्तीय बाजार से गैर–वित्तीय क्षेत्र को सहायता मिलती है।

10) सरकार को सहायता – वित्तीय बाजार में केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारों, स्थानीय संस्थाओं एवं अर्द्ध–सरकारी निगमों आदि की प्रतिभूतियों, बॉण्ड्स, स्टॉक आदि का विक्रय कर उनको वित्त उपलब्ध कराया जाता है, जिससे उनकी रूकी हुई योजनायें पूर्ण होती हैं और धन की कमी समाप्त हो जाती है।

4.4 वित्तीय बाजार का वर्गीकरण

वित्तीय बाजार को निम्नांकित वर्गों में बॉटा जा सकता है–

1. प्राथमिक और सहायक बाजार – वित्तीय बाजार को प्राथमिक और सहायक बाजार के रूप में वर्गीकृत किया जाता है प्राथमिक बाजार में नये वित्तीय दावे, नई प्रतिभूतियों के व्यवहार किये जाते है। इसीलिए इन्हें नवीन निर्गमन बाजार भी कहा जाता है। दूसरी ओर, द्वितीयक बाजार में पूर्व में निर्गमित तथा विद्यमान अशोधित प्रतिभूतियों में व्यवहार किया जाता है। प्राथमिक बाजार बचतों को गतिशील बनाता है और नई अतिरिक्त पूॅजी की पूर्ति व्यापारिक केन्द्रों में कराता है अर्थात् प्राथमिक बाजार प्रत्यक्ष तौर पर ये कार्य करता है। जबकि द्वितीयक बाजार अप्रत्यक्ष तौर से भाग लेते हैं। जैसे कोई व्यक्ति किसी कम्पनी के पहले से खरीदे गये अंशों एवं अन्य प्रतिभूतियों को बेचना चाहता है तो उनको द्वितीयक बाजार में खरीदा जायेगा।

2. मुद्रा एवं पूॅजी बाजार – वित्तीय बाजार मुद्रा एवं पूॅजी बाजार में भी वर्गीकृत किया जाता है। दोनों बाजारों के एक जैसे कार्य होते है। जिस बाजार में अल्पकालीन वित्तीय परिसम्पत्तियों, निर्गमित प्रतिभूतियों के व्यवहार होते है उसे बाजार मुद्रा कहते हैं। ऐसे व्यवहार एक वर्ष से कम अवधि के होते है। इसी प्रकार जब वित्तीय परिसम्पत्तियां, प्रतिभूतियॉ, ऋण, जमा, सरकारी बॉण्ड, स्टॉक आदि के व्यवहार दीर्घकालीन होते हैं तो ऐसे

बाजार हैं जबकि बिल बाजार, मॉग मुद्रा बाजार, व्यापारिक बिल बाजार आदि मुद्रा बाजार में भाग लेते है।

3. संगठित एवं असंगठित बाजार – विभिन्न उद्देश्यो के आधार पर वित्तीय बाजार को संगठित एंव असंगठित रूप में वर्गीकृत किया जाता है। जब वित्तीय व्यवहार स्कन्ध विनिमय केन्द्रों, व्यापारिक बैंकों, वित्तीय संस्थाओं, भारतीय जीवन बीमा निगम, सामान्य बीमा निगम, यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया एवं अन्य वित्तीय संस्थाओं के बीच एक निश्चित रीति–नीति के बीच आपसी सहयोग एवं समन्वय के आधार पर किया जाता है तो इसे संगठित बाजार कहा जायेगा। इसके विपरीत जब वित्तीय व्यवहार स्कन्ध विनिमय केन्द्रों के बाहर से या अढ़ॉचागत बाजार कहा जायेगा। ऐसे बाजार ग्रामीण क्षेत्रों में साहूकार महाजन, देशी बैंकर्स के रूप में स्थापित होते हैं। मुद्रा बाजार में संगठित एवं असंगठित स्वरूप को पहचानना कठिन है। अन्तः मुद्रा बाजार तथा विदेशी विनिमय बाजार संगठित नहीं है। फिर भी इन्हें संगठित नहीं माना जाता।

4. औपचारिक एवं अनौपचारिक बाजार – जब किसी नियम, शर्त अथवा विधान के अनुसार वित्तीय व्यवहार सम्पन्न होते हैं तो ये औपचारिक या विधिक बाजार कहलाते है। यदि वित्तीय व्यवहार इनके विपरीत होते हैं तो ये अनौपचारिक होते हैं जैसे कि परिवार या व्यक्तियों के समूह आपस में ही ऋण लेने–देने का कार्य करें तो इसे अनौपचारिक बाजार कहा जायेगा।

5. ऋण बाजार – ऋण बाजार वित्तीय बाजार का एक अंग है। इसमें ऋणदाता ऋणी को एक निश्चित अवधि के लिए ऋण उपलब्ध कराता है तथा बदले में उसे ब्याज + मूलधन की राशि प्राप्त होती है। इसमें वित्तीय सम्पत्तियॉ, वित्तीय उपकरण और वित्तीय प्रतिभूतियों का प्रयोग होता है। वित्तीय सम्पत्तियों के भुगतान सम्बन्धी दावे, मूलधन, ब्याज, लाभांश जो एक मुश्त या थोड़ी–थोड़ी राशि के रूप में प्राप्त होते हैं या दिये जाते हैं, शामिल होते हैं। जिन उपकरणों का प्रयोग होता है उनमें बैंक जमा, सरकारी बॉण्ड, बीमा पॉलिसी, औद्योगिक ऋणपत्र, प्रतिभूतियॉ, समता व पूर्वाधिकारी अंश आदि प्रमुख हैं। प्राथमिक व द्वितीयक प्रतिभूतियों की भूमिका मुख्य होती है। प्राथमिक बाजार में अंशों, ऋणपत्रों तथा द्वितीयक बाजार में सभी वित्तीय साधनों का प्रयोग होता है विनियोगकर्ता अपनी बचत का विनियोग करता है।

6. वित्तीय सेवा बाजार – वित्तीय सेवा बाजार में कई पक्ष अपनी सेवायें प्रदान करते है। इसमें मुख्य रूप से व्यापारिक बैंक, शेयर दलाल, मर्चेण्ट बैंकर्स, कमीशन एजेण्ट, अभिगोपन करने वाली संस्थाये, वित्तीय संस्थायें, वकील, कानून के अन्य विशेषज्ञ, संदेशवाहन भेजने वाली संस्थाये अपने ग्राहको की ओर से कार्य करती है। बैंक निश्चित शुल्क लेकर प्रतिभूतियों के विक्रय की जिम्मेदारी उठाता है। इसी प्रकार अन्य संस्थायें भी सेवायें देने का कार्य करती हैं। इसमें क्रेडिट रेटिंग एजेन्सियॉ प्रमुख है जो कि वित्तीय संस्थाओं की साख क्षमता का मूल्यांकन करके उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाती है।

4.5 वित्तीय बाजार में भाग लेने वाली संस्थाए

वित्तीय बाजारों में जिन संस्थाओं के द्वारा भाग लिया जाता है, उनमें एक वर्ग जमा स्वीकार करने वाली संस्थाओं का तथा दूसरा वर्ग वित्तीय मध्यस्थों एवं जोखिमों के विरूद्व बीमा करके अपनी सेवायें प्रदान करने वाली संस्थाओं का होता है।

4.5.1 जमा स्वीकार करने वाली या निक्षेपी संस्थायें

ऐसी संस्थाये जो जनता से एवं अन्य संस्थाओं से जमा स्वीकार करती है और बाद में उनका प्रयोग ऋण देने में, सरकारी प्रतिभूतियों मे विनियोजन करने मे या अन्य ऋण उपकरणों के प्रयोग में करती है। ऐसी संस्थायें निम्नलिखित हैं–

1. व्यापारिक बैंक – व्यापारिक बैंक अपने विभिन्न खातों एवं योजनाओं आदि के माध्यम से सभी की जमाओं को स्वीकार करते है और बाद में विभिन्न ऋण योजनाओ के द्वारा जनता को, व्यापारिक कम्पनियों, फर्मो एव अन्य पक्ष को सस्ती ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध करते है।
2. पारस्परिक बचत बैंक – ये संस्थाओं निजी क्षेत्र की संस्थायें होती हैं। इनका कार्य जमा स्वीकार करना, ऋण प्रदान करना, सम्पत्ति बन्धक रखना आदि होता है।
3. विनियोग एवं विकास बैंक – ये बैंक अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन ऋण उपलब्ध कराने के साथ–साथ अन्य महत्वपूर्ण कार्य करते है, जैसे – विदेशी पूँजी की व्यवस्था, निर्यात के लिए पुनर्वित्त, ऋण गारण्टी, वित्तीय साझेदारों की तलाश, औद्योगिक विकास में योगदान आदि। ये जमाओं को स्वीकार्य नहीं करते, किन्तु वित्त उपलब्ध कराते है।
4. सहकारी बैंक – सहकारी बैंक अपनी विभिन्न एजेन्सियों के माध्यम से व्यापारिक बैंकों समान कार्य करते हैं। सहकारी बैंक प्राथमिक सहकारी समितियों, केन्द्रीय एवं जिला सहकारी बैंक, राज्य सहकारी बैंक आदि के द्वारा जमाओं को स्वीकार करने व ऋण देने का कार्य करते है।

4.5.2 जमा स्वीकार न करने या गैर–निक्षेपी संस्थाये

ऐसी संस्थायें जमा स्वीकार नहीं करती, केवल अपनी सेवाएँ प्रदान करती हैं। ये अग्रलिखित है :

1. बीमा कम्पनियॉ – बीमा कम्पनियों के क्षेत्र में जीवन बीमा निगम का नाम सर्वोपरि है। सामान्य बीमा कम्पनी, अन्य बीमा कम्पनियॉ तथा बैंक इस क्षेत्र में कार्य कर रहे है। ये कम्पनियॉ बीमा से प्राप्त प्रीमियम की राशि का विनियोजन दीर्घकालीन ऋण प्रदान करने में करती है। इसके अतिरिक्त विभिन्न उद्देश्यों के लिए भी ऋण प्रदान करती है।
2. अभिगोपन – प्रतिभूतियों के विक्रय में गारण्टी प्रदान कर एक निश्चित कमीशन पर अपना कार्य करते है।
3. पारस्परिक कोष – पारस्परिक कोष अपने अंश व्यक्तियों, फर्मो, कम्पनियों एवं संस्थागत निवेशकों को बेचकर प्राप्त राशि का विनियोजन दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन परिसम्पत्तियों में करते है।
4. मर्चेण्ट बैंकर – मर्चेण्ट बैंकर औद्योगिक एवं व्यापारिक संस्थाओं को उनके प्रोजेक्ट रिपोर्ट तैयार करने, सहकारी समिति प्राप्त करने, नये निर्गमों का प्रबन्ध करने, कार्यशील पॅूजी की व्यवस्था करने, संयुक्त उपक्रम में परामर्श देने आदि का कार्य करते हैं। मर्चेण्ट बैंकर सेवायें प्रदान करने का भी कार्य करते है।

5. दलालों की फर्म – दलालों की फर्म सहायक बाजार में सक्रिय रूप से कार्य करती है। ऐसी फर्म प्रतिभूतियों के क्रय–विक्रय का कार्य करती है और निश्चित दर से दलाली प्राप्त करती है।
6. भविष्य निधि – भविष्य निधि योजना सरकारी, अर्द्ध सरकारी एवं निजी क्षेत्र में लागू की गई है। इन क्षेत्रों के कर्मचारियों के वेतन से एक निश्चित राशि काटकर भविष्य निधि में जमा की जाती है। इनका प्रयोग दीर्घकालीन परिसम्पत्तियों में विनियोग करने में किया जाता है।

4.6 भारतीय वित्तीय बाजार के प्रमुख अवयव

अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन उधार की आवश्यकताओं के आधार पर वित्त बाजारों का दो भागों में वर्गीकरण किया जा सकता है।

i. मुद्रा बाजार
ii. पूॅजी बाजार

4.6.1 मुद्रा बाजार

मुद्रा बाजार एक ऐसा स्थान है जहां पर मुद्रा एवं अल्पकालीन सम्पत्तियों का व्यापार किया जाता है जोकि मुद्रा की होती है यह हमें उधार देने वाले/निवेशकों, अल्पकालीन उधार लेने वालों की आवश्यकता के अनुसार, अल्पकालीन आधिक्य कोषों में संतुलन बनाने का अवसर प्रदान करती है। मुद्रा बाजार की मुख्य विशेषता यह है कि यह एक ऐसा अभिलेख होता हैं जिसे तरलता मे आसानी से बदला जा सकता है एवं मुद्रा बाजार में कम लागतों पर भी इसका व्यापार किया जा सकता है।

4.6.2 पूॅजी बाजार

किसी भी देश के वाणिज्यिक एवं औद्योगिक विकास के लिए अच्छी पूॅजी बाजार की परम आवश्यकता होती है। उधार की आमतौर पर अल्पावधि एवं दीर्घकालीन आधार पर आवश्यकता एवं आपूर्ति की जाती है। मुद्रा बाजार केवल अल्पावधि आवश्यकताओं को पूरा करता है। दीर्घकालीन पूॅजी की आवश्यकताएं पूॅजी बाजार द्वारा पूर्ण की जाती है। देश की आर्थिक प्रणाली में वित्तीय संसाधनों के स्वतन्त्र एवं संतुलित प्रवाह के लिए मद्रा बाजार एक सतन्वित एवं निर्देशित प्रविधि है।

देश में अच्छे पूॅजी बाजार का विकास बचतों की उपलब्धता, इसकी घटक इकाइयों के उचित संगठन एवं लोगों के उद्यमिता गुणों पर निर्भर करता है। स्वतन्त्रता से पहले भारतीय पूजी बाजार पूर्ण रूप से अविकसित था क्योकि इसकमे कुछ खामियां थी। परन्तु अब, स्वतन्त्रता के बाद, भारतीय पूंजी बाजार में काफी बदलाव आ गया है। तथा यह बदलाव अच्छी दिशा में ही हो रहें है।

4.7 मुद्रा बाजार एवं पूॅजी बाजार में अंतर

पूॅजी बाजार का मुद्रा बाजार से विभेद किया जाना चाहिए। पूॅजी बाजार दीर्घकाल के फण्ड के लिए है। दूसरी तरफ मुद्रा बाजार प्राथमिक रूप से अल्पकाल के लिए कोष उपलब्ध करवाती है। फिर भी ये दोनों बाजार एक दूसरे से सम्बन्धित हैं क्योकि कई बार दोनों ही प्रकार के कोषों में व्यापार करते हैं जिसका अर्थ है अल्पकाल तथा दीर्घकाल के लिए।

दोनो में अन्तर के मुख्य बिन्दु इस प्रकार से है।

पूॅजी बाजार		मुद्रा बाजार
1	यह दीर्घकालीन निवेश के लिए वित्त/पूॅजी उपलब्ध करवाता है।	यह अल्पकालीन निवेश के लिए पूॅजी/वित्त उपलब्ध करवाता है।

2	पूँजी बाजार द्वारा प्रदान किया गया वित्त कार्यशील तथा स्थायी दोनों के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।	मुद्रा बाजार द्वारा प्रदान किया गया वित्त, आमतौर पर कार्यशील पूँजी के रूप में किया जाता है
3	लेण्डिंग के द्वारा साधनों को इकठ्ठा करना तथा उनका प्रभावी प्रयोग इसका मुख्य कार्य है।	उधार देना तथा लेना इसका प्रधान कार्य है क्योंकि यह तरलता स्थिति को अनुकूल करने में सहायता करता है।
4	यह संघटकों में से एक है, स्टॉक एक्सचेंज एक प्रतिभूतियों के क्रेताओं तथा विक्रेताओं के लिए निवेश बाजार की तरह कार्य करता है।	यह ऐसी सहायता प्रदान नहीं करता। इसमें मुख्य अवयव हैं, मांग, ऋण बाजार, समापर्श्विक ऋण बाजार बिल बाजार तथा स्वीकृति आदि।
5	यह उद्यमी तथा निवेशक के बीच बिचौलिये की तरह कार्य करता है।	यह जमाकर्ता तथा उधार लेने वाले के बीच एक कड़ी के रूप में कार्य करता है।
6	अभिगोपन इसकी प्राथमिक क्रियाओं में से एक है।	अभिगोपन इसका गौण कार्य है।
7	यह निवेश संस्थान जनता से पैसा इकठ्ठा करते हैं तथा चुनी हुई प्रतिभूतियों में लगा देते हैं ताकि उन्हें उच्च रिटर्न कम जोखिम पर मिल सके।	यह व्यावसायिक बैंको, व्यावसायिक निगमों, गैर बैंक वित्तीय संस्थान तथा अल्पकालीन, अधिक्य कोषों को निवेश करने का अवसर प्रदान करता है।
8	यह केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों जनता तथा स्थानिय निकायों के विकासात्मक उद्देश्यों के लिए दीर्घकालीन धन/कोष प्रदान करता है।	यह सरकार को ट्रेजरी बिल खरीदने पर तथा बाकी अर्थात् दूसरों को बिल आफ एक्सचेंज को डिस्काउण्ट करवा के अल्पकाल के लिए धन प्रदान करता है।

4.8 सारांश

- वित्तीय बाजार से आशय उस बाजार से है जिसके न केवल वित्तीय परिसंपत्तियो का निर्माण किया जाता है बल्कि उनका हस्तांतरण भी किया जाता है। इस तरह के बाजार में किसी समान के वास्तविक हस्तांतरण को संपन्न न कर के मुद्रा वास्तविक सामानों और सेवाओं का हस्तांतरण किया जाता है। इसके विनिमय की व्यवस्था संलग्न होती है। वस्तुतः इस व्यवस्था में वित्तीय हस्तांतरण या वित्तीय साख का सृजन आदि किया जाता है।
- मुख्य तौर से वित्तीय बाजार को निम्न भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

i. प्राथमिक और सहायक बाजार
ii. मुद्रा एंव पूँजी बाजार
iii. संगठित एव असंगठित बाजार
iv. औपचारिक एंव अनौपचारिक बाजार
v. ऋण बाजार
vi. वित्तीय सेवा बाजार

- वित्तीय बाजार में भाग लेने वाली संस्थाओं को दो भागो में वर्गीकृत किया जा सकता है :

i. निक्षेपी संस्थाएं
ii. गैर–निक्षेपी संस्थाएं

- प्रायः पूँजी बाजार दीर्घकालिक कोषों के लिये होता है और मुद्रा बाजार अल्पकाल के लिये कोष उपलब्ध कराता है।

4.9 शब्दावली

तरलता : किसी भी सम्पत्ति को द्रव्य (मुद्रा) में परिवर्तन करने की प्रक्रिया या शीघ्र परिवर्तनीय गुण को ही तरलता कहते है।

4.10 बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये।

i. वित्त का अभिप्राय मुद्रा को उस समय .... पर उपलब्ध करवाना है जिस समय उसकी आवश्यकता है।
ii. बाजार शब्द का अर्थ उस स्थान से होता है जहा क्रेता एवं विक्रेता पारस्परिक सौदेबाजी के आधार पर वस्तुओ या सेवाओं का .... करते है।
iii. वित्तीय बाजार में भाग लेने वाली संस्थाओं को दो भागो क्रमशः .... है।
iv. .... दीर्घकालीन निवेश के लिये पूँजी/वित्त उपलब्ध कराता है।
v. .... अल्पकालीन निवेश के लिये पूँजी/वित्त उपलब्ध कराता है।

4.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

I. अनुकूल शर्तो
II. क्रय–विक्रय
III. निक्षेपी एंव गैर–निक्षेपी
IV. पूँजी बाजार
V. मुद्रा बाजार

4.12 स्वपरख प्रश्न

i. वित्तीय बाजार के अर्थ एवं परिभाषा को स्पष्ट कीजिये। इसके महत्व का भी वर्णन करे।
ii. वित्तीय बाजार को कितने भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है ? व्याख्या कीजिये।
iii. वित्तीय बाजार में भाग लेने वाले संस्थाओं का संक्षिप्त वर्णन कीजिये।
iv. वित्तीय बाजार के प्रमुख अवयवो की विस्तृत व्याख्या कीजिये।
v. मुद्रा बाजार एंव पूँजी बाजार में अंतर स्पष्ट करें।

4.13 सन्दर्भ पुस्तकें

- सेठी, टी0टी0 (2015), मुद्रा बैंकिंग एवं लोक वित, आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिसर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- गुप्ता, शान्ति के0 और अग्रवाल, निशा, इंडियन फाइनैन्शियल सिस्टम्स, कल्याणी पब्लिसर्स, 2016।
- प्रतियोगिता दर्पण, जुलाई 2016।
- इंडियन इकोनोमी, जुलाई 2016।
- अग्रवाल, दीपक (2010), मुद्रा बैंकिंग, लोक वित्त एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, हिमालया पब्लिशिंग हाउस मुबई।
- बिशनोई, आर0के0, बीमा के सिद्धांत, साहित्य भवन पब्लिसर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा।
- श्रीवास्तव, आर0एम0 और निगम, दिब्या मैनेजमैन्ट ऑफ इंडियन फाइनैन्शियल इंस्टीट्यूशन्स
- विभिन्न इंटरनैट साइट्स।
- जैन, टी0आर0 इंडियन फाइनैन्शियल सिस्टम्स, वी0के0 ग्लोबल पब्लिकेशन्स और खन्ना, ओ0पी0, प्राईवेट लिमिटेट, 2014–15।

इकाई –5 मुद्रा बाजार

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 मुद्रा बाजार का अर्थ एंव परिभाषा
5.3 मुद्रा बाजार के उद्देश्य
5.4 मुद्रा बाजार के कार्य
5.5 मुद्रा बाजार का महत्व
5.6 भारतीय मुद्रा बाजार की विशेषताएं
5.7 भारतीय मुद्रा बाजार के दोष
5.8 भारतीय मुद्रा बाजार के दोष दूर करने हेतु सुझाव
5.9 मुद्रा बाजार के उपकरण या प्रपत्र
5.10 भारतीय मुद्रा बाजार के अंग
5.11 सारांश
5.12 शब्दावली
5.13 बोध प्रश्न
5.14 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.15 स्वपरख प्रश्न
5.16 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- मुद्रा बाजार के अर्थ एवं परिभाषा को स्पष्ट कर सके।
- मुद्रा बाजार के उद्देश्यों की व्याख्या कर सके।
- मुद्रा बाजार के कार्यो का वर्णन कर सके।
- भारतीय मुद्रा बाजार की विशेषताओं और दोषों को समझ सके।
- मुद्रा बाजार के विभिन्न उपकरणों (प्रपत्रों) का विस्तृत वर्णन कर सके।
- भारतीय मुद्रा बाजार के विभिन्न घटको (अंगो) का वर्णन कर सके।

5.1 प्रस्तावना

मुद्रा बाजार शब्द का प्रयोग व्यापक और संकुचित दोनों अर्थों में किया जाता है। के0 सी0 चाकों के शब्दों में, धारणा के व्यापक दृष्टिकोण से मुद्रा बाजार के अन्तर्गत समस्त प्रकार के व्यवसायों की वित्तीय व्यवस्था के हेतु प्रयुक्त सम्पूर्ण यन्त्र को सम्मिलित किया जाता है। परन्तु धारणा के साधारण प्रयोग में मुद्रा बाजार अल्पकालीन कोषों के उधार लेने और देने तक ही सीमित है। इस प्रकार मुद्रा बाजार को ऐसे स्थान के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जहॉ अल्पकालीन कोष खरीदे और बेचे जाते है।इस इकाई में आप मुद्रा बाजार का अथ, मुद्रा बाजार के उद्देश्यों, मुद्रा बाजार के कार्य, व भारतीय मुद्रा बाजार के विभिन्न घटको (अंगो) का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

5.2 मुद्रा बाजार का अर्थ एवं परिभाषा

साधारण बोलचाल की भाषा में बाजार शब्द का अर्थ उस स्थान या क्षेत्र विशेष से होता है जहॉ क्रेता और विक्रेता पारस्परिक सौदेबाजी के आधार पर वस्तुओं का क्रय–विक्रय करते है। इसी प्रकार मुद्रा बाजार शब्द का अर्थ उस स्थान या क्षेत्र विशेष से होता है जहॉ मुद्रा के क्रेता और विक्रेता पारस्परिक सौदे करते है। रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के शब्दों मे,''एक मुद्रा बाजार मुख्य रूप में अल्पकालीन प्रकृति की मौद्रिक सम्पत्ति को खरीदने और बेचने का एक केन्द्र होता है जहॉ पर व्यक्तियों या व्यक्तिगत संस्थाओं तथा अन्य संस्थाओं की निवेश योग्य अतिरेक पूँजी को व्यक्तिगत एवं संस्थागत उधारकर्ता प्राप्त करते है।'' जिस प्रकार एक साधारण बाजार में किसी वस्तु का मूल्य निर्धारण उस वस्तु की मॉग व पूर्ति की सापेक्षिक शक्तियों के द्वारा उस बिन्दु पर होता है जहॉ कि वस्तु की पूर्ति की मात्रा इसकी मॉग की मात्रा की मात्रा के बराबर हो उसी प्रकार मुद्रा बाजार में मुद्रा के मूल्य का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहॉ पर मुद्रा की मॉग व पूर्ति सन्तुलित होती है।

1. जे0 एफ0 ब्रेडले के अनुसार,''मुद्रा बाजार वह क्षेत्र या स्थान या केन्द्र है जहॉ अल्पकालीन कोष या मौद्रिक सम्पत्तियों का क्रय–विक्रय होता है।''
2. क्राउथर के अनुसार,''मुद्रा बाजार एक सामूहिक नाम है, जिसे विभिन्न फर्मो एवं संस्थाओं के लिए जो कि विभिन्न श्रेणियों की मुद्रा में व्यवहार करती है, प्रयोग किया जाता है।''
3. सेयर्स के अनुसार,''मुद्रा बाजार वह बाजार है, जिसमें अल्पकालीन एवं प्रतिदिन के ऋणों के ऋणों का लेन–देन होता है।''
4. सिपमेन के अनुसार,''मुद्रा बाजार वह केन्द्र है, जहॉ अल्पकालीन पूँजी की मॉग एवं पूर्ति का परस्पर समायोजन होता है।''

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि मुद्रा बाजार अल्पकालीन कोषों में क्रय–विक्रय का केन्द्र है।

5.3 मुद्रा बाजार के उद्देश्य

मुद्रा बाजार यद्यपि अपनी बहुआयामी क्रियाओं के कारण अनेक उद्देश्यों की निरन्तर पूर्ति करता रहता है अतः अध्ययन की सुविधा के लिए इन्हें निम्न रूपों में प्रस्तुत किया जा सकता है–

1. अल्पकालीन तरलता सन्तुलन में आने वाले अन्तरों को दूर करने में अति उपयोगी सिद्ध होता है।
2. रिजर्व बैंक को मुद्रा बाजार से स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है जिसके आधार पर वह तरलता प्रबन्धन के लिए स्वयं सक्रिय होकर खुले रूप में इस बाजार में प्रवेश करता है।
3. निवेशकर्ताओं को अल्पकालीन कोषों की पूर्ति मुद्रा बाजार द्वारा अपेक्षाकृत वास्तविक लागत पर उपलब्ध रहती है।

5.4 मुद्रा बाजार के कार्य

मुद्रा बाजार की उत्पादकता उसके कार्यो से ही प्रकट होती है। अर्थव्यवस्था में मुद्रा बाजार धन का प्रवाह बनाये रखना, बचत को निवेश में परिवर्तित करना, सरकार को धन की आपूर्ति करना आदि कई महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करते है। मुद्रा बाजार के इन्हीं कार्यो के कारण यह अर्थव्यवस्था में अपना महत्व भी रखते है। मुद्रा बाजार के कार्यो को निम्नांकित बिन्दुओं में व्यक्त किया जा सकता हैः

1. सरकार के लिये उपयोगी – मुद्रा बाजार सरकार के लिये ट्रेजरी बिलों के क्रय–विक्रय के माध्यम से कोष उपलब्ध कराने में सहयोग करता है। इसी तरह सरकारी योजनाओं के लिये

वांछित धनराशि मुद्रा बाजार के माध्यम से प्राप्त की जाती है। इस प्रकार मुद्रा बाजार सरकार के लिये कोष संग्रह का भी कार्य करता है तथा सरकारी कोषों का विनियोजन भी करता है।

2. कोष उपलब्ध कराना – मुद्रा बाजार का प्रमुख कार्य व्यापारियों, उद्योगपतियों, संस्थाओं जिन्हें भी वित्त की आवश्यकता है, उन्हें आपातकालीन कोष उपलब्ध कराये। बैंकों, वित्तीय संस्थाओ, स्वीकृत गृहों, कटौती गृहों इत्यादि के माध्यम से मुद्रा बाजार को कोष उपलब्ध कराया जाता है। फलस्वरूप अर्थव्यवस्था के विकास में सहायता मिलती है।
3. अधिशेष कोषों का प्रयोग – मुद्रा बाजार बचतकर्ताओं को अपने अधिशेष कोषों का बेहतर प्रयोग करने का अवसर प्रदान करता है। इसी प्रकार वित्तीय मध्यस्थ संस्थाये तथा सरकारें भी मुद्रा बाजार के माध्यम से अपने अतिरिक्त कोषों का लाभकारी प्रयोग कर लाभ उठाते है। यही कारण है कि मुद्रा बाजार की अर्थव्यवस्था में उपयोगिता सिद्ध होती है।
4. कोषों की गतिशीलता – मुद्रा बाजार एक स्थान से दूसरे स्थान पर कोषों को स्थानान्तरित करने में सहायता पहुॅचाता है। मुद्रा बाजार की गतिविधियों के माध्यम से बैंको व वित्तीय संस्थाओं की ग्राहक सेवाओं के कारण त्वरित गति से कोष एक स्थान से दूसरे स्थान पर सहज ही स्थानान्तरित हो जाते है। कोषों की गतिशीलता आर्थिक विकास के लिये अति आवश्यक है।
5. मौद्रिक नीति निर्धारण में सहायक – मुद्रा बाजार की गतिविधियों के माध्यम से केन्द्रीय बैंक को कोष प्रवाह का ज्ञान होता है जो मौद्रिक नीति के निर्धारण के लिये अति उपयोगी होता है। मौद्रिक नीति का निर्धारण ही नहीं वरन् मौद्रिक नीति के सफल संचालन में भी मुद्रा बाजार सहायक होता है। बैंको के माध्यम से साख नियन्त्रण के उपाय अपनाकर मौद्रिक नीति का नियमन किया जाता है। इस दृष्टि से मुद्रा बाजार की उपयोगिता है। यह मुद्रा बाजार के कार्यो के अन्तर्गत भी आता है।
6. नकद की कम आवश्यकता – मुद्रा बाजार में वास्तविक मुद्रा में लेन–देन नहीं होता है वरन् विभिन्न प्रतिभूतियों क्रय–विक्रय किया जाता है जिसे निकट मुद्रा की संज्ञा दी गयी हैं इस निकट मुद्रा के चलन के कारण वास्तविक मुद्र का ह्रास नहीं होता है तथा चलन में भी इसकी कम आवश्यकता है। कोषों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर निकट मुद्रा के कारण कोषों का स्थानान्तरण सुरक्षित एंव सुगम हो पाता है।
7. कोषों की तरलता एवं लाभदायकता – मुद्रा बाजार का यह एक प्रमुख कार्य है कि वह कोषों की तरलता तथा लाभदायकता को बनाये रखे तथा उसमें वृद्धि करे। मुद्रा बाजार के माध्यम से ही कोष लाभदायक स्थिति में रहते हैं तथा निवेश कर्ता को सदैव लाभ की अपेक्षा रहती है। विकसित मुद्रा बाजार में प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय तीव्र गति से होता है, अतः कोष सदैव तरल बने रहते है।

5.5 मुद्रा बाजार का महत्व

किसी देश की अर्थव्यवस्था में मुद्रा बाजार का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। व्यापार, वाणिज्य तथा उद्योगों का विकास एक सुसंगठित मुद्रा बाजार पर निर्भर करता है। इंग्लैण्ड, अमेरिका, जापान आदि देशों की औद्योगिक प्रगति में वहीं के विकसित मुद्रा तथा पूॅजी बाजारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही हैं। मुद्रा बाजार के महत्व के निम्नलिखित कारण है–

1. ऋणी तथा ऋणदाता के बीच सम्बन्ध स्थापित करना – मुद्रा बाजार ऐसे लोगों से, जिनके पास पूॅजी है, परन्तु व्यापारिक कार्यो में नहीं प्रयोग कर सकते, ऐसे व्यक्तियों के पास पूॅजी पहुॅचाने में मदद करते हैं, जिनके पास व्यापारिक के बीच योग्यता व कुशलता है लेकिन पूॅजी का अभाव है। अतः मुद्रा बाजार ऋणी तथा ऋणदाता के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है।
2. मौद्रिक नीति के कार्यान्वयन में सहायक – मुद्रा बाजार देश के केन्द्रीय बैंक की मौद्रिक नीति के सफल कार्यान्वयन में सहायक होता है। यदि मुद्रा बाजार के विभिन्न अंगों में सहयोग तथा सामंजस्य का अभाव हो तो मौद्रिक नीति की सफलता की आशा नहीं की जा सकती। बर्गेस ने ठीक ही कहा है कि, देश के लिए मुद्रा बाजार का महत्व केवल उसके आकार में नहीं है, वह वास्तव में उसकी तुलना तथा कुछ घण्टों की सूचना पर देश के किसी भाग को नकदी पहुॅचाने की योग्यता में है। व्यक्ति के लिए जो महत्व बैंक खाते का है, वही महत्व देश की साख व्यवस्था में मुद्रा बाजार का है।
3. उद्योग तथा वाणिज्य को वित्त प्रदान करना – मुद्रा बाजार वाणिज्य तथा उद्योग को वित्तीय बिलों, व्यापारिक विपत्रों आदि के द्वारा उनकी चालू पूॅजी की आवश्यकता हेतु वित्त प्रदान करती है। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों प्रकार के बाजार प्रायः विनिमय बिलों के द्वारा वित्त प्राप्त करते हैं जो कि बिल बाजार में बट्टा करा लिये जाते है। स्वीकृति–गृहों तथा बट्टा–गृहों ने अन्तर्राष्ट्रीय सौदों को वित्त प्रदान करने में बड़ा योगदान किया है।
4. अल्पकालीन निधियों का विनियोजन – मुद्रा बाजार वाणिज्य बैंकों की अल्पकालीन निधियों के विनियोजन हेतु आवश्यक परिसम्पत्ति प्रदान करता है। वाणिज्य बैंक मुख्यतः अपने जमाकर्ताओं के धन से काम करते है। अतः ये अधिकतम तरलता की दृष्टि से ऐसी अल्पकालीन व सुरक्षित परिसम्पत्तियों को खरीदना चाहते हैं जिन्हे आसानी से बेचा जा सके। बैंकों की ऐसी परिसम्पत्तियॉ मुद्रा बाजार व बिल बाजार में प्राप्त हो जाती है।
5. सरकार को सहायता – मुद्रा बाजार सरकार को आवश्यक अल्पकालीन निधियॉ प्रदान करता हैं। प्रायः सभी देशों की सरकारें कोषागार बिलों के जरिये इस सुविधा का लाभ उठाती है।
6. मुद्रा की मॉग व पूर्ति में सन्तुलन – मुद्रा बाजार के माध्यम से मुद्रा की मॉग व पूर्ति में सन्तुलन स्थापित किया जा सकता है और देश की मुद्रा इकाई के मूल्य में स्थिरता लायी जाती है।
7. पूॅजी निर्माण – मुद्रा बाजार देश में पूॅजी निर्माण में सहायता करता है। मुद्रा बाजार के संगठन से बचतकर्ता को बचत करने की प्रेरणा मिलती है और उन्हें यह विश्वास रहता है कि वे अपनी बचतों का सुरक्षित तथा, लाभदायक विनियोग कर सकेंगे।

संक्षेप में, देश की अर्थव्यवस्था में मुद्रा बाजार का महत्वपूर्ण स्थान होता है। मुद्रा बाजार देश की आर्थिक प्रगति का सूचक होता है।

5.6 भारतीय मुद्रा बाजार की विशेषताए

भारतीय मुद्रा बाजार की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं –

1. द्विशासिता – भारतीय मुद्रा बाजार की एक महत्वपूर्ण विशेषता उसकी द्विशासिता हैं। इसमें एक हैं संगठित या आधुनिक भाग तथा दूसरा है असंगठित या स्वदेशी भाग। संगठित भाग के अन्तर्गत रिजर्व बैंक, स्टेट बैंक समूह, वाणिज बैंक, विदेशी विनिमय बैंक आदि आते हैं

मुद्रा बाजार के असंगठित भाग में देशी बैंकर एवं साहूकार आदि सम्मिलित किये जाते है। संगठित भाग पर रिजर्व बैंक का प्रभावी नियन्त्रण रहता है, जबकि असंगठित भाग रिजर्व बैंक के नियन्त्रण से मुक्त है। इन दोनों भागों में पूर्ण सम्पर्क तथा सहयोग का अभाव है।

2. रिजर्व बैंक पर सीमित निर्भरता – रिजर्व बैंक वाणिज्य बैंको का अन्तिम ऋणदाता है, लेकिन वाणिज्य बैंक अपनी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये रिजर्व बैंक पर बहुत कम निर्भर करते है। देश में शाखा बैंकिंग प्रणाली के कारण जहॉ तक सम्भव होता है, बैंक अपनी शाखाओं से ही ऋण लेना पसन्द करते हैं और जब यहॉ से उनकी आवश्यकतायें पूरी नहीं होती हैं तभी आर0बी0आई0 से उधार लेते है।

3. समाशोधन–गृहों का अभाव – मुद्रा बाजार में बैंक में जो आपसी लेन–देन होता है, उसका निपटारा समाशोधन गृहों के माध्यम से किया जाता है। लेकिन भारतीय मुद्रा बाजार में उनका तुलनात्मक रूप से अभाव है।

4. प्रमाणित हुण्डियों का अभाव – मुद्रा बाजार के अंसगठित भाग में अधिकांश लेन–देन हुण्डियों के माध्यम से होता है। हुण्डियॉ प्रायः क्षेत्रीय भाषा में लिखी जाती हैं, जिससे उनके प्रारूप में भिन्नता पाई जाती है। भारतीय मुद्रा बाजार में प्रमाणित हुण्डियों के अभाव के कारण उनकी स्वीकृति तथा कटौती में कठिनाई उत्पन्न होती है।

5. अन्तर–बैंक मॉग का मुद्रा–बाजार में महत्वपूर्ण स्थान – भारतीय मुद्रा बाजार में अन्तर बैंक मॉग का महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि इस बाजार में प्रयुक्त राशि की मात्रा बैंको में जमा साधनों की तुलना में अधिक नहीं है, लेकिन यह मुद्रा बाजार का सबसे अधिक संवेदनशील भाग है।

6. ब्याज की दरों में भिन्नता – भारतीय मुद्रा बाजार के दोनों अंगों–संगठित एवं असंगठित में सम्पर्क व सहयोग नहीं होने के कारण ब्याज दरों में बहुत विभिन्नता रहती है। प्रायः असंगठित भाग की ब्याज दर संगठित भाग की तुलना में काफी अधिक होती है क्योंकि असंगठित भाग पर रिजर्व बैंक का नियन्त्रण नहीं होता।

7. बिल बाजार का अभाव – भारतीय मुद्रा बाजार की एक विशेषता बिल बाजार का अभाव था। बिल बाजार किसी भी मुद्रा का एक महत्वपूर्ण घटक एवं उसके विकास की प्रेरक शक्ति होता है इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए रिजर्व बैंक ने 1970 में बिल बाजार की स्थापना की। लेकिन भारतीय मुद्रा बाजार में व्यापारिक बिल लिखने एवं उनकी पुनर्कटौती के आधार पर व्यापारिक एवं मौद्रिक लेन–देन बहुत कम होते है।

8. विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं का अभाव – मुद्रा बाजार के विकास में विशिष्ट वित्तीय संस्थायें जैसे – स्वीकृति गृह तथा कटौती गृह महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। लेकिन भारतीय मुद्रा बाजार में लन्दन मुद्रा बाजार जैसे स्वीकृति गृहों तथा बट्टा गृहों का अभाव है।

9. सरकारी एवं अर्द्ध–सरकारी संस्थाओ की प्रचुरता – भारतीय मुद्रा बाजार में सरकारी तथा अर्द्ध–सरकारी संस्थाओं का बाहुल्य है। ये संस्थाओं सरकार के नियन्त्रण में तो रहती है लेकिन कुछ प्रबन्धकीय निर्णय स्वशासी रूप से ले लेती हैं जिसके कारण सरकारी नियंत्रण वाली संस्थाये व इनमें प्रतिस्पर्धा की स्थिति बन जाती है।

5.7 भारतीय मुद्रा बाजार के दोष

भारतीय मुद्रा बाजार दोषपूर्ण है तथा इसकी तुलना पश्चिमी देशों के अधिक विकसित मुद्रा बाजारों से नहीं की जा सकती है। भारतीय मुद्रा बाजार के मुख्य दोष निम्नलिखित है :

1. मुद्रा बाजार के विभिन्न अंगों के बीच सामंजस्य का अभाव – भारतीय मुद्रा बाजार कई भागों में विभक्त है तथा मुद्रा बाजार के विभिन्न अंगों के बीच आपसी सहयोग एवं समन्वय का नितान्त अभाव है। मुद्रा बाजार के संगठित क्षेत्र में रिजर्व बैंक तथा अनुसूचित बैंक्स के बीच नजदीकी सम्बन्ध का नितान्त अभाव है।
2. ब्याज की दरों में भिन्नता – चूँकि भारतीय मुद्रा बाजार समुचित रूप से संगठित नहीं है, इसलिये बाजार में एक ही समय ब्याज की अनेक दरें उपस्थित रहती है। यही नही बैंक दर के परिवर्तन भी प्रचलित ब्याज की दरों को अधिक प्रभावित नहीं कर पाते है।
3. स्वदेशी बैंकर्स पर नियन्त्रण का अभाव – भारतीय मुद्रा बाजार में स्वदेशी बैंकर्स संगठित क्षेत्र से बिल्कुल अलग है। यद्यपि रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया ने समय–समय पर स्वदेशी बैंकर्स को अपने नियन्त्रण में लाने के उपाय किये है, परन्तु यह सभी प्रायः विफल सिद्ध हुए है।
4. मुद्रा की मौसमी दुर्लभता – मुद्रा की मौसमी दुर्लभता भारतीय मुद्रा बाजार का चौथा मुख्य दोष है। भारतीय मुद्रा बाजार में प्रतिवर्ष नवम्बर से लेकर जून तक के व्यस्त समय में पूँजी की दुर्लभता और ब्याज की उॅची दरों का अनुभव किया जाता है।
5. साहूकारों तथा स्वदेशी बैंकरों की बाहुल्यता – यद्यपि अब देश मे आधुनिक बैंकिंग का विकास हो चुका है तथापि कृषि और आन्तरिक व्यापार के अर्थ प्रबन्ध में आज साहूकारों और स्वदेशी बैंकरों की बाहुल्यता तथा उनका प्रबल प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इनके मध्य समन्वय व सहयोग का नितान्त अभाव है तथा देश के विभिन्न भागों में इनकी अलग–अलग कार्यविधियॉ है। इन पर समुचित नियन्त्रण नहीं रखा जा सकता है। यही कारण है कि मुद्रा बाजार में बहुत उथल–पुथल होती रहती है।
6. भारतीय बैंकिंग व्यवस्था में विविधीकृतता का अभाव – प्रायः सभी एक ही प्रकार के हैं, अर्थात् व्यापारिक बैंक हैं। देश में औद्योगिक बैंकों का नितान्त अभाव रहा है। कृषि प्रधान देश होते हुए भी कृषि साख को सुविधायें प्राप्त नहीं है। कोंई भारतीय विदेशी विनिमय बैंक नहीं है। नगरपालिका सेविंग बैंक आदि का भी अभाव है।
7. ऋणपत्रों के मूल्यों में उतार–चढाव – बाजार के प्रमुख केन्द्रो पर ब्याज की दरों में पायी जाने वाली भिन्नता के फलस्वरूप ऋण–पत्रों पर ब्याज की दरों में पायी जाने वाली भिन्नता के फलस्वरूप ऋण–पत्रों के मूल्यों में भारी–उतार–चढाव होने लगते है जिनका देश के उद्योग एवं व्यापारियों पर बुरा प्रभाव पड़ता है।
8. संगठित हुण्डी बाजार का अभाव – हमारे देश के कई कारणों से अभी तक संगठित बिल बाजार का विकास नहीं हो सका है–
    1. देश के विभिन्न भागों में लिखित हुण्डियों मे पायी जाने वाली असमानता
    2. व्यापारियों की बैंकों के नकद–उधार प्राप्त करने की मनोवृत्ति
    3. हुण्डियों पर भारी स्टाम्प शुल्क
    4. कृषि–उपज को सुरक्षित रखने के हेतु गोदामों का अभाव
9. शाखा बैंकिंग की मन्द गति – भारतीय मुद्रा बाजार का अन्तिम दोष शाखा बैंकिंग की धीमी प्रगति से सम्बन्धित है। द्वितीय महायुद्ध से पूर्व तक हमारे देश में शाखा बैकिंग का विकास बहुत कम हुआ था। युद्धोत्तर काल में यद्यपि इस दिशा में कुछ प्रगति अवश्य हुई है, परन्तु यह प्रगति केवल बड़े–बड़े नगरों तक ही सीमित है।

10. पॅूजी की कमी – पॅूजी की कमी भारतीय मुद्रा बाजार का एक महत्वपूर्ण दोष है। पॅूजी की कमी के दो कारण है, एक तो यह कि व्यक्ति अपनी बचत को संग्रह करके अपने पास ही रखता है तथा दूसरा यह कि ग्रामीण क्षेत्रों में बैंको का काफी अभाव है। परिणामस्वरूप बचतें बाजार में नहीं आ पाती है।
11. वित्तीय संस्थाओं की अपर्याप्तता – हमारे देश में वित्तीय संस्थाओं की अपर्याप्तता है। इनकी अपर्याप्तता के कारण व्यापारी एवं अद्योगपतियों की वित्त सम्बन्धों आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो पाती है।
12. समाशोधन सुविधाओं का अपर्याप्त विकास – भारत में समाशोधान सुविधाओं का पर्याप्त विकास नहीं हुआ ळै। केवल बड़े–बड़े शहरों में ही समाशोधन गृह है।

5.8 भारतीय मुद्रा बाजार के दोष दूर करने हेतु सुझाव

उपरोक्त उध्ययन से यह स्पष्ट है कि भारतीय मुद्रा बाजार की संरचना एवं कार्य–प्रणाली में अनेक कमियॉ एवं दोष पाये जाते है। अतः इसे एक विकसित मुद्रा–बाजार की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। अर्थव्यवस्था के संदर्भ में भारतीय मुद्रा बाजार के महत्व का मूल्यांकन करते करते हुये रिजर्व बैंक ने इस दिशा में कुछ प्रयत्न किये है। फलस्वरूप आशाजनक परिणाम दृष्टिगत हुये है। इसके विभिन्न अंगों के मध्य सीमित मात्रा में समन्वय स्थापित हुआ है, ब्याज की दरों के समान रहने की प्रवृत्ति दिखायी देती है, मुद्रा की मौसमी कमी की स्थिति में अनुकूल परिवर्तन हुआ है। रिजर्व बैंक का बैंकिंग एवं वित्तीय संस्थाओं पर प्रभुत्व बढ़ा और बिल बाजार को विकसित करने के उद्‌देश्य से एक नवीन योजना प्रारम्भ की गयी। फलस्वरूप वह मौद्रिक नीति का संचालन सफलतापूर्वक कर रहा है। मुद्रा बाजार के सुधार एवं विकास के सम्बन्ध में निम्न सुझाव प्रस्तुत किये जा सकते है :

1. मुद्रा बाजार के असंगठित भाग पर प्रभावशाली नियन्त्रण – भारतीय मुद्रा बाजार के असंगठित भाग पर रिजर्व बैंक का किसी भी प्रकार से नियन्त्रण नहीं है कि असंगठित भाग पर प्रभावशाली नियन्त्रण स्थापित किया जाये ताकि रिजर्व बैंक की मौद्रिक नीति पूर्णतया सफल हो सके। इस दिशा में रिजर्व बैंक को पारस्परिक परामर्श के पश्चात् एक ऐसी योजना तैयार करनी चाहिये जो संगठित भाग में कार्यरत विभिन्न संस्थाओं को मान्य हो ताकि उसका असंगठित भाग से सम्बन्ध स्थापित हो सके एवं उसमें कार्यरत विभिन्न संस्थाये उसके निर्देशन एवं नियन्त्रण में कार्य कर सकें। यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि जब तक असंगठित भाग पर प्रभावशाली नियन्त्रण स्थापित नहीं किया जाता है, भारतीय मुद्रा बाजार को एक विकसित एवं सुसंगठित रूप में नहीं बदला जा सकता है।
2. बिल–बाजार का विकास – बिलों की कटौती साख नियन्त्रण का एक प्रभावी साधन है। विकसित मुद्रा बाजार के लिए विकसित बिल–बाजार का होना परम आवश्यक है ताकि साख–व्यवस्था सुचारू रूप से कार्य कर सकें तथा व्यापारिक बैंक, बिलों के माध्यम से रिजर्व बैंक द्वारा प्रदत्त वित्तीय सहायता प्राप्त कर सके। हमारे देश में कुछ विशिष्ट परिस्थितियों के कारण बिल–बाजार का विकास नहीं हो पाया है, परन्तु रिजर्व बैंक ने बिल–बाजार को विकसित करने के सम्बन्ध में प्रयत्न किये है ताकि मुद्रा–बाजार के प्रमुख दोष का निवारण किया जा सके।
3. मुद्रा–बाजार में विशिष्ट संस्थाओं की स्थापना – मुद्रा बाजार के समुचित विकास के लिये यह भी आवश्यक है कि लन्दन एवं न्यूयार्क मुद्रा–बाजार के समान भारतीय मुद्रा बाजार में

विशिष्ट संस्थाओं, जैसे, स्वीकृति गृहों, कटौती गृहों, विनियोग सलाहकार संस्थाओ आदि की भी स्थापना की जाये ताकि बिलों का अधिकाधिक प्रयोग हो सकें। अतः ऐसी विशिष्ट संस्थाओं की स्थापना एवं विकास के लिये प्रयत्न किये जाने चाहिये तथा देशी बैंकरों को भी सहकारी आधार पर कटौती गृहों की स्थापना करने के सम्बन्ध में प्रोत्साहित किया जाना चाहिये।

4. समाशोधन गृहों की संख्या में वृद्धि – मुद्रा बाजार के विकास के लिये यह भी आवश्यक है कि देश में बैंकिंग सम्बन्धी सुविधाओं का विस्तार किया जाये, अतः समाशोधन गृहों की संख्या में वृद्धि की जाये तथा वर्तमान में कार्यरत समाशोधन गृहों की कार्य–प्रणाली में सुधार किया जाये ताकि वे अधिक उपयोगी बन सकें।
5. हुण्डियों का प्रमापीकरण – मुद्रा बाजार में व्यापारिक बिलों के प्रचार एवं प्रयोग को व्यवस्थित एवं प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से देशी हुण्डियों का प्रमापीकरण किया जाना चाहिये ताकि उनके स्वरूप, भाषा एवं चलन सम्बन्धी नियमों में एकरूपता स्थापित की जा सके। प्रमापीकरण के फलस्वरूप देश में नियमित बिल–बाजार भी विकसित हो सकेगा। इस सम्बन्ध में सुविधाजनक तो यह होगा कि हुण्डियों को भी भारतीय बेचान साध्य विनियम विलेख अधिनियम के अन्तर्गत बेचान साध्य विलेखों की श्रेणी में सम्मिलित कर लिया जाये।
6. धन–हस्तांतरण की सुविधाओं में वृद्धि – मुद्रा–बाजार के सफलतापूर्वक संचालन के लिये मुद्रा–पूर्ति में लोचशीलता का गुण होना परम आवश्यक है। अतः देश के विभिन्न वित्तीय केन्द्रो के मध्य धन–प्रेषण सुविधाओं में वृद्धि की जाये। उल्लेखनीय है कि इस सम्बन्ध में रिजर्व बैंक ने व्यापारिक बैंको तथा सहकारी साख संस्थाओं को धन–प्रेषण की सुविधायें प्रदान की है। मुद्रा पूर्ति में गतिशीलता उत्पन्न करने केक लिये यह सुविधा देशी बैंकरों को भी उपलब्ध की जानी चाहिये।
7. अनुज्ञा प्राप्त माल गोदामों की स्थापना – कृषि क्रियाओं को पर्याप्त एवं सामयिक वित्त–प्रदान करने के उद्देश्य से ग्रामीण क्षेत्रो में अनुज्ञा प्राप्त माल–गोदामों की स्थापना करना अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। अनुज्ञा प्राप्त माल गोदामों में रखे गये माल को रसीद की जमानत के आधार पर बैंकों से वित्तीय सहायता प्राप्त की जा सकती है। इस सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार ने केंन्द्रीय भण्डार गृह निगम तथा विभिन्न राज्य सरकारों ने राज्य भण्डार गृह निगम की स्थापना की है। इनका मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकाधिक माल गोदामों की स्थापना करना है ताकि वांछित उद्देश्यो को प्राप्त किया जा सकें।
8. ब्याज की दरों में विभिन्नता को दूर करना – भारतीय मुद्रा–बाजार के दोषों का अध्ययन करते समय हमने देखा था कि इसका एक दोष यह भी है कि मुद्रा बाजार के अंगों के विभिन्न केन्द्रो में प्रचलित ब्याज की दरों में विभिन्नता पायी जाती है। ब्याज की दरों में विभिन्नता मुद्रा–बाजार के समुचित विकास की दशा में बाधक सिद्ध होती हे। परन्तु अब रिजर्व बैंक के प्रयत्नों के कारण ब्याज की दरों में असमानता धीरे–धीरे दूर होती जा रही है। यदि असंगठित मुद्रा–बाजार को संगठित मुद्रा–बाजार से सम्बधित कर दिया जाये तो यह असमानता भी अधिक कम हो सकेंगी।
9. ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधाओं का विकास – सुसंगठित मुद्रा बाजार की स्थापना के लिए यह भी आवश्यक है कि देश के ग्रामीण क्षेत्र में अधिक से अधिक बैंकिंग सुविधाओं का विस्तार किया जाये ताकि कृषि–वित्त के क्षेत्र में महाजनों एवं साहूकारों के प्रभुत्व को

समाप्त किया जा सकें। सार्वजनिक क्षेत्र की बैंकिंग संस्थाओं (जिनमें चौदह राष्ट्रीयकृत बैंक, स्टेट बैंक समूह एवं उसके सहायक बैंक सम्मिलित हैं) पर विशेष दायित्व डाला गया है कि ये अर्द्ध–शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधाओं का विस्तार करें। सार्वजनिक क्षेत्र में बैंकिंग व्यवस्था के विकास एवं विस्तार तथा बैंकिंग व्यवस्था पर रिजर्व बैंक के प्रभावपूर्ण नियन्त्रण के फलस्वरूप भारतीय मुद्रा–बाजार की संरचना एवं कार्य–प्रणाली में जो कमियॉ एवं दोष है वे धीरे–धीरे दूर होते जा रहे है तथा निकट भविष्य में यह आशा की जाती है कि भारतीय मुद्रा बाजार एक विकसित बाजार की श्रेणी में पहुंच सकेगा तथा देश की अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ निर्माण में अपना सक्रिय योगदान दे सकेगा। मुद्रा बाजार में सुधार के लिये बैंकिंग आयोग द्वारा प्रस्तुत मरचेन्ट बैंक की स्थापना का सुझाव विशेष महत्वपूर्ण है। यह संस्था स्वीकृति गृह एवं कटौती गृह के रूप में कार्य कर भारतीय मुद्रा बाजार के विकास में सहयोग प्रदान कर सकेगी।

यह उल्लेखनीय है कि विगत वर्षो से हमारे देश का केन्द्रीय बैंक मुद्रा बाजार के दोषों को दूर करने का भरसक प्रयत्न कर रहा है। सन् 1949 के भारतीय बैंकिंग कम्पनीज एक्ट के अन्तर्गत देश के केन्द्रीय बैंक को अन्य बैंकिंग संस्थाओं के उचित संगठन एवं कार्यो के सम्बन्ध में विशेष्ज्ञ अधिकार प्रदान किये गये है इसके अलावा और व्यापारिक बैंक्स रिजर्व बैंक द्वारा प्रदत्त एवं बट्टा करने की सुविधाओं का अधिक से अधिक लाभ उठाने लगे है। जिसके फलस्वरूप अब मुद्रा बाजार के विभिन्न अंगों के बीच अपेक्षाकृत अधिक सहयोग पाया जाने लगा है। मुद्रा बाजार में विभिन्न स्थानों एवं समयान्तरों के बीच प्रचलित ब्याज की दरों में समानता स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है। स्पष्ट है कि भारतीय मुद्रा बाजार पर रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के नियन्त्रण में वृद्धि होने से मुद्रा बाजार के काफी दोष समाप्त हो गये हैं तथा आगामी कुछ वर्षो में शेष भी समाप्त हो जायेंगे।

5.9 मुद्रा बाजार के उपकरण या प्रपत्र

मुद्रा बाजार के प्रमुख उपकरण निम्नलिखित हैं–

1. ट्रेजरी बिल – भारत में ट्रेजरी बिल एक प्रमुख उपकरण है। इसे अल्पकालीन वित्त प्राप्ति का प्रमुख साधन माना जाता है। भारत में इस समय 14 दिन, 91 दिन, 182 दिन, 365 दिन के ट्रेजरी बिल जारी किये जाते है। ये ट्रेजरी बिल जिन्हें कोषागार विपत्र भी कहा जाता है। तरल, निश्चित प्रतिफल, जोखिम रहित, सरलता से उपलब्ध और न्यूनतम लागत वाले होते है। वित्तीय संस्थाओं, बैंकों, राज्य सरकारों द्वारा इन बिलों को क्रय किया जाता है। किन्तु संयुक्त स्कन्ध वाली कम्पनियॉ राष्ट्रीय सहकारी संगठन तथा भविष्य निधि कोष द्वारा इन बिलों का क्रय नहीं किया जा सकता।
2. व्यापारिक पत्र – यह भी मुद्रा बाजार का एक उपकरण है। कम्पनियॉ भी मुद्रा बाजार से वित्त प्राप्त कर सकती है। इसके लिए व्यापारिक पत्र निर्गमन किया जाता है। एक कम्पनी 4 करोड़ रू0 मूल्य के व्यापारिक पत्र निर्गमित कर वित्त प्राप्त कर सकती है। अब बैंकों को भी यह सुविधा मिल रही है। इसकी परिपक्वता की अवधि 3 से 12 माह होती है। रिजर्व बैंक ने इसकी शर्तो को उदार बना दिया है।
3. मॉग या याचना मुद्रा – मॉग या याचना मुद्रा, मुद्रा बाजार का ऐसा उपकरण होता है जिसमें 1 दिन से लेकर 14 दिन तक ऋण लिया–दिया जाता है। इसे रात्रि मुद्रा भी कहा जाता है। इस उपकरण में तरलता अधिक रहती है। इन ऋणों की जमानत प्रतिभूतियों द्वारा

दी जाती है। इस तरह के ऋणों की मॉग आकस्मिक तौर पर पड़ती है। इस मॉग–ऋण की पूर्ति व्यापारिक बैंक, निगम, वित्तीय संस्थाये, सहकारी बैंक आदि के द्वारा की जाती है।

4. जमा प्रमाण–पत्र – भारतीय मुद्रा बाजार के एक उपकरण के रूप में जमा प्रमाणपत्र व्यापारिक बैंकों द्वारा जारी किये जाते है। इसकी परिपक्वता अवधि 45 दिन की कर दी गई है। न्यूनतम जमा राशि 10 लाख रू0 है।
5. अन्तर–बैंक ऋण – भारत में मुद्रा बाजार के उपकरण के रूप में अन्तर–बैंक ऋण भी लोकप्रिय हैं। जब आकस्मिक रूप से एक बैंक को वित्त की आवश्यकता पड़ती है तो वह कुछ अवधि के लिए अन्य बैंक से ऋण प्राप्त कर सकता है। इसमें जमानत की आवश्यकता नहीं पड़ती।
6. वचन पत्र – वचन–पत्र लिखित, हस्ताक्षरित एवं निश्चित समय एवं निश्चित रकम के भुगतान का, निश्चित व्यक्ति को लेखपत्र होता है। वचन पत्र एक लिखित संलेख होता है, जिसमें लेखक किसी निश्चित व्यक्ति को या आदेश प्राप्त व्यक्ति को या उसके वाहक को एक निश्चित रकम देने का बचन देता है। यह वचन पत्र शर्तहीन होता है।
7. विनिमय बिल – विनिमय बिल शर्तरहित एवं लेखक द्वारा हस्ताक्षरित एक लेखपत्र है, जिसमें लेखक किसी निश्चित व्यक्ति को आदेश देता है कि वह एक निश्चित राशि स्वयं उसे या उसके आदेशानुसार किसी अन्य व्यक्ति को, या पत्र–वाहक को मॉगने पर या निश्चित अवधि के बाद दे दे। विनिमय बिल मुद्रा बाजार का ऐसा उपकरण है जिसमें लेखक, देनदार, आदाता तीन पक्षकार होते है। विनिमय बिल देशी एवं विदेशी या व्यापारिक या अनुग्रह आदि प्रकार के हाते है। देशी बिल देश के अन्दर लिखा हुआ, भुगतान योग्य होता है। ऐसा बिल जो विदेश के किसी व्यक्ति के नाम पर लिखा हो, या विदेशी व्यक्ति द्वारा देश के किसी व्यक्ति के नाम लिखा हो, वह विदेशी बिल कहलाता है। व्यापारिक उद्देश्यों के लिए लिखा गया बिल व्यापारिक बिल कहलाता है। अनुग्रह बिल परस्पर सहायता के लिए लिखे जाते है।
8. हुण्डी – हुण्डियों का प्रचलन पुराना है। इसे विनिमय साध्य विलेख–पत्र माना जाता है। अलग'अलग स्थानों पर अलग–अलग परम्परायें, रीति–रिवाजों से हुण्डियों का प्रयोग किया जाता रहा है। न्यायालय से इसे मान्यता भी प्राप्त है। हुण्डियॉ दो प्रकार की होती हैं– एक दर्शनी हुण्डी और दूसरी मुद्दती हुण्डी। दर्शनी हुण्डी में प्रस्तुत करने से ही भुगतान देय हो जाता है जबकि मुद्दती हुण्डी में भुगतान प्रस्तुत करने के कुछ समय बाद होता है। इसके अतिरिक्त हुण्डी कई प्रकार की होती हैं जैसे कि शाह जोग हुण्डी, नाम जोग हुण्डी, धनी जोग हुण्डी, फरमान जोग एवं जोखिमी हुण्डी आदि। हुण्डी के माध्यम से लेन–देन का कार्य बड़े पैमाने पर किया जाता है।
9. पुनः क्रय अनुबंध – संसार के विकसित मुद्रा बाजारों ने मुद्रा बाजार अभिलेख के रूप में, पुनः क्रय अनुबन्ध के प्रयोग में बहुत ही महत्वपूर्ण बदलावों को अनुभव किया है। यह मुद्रा बाजार का एक महत्वपूर्ण अभिलेख है। यह विभिन्न प्रकार के बाजार प्रतिभागियों के मध्य अल्पकालीन तरलता की सही संयोजन में भी सहायता करता है। सभी अग्रणी वित्तीय बाजारों में यह सबसे लोकप्रिय अभिलेख है एवं प्रतिभूति लेन–देनों में मनोज शेयर कांस्टीट्यूट करता है। यह अल्प सूचना ऋण बाजार की अपेक्षा ज्यादा सुरक्षित है क्योकि इन्हें प्रमाणित करने वाले के द्वारा राय दी जाती है।

बाजार आधारित अभिलेख होने के कारण, यह उदार वित्तीय बाजार मौद्रिक नियन्त्रण में अप्रत्यक्ष उपकरण के रूप में कार्य करता है।

भारत में 1992 में हुए प्रतिभूति घोटाले में रेपो लेन–देन पर असंख्य प्रतिबन्ध लगा दिए है। अभी हाल ही में, बाजार भागेदारियों ने रेपो लेने–देने के क्षेत्र को बढ़ाने की मांग की है। ऋण बाजार एवं सरकारी प्रतिभूति बाजार की गहनता एवं तरलता को बढ़ाया जा सके। 1998–99 की मौद्रिक नीति के अनुसार एक दिन का रेपो महत्वपूर्ण मौद्रिक उपकरण है। 1999–2000 की मौद्रिक नीति ने यह पहचाना कि रेपो दरें काफी तेजी से बाजार में स्वीकार कर रही है क्योकि बाजार ब्याज दरों, खासतौर पर मांग मुद्रा दर में गतिशीलता की प्रतीक है। रेपो के विभिन्न पहलुओं का परीक्षण करने पर, भारतीय रिजर्व बैंक ने एक समूह का निर्माण किया जिसने अपना प्रतिवेदन 1999 में प्रस्तुत किया। समूह की सिफारिशों के बारे में जानने से पहले, रेपो की आधारभूत अवधारणा को समझना ज्यादा आवश्यक है।

10. **ADR's and GDRs**

American Depository Receipt (ADRs), Global Dpeository Receipts (GDPs), अभिलेखों की विशेषता जमा प्रमाण पत्र की तरह है। ये अभिलेख हस्तांतरणीय हैं तथा व्यक्तिगत रूप से क्रय विक्रय किये जाते है। स्थानीय मुद्रा, समता अंश, गैर अमेरिकी कम्पनियों द्वारा भी जारी किये जाते हैं। अप्रवासी भारतीय (NRIs) इन अभिलेखों में विनियोग करना पसन्द करते है, भारतीय कम्पनियां इनको पूंजी को बढ़ाने के लिए इस साधन को ज्यादा पसंद करती है।

लंदन के अनुसार ADR अमेरिकन स्टॉक एक्सचेंज में सूचित है तथा GDR, अमेरिकन स्टॉक एक्सचेंज को छोड़कर अन्य स्टॉक एक्सचेंज में सूचित हैं।

ADR को जारी करने की प्रक्रिया में भारतीय कम्पनी साधरण अंश को Domestic Custodian Bank को भुगतान भारत में किया जाता है जोकि Overscas Depository को निर्देश देता को ADR को पूर्वनिर्धारित अनुपात पर जारी करे।

DCB एक ऐसी कम्पनी है जो कि भारतीय कम्पनी के अंश/बान्ड जो कि Global Depository Certificate के विरूद्ध जारी किये गये को सरंक्षण में रखने का कार्य करती है।

OCB (Overseas Depository Bank) से अभिप्राय है कि बैंक जारी करने वाली कम्पनी को अधिकृत करता है कि वह बान्ड तथा अंश को Global Depository Receipt के विरूद्ध जारी कर सकती है GDR/ADR Global depository share (GDS) या American Depository Shares (ADS) का सबूत है GDRs/ADRs धारक लाभांश, बोनस अंश तथा अधिकार अंश लेने का अधिकार रखते हैं धारक अपना वोटिंग अधिकार ODB की सहायता से उपयोग कर सकते हैं इन अभिलेखों को भारत से बाहर मूलभूत स्वरूप में बेचा जा सकता है। उनके अन्तर्गत अंशों को GDRs/ADRs की विमोचन के बाद भारत में बेचा जा सकता है। अगर GDR को भारत के बाहर अप्रवासी के बेचा जाएं तो वह भारत में कर योग्य नहीं होगा। भारतीय कम्पनियों को ADRs/GDRs को जारी करने के लिए वित्त मंत्रालय, भारत सरकार से पूर्वानुमति लेने की कोई जरूरत नहीं होती।

अमेरिकन स्टॉक एक्सचेंज में अंश को सूचित करवाने के लिए लेखा नियमों तथा पूर्ण प्रकटीकरण को अनुसरण करना पड़ता है खातों को अमेरिका के लेखा नियमों के अनुसार ही बनाना पड़ना है। समूह कम्पनियों को एक इकठ्ठी आर्थिक चिठ्ठा बनानी पड़ती है। कुछ कम्पनियां जो कि ADRs की

तरफ जा रही हैं जैसे Infosys Technology, Satyam Infoway, Icici Bank, Silver Line Tech., Rediff आदि को भी नियमानुसार कार्य करना होता है।

5.10 भारतीय मुद्रा बाजार के अंग

मुद्रा बाजार में वे सभी व्यक्ति, फर्म एवं संस्थायें सम्मिलित की जाती हैं जो मुद्रा एवं मुद्रा से सम्बन्धित प्रलेखों में व्यवहार करती हैं। इन संस्थाओं को एक ओर विभिन्न स्त्रोतों से मुद्रा की पूर्ति होती रहती हैं तथा दूसरी ओर विभिन्न संस्थायें, संगठन व व्यक्ति उनसे उधार लेते रहते हैं। इस प्रकार ये संस्थायें बचतकर्ता एवं ऋणियों के बीच एक मध्यस्थ का कार्य करती है। मुद्रा बाजार के क्रिया–कलापों में संलग्न व्यक्तियों, फर्मो व संस्थाओं को मुद्रा बाजार के अंगों अथवा घटकों की संज्ञा दी जाती है।

मुद्रा बाजार के अंगों का निम्नलिखित तीन आधारों पर वर्गीकरण किया गया है–

I. व्यक्तियों के आधार पर,
II. संगठन के आधार पर तथा
III. उप–बाजारो के आधार पर।

भारतीय मुद्रा बाजार के घटकों (अंगों) का वर्गीकरण

- व्यक्तियों के आधार पर
  - ऋणदता
  - ऋणी
- संगठन के आधार पर
  - संगठित क्षेत्र
  - असंगठित क्षेत्र
- उप–बाजारों के आधार पर
  - मॉग मुद्रा बाजार
  - खजाना बिल बाजार
  - व्यावसायिक बिल बाजार
  - अन्य बाजार

I. जमा प्रमाण पत्र
II. व्यापारिक पेपर
III. मियादी जमा

i. व्यक्तियों के आधार पर वर्गीकरण

मुद्रा बाजार में संलग्न व्यक्तियों के आधार पर मुद्रा बाजार को दो भागों–ऋणदाता तथा ऋणी में बॉटा जा सकता है। जो व्यक्ति या संस्थायें उधार देय कोषों की पूर्ति करती है, उन्हें ऋणदाता कहा जाता है। इनके विपरीत अधार देय कोषों की मॉग करने वाली संस्थाओं तथा व्यक्तियों को ऋणी की संज्ञा दी जाती है।

ii. संगठन के आधार पर वर्गीकरण

संगठन के आधार पर भारतीय मुद्रा
बाजार को दो प्रमुख अंगों में वर्गीकृत किया जाता है। ये दो प्रमुख अंग है–

A. संगठित क्षेत्र तथा

B. असंगठित क्षेत्र। इन दोनों भागों का संक्षिप्त वर्णन अग्रांकित है :

a) संगठित क्षेत्र – भारतीय मुद्रा बाजार के संगठित क्षेत्र में वे समस्त मौद्रिक व वित्तीय संस्थायें शामिल की जाती हैं जिन पर रिजर्व बैंक का नियन्त्रण होता है। ये संस्थायें, भारत सरकार तथा रिजर्व बैंक से प्राप्त दिशा–निर्देशों के अनुसार अपनी कार्य–प्रणाली एवं रीति–नीति निर्धारित करती है।

संगठित एवं असंगठित क्षेत्र के आधार पर वर्गीकृत विभिन्न अंगों को एक साथ निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है–

अतः इनकी समस्त क्रियाये उचित वैधानिक एवं वांछनीय होती है। इस भाग में मुख्यतः निम्नलिखित संस्थायें सम्मिलित को जाती है :

1. भारतीय रिजर्व बैंक
2. वाणिज्य बैंक – वाणिज्य बैंकों को दो भागों में बांटा जा सकता है – (अ) सार्वजनिक क्षेत्र तथा (ब) निजी क्षेत्र के बैंक। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में स्टेट बैंक समूह 19 राष्ट्रीयकृत बैंक तथा 196 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक शामिल है। निजी क्षेत्र में 24 अनुसूचित बैंक तथा 3 गैर–अनुसूचित बैंक हैं।
3. सहकारी बैंक एवं संस्थायें – इसके अन्तर्गत राज्य स्तरीय सहकारी बैंक राज्य भूमि विकास बैंक, केन्द्रीय सहकारी बैंक तथा प्राथमिक कृषि साख समितियॉ सम्मिलित की जाती हैं।
4. अन्य वित्तीय संस्थायें – संगठित मुद्रा बाजार में अन्य संस्थायें भी कार्यरत हैं जिन्हें दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है – सार्वजनिक व निजी क्षेत्र।

I. सार्वजनिक भारतीय मियादी ऋणदात्री संस्थाये–

A. अखित भारतीय मियादी ऋणदात्री संस्थायें–

1. भारतीय औद्योगिक विकास बैंक
2. नाबार्ड
3. भारतीय औद्योगिक ऋण एवं निवेश निगम
4. भारतीय औद्योगिक वित्त निगम
5. भारतीय निर्यात–आयात बैंक
6. भारतीय औद्योगिक पुनर्निर्माण बैंक
7. राष्ट्रीय आवास बैंक

B. राज्य स्तरीय संस्थाये–

8. राज्य वित्तीय निगम
9. भारतीय लघु उद्योग विकास निगम

C. निवेश संस्थाये–

10. भारतीय जीवन बीमा निगम
11. सामान्य बीमा निगम और सहायक संस्थाएँ

D. अन्य संस्थायें–

12. निक्षेप बीमा और प्रत्यय गारण्टी निगम

13. निर्यात ऋण गारण्टी निगम

II. निजी क्षेत्र की अन्य संस्थायें

1. चिट–फण्ड कम्पनियॉ
2. किराया क्रय कम्पनियॉ
3. विनियोग कम्पनियॉ
4. निगम तथा अन्य संस्थायें।

b) असंगठित क्षेत्र भारतीय मुद्रा बाजार का एक बहुत बड़ा घटक अभी तक असंगठित है। इस भाग में देशी बैंकर, साहूकार, महाजन आदि आते है। इन पर भारतीय रिजर्व बैंक का कोई नियन्त्रण नहीं है। इनको कार्य–प्रणाली दोषपूर्ण एवं अवैधानिक है।

iii. उप–बाजारों के आधार पर वर्गीकरण

भारतीय मुद्रा बाजार में विद्यमान उप–बाजारों के आधार पर भी इसका वर्गीकरण किया जा सकता है। भारतीय मुद्रा बाजार में अग्रलिखित उप–बाजारों का अस्तित्व है–

1. मॉग मुद्रा बाजार – मुद्रा बाजार के इस भाग में अति अल्प सूचना पर मुद्रा के लेन–देन के सौदे होते है। इस बाजार से लिये गये ऋणों का तत्काल एवं मॉग पर भुगतान करना पड़ता है। इस बाजार में मुख्यतः व्यापारिक बैंक ऋण देते हैं और शेयर बाजार तथा सट्टा बाजार के दलाल, आयातक–निर्यातक फर्मे आदि ऋण लेते हैं।
2. खजाना बिल बाजार – इस बाजार में अल्पावधि सरकारी प्रतिभूतियॉ (सामान्यतः 182 दिवसीय खजाना बिलों) की खरीद और बिक्री होती है। रिजर्व बैंक अपनी खुले बाजार की क्रियाओं द्वारा साख का नियन्त्रण इसी बाजार के माध्यम से करती है। वाणिज्य बैंक अपने अपने आधिक्य कोषों का इस बाजार में विनियोजन करते हैं इससे उनके कोषों की तरलता बनी रहती है।
3. व्यावसायिक बिल बाजार – मुद्रा बाजार के इस भाग में मुख्य रूप से अल्पावधि व्यापारिक बिलों की कटौती एवं पुनर्कटौती के आधार पर कोषों का लेन–देन होता है। भारत में व्यावसायिक बिलों का चलन बहुत कम है। अतः मुद्रा बाजार का यह भाग अभी तक पूरी तरह विकसित नहीं पाया है।
4. अन्य बाजार – भारतीय मुद्रा बाजार में कुछ अन्य घटक भी है, जैसे – जमा प्रमाण–पत्र, व्यापारिक पेपर, मियादी जमा इत्यादि। लेकिन अभी तक इन बाजार–घटकों का पर्याप्त विकास नहीं हुआ।

5.11 सारांश

- मुद्रा बाजार वह क्षेत्र या स्थान या केन्द्र है जहॉ अल्पकालीन कोष या मौद्रिक सम्पत्तियों का क्रय–विक्रय होता है।
- मुद्रा बाजार का प्रमुख उद्देश्य अल्पकालीन तरलता सन्तुलन में आने वाले रूकावटों को दूर करना है जिससे की अर्थव्यवस्था में मुद्रा का प्रवाह बना रहे।
- ट्रेजरी बिल, व्यापारिक पत्र, जमा प्रमाण पत्र, विनिमय बिल, ए0डी0आर0 / जी0डी0आर0 आदि मुद्रा बाजार के महत्वपूर्ण प्रपत्र है।
- भारतीय मुद्रा बाजार को व्यक्तियों, संगठनो और उप–बाजारों के आधार पर विभिन्न भागो मे वर्गीकृत किया जा सकता है।

5.12 शब्दावली

REPO : Repurchase Agreement (पुनः क्रय अनुबंध)

5.13 बोध प्रश्न

रिक्त स्थानो की पूर्ति कीजिये।

1) मुद्रा बाजार वह क्षेत्र या केन्द्र हैं जहॉ अल्पकालीन कोष या मौद्रिक संपत्तियों का .... होता है।
2) भारत में इस समय 14 दिन, 91 दिन, 182 दिन, 365 दिन के .... जारी किये गये है।
3) मॉग या याचना मुद्रा, मुद्रा बाजार का ऐसा उपकरण है जिसमें 1 दिन से लेकर .... दिन तक ऋण लिया–दिया जाता है।
4) संगठन के आधार पर मुद्रा बाजार को दो भागों, क्रमशः .... में बॉटा जा सकता है।
5) भारतीय कम्पनियो को ए0डी0आर0/जी0डी0आर0 जारी करने के लिये सरकार की .... आवश्यकता नही होती है।

5.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क्रय–विक्रय
2. ट्रेजरी बिल
3. 14
4. संगठित एवं असंगठित क्षेत्र
5. पूर्वानुमति

5.15 स्वपरख प्रश्न

1) मुद्रा बाजार से क्या आशय है ? इसके कार्यो एंव उद्देश्यों को बताइये।
2) मुद्रा बाजार के प्रमुख प्रपत्रों का वर्णन करे।
3) भारतीय मुद्रा बाजार की गुण दोषो की व्याख्या कीजिये।
4) भारतीय मुद्रा बाजार के विभिन्न अंगों का विस्तृत व्याख्या कीजिये।
5) भारतीय मुद्रा बाजार के दोषो को दूर करने हेतु सुझाव दीजिये।

5.16 सन्दर्भ पुस्तकें

- सेठी, टी0टी0 (2015), मुद्रा बैंकिंग एवं लोक वित, आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिसर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- गुप्ता, शान्ति के0 और अग्रवाल, निशा, इंडियन फाइनैन्शियल सिस्टम्स, कल्याणी पब्लिसर्स, 2016।
- प्रतियोगिता दर्पण, जुलाई 2016।
- इंडियन इकोनोमी, जुलाई 2016।
- अग्रवाल, दीपक (2010), मुद्रा बैंकिंग, लोक वित्त एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, हिमालया पब्लिशिंग हाउस मुबई।
- बिशनोई, आर0के0, बीमा के सिद्धांत, साहित्य भवन पब्लिसर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा।
- श्रीवास्तव, आर0एम0 और निगम, दिब्या मैनेजमैन्ट ऑफ इंडियन फाइनैन्शियल इंस्टीट्यूशन्स
- विभिन्न इंटरनैट साइट्स।
- जैन, टी0आर0 इंडियन फाइनैन्शियल सिस्टम्स, वी0के0 ग्लोबल पब्लिकेशन्स और खन्ना, ओ0पी0, प्राईवेट लिमिटेट, 2014–15।

इकाई – 6 पूँजी बाजार

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
6.2 पूँजी बाजार का अर्थ एवं परिभाषा
6.3 पूँजी बाजार का महत्व एवं कार्य
6.4 भारतीय पूँजी बाजार की संरचना
6.5 पूँजी बाजार के उपकरण
6.6 पूँजी बाजार के अवयव
 6.6.1 नया निर्गमन बाजार या प्राथमिक बाजार
 6.6.2 स्टाक मार्केट या गौण बाजार
 6.6.3 प्राथमिक तथा सहायक (गौण) बाजार में अंतर
6.7 प्रतिभूतियों का विपणन
6.8 प्रतिभूति क्रेताओं का वर्गीकरण
6.9 प्रतिभूतियों का सूचीयन
6.10 भारतीय पूँजी बाजार के प्रमुख दोष
6.11 पूँजी बाजार के दोषों को दूर करने के उपाय
6.12 सारांश
6.13 शब्दावली
6.14 बोध प्रश्न
6.15 बोध प्रश्नों के उत्तर
6.16 स्वपरख प्रश्न
6.17 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- पूँजी बाजार के अर्थ एवं परिभाषा की व्याख्या कर सकें।
- पूँजी बाजार के महत्व एवं कार्य का वर्णन कर सके।
- पूँजी बाजार की संरचना को समझ सके।
- पूँजी बाजार के अवयवों की विस्तृत व्याख्या कर सके।
- प्रतिभूतियों के विपणन और सूचीयन को समझ सके।
- प्रतिभूति क्रेताओं का वर्गीकरण कर सके।
- प्रतिभूति बाजार के प्रमुख दोषों और दोषो को दूर करने के उपायों की व्याख्या कर सकें।

6.1 प्रस्तावना

वित्तीय बाजार शब्द ऐसे संस्थागत प्रबन्धों से सम्बन्धित है जिसके अन्तर्गत दीर्घकालीन निधियों का उधार लेने एवं देने में सहायता की जाती है। विस्तृत रूप से, यह माध्यमों की एक ऐसी श्रृंखला होती है जिसके अन्तर्गत समुदाय की बचतों को औद्योगिक एवं वाणिज्यिक उद्यमों एवं सार्वजनिक प्राधिकारियों के लिए उपलब्ध करवाया जाता है। यह उन निजी व्यक्तिगत एवं निगम

बचतों से सम्बन्धित होता है जिन्हें नई पूँजी निर्गमन एवं सरकारी एवं अर्धसरकारी बॉड के द्वारा प्रवाहित किए गए नये सार्वजनिक ऋणों के द्वारा निवेश में बदला जा सकता है।

इस इकाई में आप पूँजी बाजार का अर्थ, पूँजी बाजार का महत्व, पूँजी बाजार की संरचना व प्रतिभूति बाजार के प्रमुख दोषों और दोषो को दूर करने के उपायों की विस्तृत अध्ययन करेंगे।

6.2 पूँजी बाजार का अर्थ एवं परिभाषा

साधारण बोलचाल की भाषा में बाजार शब्द का अर्थ उस स्थान या क्षेत्र विशेष से होता है जहॉ केता तथा विकेता पारस्परिक सौदेबाजी के आधार पर वस्तुओं का क्रय–विक्रय करते है। इसी प्रकार पूँजी बाजार शब्द का अर्थ उस स्थान या क्षेत्र विशेष से होता है जहॉ मुद्रा के केता और विकेता मुद्रा में मध्यम एवं दीर्घकालीन पारस्परिक सौदे करते है। दूसरे शब्दों में, जहॉ मध्यकालीन एवं दीर्घकालीन प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय किया जाता है वह पूँजी बाजार कहलाता है।

इन प्रतिभूतियों के अनतर्गत पूर्वाधिकार अंश, बोनस, बॉण्ड, ऋणपत्र जिसमें परिवर्तनशील एवं गैर–परिवर्तनशील ऋणपत्र प्रमुख हैं– केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों की प्रतिभूतियॉ, अधिकार निर्गमन अंश, पारस्परिक कोष, यू0 टी0 आई0 की यूनिटें, बचतें बीमा प्रीमियम, जोखिम पूँजी, लीजिंग या पट्टा वित्त, बन्धक ऋण, विभिन्न प्रकार के ऋण आदि को शामिल किया जाता है।

एक पूँजी बाजार को एक संगठित प्रविधि के साथ में परिभषित किया जा सकता है ताकि प्रभावी एवं कुशल तरीके से मुद्रा पूँजी या वित्तीय संसाधनों का निवेशकर्ताओं जैसे कि व्यक्तियों या संस्थागत बचतकारों, से उद्यमियों को उद्योग या वाणिज्य के व्यापार में लगे हैं चाहे वे अर्थव्यवस्था के निजी क्षेत्र में हैं या सार्वजनिक क्षेत्र में स्थानान्तरित किया जा सकता है।

6.3 पूँजी बाजार का महत्व एवं कार्य

आर्थिक विकास के लिए कुशल पूँजी बाजार का होना अत्यन्त आवश्यक है। खुले बाजार अर्थव्यवस्था में परिचालित हो रहा संगठित एवं पूर्ण विकसित पूँजी बाजारः

1. जहां एक तरफ बचतों के प्रवाह के मध्य समन्वय एवं सन्तुलन को निश्चित करता है वहीं दूसरी तरफ निवेश के प्रवाह के द्वारा पूँजी निर्माण को सुनिश्चित करता है।
2. बचतों के प्रवाह को लाभदायक माध्यमों में निर्देशित करता है। एवं यह निश्चित करता है। एवं यह निश्चित करता है कि वित्तीय संसाधनों का सन्तुलन का सन्तुलन बिन्दु तक प्रयोग हो रहा है।

इस प्रकार आदर्श मुद्रा बाजार एक ऐसा स्थान है जहॉ पर वित्त को एक प्रमुख सहायक के रूप में प्रयोग किया जाता है ताकि उद्योग की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके। वित्त उचित प्रत्याय की दरों पर किसी भी प्रस्ताव के लिए उपलब्ध होता है जिससे कि लिए गए उधार पर सही प्रतिफल प्राप्त होता है। यह सब बचतों के विकास मध्यस्थ संस्थानों के उचित संगठन एवं लोगों के उद्यमिता गुणों पर निर्भर करता है। पूँजी बाजार को, पूँजी की गतिशीलता को उस बिन्दु तक पहुॅचाने में सहायता करनी चाहिए, यहां पर उच्चतम प्रतिफल प्राप्त हो।

पूँजी बाजार देश की अर्थव्यवस्था मं दीर्घकालीन निवेशों को प्रभावित करने में विशिष्ट भूमिका निभाता है। यह दीर्घकालीन विनियोगकर्ताओं तथा दीर्घकालीन उधारकर्ताओं के बीच सेतु का कार्य करता है। इसमें कार्यरत संस्थाये विभिन्न प्रपत्रों अथवा उपकरणों के माध्यम से मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन विनियोगों को सम्पन्न करती है। इस बाजार में व्यक्तियों तथा वित्तीय संस्थाओं द्वारा

उत्पादकों, उद्योगपतियों, व्यवसायियों को मध्यमकालीन तथा दीर्घकालीन कोष उपलब्ध कराया जाता है। पूॅजी बाजार के महत्व एवं कार्य को निम्नांकित बिन्दुओं को व्यक्त किया जा सकता है :

1. आय प्राप्त होना – पूॅजी बाजार में बचतकर्ताओं को दीर्घकालीन निवेश का अवसर प्राप्त होता है, फलस्वरूप लाभांश अथवा ब्याज के रूप में प्रतिफल प्राप्त होता है।
2. पूॅजी निर्माण – पूॅजी बाजार के माध्यम से पूॅजी निर्माण होता है, फलस्वरूप आर्थिक विकास में मदद मिलती है।
3. सुरक्षित निवेश – पूॅजी बाजार विनियोगकर्ताओं को विस्तृत बाजार तन्त्र प्रदान करता है, फलस्वरूप सुनियोजित तथा सुरक्षित निवेश के अवसर प्राप्त होते है।
4. कम जाखिम में अधिक लाभ – एक सृदृढ़ पूॅजी बाजार मध्यस्थ संस्थाओं के लिये वरदान सिद्ध होता है, जहां सुस्थिर मूल्यों में प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय होता है तथा इन संस्थाओं को कम जोखिम में अधिक मुनाफा होता है।
5. मौद्रिक स्थिरता – पूॅजी बाजार वित्तीय मध्यस्थ संस्थाओं पर केन्द्रीय बैंक के नियन्त्रण को प्रभावी बनाता है। फलस्वरूप मौद्रिक उतार–चढ़ाव में स्थिरता बनायी रखी जा सकती है।
6. आर्थिक विकास को प्रोत्साहन – विकसित पूॅजी बाजार आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करता है। पूॅजी बाजार की वित्तीय संस्थायें अपनी सक्रियता से विकास की दिशा निर्धारित करती है।

6.4 भारतीय पूॅजी बाजार की संरचना

भारत में पूॅजी बाजार को दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है संगठित एवं असंगठित। किसी भी पूॅजी बाजार का ढॉचा दीर्घकालीन पूॅजी की आपूर्ति एवं स्त्रोतों की मांग पर बनी होती है। पूॅजी बाजार के संगठित क्षेत्र में दीर्घकालीन पूॅजी की मांग निगम उद्यमों, सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों, सरकारी एवं अर्ध सरकारी संस्थानों से आती है। कोषों की आपूर्ति के स्त्रोतों में व्यक्तिगत निवेशक, निगम एवं संस्थागत निवेशक, निवेश मध्यस्थ, वित्तीय संस्थान, वाणिज्यिक बैंक एवं सरकार शामिल होते है।

भारत में अभी तक संगठित क्षेत्र का पूॅजी बाजार अविकसित है जिसके मुख्य कारण इस प्रकार से है।

1. कृषि मुख्य व्यवसाय है, जो कि अपने लिए प्रतिभूतियों में प्रवाह को उधार नहीं लेना चाहता।
2. विदेशी व्यावसायिक गृहों ने प्रतिभूति बाजार की वृद्धि पर जोरदार आघात किया है।
3. प्रबंध संस्था प्रणाली भी पूॅजी बाजार के अविकास के लिए उत्तरदायी हे क्योंकि प्रबंध संस्था प्रणाली प्रवर्तक एवं प्रतिभूतियों की विपणता, दोनों ही कार्य करती है।
4. व्यक्तियों की निवेश आदतें।
5. विभिन्न वित्तीय संस्थानो की निवेश पद्धति पर प्रतिबन्ध ।

पूॅजी बाजार के असंगठित क्षेत्र में देशी बैंक एवं निजी उधार देने वाले है। असंगठित मुद्रा बाजार में मॉग कृषकों, आम व्यक्तियों जो कि उपभोग के लिए उधार लेते है ताकि उत्पादन के लिए एवं छोटे व्यापारियों के द्वारा पैदा की जाती है। मुद्रा–पूॅजी आपूर्ति, उधार देने वालों के अपने संसाधनों के द्वारा ही पूरी की जाती है एवं यह उनकी आवश्यकताओं से कम होती है।

6.5 पूॅजी बाजार के उपकरण (प्रपत्र)

पूँजी बाजार में विभिन्न प्रतिभूतियों या उपकरणों के माध्यम से लेन–देन होता है। ये उपकरण अलग–अलग प्रकार के होते है। इनकी परिपक्वता की अवधि, ब्याज दर, लाभांश दर, स्वामित्व, मतदान का अधिकार आदि भी अलग–अलग होता है। पूँजी बाजार के उपकरण निम्नलिखित हैं –

1. निगमीय स्टॉक – निगमीय स्टॉक के अन्तर्गत पूर्वाधिकार अंश, बोनस अंश, अधिकार अंश, स्टॉक, बॉण्डस, ऋणपत्र, सार्वजनिक क्षेत्र के बॉण्ड आदि को शामिल किया जाता है।
2. सरकारी प्रतिभूतियॉ – केन्द्र, राज्य एवं स्थानीय संस्थाओं द्वारा सरकारी बॉण्ड, प्रतिभूतियॉ, ऋणपत्र निर्गमित किये जाते हैं। साथ ही परिवर्तनीय, गैर–परिवर्तनीय ऋणपत्र, डीप डिस्काउण्ट, दुर्घटना बीमा आदि नये निर्गम भी पूँजी बाजार में आये है। ये प्रतिभूतियॉ दीर्घकालीन होती हैं, जिन्हे व्यक्ति, बैंक, वित्तीय संस्थायें क्रय करती है।
3. बन्धक ऋण – यह एक ऐसा उपकरण है, जिसके द्वारा गृह, प्लाट, जमीन, फार्म हाऊस, व्यवसाय आदि क्रय करने के लिए जमानत के आधार पर ऋण दिया जाता है। ऋण देने वाली संस्थायें व्यापारिक बैंक, गृह निर्माण संस्थायें, बीमा कम्पनियॉ, वित्तीय कम्पनियॉ आदि स्थायी स्थायी सम्पत्ति के बन्धक पर ऋण प्रदान करने का कार्य करती है।
4. आधारभूत संरचना बॉण्ड – पूँजी बाजार में आधार–भूत संरचना के लिए निर्गमित किये जाने वाले बॉण्ड्स अधिक लोकप्रिय है। ये बॉण्ड्स कर बचत योजना के अन्तर्गत जारी किये जाते है। कई वित्तीय निगमों द्वारा इस प्रकार के बॉण्ड्स जारी किये जाते है। इन निगमों में ICICI, IDBI, NABARD बैंक एवं निगम मुख्य है।
5. उपभोक्ता एवं वाणिज्यिक ऋण – पूँजी बाजार में बड़े पैमाने पर उपभोक्ताजन्य वस्तुओं के लिये ऋण उपलब्ध कराये जाते है। ये उपभोक्ताजन्य वस्तुयें कार, मोटर साइकिल, स्कूटर, टी0 वी0, फ्रिज, एयर कण्डीशनर, होम थियेटर, वी0 सी0 आर0 डी0 एंव अन्य इलेक्ट्रॉनिक्स वस्तुये आदि होती है। इसी प्रकार व्यापारियों द्वारा अपने व्यवसाय की आवश्यकता के लिए वाणिज्यिक ऋण लिया जाता है। ये दोनों प्रकार के ऋण उपकरण मध्यकालीन वित्त से सम्बन्धित है।
6. नये उपकरण – पूँजी बाजार में कुछ नये उपकरणों का प्रवेश हुआ। वर्ष 1992 के पश्चात् नये सुधारात्मक वित्तीय उपकरण जैसे कि परिवर्तनशील पूर्वाधिकारी अंश, सुरक्षित प्रीमियम बॉण्ड्स, वारन्ट, जीरो कूपन बॉण्ड्स, डीप डिस्काउण्ट बॉण्ड, डिस्काउण्ट बॉण्ड्स, फ्लेक्सी बॉण्ड्स, लॉयल्टी कूपन, रेग्लूलर इनकम बॉण्ड, मनी मल्टीप्लयर बॉण्ड, फ्योटिंग रेट बॉण्ड आदि जारी हुए है।

6.6 पूँजी बाजार के अवयव

पूँजी बाजार के प्रमुख दो अवयव निम्नलिखित है

1. नया निर्गमन बाजार या प्राथमिक बाजार
2. स्टॉक मार्केट या गौण बाजार

6.6.1 नया निर्गमन बाजार या प्राथमिक बाजार

नया निर्गमन बाजार, प्राथमिक बाजार को प्रस्तुत करता है जहां नई प्रतिभूतियां जैसे कि अंश या बॉण्ड, जिन्हें पहले कभी भी निर्गमित किया होता है को आफर किया जाता है। नई कम्पनियां एवं स्थापित कम्पनियां दोनो ही नये निर्गमन बाजार से पूँजी ले सकते है। नये निर्गमन बाजार का मुख्य कार्य निवेशकों से उद्यमियों को कोषों का हस्तान्तरण करना है जो कि अपने नये निगम उद्यमों

को स्थापित करना चाहते हैं या विस्तार, वृद्धि या आधुनिकीकरण करने जा रहे है। निगम उद्यमों को उनके कोषों को प्राप्त करने में सहायता के अतिरिक्त ये नये निर्गमन बाजार, व्यक्तियों एवं दूसरे लोगों की बचतों को निवेश के लिए लगाते है।

इस बाजार के दो हैं आपूर्ति एवं मॉग, जो कि निर्गमन कम्पनियों एवं निवेशको द्वारा प्रस्तुत जाते है। परन्तु नये निर्गमन बाजार का संगठन विशिष्ट अभिकरणों मध्यस्थों एवं संस्थाओं के बिना अधूरा होता है जो कि नई प्रतिभूतियों को निर्गमित करते है एवं उन्हें बेचने, हस्तान्तरण एवं अभिगोपन आदि में सहायता करते है। इन एजेन्सियों में वित्तीय संस्थान, अभिगोंपक, दलाल एवं मर्चेन्ट बैंकर आदि शामिल होते है।

जैसे कि नया निर्गमन बाजार दीर्धकालीन निवेशों के प्रवाह के प्रवाह को निर्देशित करता है देश के आर्थिक विकास एवं औद्योगिक विकास के लिए इसका सर्वाधिक महत्व है। बहुत हद तक, वित्तीय संसाधनों की निगम उद्यमों के लिए उपलब्धता देश की नये निर्गमन बाजार की साख पर निर्भर करती है।

यहां इस बात पर ध्यान अवश्य देना चाहिए कि चाहे नये निर्गमन बाजार के कार्य एवं संगठन, द्वितीय बाजार से बिल्कुल भिन्न है परन्तु स्टाक बाजार के नये बाजार की क्रियाओं को काफी हद तक प्रभावित करते है स्कन्ध बाजार ज्यादा सेन्सीटिव होता है एवं वह देश के आर्थिक, राजनितिक एवं व्यावसायिक बदलावों का शीघ्रता से इस पर प्रभाव पड़ता है। यह नये निर्गमित बाजार को भी प्रभावित करता है इन दोनों बाजारो की क्रियाओं के ऐतिहासिक अध्ययन से यह पता चलता है जब भी स्टाक बाजार में तेजी आती है, तब नये निर्गमन बाजार में भी क्रियाओं की मात्रा बढ़ जाती है।

ऐसा बाजार जहॉ पर नये अंशों ऋणपत्रों, बाण्ड्स एवं प्रतिभूतियो का क्रय–विक्रय विपणन व संचालन होता हो उसे नया निर्गमन बाजार अथवा प्राथमिक बाजार कहा जाता है। अतः स्पष्ट है कि यह वह बाजार है जहॉ प्रतिभूतियॉ प्रारम्भिक रूप से विनियोग करने वाले व्यक्ति या निवेशक को आवण्टन के लिए उपलब्ध होती है। सामान्यतः यह बाजार प्रारम्भिक जन प्रस्ताव या नया निर्गमन बाजार के नाम से निवेशकों में प्रचलित है।

कार्य प्रणाली – नये निर्गमन बाजार में दो प्रकार के प्रस्ताव आते है– नये पूॅजी प्रस्ताव, दूसरा नगद प्रस्ताव। नया निर्गमन बाजार में केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार एवं स्थानीय सरकार तथा अर्द्ध सरकारी निगम, कम्पनियॉ, अपने नगद प्रस्ताव प्रस्तुत करती है। ये प्रस्ताव समता व पूर्वाधिकारी अंश, ऋणपत्र बॉण्ड्स, बोनस, जमा, ऋण निगम, विकास प्राधिकरण, पोर्ट ट्रस्ट, सुधार प्रन्यास, राज्यों के विद्युत मण्डल आदि आते है, के द्वारा जारी की गई प्रतिभूतियॉ नगद प्रस्ताव के रूप में प्राथमिक बाजारों में प्रस्तुत की जाती है।

नये निर्गमन बाजार में अभिगोपक संस्थानों द्वारा प्रत्यक्षतीर पर भाग लिया जाता है। इन संस्थाओं में IDBI ICICI IFCI जैसे विकास निगम, जीवन बीमा निगम, सामान्य बीमा निगम, यू0 टी0 आई0 विनियोग निगम आदि प्रमुख है। ये वित्तीय संस्थायें या तो अभिगोपक के रूप में या सीधें विनियोग द्वारा कार्य करती है। व्यापारिक बैक एवं अंश दलाल भी नये निर्गमन के कार्य करते है। कुछ व्यापारिक बैंको ने मर्चेन्ट बैंकर्स की हैसियत से नये निर्गमन में व्यापार प्रारम्भ किया है। इन बैंकों में स्टेट बैंक आफ इण्डिया का नाम उल्लेखनीय है। नये निर्गमन बाजार मे ंदलालों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। ये दलाल व्यक्तिगत, अंशों के आवंटन, वितरणकर्ता के रूप में अपनी सेवाये प्रदान करते है।

प्राथमिक बाजार में सार्वजनिक निर्गमन के अभिगोपन का कार्य कोई एक संस्था या संयुक्त रूप में भी किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में उप–अभिगोपकों की नियुक्ति भी की जा सकती है कुछ संस्थागत वित्तीय संस्थाये, विनियोग ट्रस्ट आदि उप–अभिगोपक के रूप में कार्य करते हैं किन्तु सेबी के अनुसार अभिगोपक को ऐच्छिक माना गया है। अंशों एंव ऋणपत्रों पर अभिगोपन कमीशन 2.5 प्रतिशत तथा दलाली 1 प्रतिशत से 1.5 प्रतिशत तक होती है। यदि निर्गमन की पूरी राशि प्राप्त हो जाये तो यह कमीशन एंव दलाली की राशि प्राप्त हो जायेगी अन्यथा अभिगोपकों को अनुपातिक तौर पर स्वयं अंशों व ऋणपत्रों को क्रय करना पड़ेगा।

<u>नये निर्गमन बाजार के कार्य</u>

इसका प्रमुख कार्य बचतकर्ता से उपयोगकर्ता के बीच बचतों का हस्तान्तरण करना है। साथ ही यह बाजार कम्पनियों को अपनी पूॅजीगत व्ययों की आवश्यकता पूर्ति के लिए कोष में वृद्धि का स्थान उपलब्ध कराता है तथा विद्यमान निजी कम्पनियों को सार्वजनिक कम्पनी में परिवर्तन की सुविधा भी देता है

नये निर्गमन बाजार के कार्यो को तीन भागों में बॉटा जा सकता है–

1. प्रारम्भिक कार्य,
2. अभिगोपन सम्बन्धी कार्य एवं
3. वितरण सम्बन्धी कार्य

इनका विस्तृत वर्णन इस प्रकार से किया गया है :

1. प्रारम्भिक कार्य

नये निर्गमन बाजार में सारे कार्य संस्थागत मध्यस्थों के द्वारा किये जाते है। प्रारम्भिक कार्यो को निम्नानुसार बॉटा जा सकता है–

1. प्रारम्भिक अनुसंधान – निर्गम निकालने वाली या निर्गम प्रायोजित करने वाली कम्पनी के सम्बन्ध में प्रारम्भिक छानबीन करना आवश्यक होता है। ऐसी कम्पनियॉ के विषय में उनकी आर्थिक एवं वित्तीय सुदृढ़ता, उनकी तकनीकी योग्यता, उनकी वैधानिक स्थिति आदि की जॉच की जाती है।
2. निर्गमन सम्बन्धी सेवाये प्रदान करना – पूॅजी निर्गमन के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की जानकारी एकत्र की जाती है। नये निर्गमन बाजार आपनी सेवायें देकर जानकारी एकत्र करने में सहायता पहुॅचाते है। नये निर्गमन के सम्बन्ध में निम्न जानकारी एकत्र की जाती है।

I. निर्गमन का प्रकार एवं उसका मूल्य निर्धारण
II. निर्गमन का समय एवं प्रवर्तन की तकनीक
III. विक्रय तकनीक
IV. विज्ञापन एजेन्सियों का चुनाव
V. प्रतियोगिता
VI. बाजार की दशाएॅ, एवं
VII. देश की राजनैतिक व आर्थिक स्थिति।

उपयुक्त जानकारी एकत्र करके ही निर्गमन का निर्णय लिया जाता है किन्तु कोई भी प्रायोजक या कम्पनी या संस्था स्वयं के बल पर निर्गमन का दायित्व नहीं उठा सकती। उसे अन्य

एजेन्सियों की आवश्यकता पड़ती है जो निर्गमन को सफल बनाये एंव गारण्टी प्रदान करे। इस सम्बन्ध में अभिगोपकों की सेवायें ली जाती है।

2. अभिगोपन सम्बन्धी कार्य

निर्गमन बाजार में नयें निर्गमन की सफलता सन्देहजनक रहती है। यदि अभिदान कम हो तो संचालकगण आंवटन की कार्यवाही नहीं करते और न्यूनतम अभिदान होने पर आवेदन–पत्र की राशि आवेदकों को लौटायी जाती है। यदि अभिदान न्यूनतम से भी कम हो तो निर्गमन असफल माना जाता है।

अभिगोपक जनता द्वारा प्रतिभूति क्रय न करने की दशा में स्वयं क्रय करने की गारण्टी देते है। यदि प्रतिभूतियॉ क्रय कर ली जाती हैं तो उन्हें निर्धारित कमीशन मिलता है।

भारत में अभिगोपन कार्य कई संस्थाएँ कर रही है इनमें LIC, UTI, IDBI, ICICI, IFCI प्रमुख हैं। इन संस्थाओं द्वारा अभिगोपन कार्य में वित्तीय समस्या हल की जाती है। कुछ विशेष परिस्थितियों में इन संस्थाओं द्वारा अभिगोपन को प्राथमिकता दी जाती है, जैसे कि बड़े निर्गमन होने पर, प्रोजक्ट कमजोर हो, प्रोजक्ट ग्रामीण व पिछड़े हुए क्षेत्र में हो, यदि उचित प्रतिफल प्राप्त होने की सम्भावना न हो, बाजार के लिए नया प्रोजेक्ट के प्रवर्तकगण विशेषज्ञ न हों। इन परिस्थितियों में अभिगोपन करने वाली संस्थाओं की सहायता ली जाती है।

3. वितरण सम्बन्धी कार्य

विनियोक्ताओं को प्रतिभूतियों का विक्रय करना एक महत्वपूर्ण कार्य माना जाता है। दलाल, उप–दलाल, विक्रेता जो कि प्रतिभूति विक्रय, वितरण के विशेषज्ञ होते हैं, सम्भावित निवेशकों के साथ सम्पर्क स्थापित करते है।

6.6.2 स्टाक मार्केट या गौण बाजार

सहायक बाजार वे बाजार है जिनमें पहले से मौजूद विद्यमान प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय किया जाता है। इस बाजार को स्कन्ध बाजार भी कहा जाता है क्योंकि अंश, ऋणपत्र, बॉण्ड्स स्टॉक आदि प्रतिभूतियॉ स्कन्ध विनिमय केन्द्रों के माध्यम से ही खरीदी एवं बेची जाती है। सहायक बाजारों में भाग लेने वाले कई गैर–बैंकिंग मध्यस्थ होते है। इनमें यू0टी0आई0 जीवन बीमा, सामान्य बीमा निगम, पारस्परिक कोष, दलाल, उपदलाल, अभिगोपक, जॉबर, मर्चेण्ट बैंकर, स्कन्ध विनिमय केन्द्र, राष्ट्रीय स्कन्ध विनिमय आदि संस्थाएँ प्रमुख है। स्कन्ध विनिमय केन्द्र या स्टॉक एक्सचेंज में पूर्व निर्गमित अथवा उपलब्ध प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय किया जाता है जिसका उद्‌देश्य क्रेता एवं विक्रेता को ऐसा बाजार उपलब्ध कराना है जो कहीं और प्राप्त नहीं होता। एक प्रभावी एवं सक्रिय सहायक बाजार का अस्तित्व ही निवेशक को प्राथमिक बाजार में निवेश करने के लिए प्रोत्साहित करता है क्योंकि वह अपने निवेश को सहायक बाजार द्वारा शीघ्र एवं न्यूनतम लागत पर नकद धन में बदल सकता है। इस प्रकार स्टॉक एक्सचेंज का मूल कार्य दीर्घकालीन प्रतिभूतियों को बाजार प्रदान करना है।

प्रतिभूति विनिमय वे बाजार स्थान हैं जहॉ पर सूचीबद्ध प्रतिभूतियॉ निवेश अथवा सट्‌टे के लिए खरीदी और बेची जा सकती है।

इस परिभाषा के अनुसार प्रतिभूति विनिमय में वास्तविक निवेशक और सट्‌टेबाजी करने वाले दोनों को प्रतिभूतियों में व्यापार करने की अनुमति होती है।

प्रतिभूति प्रसंविदा अधिनियम के अनुसार,'' स्कन्ध विनिमय का आशय समामेलित या असमामेलित व्यक्तियों का एक निकाय है जो प्रतिभूतियों के क्रय, विक्रय या उनमें व्यवहार करने के

कारोबार में सहायता पहुँचाने, उसे विनियमित ओर नियन्त्रित करने के उद्देश्य से गठित किया गया हो।''

इस परिभाषा के अनुसार स्कन्ध विनिमय निश्चित नियमों एवं विनिमयों के अधीन प्रतिभूतियों में व्यवहार करने की अनुमति देता है।

हार्टले विदर्स के अनुसार,'' स्कन्ध विनिमय एक विशाल संग्रहागार की भॉति होता है जहॉ प्रतिभूतियॉ दराज से निकालकर पटल पर मूल्य सूची में दिये हुए एक निश्चित मूल्य पर, जिसे आधिकारिक सूची कहते है बेची जाती है। ''

उपर्युक्त परिभाषा में हार्टले विदर्स ने स्कन्ध विनिमय को एक संग्रहागार कहा है जहॉ सभी प्रतिभूतियॉ रखी जाती है। और उन्हे निर्दिष्ट मूल्यों पर बेची जाती है। यह हो सकता है कि प्रत्येक प्रतिभूति केवल बिक्री के लिए ही क्रय नहीं की जाती है कुद ऐसे निवेशक होते है जो भविष्य के लिए निवेश के रूप में प्रतिभूतियों का क्रय करते है।

हस्बैंड एवं डाकरे के अनुसार,'' प्रतिभूति अथवा स्कन्ध विनिमय निजी रूप से संगठित बाजार होते हैं जिनका प्रतिभूतियों मे व्यापार को सुविधाजनक बनाने के लिए प्रयोग किया जाता है।''

गौण बाजार की विशेषताए–

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि स्कन्ध विनिमय की निम्नलिखित विशेषताएँ अथवा मूल लक्षण होते है।

1. यह वह स्थान है जहॉ प्रतिभूतियों का क्रंय और विक्रय किया जाता है।
2. स्कन्ध विनिमय व्यक्तियों का ऐसा संघ है जो समामेलित हो सकता है अथवा नहीं।
3. स्कन्ध विनिमय में किए जाने वाले व्यापार का कड़ाई से नियमन किया जाता है और विभिन्न लेन–देनों के लिए निर्धारित नियम एवं विनियम होते हैं।
4. स्कन्ध विनमय में वास्तविक विनियोक्ता एवं सट्टेबाजी करने वाले दोनों ही प्रकार के निवेशक अंशों तथा ऋणपत्रों का क्रय व विक्रय करते है।
5. स्कन्ध विनिमय में निगम, प्रन्यास, सरकार, नगरपालिका निगम, आदि की प्रतिभूतियों मे व्यवहार करने की अनुमति होती है।

स्कंन्ध विनिमय के कार्य –

स्कन्ध विनिमय किसी देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते है। इनके द्वारा किये जाने वाले कार्यो से विनियमों का महत्व स्पष्ट होता है जिसका निम्न प्रकार विवेचन है:

1. पूॅजी की तरलता सुनिश्चित करना –

स्कन्ध विविमय ऐसे स्थान की व्यवस्था ऐसे तैयारी करते है जहॉ अंशों और स्कन्धों को नकद में परिवर्तित किया जाता है। स्कन्ध विनिमय ऐसे तैयारी बाजार उपलब्ध करते है जहॉ क्रेता और विक्रेता सदैव उपलब्ध रहते है। और जिन लोगों को रोकड़ की आवश्यकता होती वे अपनी प्रतिभूतियों की बिक्री कर सकते है। यदि ऐसी व्यवस्था सम्भव नहीं होती तो अनेक लोगों को प्रतिभूतियों में उनके द्वारा लगाये गये बचतों के फॅसे रहने की आशंका बनी रहती। स्कन्ध विनिमय की सुविधाओं का ही परिणाम है कि बहुत से लोग प्रतिभूतियों में निवेश करते हैं और आवश्यकता पड़ने पर उन्हे नकद में परिवर्तित करा सकते है।

2. प्रतिभूतियों के लिए अविच्छिन्न बाजार –

स्कन्ध विनिमय प्रतिभूतियों के लिए तैयार बाजार की व्यवस्था करते है। इन पर सूचीबद्ध प्रतिभूतियों का व्यापार इस बात को ध्यान में रखे बिना अनवरत चलता रहता है कि प्रतिभूतियों के स्वामित्व में परिवर्तन होते रहते है। इस प्रकार प्रतिभूति विनिमय प्रतिभूतियों का व्यापार करने के लिए एक नियमित बाजार की व्यवस्था करते है।

3. प्रतिभूतियों का मूल्यांकन –

निवेशक अपने अधिकार में रखी प्रतिभूतियों का मूल्यांकन विभिन्न स्कन्ध विनिमय में उन प्रतिभूतियों के लिए उद्धरित मूल्यों के आधार पर कर सकतें हैं। प्रतिभूतियों के मूल्यों को मॉग और पूर्ति के स्वतन्त्र वातावरण के अन्तर्गत उद्धरित किया जाता है। एवं स्वतन्त्र बाजार के आधार पर इनका मूल्य निर्धारित किया जाता है। इस प्रकार स्कन्ध विनिमय उस पर सूचीबद्ध किसी प्रकार की प्रतिभूति के मूल्यांकन में सहायक होता है।

4. अतिरेक बचतों को गतिशील करना –

स्कन्ध विनिमय विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों के लिए तैयार बाजार उपलब्ध करते है। निवेशकों को स्कन्ध विनिमयों से अंश, बॉण्ड आदि क्रय करने में अपनी बचतों का विनियोजन करने में कोई कठिनाई नहीं होती है। यदि ऐसी सुविधा उपलब्ध न हो तो बहुत से व्यक्ति जो अपनी बचतों का निवेश करना चाहते है, ऐसे सुअवसर प्राप्त करने से वंचित हो जाते। इस प्रकार, स्कन्ध विनिमय निवेशकों से आधिक्यों को एक जगह बटोरने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

5. नयी पॅूजी जुटाने में सहायक –

नये एवं विद्यमान प्रतिष्ठानों को उनकी गतिविधियो के लिए पॅूजी की आवश्यकता है। नये प्रतिष्ठान प्रथम बार पॅूजी जुटाने का प्रयास करते हैं जबकि विद्यमान इकाइयॉ अपने विस्तार तथा विविधीकरण कार्यक्रमों के लिए अपनी पॅूजी में वृद्धि करना चाहती है। नये प्रतिष्ठानों के अंशों का स्कन्ध विनिमय में पंजीयन किया जाता है एवं विद्यमान कम्पनियॉ स्कन्ध विनिमय में दलालों के माध्यम से अपने अंशों का विक्रय करती है। ये स्कन्ध विनिमय नयी और पुरानी दोनों कम्पनियों द्वारा पॅूजी के सृजनकार्य में सहायक होते है।

6. कारोबार में सुरक्षा –

स्कन्ध विनिमयों में किये जाने वाले कारोंबार प्रतिभूति प्रंसविदा अधिनियम, 1956 के स्पष्ट नियमों द्वारा शासित व नियन्त्रित होते है। यहॉ प्रत्येक प्रंसविदा अधिनियम में बतायी गयी क्रिया–विधि के अनुसार किया जाता है और इसलिए प्रसंविदा करने वाले पक्षों के मस्तिष्क में किसी प्रकार का भय नहीं रहता। कारोबार में सुरक्षा के साथ सम्बन्धित पक्षों के मस्तिष्क में आत्म–विश्वास उत्पन्न होता है और इससे और अधिक कारोबार करने में सहायता मिलती है।

7. प्रतिभूतियों का सूचीयन –

स्कन्ध विनिमयों में केवल सूचीबद्ध प्रतिभूतियों का ही क्रय और विक्रय किया जा सकता है। अपनी प्रतिभूतियों के सूचीयन के लिए इच्छुक कम्पनी को विनिमय अधिकारियों के समक्ष आवेदन करना पड़ता है। प्रतिभूतियों का सूचीयन कम्पनी की पॅूजी संरचना, प्रबन्ध तन्त्र एवॅ भावी सम्भावनाओं की समीक्षात्मक परीक्षण करने के बाद स्वीकृत किया जाता है। प्रतिभूतियों का सूचीयन कम्पनी को कुछ विशेषाधिकार प्रदान करता है। निवेशक प्रतिभूतियों के बारे में अपनी राय कायम कर सकते हैं क्योंकि किसी प्रतिभूति का सूचीयन कम्पनी की वित्तीय स्थिरता या सुदृढ़ता की गारण्टी नहीं है।

8. सार्वजनिक ऋण का मंच –

आर्थिक विकास में बढ़ती हुई सरकार की भूमिका ने बड़ी मात्रा में कोष जुटाना आवश्यक बना दिया है। स्कन्ध विनियम सार्वजनिक ऋण प्राप्त करने का एक मंच उपलब्ध करते है। ये स्कन्ध विनिमय सरकारी प्रतिभूतियों के लिए संगठित बाजार भी होते है। यद्यपि सरकारी प्रतिभूतियों के क्रय–विक्रय के लिए अलग से किसी पटल की व्यवस्था तो नही होती है, परन्तु इन प्रतिभूतियसों में कारोबार दलालों कके माध्यम से किया जाता है।

9. व्यावसायिक सूचनाओं का समाशोधन गृह –

जो कम्पनियॉ अपनी प्रतिभूतियों को सूचीबद्ध कराना चाहती हैं उन्हे अपने वित्तीय विवरण, वार्षिक रिपोर्ट और निगमीय क्रियाओं और कार्यो का अधिक से अधिक प्रचार सुनिश्चित करने के लिए अन्य रिर्पोटों को जमा करना पड़ता है। स्कन्ध विनिमय में उपलब्ध आर्थिक तथा अन्य सूचनाऍ कम्पनियों कम्पनियों को अपनी नीतियों को निर्धारित करने में सहायता पहॅुचाती है।

5.6.3 प्राथमिक बाजार तथा सहायक बाजार में अंतर –

आधार	प्राथमिक बाजार	सहायक बाजार
1 प्रकृति	सर्वथा नवीन या नए निर्गमन का बाजार।	पूर्व–निर्गमित लिस्टेड प्रतिभूतियों के क्रय–विक्रय का बाजार।
2 क्षेत्र	कोई निश्चित स्थान अथवा भौगोलिक क्षेत्र नहीं होता है।	निश्चित स्थान तथा पते पर स्थापित बाजार का स्वरूप।
3 प्रवेश	कोई भी संस्थान या कम्पनी इस बाजार में नियमानुसार प्रवेश कर सकती है।	केवल सूचीकृत कम्पनियॉ की प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय किया जाता है।
4 स्वरूप	बाजार का कोई भौतिक स्वरूप नहीं है वरन् अपनी सेवाओं से पहचाना जाता।	भली प्रकार से प्रशासित एवं संगठित भौतिक बाजार का स्वरूप।
5 नियन्त्रण	SEBI स्टॉक एक्सचेंज एवं कम्पनी अधिनियम से बाह्यरूप से प्रशासित एवं नियंत्रित बाजार।	आन्तरिक नियमावली एवं SEBI तथा Scr Act जैसी बाह्य प्रशासनिक एवं नियामक संस्थाऍ।
6 उद्देश्य	निवेशक अपनी बचत को प्रत्यक्ष रूप से प्रतिभूतियों में लाभ कमाने के उद्देश्य से निवेश करता है।	निवेशक अपनी वर्तमान होल्डिंग को तरलता के लिए बेचता है।
7 क्रिया	औद्योगिक वित्त कोष प्राप्त करना मौलिक क्रिया होती है।	स्वामित्व का हस्तांतरण मूल क्रिया होती है।

6.7 प्रतिभूतियों का विपणन

नई एवं पहले से ही स्थित कम्पनियां दोनों ही प्रतिभूतियों को जारी करके पॅूजी को इकठ्ठा कर सकती है। हमने कई प्रकार की निगम प्रतिभूतियों की चर्चा की है जैसे क अंश एवं ऋणपत्र, जिनमे कि एक फर्म निर्गमन कर सकती है, ताकि अपनी दीर्घकालीन आवश्यकताओं को पूरा कर सके। परन्तु प्रतिभूतियों के ये प्रकार अपने आप में अन्त नहीं है। किसी भी व्यवसाय की सफलता एवं

अस्तित्व इन प्रतिभूतियों के सफल विपणन पर निर्भर करता है। एक लाभ कमा रही कम्पनी अपने विस्तार एवं वृद्धि के लिए प्रतिधारित अर्जनों से वित्त पोषण कर सकती है। परन्तु एक नई कम्पनी तब तक अपना व्यवसाय शुरू नहीं कर सकती जब तक कि वह विभिन्न प्रदान की प्रतिभूतियों के द्वारा पूँजी न इकठ्ठी कर ले। यहां तक कि पहले से ही स्थित कम्पनियों को भी अधिक विस्तार एवं वृद्धि की क्रियाओं के लिए प्रतिभूतियों को बेचना पड़ता है।

प्रतिभूतियों का विपणन एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा बड़ी संख्या के निवेशकों जैसे कि व्यक्तिगत एवं संस्थागत तक पहुॅचा जाता है ताकि वे अपनी बचतों या निधियों को कम्पनी के अंशों या ऋणपत्रों में लगा सके। यह एक उच्च्य विशिष्ट क्रिया है जिसमें बहुत ज्यादा निपुणता एवं अनुभव की आवश्यकता होती है। यदि एक कम्पनी सीमित संस्थाओं या निवेशकों तक ही पहुॅचना चाहती है तो उसे किसी भी विशिष्ट एजेन्सी या मध्यस्थ जो कि प्रतिभूतियों में कार्यरत है। परन्तु यदि एक कम्पनी बड़ी संख्या में छोटे निवेशकों तक पहुॅचना चाहती है तो यह विज्ञापन, प्रैस सम्मेलन आदि करती है, ताकि निवेशकों को मना सके एवं इसके अतिरिक्त कुल प्रतिभूतियों के विक्रय की भी कोई निश्चितता नहीं है। इस प्रकार की परिस्थितियों में विशिष्ट एजेन्सियों या मध्यस्थों जैसे कि अभिगोपक, दलाल निवेश बैंको आदि की सहायता की आवश्यकता नहीं होती है।

प्रतिभूतियों के विपणन के लिए असंख्य विधियॉ/तकनीकें है। एक कम्पनी एक या एक से ज्यादा विधियों को अपना सकती है।

प्रतिभूतियों के विपणन की विभिन्न विधियां इस प्रकार से हैं–

1. प्रविवरण के द्वारा सार्वजनिक निर्गमन, जिसमें शामिल है–
   a) प्रत्यक्ष विक्रय
   b) निवेश मध्यस्थों के द्वारा विक्रय
   c) अभिगोपन स्थानापन्न
2. बिक्री के लिए प्रस्ताव
3. प्लेसमेंट विधि
4. निविदा विधि
5. ओवर द काउन्टर प्लेसमेण्ट
6. राइट निर्गमन
7. बोनस निर्गमन

1. प्रविवरण द्वारा सार्वजनिक निर्गमन –

यह पूॅजी को इकठ्ठा करने या प्रतिभूतियों के विपणन आदि के लिए सार्वजनिक लि0 कम्पनियों के लिए बहुत ही लोकप्रिय विधि है। इस विधि में, एक सार्वजनिक लिमिटेड कम्पनी एक प्रलेख जिसे प्रविवरण कहा जाता है, जिसमें कम्पनी के बारे में सूचना होती है, एवं कम्पनी के अंश या ऋणपत्रों के लिए प्रार्थना पत्र भेजने के लिए निमन्त्रित किया जाता है, जारी किया जाता है। यदि प्रवर्तक निजी सम्बन्धों के द्वारा निधियों को इकठ्ठा कर सकती है तो यह स्टेटमेण्ट इन लियू आफ प्रोस्पेक्टस भी जारी कर सकती है। एक प्रविवरण कम्पनी के बारे एवं प्रोस्पेक्टीव निवेशको को प्रस्तावित निर्गमन के बारे मे सूचना देता है। कम्पनी जनता को यह विश्वास दिलाती है कि वह उनके निवेश को विशेष अवसर प्रदान करेगी। कम्पनी के साथ–साथ निदेशक भी निजी रूप से इस प्रलेख पर हस्ताक्षर करके प्रविवरण में किसी भौतिक तथ्य में हेरा–फेरी य गल्त सूचना के लिए व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार होंगे।

एक कम्पनी प्रविवरण को जारी करके, जनता से प्रत्यक्ष रूप से प्रार्थना पत्र आमन्त्रित करता है या कुछ मध्यस्थों के द्वारा जैसे कि दलाल, निवेशक बैंक, एवं अभिगोपक आदि के द्वारा प्रार्थना–पत्रों को आमन्त्रित करता है। इस प्रकार इस विधि में शामिल है।

i. कम्पनी के द्वारा प्रतिभूतियों का प्रत्यक्ष विक्रय

ii. निवेश मध्यस्थों के द्वारा विक्रय

iii. एवं अन्डरराइटिंग प्लेसमेण्ट

2. विक्रय के लिए प्रस्ताव –

प्रतिभूतियों के विपणन की यह विधि आमतौर पर कम्पनियों के बड़े निर्गमनों के समय अपनाई जाती है। इस विधि के अन्तर्गत, निर्गमन कम्पनियां अपनी प्रतिभूतियां भी सेल के लिए विशेष निर्गमन गृहों या विशेष वित्तीय संस्थानों को निश्चित मूल्य पर बेच या बेचने के लिए सहमत हो जाती हैं। तब निर्गमन गृह या वित्तीय संस्थान ऐसी प्रतिभूतियों को, उस मूल्य से उच्च मूल्य पर, जिस पर उन्होने ऐसी प्रतिभूतियों को निर्गमन कपनियों से खरीदा हैं, विज्ञापन देकर बिक्री के लिए प्रस्ताव देते है। इस विधि का उद्देश्य, प्रतिभूतियों के विक्रय में सफलता सुनिश्चित करना है। निर्गमन कम्पनियॉ प्रतिभूतियॉ को कुछ समय के लिए अपने पास रख सकती है एवं सारे सकन्ध को जनता को एक ही बार में आफर नहीं कर सकतीं। यह सब ऐसी प्रतिभूतियों को बाजार में कठिनाईयों से बचाता है। इस विधि का मुख्य लाभ यह है कि इससे निर्गमन की सफलता सुनिश्चित होती है एवं नये निर्गमनों के लागतों में कमी आती है। उसी समय पर, निर्गमन गृह उचच मूल्य प्राप्त करके अपने लाभों को बढ़ाते है।

3. प्लेसमेण्ट विधि –

इस विधि के अनुसार प्रतिभूतियॉ कुछ विशेष मध्यस्थों जैसे कि दलाल, निर्गमन गृह या वित्तीय संस्थान आदि को बेची जाती हैं ताकि वे उनके ग्राहकों एवं एसोसिएट को निजी रूप से दी जा सके। कुछ निर्गमन कम्पननियां, मध्यस्थों को ऐसी प्रतिभूतियां बेचे बिना भी, कुछ विशेष व्यक्तियों या संस्थाओं को अपनी सेवाएं प्राइवेट प्लेसमेण्ट के लिए दे सकती है। भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड ने, किसी भी सार्वजनिक निर्गमन में उपारक्षित प्रतिभूतियों पर विशेष प्रतिबन्ध लगा दिए हैं अधिकतम स्वीकार्य आबंटन के तहत स्थायी कर्मचारी को 10 प्रतिशत कम्पनियों के अंशधारको को 10 प्रतिशत भारतीय एवं मल्टीलैटरल विकास–वित्तीय संस्थानों को 20 प्रतिशत तक आरक्षण प्रतिबन्धित है।

इस विधि का लाभ यह है कि यह प्रतिभूतियों के विपणन का सबसे सस्ता तरीका है इससे निर्गमन लागत में कमी आती है परन्तु प्रतिभूतियां एक चयनित निवेशकों के समूह को ही बेची जाती है।

4. निविदा विधि –

प्रतिभूतियों के विपणन को इस निविदा विधि के अन्दर, दूसरी सभी सार्वजनिक निर्गमन की विधियों की तरह निर्गमन मूल्य पूर्व निश्चित नहीं होता है। कम्पनी निर्गमन मूल्य के बारे में बिना कोई सूचना दिए, सार्वजनिक निर्गमन की घोषणा करके विभिन्न निवेशक पार्टियों को बोली के लिए आमन्त्रित करती है। भाग लेने वाली पार्टिया, जितना मूल्य वे देना चाहती हैं एवं जितने अंश वह खरीदना चाहती हैं सारा विवरण देकर अपनी निविदा सबमिट करते है। कम्पनी, विभिन्न प्रस्तावों को स्वीकार करने के बाद, मूल्य का निर्णय इस प्रकार से लेती है कि सारा निर्गमन सही रूप से प्रार्थित हो या निविदा में भाग लेने वाले प्रतिभागियों को बेचा जा सके।

5. ओवर द काउण्टर प्लेसमेण्ट –

यह भारतीय प्रतिभूति बाजार में एक नया विकास है। ओवर द काउंटर एक्सचेंज ने अपनी क्रियाएं दूसरे प्रयास के रूप में केवल 1992 में शुरू कीं। यह छोटी कम्पनियों को निधियां इकठ्ठा करने की आज्ञा देती है। एक कम्पनी अपना निर्गमन ओ0टी0सी0 विपणि के द्वारा भी कर सकती है। इस विधि की यह प्रक्रिया है कि जो कम्पनी ओ0टी0सी0 विपणि के द्वारा पूँजी इकठ्ठा करने की इच्छा रखती है उसे एक स्पोन्सर के रूप में ओ0टी0सी0ई0आई0 एक सदस्य नियुक्त करना होगा। स्पोन्सर, प्रोजेक्ट एवं कम्पनी के अंशों का मूल्यांकन करेगा। कम्पनी के द्वारा सार्वजनिक व्यापार के लिए जो अंश प्रस्तावित किए जाएंगे वे स्वयं स्पोन्सर एवं उसके सदस्यों एवं ओ0टी0सी0ई0आई0 के डीलरों के द्वारा प्लेस किए जाएंगे। स्पोन्सर अंशों के निर्गमन की सफलता को निश्चित करता है चाहे उसे सारे अंश स्वयं ही ससक्राइब क्यों न करने पडें। ओ0टी0सी0ई0आई0 के सदस्य एवं डीलर निवेशक जनता के साथ व्यापार को चलाने के लिए काउंटर को ऑपरेट करते है। सी0ई0बी0आई0 ने भारत की ओ0आई0टी0 विपणि के अन्तर्गत अंशों के निर्गमन के लिए कुछ विशेष निर्देश दिए है। यह प्रतिभूतियों के विपणन की विधि छोटी कम्पनियों के लिए बहुत ही अनुकूल है।

6. अधिकृत निर्गमन –

राइट निर्गमन कम्पनी के स्थापित अंशधारको को कम्पनी द्वारा निर्गमित किए गए और अंशों को खरीदने का निमन्त्रण है। अधिकार का साधारण अर्थ है, कुछ विशेष प्रतिभूतियों को, एक विशिष्ट प्राइविलेज्ड मूल्य पर, एक विशिष्ट अवधि में खरीदने का विकल्प। कम्पनी अधिनियम 1956 की धारा 81 के अनुसार, ने कम्पनी के फ्यूचर ईशु के कम्पनी के स्थापित अंशधारकों को अश खरीदने का प्रे–इमपेटिव प्रदान किया है। अभी हाल ही में बहुत सी कम्पनियों ने दुबारा पूंजी का निर्गमन किया है एंव कम्पनी के स्थापित निवेशकों को इन प्रतिभूतियों को जारी करने का अभ्यास दिन प्रतिदिन कढ़ता ही जा रहा है। मूल्य के आधार पर नये निर्गमन का 10 से 25 प्रतिशत राइट ईशु का होता है।

7. बोनस निर्गमन –

कम्पनी के पास साधारण लाभों में से स्वतन्कत्र संचय बने होते हैं या नकदी में इकठ्ठे किए गए अंश प्रीमियम से कम्पनी अपने स्थापित अंशधारकों को बोनस अंशों का निर्गमन कर सकती है। आमतौर पर जिन कम्पनियों के पास संचित लाभ एवं संचय होते हैं परन्तु उनकी तरलता स्थिति ज्यादा अच्छी नहीं होती है वे बोनस अंश को निर्गमन करके अपने लाभों का पूँजीकरण करना पसन्द करते है। बोनस निर्गमन कम्पनी कम्पनी में कोई ताजा पूँजी लाता, यह केवल कम्पनी को अपनी पूँजी पुनर्संरचना के योग्य बनाता है।

6.8 प्रतिभूति क्रेताओं का वर्गीकरण

निगम प्रतिभूतियों के विभिन्न क्रेताओं में व्यक्ति, सट्टेबाज, संयुक्त पूँजी कम्पनियां, जीवन बीमा कम्पनियां, वाणिज्यिक बैंक, सार्वजनिक भविष्य निधियां, अभिगोपक, प्रन्यासी, निवेशक बैंक, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, भारतीय औद्योगिक साख एवं निवेश निगम, भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, राज्य वित्तीय निगम, राज्य औद्योगिक विकास निगम एस0आई0सी0सी0 शामिल है। प्राथमिक रूप से व्यक्तियों, संयुक्त पूजी कम्पनियों एवं सार्वजनिक एवं निजी संस्थानों में बचतों एवं आधिक्यों का निगम प्रतिभूतियों में निवेश किया जाता है।

इस प्रकार हम विस्तृत रूप से निवेशकों को तीन भागों में वर्गीकृत कर सकते है –

1. व्यक्तिगत निवेशक
2. संयुक्त पूंजी कम्पनियां

3. संस्थागत निवेशक

1. व्यक्तिगत निवेशक –

व्यक्तिगत बचतें ही निगत प्रतिभूतियों में निवेश का अल्टीमेट है। एक अनुमान के अनुसार 1959 में अंशों में व्यक्तिगत निवेशकों की संख्या 4.87 लाख, 1965 में 10.65 लाख, 1980 में 20 लाख एवं 1989 में 100 लाख थीं। समय के साथ–साथ व्यक्तिगात निवेशकों की संख्या लगातार बढ़ रहीं है। 1994 के अन्त में इसकी संख्या 200 लाख से ज्यादा थी। संख्या में वृद्धि होने के बावजूद भारत में कुल जनसंख्या के हिसाब से निवेशको का प्रतिशत, दूसरे देशों जैसे कि संयुक्त राज्य अमेंरिका, जर्मनी एव संयुक्त साम्राज्य की अपेक्षा काफी कम है।

विभिन्न व्यक्तिगत निवेशकों की प्रतिभूतियों को विस्तृत रूप से तीन भागो में वर्गीकृत किया जा सकता है:

i. असली निवेशक

ii. सट्टेबाज

iii. व्यक्ति जोकि निर्गमन कम्पनियों के साथ सम्बद्ध हैं।

1. असली निवेशक –

ये वे व्यक्ति हैं जिनके पास आधिक्य आय या भूताकल की संचित आय होती है जिसे ये भविष्य में आय की संभावना से निवेश करते हैं। ऐसे निवेशक निर्गमन कम्पनी के साथ सम्बद्ध नहीं होते हैं वे या तो समता अंश धारक के रूप में या लेनदार के रूप में या कम्पनी के उपभोंक्ता आदि के रूप में, असली निवेशक माने जाते हैं, इनमें सरकारी एंव निगम प्रतिभूतियॉ भी शामिल होती है।

2. सट्टेबाज निवेशक –

यहां कुछ ऐसे विशेष निवेशक भी होते हैं जो कि स्पेक्लेटिव मोटिव के साथ प्रतिभूतियों को खरीदते है। उनका मुख्य उद्देश्य प्रतिभूतियों को बेचना होता है एवं प्रतिभूतियों के मूल्य में उतार–चढाव के द्वारा पूंजीगत लाभ कमाना होता है। यहां दो प्रकार के सट्टेबाज होते है। जिनके नाम हैं 1. बुल्स 2. एवं बियर्स, बूल एक परिचालक होता है जो कि भविष्य में प्रतिभूतियों के मूल्य में वृद्धि की आशा करते है। मूल्य में वृद्धि के अनुमान के कारण वह अंश एवं दूसरी प्रतिभूतियों को इस इरादे से खरीदता है कि ताकि भविष्य में मूल्य बढ़ने पर उसे बेचा जा सके। उनका एक सट्टेबाज के रूप में प्रतिभूतियों में निवेश बनाए रखने का कोई इरादा नहीं होता है। दूसरी तरफ एक बियर यह आशा करता है भविष्य में मूल्य के स्तर में कमी आयेगी एवं वह वर्तमान समय में ही इस सोच से प्रतिभूतियों को बेच देता है ताकि भविष्य में वह कम मूल्य पर उन्हे दोबारा खरीद सके। वह प्रतिभूतियों के मूल्यों में गिरावट लाना चाहता है ताकि मूल्यों में उतार–चढ़ाव से वह लाभों को कमा सके।

3. निर्गमन कम्पनी के साथ सम्बद्ध व्यक्ति –

पहले से ही स्थापित कम्पनियां आमतौर पर अपने फ्रेश निर्गमन को अपने उपभोक्ताओं, कर्मचारियों, लेनदारों एव इक्सीकटिंग आदि को देना पसन्द करती है। इन प्रतिभूतियों में निवेश करने वाला व्यक्ति वर्ग उन व्यक्ति वर्ग उन व्यक्तियों का होता है जो कि एक ढ़ग से या दूसरे से निर्गमन कम्पनियों के साथ सम्बद्ध होता हैं। प्रतिभूतियों को इस श्रेणी के निवेशकों को बेचने से कई प्रकार के लाभ प्राप्त होते है।

एक कम्पनी सफलतापूर्वक ढंग से अपने उपभोक्ताओं या डीलरों को अपने प्रतिभूतियों को खरीदने में आसानी से आकर्षित कर सकते है। सार्वजनिक उपयोगी आसानी से इस प्रकार के

निवेशकों को एक्सप्लोर कर सकती है। भूतकाल में भी कुछ कम्पनियां सफलतापूर्वक तरीके से अपने उपभोक्ताओं तक पहुंचती है ताकि वे सफलतापूर्वक कम्पनी की प्रतिभूतियों में निवेश कर सकें।
उपभोक्ताओ को प्रतिभूतियों को बेचने से निम्नलिखित लाभ होते है।

1. प्रतिभूतियों का विस्तृत वितरण
2. सट्टेबाजी के कम
3. कम लागत, एवं आसानी से मूल्य का निर्धारण करना आदि।

परन्तु उपभोक्ताओं को प्रतिभूतियों को बेचने से काफी हानियां भी है। इसमे लोचशीलता की कमी होती है एवं कम्पनी का अपने ग्राहकों के साथ सन्तुष्टिदायक संबंध एवं प्रतिष्ठा बनाये रखनी पड़ती है तथा उन्हें न्यूनतम स्थायी लाभांश या नियमित रूप से ब्याज देना पड़ता है।

2. संयुक्त स्कन्ध कम्पनियां –

व्यक्तियों के बाद, निगम प्रतिभूतियों में निवेशकों के समूह का अगला महत्वपूर्ण अंग है संयुक्त पूॅजी कम्पनियां। भारतीय औद्योगिक विकास की अभी हाल ही में अध्ययन से पता चला है कि निजी क्षेत्र की कुल प्रदत्त पूंजी का 31 प्रतिशत भाग संयुक्त पूंज कम्पनियों का है। परन्तु निवेशकों के संसार में उनका हिस्सा लगातार कम होता जा रहा है। व्यक्तियों की प्रतिभूतियों द्वारा प्रत्यक्ष स्वामित्व की अपेक्षा, संयुक्त पूंजी कम्पनियां की प्रतिभूतियसों के द्वारा स्वामित्व अप्रत्यक्ष है।

3. संस्थागत निवेशक –

निगम प्रतिभूतियों के क्षेत्र में संस्थागत निवेशक एक बहुत ही महत्वपूर्ण समूह के रूप में उभर कर सामने आए है। विभिन्न संस्थागत निवेशकों को आगे तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. निजी संस्थागत निवेशक
2. सार्वजनिक वित्तीय संस्थान
3. विदेशी संस्थागत निवेशक।

एक तरफ निजी संस्थागत निवेशकों में शामिल हैं, जीवन बीमा कम्पनियां निवेश प्रन्यासी भारतीय यूनिट ट्रस्ट, वाणिज्यिक बैंक, पी0पी0एफ0 आदि जो अपने खुद के कोषों को निवेश करते है, एंव दूसरी तरफ वे जो कि अपने ग्राहको या अपने कोषों की अल्पावधि के लिए निवेश करते है। दूसरे प्रकार के निजी संस्थागत निवेशको में शामिल हैं अभिगोपक, निर्गमन, गृह, निवेश बैंक एवं प्रन्यासी कम्पनियां।

सार्वजनिक संस्थान जो कि विभिन्न सरकारी एजेन्सियों जोकि व्यवसाय उद्यमों के प्रवर्तन एवं वित्तयन में लगे होते है, को प्रस्तुत करते है। इनमें IDBI, NIDC, IFCI, ICICI, SIDC, SIIC आदि शामिल है।

ये वित्तीय संस्थान ही हैं जो कि हाल हजी में निगम प्रतिभूतियों मे बहुत महत्वपूर्ण निवेशकों के समूह के रूप में उभर कर सामने आए है। IDBI के तत्कालीन अध्ययनों से पता चला है कि निजी क्षेत्र की कुल प्रदत्त पूॅजी का 27.3 प्रतिशत हिस्सा वित्तीय संस्थाओं द्वारा पूरा किया जाता है। नई सरकार की उदारीकरण की नीति ने भारतीय निगम क्षेत्र में संस्थागत निवेशकों के क्षेत्र एवं महत्व को बढ़ावा दिया है।

अर्थव्यवस्था के खुलने के साथ ही विदेशी संस्थागत निवेशकों ने अपने आपको निवेशकों के बांड में शामिल कर लिया है। वास्तव में वे प्रतिभूति बाजार के मुख्य खिलाड़ी/प्रतिभागी बन गए है और इसी प्रक्रिया में, प्रतिभूति बाजार संस्थागत हो गए।

6.9 प्रतिभूतियों का सूचीयन

प्रतिभूतियों के सूचीयन का तात्पर्य स्कन्ध विनिमय के लेन–देन के स्थल पर अंशों और ऋणपत्रों के आधिकारिक उद्धरण की अनुमति मिले से है। विभिन्न कम्पनियों द्वारा निर्गमित प्रत्येक प्रतिभूति का स्कन्ध विनिमय में व्यापार नहीं किया जा सकता है। केवल उन्ही प्रतिभूतियों का यहॉ लेन–देन किया जा सकता है। जो सूचीबद्ध हों। स्कन्ध विनिमय द्वारा निश्चित मानक निर्धारित किये जाते हैं जिनकी कम्पनी द्वारा प्रतिभूतियों को सूचीबद्ध कराने के लिए पूर्ति करना आवश्यक होता है।

सूचीयन के लिए आवश्यकताऍ

जो कम्पनी अपनी प्रतिभूतियों को स्कन्ध विनिमय में सूचीबद्ध कराना चाहती है, उसे कुछ निर्धारित शर्तों की पूर्ति करनी पड़ती है।

प्रतिभूति को सूचीबद्ध कराने के लिए निम्नलिखित सूचनाओं को स्कन्ध विनिमय में जमा करना आवश्यक है।

1. पार्षद सीमानियम एवॅ अन्तर्नियम तथा ऋणपत्र की स्थिति में प्रन्यास संलेख।
2. सभी जारी किये गए विवरणों अथवा स्थानापन्न प्रविवरणों की प्रतिलिपियॉ।
3. आर्थिक चिठ्ठे अंकेक्षित लेखे, प्रवर्तकों, अभिगोपकों, दलालों आदि के साथ किये गये अनुबन्धों की प्रतिलिपियॉ।
4. निर्गमित किये गये अंशों और ऋणपत्रों एवं जब्त किये गये अंशों का विवरण।
5. निर्गमित बोनस तथा घोषित किये गये लाभांश का विवरण।
6. कम्पनी का संक्षिप्त इतिहास।
7. प्रबन्धक संचालक एवं प्रबन्धकों, आदि के साथ किये गये अनुबन्धों की प्रतिलिपियॉ।
8. कम्पनी द्वारा एक शपथ पत्र कि कम्पनी अधिनियम 1956 एवं स्कन्ध प्रसंविदा अधिनियम 1956 के प्रावधानों उल्लिखित नियमों को अनुपालन किया गया है।
9. प्रत्येक प्रकार की प्रतिभूतियों के दस ऐसे अंशधारियों की सूची जिनके पास सबसे अधिक अंश हों।

स्कन्ध विनिमय को किसी शर्त–भंग की दशा में प्रतिभूतियों के व्यापार की अनुमति को वापस लेने अथवा निलम्बित करने का अधिकार प्राप्त होता है।

प्रतिभूतियों को समाशोधित प्रतिभूतियों एवं असमाशोधित प्रतिभूतियों में वर्गीकृत किया जाता है। समाशोधित प्रतिभूतियों को वायदा या अग्रिम सौदों की सुविधाऍ उपलब्ध होती है जबकि दूसरी ओर असमाशोधित प्रतिभूतियों का केवल नकद व्यापार या सौदा किया जाता है और ये प्रतिभूतियॉ स्कन्ध बाजार की नकद सूची में होती है। यदि अंश पूर्णदत्त है और उन्हें स्कन्ध विनिमय में तीन वर्षो तक सूचीयन की विशेष सुविधा प्राप्त रही है तो स्कन्ध विनिमय उन्हें समाशोधित प्रतिभूतियों की स्थिति स्वीकृत कर सकता है। प्रतिभूतियों का व्यापक वितरण होना चाहिए, तथा उनमें जनता की रूचि लेनी चाहिए तभी ये समाशोधित प्रतिभूतियॉ हो सकती है।

सूचीयन के उद्देश्य

प्रतिभूतियों के सूचीयन के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार से है :

प्रतिभूतियों के व्यापार में सही निरीक्षण एवं नियंत्रण को सुनिश्चित करना।

1. अंशधारकों एवं निवेशकों के हितो की रक्षा करना।
2. आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण को रोकना।
3. प्रतिभूतियों के लिए विपणन सुविधाओं को सुनिश्चित करना।

4. प्रतिभूतियों की तरलता को निश्चित करना।

5. प्रतिभूतियों के व्यापार को निश्चित करना।

6. प्रोत्साहको को अर्थव्यवस्था में तर्कसंगत हिस्सा देना।

सूचीयन के लाभ

प्रतिभूतियों के सूचीयन के निम्नलिखित लाभ है :

1. प्रतिभूतियों की पब्लिसिटी –

सूचीबद्ध प्रतिभूतियां आदि में काफी पब्लिसिटी प्राप्त कर लेती हैं। प्रतिभूतियों की दरें निवेशकों के लाभ के लिए नियमित रूप से उद्धवरित की जाती है। दरों के साथ कम्पनी का नाम भी शामिल किया जाता है। एवं निवेशक प्रतिभूतियों के साथ प्रसिद्ध हो जाते है।

2. निवेशको के हितों की सुरक्षा –

प्रतिभूतियों का व्यापार निश्चित नियमों एवं विनियमों के आधार पर किया जाता है। सूचीबद्ध कम्पनियों को स्कंध विनिमय को सम्पत्तियों एव देयताओं के बारे में पूर्ण जानकारी प्रदानकरनी पड़ती है। कम्पनी के बारे में पूर्ण सूचना के खुलासे से निवेशको के हितों की रक्षा की जा सकती है। वे कम्पनी की वित्तीय विवरणों के विश्लेषण से यह निर्णय ले सकती है कि किस कम्पनी की प्रतिभूतियां वे खरीदना चाहते है।

3. तरलता को सुनिश्चित करना –

सूचीबद्ध प्रतिभूतियों के पास स्कंध विनिमय में एक तैयार बाजार होता है। बड़ी संख्या में क्रेता एक विक्रेता स्कंध बाजार में प्रतिभूतियों के व्यापार के लिए उपस्थित होते है। प्रतिभूतियों के लिए उपस्थित होते है प्रतिभूतियों के लिए प्रस्तावित मूल्य भी प्रतिस्पर्धक होते है।

4. अच्छी ख्याति –

स्कंध विनिमय में सूचीबद्ध कम्पनियों की बाजार में अच्छी ख्याति होती है। इन प्रतिभूतियों का बाजार में उच्च निर्धारण होता है एक बैंक इन्हें समपार्श्विक प्रतिभूति के रूप में स्वीकार कर लेते है।

6.10 भारतीय पूॅजी बाजार के प्रमुख दोष

आज तमाम सुधारों के बावजूद भारतीय पूॅजी–बाजार की कार्य–प्रणाली में बहुत त्रुटियॉ है, जिन्हे निम्नानुसार स्पष्ट किया जा सकता है :

1. कम तरलता –

भारतीय पूॅजी–बाजार में पर्याप्त तरलता नहीं है। हाल ही मे किये गये अध्ययन से पता चलता है कि प्रतिदिन 20 प्रतिशत शेयर–पत्रों और वह भी समूह ए के शेयर–पत्रों का व्यापार किया जाता है। अन्य 20 प्रतिशत शेयर–पत्रों का व्यापार सप्ताह में 2 से 3 बार और 10 प्रतिशत शेयर–पत्रों का व्यापार 15 दिन में एक बार किया जाता है। इस प्रकार, देश के सबसे बड़े स्टॉक एक्सचेंज में सूचीबद्ध 50 प्रतिशत शेयर पत्रों में बहुत कम तरलता है अन्य स्टॉक एक्सचेंजो में सूचीबद्ध 2/3 शेयर पत्र लेन–देन बिल्कुल ही नही होता है।

2. सुपुर्दगी में विलम्ब –

शेयर पत्रों की सुपुर्दगी और निपटान अथवा लेन–देन में असाधारण विलम्ब होता है शेयर पत्रों की सुपुर्दगी में साधारणतः 3 से 4 महीने और भुगतान 2 से 3 महीने का समय लगता है खराब सुपुर्दगी की अवधि मुख्यतया विक्रेता के हस्ताक्षरों के कारण अधिक लम्बी हो जाती है। और समस्या जटिल हो जाती है। भुगतान में भी प्रायः विलम्ब हो जाता है और इनमें साधरणतया 1 से 2 माह का

समय लग जाता है। भुगतानों और सुपुर्दगियों में होने वाले बारंबार विलम्ब के कारण स्टॉक एक्सचेंज प्रचालनों के कार्य में अवरोध होता है।

3. आंतरिक व्यापार –

भारतीय पूँजी बाजार आंतरिक व्यापार के कारण उतार–चढ़ाव से ग्रस्त हैं। कम्पनी मे कार्य करने वाले व्यक्ति प्रायः कम्पनी की प्रत्याशित लाभप्रदता और हानियों के आधार पर शेयरों का क्रय–विक्रय करते है। इससे कम्पनी के शेयर–पत्रों की कीमत में उतार–चढाव होता है जिसका छोटें निवेशकों के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। कुछ बड़े औद्योगिक घराने भी समूह कम्पनियों के शेयरों में लेन–देन सहारा लेते है जिससे साधारण शेयरधारकों के लिये आन्तरिक व्यापार की समस्या बढ़ जाती है।

4. अपर्याप्त बाजार उपकरण –

भारत में पूँजी बाजार उपकरण मुख्यतया शेयरों और डिबेंचरो तक सीमित रहते है जोकि पूँजी बाजार की सही कार्य–प्रणाली के लिए अपर्याप्त होते है। अभी हाल ही में शुरू किये वारंट, शून्य कूपन बांड्स आदि निवेशकों मे अभी तक लोकप्रिय नहीं है।

5. अकुशल बैंकिंग और डाक सेवाये –

बैंकिंग और डाक सेवायें इतनी कार्यकुशल नहीं है जिससे छोटे निवेशको की कठिनाइयॉ और बढ़ जाती है। धनराशि वापसी, लाभांश वारंट्स और ब्याज का भुगतान, कम्पनियॉ द्वारा छोटे ग्राहकों को साधारण डाक द्वारा भेजे जाते है जो प्रायः उन तक नहीं पहुँचते है। कुछ बेईमान डाक और बैंककर्मी आपस में सांठ गांठ करके धोखाधडी द्वारा ऐसे चैक का भुगतान करा लेते हैं। और छोटे निवेशकों को ठगते है।

6. स्टॉक इन्वेस्ट की अलोकप्रियता –

स्टॉक इनवेस्टमेन्ट को बड़े निवेशकों द्वारा वस्तुतः हथिया लिया गया है। छोटे अंकित मूल्यों में स्टॉक इन्वेस्टों की अनुपलब्धता, कार्यनिधि कठिनाइयॉ और अधिक बैंक प्रभारों ने छोटे निवेशकों को इस उपकरण से दूर रखा है।

7. अलभ्य वस्तु बाजार का अस्तित्व –

शेयरों की सूचीबद्धता से पहले गैर–शासकीय, गैर विनियमित बाजार को अलभ्य वस्तु बाजार कहा जाता है। इस बाजार में भोले–भाले निवेशकों को आकर्षित और गुमराह किया जाता है। ऐसे निवेशकों को वित्तीय विश्लेषकों द्वारा नए शेयर में निवेश करने के लिए प्रेरित किया जाता है जबकि ये विश्लेषक ने तो सही होते हैं और न ही निष्पक्ष। वे कम्पनियों के कहने पर प्रायः निवेशको को गुमराह करते है। इसके परिणामस्वरूप छोटे निवेशक सर्वाधिक घाटे में रहते है।

8. अस्पष्ट विवरणिका –

सेबी के दिशानिर्देशों के बावजूद निजी कम्पनियों द्वारा जारी विवरणिका में पूरी सूचना नहीं होती और वह अस्पष्ट होता हैं सेबी द्वारा निर्धारित स्वतन्त्र कीमत निर्धारण का कड़ाई पूर्वक पालन नहीं किया जाता है। प्रीमियम निर्धारण भी सही नहीं होता है। इसके परिणामस्वरूप अनेक कम्पनियॉ निवेशकों को पूर्णतया छलती है और बिना किसी नामोनिशान के बंद हो जाती है।

9. स्टॉक दलाली व्यवस्था दोषपूर्ण –

स्टॉक दलाली व्यवस्था दोषपूर्ण बनी हुई है। दलालो के अपने उप–दलाल होते है जो द्वितीयक बाजार में शेयरों औश्र डिबेंचरो के खरीदारों और बेचने वालों को ठगते और कीमतों में हेरा–फेरी करते है।

10. पारदर्शिता का अभाव –

स्टॉक एक्सचेंज के खूले दायरे मे होने वाले लेन–देन को छोड़कर व्यापारिक लेन–देन में कम पारदर्शिता है। शेयर पत्रों के क्रेता और विक्रेता दलालो और उप–दलालो की दया पर निर्भर होते है जो प्रायः विक्रेताओं को एक शेयर–पत्र का न्यूनतम व्यापारिक मूल्य बताते है। इस प्रकार वे अपनी दलाली के अलावा दोनों प्रकार के लेन–देन में अधिकतम कपटपूर्ण लाभ बटोरते है।

11. निवेशकों को अपर्याप्त संरक्षण –

दलालों और उप–दलालों द्वारा की जाने वाली चूक के मामले में ग्राहको को अपर्याप्त संरक्षण प्राप्त है। दलाल द्वारा की जाने वाली चूक के मामले में प्रत्येक स्टॉक एक्सचेंज में स्थापित उपभोक्ता संरक्षण निधि के अंतर्गत निजी शेयरधारक को दिया गया संरक्षण 40000 रूपये तक सीमित है यह सीमा बहुत कम है क्योंकि यह तो मात्र कीमत वाले शेयरों के एक हिस्से की लागत भर होती है।

12. विषम शेयरों की समस्यायें –

कम्पनियों द्वारा विषम शेयरों के गैर–निर्गम संबंधी अनुदेशों के बावजूद बोनस शेयर और राइट इश्यू शेयर विषम हिस्सो में आबंटित किये जा रहे है। उन छोटे निवेशकों के लिऐ कुछ नहीं किया है जिन्होने सेबी के अनुदेश लागू होने से पहले ही विषम हिस्से के शेयर ले रखे है। विषम शेयरों की खरीद करते समय इसके धारकों को 15 प्रतिशत तक का दलाली प्रभार देना पड़ता है। यू0टी0 आई0 और जी0 आई0 सी0 द्वारा विषम प्रकार के शेयर सही दलाली पर खरीदने और बेचने के लिए किये जाने वाले प्रयास चुनींदा और अच्छे प्रकार के शेयरों तक सीमित है।

13. स्टॉक एक्सचेंजों का दोषपूर्ण प्रचालन –

भारत में कार्यरत स्टॉक एक्सचेंज अपने परिचालनो में अभी तक दोषपूर्ण बने हुए है। उन्हे पर्याप्त बुनियादी सुविधाये उपलब्ध नहीं है। स्टॉक दलालों द्वारा कुशलतापूर्वक कार्य करने के लिए पर्याप्त स्थान का भी अभाव है। उन्हें पर्याप्त दूर संचार और कम्प्यूटरीकरण सुविधायें भी उपलब्ध नहीं है अभी पुरानी व्यापारिक परम्पराओं को अपनाया जा रहा है। भारत में अधिकांश स्टॉक एक्सचेजों में सूचीबद्ध शेयरों के व्यापार में ये सभी दोष एक बाधा है। इससे मुम्बई स्टॉक एक्सचेंज में कार्याधिक्य के कारण शेयरों के लेन–देन, सुपुर्दगी और भुगतान में विलम्ब की प्रवृत्ति हुई है।

14. अपर्याप्त स्टॉक एक्सचेंज –

प्रत्येक माह सूचीबद्ध होने वाली कम्पनियों और शेयरधारकों की असाधारण वृद्धि से 20 मौजूदा स्टॉक एक्सचेंज, राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज तथा ओ0 टी0 सी0 ई0 आई0 के सीमित प्रचलन अपर्याप्त है। इसके परिणामस्वरूप अनधिकृत और गैर पूँजीकृत निजी स्टॉक एक्सचेंज समूचे दक्षिण भारत में फैल रहे है। ये शेयर का व्यापार करने वाले घर और संध सट्टा विनिमय में लिप्त रहते है। ऐसे गैर–कानूनी व्यापारिक घरों की मौजूदगी प्रतिभूति अनुबंध विनिमय, 1956 में होने वाली कमियों के कारण है जो अनिवार्य पंजीकरण के कार्यक्षेत्र से हाजिर विनिमय को छूट देती है।

15. विखंडित बाजार –

द्वितीयक पूँजी बाजार गुट संचालित स्टॉक एक्सचेंज और गुट रहित ओ0 सी0 आई0 तथा राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज में विखंडित है। इस सबने पहले से छले जा रहे दलालों और उप–दलालों की कई गुणा वृद्धि से आम क्रेता और विक्रेताओं को दिशाभ्रमित कर दिया है। इसका प्रभाव यह हुआ है कि तरलता में कमी आई है।

6.11 पूँजी बाजार के दोषों को दूर करने के उपाय

उपरोक्त त्रुटियों को देखते हुए स्टॉक एक्सचेंजों की कार्यप्रणाली को सुचारू ढंग से लागू करने और भारतीय पूॅजी–बाजार के दोषों को दूर करने के लिए निम्न सुझाव दिये जा सकते है–

1. तरलता में सुधार –

भारतीय पूॅजी–बाजार में तरलता को बढाने के लिये समूह ए और बी के शेयरों के बीच के अन्तर को दूर करना चाहिये। शेयरों को आगें ले जाना सीमित होना चाहिये और सभी बिक्री सुपुर्दगी के लिये होनी चाहिये।

2. स्टॉक एक्सचेंजों की कार्यप्रणाली को सरल और कारगार बनाना –

शेयरों के विनिमय, शेयर पत्रों की सुपुर्दगी और शेयरों के हस्तांतरण में होने वाले विलम्ब को दूर करने तथा तरलता को और बढ़ाने तथा स्टॉक एक्सचेंजों की कार्यप्रणाली में सुधार करने के लिए अनेक सुझाव दिये गये है। पहला, स्टॉक एक्सचेंजों में कम्प्यूटरीकरण होना चाहिये ताकि शेयरों का व्यापार स्वचालित और पारदर्शी हो जाये। इस कदम से स्टॉक एक्सचेंजों के अन्य दोषों को भी दूर करने में सहायता मिलेगी तथा उनके परिचालनों को सरल एवं कारगर बनाया जा सकेगा। दूसरा, शेयर–पत्रों और डिबेंचरो का हस्तांतरण शेयर/डिबेंचर प्रमाण–पत्रों को इधर–उधर भेजे बिना खाता–प्रविष्टि के द्वारा किया जाना चाहिये। तीसरा, जैसाकि ओ0 टी0 सी0 ई0 आई0 द्वारा किया गया है शेयर धारकों को शेयर प्रमाण–पत्र के बदलें में काउंटर रसीद जारी की जानी चाहिये। शेयर प्रमाण पत्र रजिस्ट्रार के पास रहने चाहिये। चौथा, गैर–कानूनी व्यापारी घरों द्वारा किये जाने वाले व्यापार को खत्म करने के लिये हाजिर लेन–देन का रजिस्ट्रेशन अनिवार्य किया जाना चाहिये।

3. आन्तरिक व्यापार को नियन्त्रित करना –

आंतरिक व्यापार और कीमतों के उतार–चढाव को नियंत्रित करने के लिए सेबी एवं स्टॉक एक्सचेंजों द्वारा कड़े विनियामक और दंडात्मक उपाय अपनायें जाने चाहिये। गैर कानूनी गतिविधियों में संलग्न कम्पनियों और दलालों को जुर्मानों और कानूनी कार्रवाइयों द्वारा कड़ा दंड दिया जाना चाहिये।

4. नए बाजार उपकरण तैयार करना –

अधिक पूॅजी संसाधन जुटाने के लिए नए उपकरण साधन तैयार किये जाने चाहियें। उनमें तरलता, सुरक्षा और सही वापसी भी होनी चाहिये। इन नए बाजारों द्वारा ग्रामीण निवेशकों को आकर्षित किया जाना चाहियें, चाहे वे थोडी संख्या में हों और वस्तुये एवं सेवायें खरीद सकते हों तथा बैंको और डाकखानों द्वारा भी उनसे लेन–देन नान–वोटिंग शेयर, बैंको और मर्चेन्ट बैंको द्वारा जोखिम रहित उपकरणों जैसें पूॅजी बाजार उपकरण शुरू किये जाने चाहियें। हाल ही में शुरू किये गये विभिन्न प्रकार के वारंट, डीप डिस्काउण्ट बॉण्ड, जीरों इन्टरेस्ट बॉण्ड आदि जैसे नए उपकरण अन्य पारम्परिक उपकरणों की तुलना में अधिक उपयोगी सिद्ध करके निवेशकों में लोकप्रिय बनाये जाने चाहिये।

5. अलभ्य वस्तु बाजार प्रचलनों पर प्रतिबन्ध –

गैर–शासकीय और विनियमित अलभ्य वस्तु बाजार के प्रचालनों को रोकने के लिए समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में गैर–शासकीय भावों का प्रकाशन गैर–कानूनी घोषित कर देना चाहिये और क्रेताओं द्वारा शेयर प्राप्त करने से पूर्व शेयरों की बिक्री पर प्रतिबंध लगा देना चाहिये। सेबी द्वारा वित्तीय विश्लेषकों के लिये मार्गदर्शी सिद्धान्त और आचार संहिता निर्धारित की जानी चाहिये।

6. विवरणिका में पारदर्शिता –

वे कम्पनियॉ जो पब्लिक इश्यू के समय अपनी विवरणिका में दिशा–निर्देश के अनुसार आवश्यक जानकारी नहीं देती है। उनके विरूद्ध कानूनी कार्यवादी करके उन्हें दंडित किया जाता चाहिये सेबी द्वारा पब्लिक इश्यू की अनूमति देने से पूर्व निवेशकों के हित के लिये विवरणिका में पूर्ण पारदर्शिता होनी चाहिये।

7. स्टॉक दलाली व्यवस्था को सरल एवं कारगर बनाना –

उप–दलालों को नियुक्त करने की व्यवस्था खत्म होनी चाहिये। परन्तु जब तक दलालों और स्टॉक एक्सचेंजो के कार्यालयों को पूर्णतया कम्प्यूटरीकृत नहीं कर दिया जाता और स्वचालित व्यापार प्रारम्भ नहीं किया जाता तब तक सेबी द्वारा उप–दलालों की गतिविधियों को विनियमित कर देना चाहिये। और दलालों के मामलों की तरह स्टॉक एक्सचेंजों को भी उप–दलालों के साथ लेन–देन करने के लिए अधिकार देना चाहिये। गैर–कानूनी व्यापार घरों के प्रचालनों को गैर–कानूनी कर देना चाहिये।

8. निवेशकों और दलालों को संरक्षण प्रदान करना –

कुछ बेईमान डाक और बैंक कर्मचारियो को धोखाधडी की गतिविधियों से छोटे निवेशकों को हितों की रक्षा के लिये सेबी ने पहले ही कम्पनियों को निदेश दिया है कि वे शेयर/डिबेंचर धारको से उनका बैंक खाता संख्या पूछ लें ताकि वापसी आदेश लाभांश और ब्याज वारंट पर इस खाता संख्या का उल्लेख किया जा सके कम्पनियों द्वारा सख्ती से इस निर्देश का पालन किया जाना चाहिये। कम्पनियों के लिये यही रास्ता होगा कि वे अपने रजिस्ट्रारों को निर्देश दे कि निवेशको को देय राशि उनके खाते में जमा करायी जाये और इसकी सूचना उन्हें भी दी जाये। इससे बेनामी अथवा बोगस सौदों में कमी आयेगी। चूककर्ता दलाल के मामले में स्टॉक एक्सचेंज की ग्राहक सुरक्षा निधि में से व्यक्तिगत ग्राहक को दी जाने वाली राशि की अधिकतम सीमा 40000 रूपये से बढ़ाकर 1 लाख रूपये कर देनी चाहिये उन दलालों के लिये भी इस प्रकार की निधि का निर्माण करना चाहिये, जब कुछ ग्राहक दलालों से हुए सौदे में देय राशि का भुगतान नहीं करते है।

9. विषम प्रकार के शेयरों का निपटारा –

भारत में लाखों शेयर धारको द्वारा धारित विषय शेयरो के निपटारे के लिये एक पृथक ट्रस्ट की स्थापना की जानी चाहिये। इस ट्रस्ट द्वारा धारकों के विषम प्रकार के शेयरों की खरीद की जाये तथा कम्पनियों से बिक्री योग्य शेयरों में परिवर्तित कराके उन्हे लाभ पर बाजार में बाजार मे बेचा जाये। विषम प्रकार के शेयरों के स्थायी समाधान के लिये सेबी द्वारा कम्पनियों को निर्देश दिए जायें कि वे छोटे शेयर धारको को विषय प्रकार के शेयरों के राइट और बोनस न देकर नकदी राशि का भुगतान करके उनकी क्षतिपूर्ति कर दे।

10. अधिक स्टॉक एक्सचेंज खोलना –

स्टॉक एक्सचेंजों में सूचीबद्ध शेयरों की बड़ी संख्या और प्रत्येक माह नए शेयरों की सूचीकरण को देखते हुए देश मे स्टॉक एक्सचेंजो की संख्या बढ़ानी चाहिये। पूॅजी–बाजार में तरलता को बढ़ाने और स्टॉक व्यापार में बड़ी संख्या में लगे लोगो के साथ सौदा करने के लिए यह अनिवार्य है। इससे गैर–कानूनी व्यापारिक घरों को निरन्तर बढ़ती हुई वृद्धि को खत्म करने मे कुछ हद तक सहायता मिलेगी।

11. मध्यस्थों की गतिविधियों को विनियमित करना –

द्वितीयक पूॅजी बाजार के सुचारू रूप से कार्य करने के लिये सेबी द्वारा उप–दलाल, हामीदार, रजिस्ट्रार, ट्रांस्फर एजेन्ट्स, निवेश प्रबन्धक, मर्चेन्ट बैंकर्स तथा दूसरे मध्यस्थों को विनियमित करना

चाहिये। पूजी बाज़ार में उनकी सही कार्य–प्रणाली के लिये सेबी द्वारा कुछ नियम निर्धारित किये जाने चाहिये।

12. स्टॉक एक्सचेंजों की गतिविधियों को समन्वित करना –

निवेशकों को उलझन से बचाने के लिये भारत में तीन स्टॉक एक्सचेंजों पारम्परिक स्टॉक एक्सचेंज, ओ0 टी0 सी0 ई0 आई0 और इन0 एस0 ई0 आई0 मे सही तालमेल होना चाहिये। उनके प्रचालनों मे किसी प्रकार की पारस्परिक व्यापकता नहीं होनी चाहिये।

13. कर रियायतों देना –

स्टॉक बाजार को प्रेरित करने के लिए लाभांश पर दोहरा कर समाप्त कर तथा पूँजी लाभ एवं लाभांश पर न्यूनतम कर मुक्त स्तरो को बढ़ाकर निवेशकों को अधिक कर रियायतो देनी चाहिये।

इस प्रकार सेबी को इसमें पेपर लेस निपटान, भविष्य एवं विकल्प मार्किट, शेयरों के निर्गम से कीमत–निर्धारण को अधिक मुक्त करने और अधिक पारदर्शिता तथा अत्यधिक प्रतियोगिता जैसे सुधार लाने चाहिये।

6.12 सारांश

- पूँजी बाजार से आशय किसी स्थान या क्षेत्र विशेष या केन्द्र से है जहॉ मध्यमकालीन एवं दीर्घकालीन प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय होता है।
- पूँजी बाजार दीर्घकालीन विनियोग कर्ताओं और दीर्घकालीन उधारकर्ताओं के बीच सेतु का कार्य करता है।
- प्राथमिक बाजार सर्वथा नवीन या नये निर्गमन का बाजार है जबकि गौण बाजार पूर्व–निर्गमित लिस्टेड प्रतिभूतियों के क्रय–विक्रय का बाजार है।

6.13 शब्दावली

शून्य कूपन बांड : इसमे कोई ब्याज नही होता परन्तु इसे जारी कंपनी द्वारा छूट पर बेचा जाता है। निर्गमन मूल्य और परिपक्वता मूल्य का अंतर निवेशक के लिये ब्याज या लाभ कहलाता है।

6.14 बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये।

i. पूँजी बाजार से आशय किसी स्थान या केन्द्र से है जहॉ .... का क्रय–विक्रय होता है।

ii. निगमीय स्टाक, सरकारी प्रतिभूतियॉ, वाणिज्यिक ऋण आदि पूँजी बाजार के प्रमुख .... है।

iii. ऐसा बाजार जहा नये अंशो ऋणपत्रों, प्रतिभूतियो, आदि का क्रय–विक्रय होता है ....कहलाता है।

iv. .... वे बाजार है जिनमें पहले से मौजूद विद्यमान प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय किया जाता है।

v. प्रतिभूतियो का .... वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बड़ी संख्या के निवेशको जैसे कि व्यक्तिगत एवं संस्थागत तक पहुचा जाता है ताकि वे अपने बचतों या निधियों को कंपनी के अंशों या ऋणपत्रों में लगा सके।

6.15 बोध प्रश्नों के अंतर

I. मध्यमकालीन एवं दीर्घकालीन प्रतिभूतियों
II. उपकरण या प्रपत्र
III. नया निर्गमन या प्राथमिक बाजार
IV. सहायक या गौण बाजार
V. विपणन

6.16 स्वपरख प्रश्न

i. पूँजी बाजार के अर्थ एवं परिभाषा को बताईये। इसके महत्व एंव कार्य को भी स्पष्ट करें।
ii. भारतीय पूँजी बाजार की संरचना एव उपकरणों की व्याख्या कीजिये।
iii. पूँजी बाजार के अवयवों का विस्तृत वर्णन करे।
iv. प्रतिभूतियों के विपणन एव सूचीयन को समझाइये।
v. भारतीय पूँजी बाजार के प्रमुख दोष एवं इन्हे दूर करने हेतु सुझाव दीजिये।

6.17 सन्दर्भ पुस्तकें

- सेठी, टी0टी0 (2015), मुद्रा बैंकिंग एवं लोक वित, आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिसर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- गुप्ता, शान्ति के0 और अग्रवाल, निशा, इंडियन फाइनैन्शियल सिस्टम्स, कल्याणी पब्लिसर्स, 2016।
- प्रतियोगिता दर्पण, जुलाई 2016।
- इंडियन इकोनोमी, जुलाई 2016।
- अग्रवाल, दीपक (2010), मुद्रा बैंकिंग, लोक वित्त एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, हिमालया पब्लिशिंग हाउस मुबई।
- बिशनोई, आर0के0, बीमा के सिद्धांत, साहित्य भवन पब्लिसर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा।
- श्रीवास्तव, आर0एम0 और निगम, दिब्या मैनेजमैन्ट ऑफ इंडियन फाइनैन्यिल इंस्टीट्यूशन्स
- विभिन्न इंटरनैट साइट्स।
- जैन, टी0आर0 इंडियन फाइनैन्शियल सिस्टम्स, वी0के0 ग्लोबल पब्लिकेशन्स और खन्ना, ओ0पी0, प्राईवेट लिमिटेट, 2014–15।

इकाई 7 भारतीय रिजर्व बैंक (Reserve Bank of India)

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
7.2 भारतीय रिजर्व बैंक के उददेश्य
7.3 रिजर्व बैंक का विधान
7.4 रिजर्व बैंक के राष्ट्रीयकरण की आवश्यकता
7.5 रिजर्व बैंक का संगठन एवं प्रबन्ध
7.6 रिजर्व बैंक के कार्य
7.7 साख नियंत्रण
7.8 साख नियंत्रण के उद्देश्य
7.9 साख नियंत्रण की रीतियाँ
7.9.1 परिमाणात्मक साख नियंत्रण
7.9.2 गुणात्मक साख नियंत्रण
7.10 सारांश
7.11 शब्दावली
7.12 बोध प्रश्न
7.13 बोध प्रश्नों के उत्तर
7.14 स्वपरख प्रश्न
7.15 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- रिजर्व बैंक के स्थापना तथा इसके उद्देश्यों को विस्तार पूर्वक समझ सकें ।
- रिजर्व बैंक के राष्ट्रीयकरण की आवश्यकता को समझ सकें ।
- रिजर्व बैंक के संघटन को विस्तृत रूप में समझ सकें ।
- भारतीय रिजर्व बैंक के कार्यों की विस्तार से चर्चा कर सकें ।
- साख नियंत्रण को समझाते हुए इसके उद्देश्यों तथा साख नियंत्रण रीतियों का वर्णन कर सकें ।

7.1 प्रस्तावना

भारत में केन्द्रीय बैंकिग की आवश्यकता 18वीं शताब्दी में महसूस की गई जब बंगाल के गर्वनर ने बंगा तथा बिहार में केन्द्रीय बैंकिग व्यवस्था के तहत भी प्रारम्भ केन्द्रीय बैंक स्थापित करने का सुझाव दिय । इस क्रम में सन् 1773 ई0 में बैंक स्थापित किया गया। लेकिन कुछ ही समया बाद यह बन्द कर दिया गया। 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में सन् 1913 ई0 में चैम्बरलेन आयोग ने भारत के लिए एक केन्द्रीय बैंक की स्थापना का सुझाव दिया परन्तु प्रथम महायुद्ध प्रारम्भ हो जाने से इस सुझाव पर कोई विचार नहीं किया गया। चैम्बरलेन आयोग के सुझाव से तीन प्रेसीडेन्सी बैकों का एकीकरण कर सन् 1921 ई0 में इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना की गई। इस बैंक को बाणिज्यक बैकों के कार्यो के साथ–साथ केन्द्रीय बैंक के कार्य करने की अनुमति प्रदान की गई।

क्योंकि इम्पीरियल बैंक मूल रूप से एक वाणिज्यक बैंक था अतः उसे नोट छापने के अधिकार से वंचित रखा गया। इम्पीरियल बैंक केन्द्रीय बैंक के कुछ कार्यो को करने के बाबजूद भी भारत में केन्द्रीय बैंक की कमी को पूरा नहीं कर पाया। सन् 1926 ई0 में हिल्टन यंग कमीशन ने भारत के एक स्वतंत्र केन्द्रीय बैंक स्थापित करने की सिफारिश की जो भारतीय रिर्जव बैंक के रूप में भारत में बैंकिग सुविधाओं का विस्तार कर सके। जिसके आधार पर जनवरी 1927 ई0 में सरबेसिल ब्लैकट ने केन्द्रीय असेम्बली में एक बिल रखा, परन्तु बिल की मूल धाराओं पर बहुत विरोध प्रकट किया गया और सरकार ने बिल को वापस ले लिया। सन् 1930 ई0 में केन्द्रीय बैंक जॉच समिति ने तथा 1933 में गोल मेज सम्मेलन केन्द्रीय बैंक स्थापित करने की जोरदार शब्दों में सिफारिश की गई। तत्पश्चात 1934 में विधानसभा में भारतीय रिर्जव बैंक बिल प्रस्तुत किया गया। जो सन् 1934 में एक एक्ट के रूप में पारित हुआ। इसी एक्ट के अनुसार भारतीय रिर्जव बैंक की स्थापना हुई और इसने 1 अप्रैल 1935 से अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया।

रिर्जव बैंक ऑफ इण्डिया भारत का केन्द्रीय बैंक है। केन्द्रीय बैंक किसी देश की मौद्रिक प्रणाली की सर्वोच्च (apex institution) संस्था होती है। जिसका प्रत्यक्ष तथा प्ररोक्ष नियंत्रण देय की मौद्रिक नीति तथा वित्तीय प्रणाली पर रहता है। मौद्रिक प्रणाली की सर्वोच्च संस्था होने के कारण देश में मौद्रिक एवं वित्ती प्रणाली का संचालन, पथ प्रदर्शन और नियंत्रण करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

7.2 भारतीय रिजर्व बैंक के उददेश्य (Objectives of Reserve Bank of India)

सन् 1934 ई0 में एक्ट के रूप में पारित हुए बिल के अनुसार 1 अप्रैल 1935 से भारत का रिर्जव बैंक निरंतर निम्नॉकित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कार्य कर रहा है।

1. सरकार के बैंकर के रूप में क्रार्य करना (सरकार की ओर से भुगतान करना,लेना तथा विदेशी विनिमय का लेने देन के साथ–साथ उक्त विषयों पर सरकार को सलाह देना)
2. भारतीय में रूपये के आन्तरिक व बाहय मूल्य में स्थिरता लाना।
3. देश में मुद्रा तथा साख को मांग के अनुरूप बनाये रखने के साथ–साथ नियंत्रित करना।
4. देश की मुद्रा, तथा बैंकिग व्यवसाय से संबंधित विविध विषयों पर आकड़े इक्ट्ठा कर इन्हें प्रकाशित करना।
5. बैकों से नकद कोष प्राप्त कर दृढ केन्द्रीय कोष का निर्माण करना जिससे मुद्रा बाजार में लोच पैदा हो, बैकिंग संकट रोका जा सके तथा बैंकिग व्यवसाय पर नियंत्रण रहे ।
6. बैकिंग व्यवसाय के उपभोक्ताओं के हितों का ध्यान रखना तथा उपभोक्ताओं के शिकायतों एवं विवादों को निपटाना।
7. कृषि के विस्तार व विकास के लिए कृषि साख संबंधी विभिन्न विषयों का अध्ययन करना, प्रत्यक्ष सहायता की व्यवस्था करना तथा आवश्यक हो तो सरकार को सलाह देना।
8. विदशों में मौद्रिक संबंध स्थापित करना।

7.3 भारतीय रिर्जव बैंक का विधान (ORGANISATION OF RESERVE BANK)

रिर्जव बैंक की स्थापना किये जाने के निर्णय के साथ ही इसके विवाद भी उत्पन्न हो गया। विवाद था कि रिर्जव बैंक का स्वामित्व अंशधारियों के पास होगा या इस पर राज्य का स्वामित्व होगा। दोनों विचारों के पक्ष–विपक्ष में अनेकों तर्क दिये गये लेकिन अन्ततः भारतीय रिर्जव बैंक का स्वामित्व का अधिकार अंशधारियों को दे दिया गया। इसके पीछे कारण थे कि उस समय संसार के

विभिन्न प्रमुख देशों के केन्द्रीय बैंक अंशधारियों के अधिकार में थे। रिर्जव बैंक की स्थापना ब्रिटिश सरकार ने अशंधारियों के बैंक के रूप में की । इसकी अधिकृत ूपजी 5 करोड रूपये थी जिसे 100 रूपये मूल्य के अशों में विभाजित किया गया था। सफल एवं कुशल संचालन तथा शांति के निकेन्द्रीकरण के उद्देश्य से सम्पूर्ण देश को पॉच क्षेत्रों मुम्बई, कोलकत्ता, चेन्नई, दिल्ली तथा रंगून में विभाजित किया गया था। तथा सभी पॅाच क्षेत्रों के लिए अंशधारियों की उच्चतम सीमा निर्धारित की गई थीं।

बड़ा प्रश्न सबके सामने था कि केन्द्रीय बैंक होने के नाते क्या भारतीय रिर्जव बैंक का स्वामित्व अंशधारियों के हाथों में होना चाहिए? भातर के स्वतंत्र होने के बाद स्थितियों में बदलाव आया। जनमत रिर्जव बैंक के राष्ट्रीयकरण के प्रश्न मे हो रहा था साथ ही बैंक ऑफ इंग्लैड, बैंक ऑफ फ्रांस तथा यूरोप के अन्य देशों में केन्द्रीय बैकों का राष्ट्रीयकरण किया जा चुका था। भारतीय संसद ने जनमत को देखते हुए सितम्बर 1948 में एक कानून पारित किया जिसके अनुसार 1 जनवरी 1949 से रिर्जव बैंक पर सरकार का अधिकार हो गया।

7.4 रिर्जव बैंक के राष्ट्रीयकरण की आवश्यकता **(NEED OF NATIONALIZATION OF RESERVE BANK)**

देश के केन्द्रीय बैंक के कार्यो को नियक्षता, सफलता तथा देश हित मे करने के लिए इस बात की आवश्यकता महसूस हुई कि रिर्जव बैंक का स्वामित्व अंशधारियों के हाथों में होने की बजाय सरकार के हाथों में होना चाहिए। निम्नाकित कारणों से रिर्जव बैंक का राष्ट्रीयकरण आवश्यक था।

1. आर्थिक संकट से उबरने एवं युद्धोत्तर काल में आर्थिक पुनर्निमाण की योजनाओं की सफलता के लिए केन्द्रीय बैंक का स्वामित्व सरकार के पास होना चाहिए तथा सरकारी नीति के अनुरूप कार्य किया जा सके।
2. सरकारी बैंकर होने के नाते सभी सरकारी लेन–देन, ऋण लेना विदेशी विनिमय हेतु सरकार का नियंत्रण एवं स्वामित्व आवश्यक था।
3. सरकार की मौद्रिक नीति तथा वित्तीय प्रणाली के निष्पक्ष तथा सफल संचालन एवं नियंत्रण के लिए आवश्यक।
4. सरकार की आर्थिक नीति के संचालन में केन्द्री बैंक के सलाह तथा सहयोग की आवश्यकता थी।
5. विदेशों से मौद्रिक सर्म्पक स्थापित करने, आर्थिक सहयोग एवं आर्थिक सहायता प्राप्त करने के लिए रिर्जव बैंक का राष्ट्रीयकरण आवश्यक समझा गया।
6. विश्व के महत्वपूर्ण केन्द्रीय बैंकों का राष्ट्रीयकरण हो चुका था।

7.5 रिर्जव बैंक का प्रबन्ध **(MANAGEMENT OF RESERVE BANK)**

रिर्जव बैंक आफ इण्डिया की स्थापना सन् 1934 में पारित एक एक्ट के द्वारा 1 अप्रैल 1935 को हुई। प्रारम्भ में रिर्जव बैंक आफ इण्डिया का स्थामित्व अंशधारियों के हाथों में था जिसकी अधिकृत पूजी 5 करोड रूपये थी जो 100 रूपये वाले 5 लाख अशों में विभाजित थी। लगभग सभी शेयर निजी लोगों के पास थे। रिर्जब बैंक आफ इण्डिया का केन्द्री बैंक के रूप में महत्वपूर्ण कायों के निर्वहन को देखते हुए भारत ने स्वत्रंत होने के बाद 1 जनवरी 1949 को इसका राष्ट्रीयकरण कर दिया।

रिर्जव बैंक के कार्यो का संचालन केन्द्रीय संचालक मण्डल द्वारा किया जाता है। कुशल प्रशासन तथा विकेन्द्रीकरण की दृष्टि से सम्पूर्ण भारत को चार भागों में बांटा गया है। उत्तरी क्षेत्र पूर्वी क्षेत्र एवं पश्चिमी क्षेत्र इनमें से प्रत्येक क्षेत्र के लिए पॉच सदस्यों का स्थानीय बोर्ड होता है।

केन्द्रीय बोर्ड में कुल बीस सदस्य होते है। इनमें से एक गवर्नर तथा चार उपगवर्नर होते हैं। गवर्नर बैंक का सर्वो प्रशासनिक अधिकारी होता है।

गवर्नर तथा उपगवर्नरों की नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा पाच वर्षों के लिए की जाती है। रिर्जव बैंक के चार स्थानीय बोर्ड दिल्ली, कोलकत्ता, मुम्बई तथा चेन्नई में स्थित हैं तथा चार संचालक (प्रत्येक के लिए एक) चारों स्थानीय बोर्डो से केन्द्रीय सरकार द्वारा मनोनित किये जाते है। इनका कार्यकाल भी पॉच वर्षो का होता है। केन्द्रीय संचालक मण्डल में दस अन्य संचालक जिनका चुनाव केन्द्र सरकार द्वारा चार वर्षो के लिए किया जाता होते है। चार वर्षो के कार्यकाल के लिए नियुक्त किये गये संचालक उद्योग व्यापार, आर्थिकी तथा सहकारिता आदि विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञ होते हैं। इन उन्नीस सदस्यों के अतिरिक्त केन्द्रीय संचालक मण्डल में एक सरकारी अधिकारी प्रायः भारत सरकार का वित्त सचिव होता है जो केन्द्र सरकार की इच्छानुसार कितने भी समय तक बोर्ड में बना रह सकता है।

स्थानीय बोर्ड केन्द्रीय बोर्ड के आदेशानुसार कार्य करते है तथा उनको आवंटित की गई जिम्मेदारियों एवं कार्यो पर केन्द्रीय बोर्ड को सलाह देते है। भारत सरकार द्वारा मनोनीत स्थानीय बोडों के सदस्य विभिन्न क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते है। जिनका कार्यकाल चार वर्ष होता है।

रिर्जव बैंक का प्रधान कार्यालय मुम्बई में स्थित है। मुम्बई के अतिरिक्त दिल्ली, चेन्नई एवं कोलकत्ता में स्थानीय प्रधान कार्यालय हैं। बैंक ने अपने कार्यालय देश में विभिन्न जगहों पर स्थापित किये हैं, जहां रिर्जव बैंक के कार्यालय नहीं है तथा जहां रिर्जव बैंक ने प्रभारी अधिकारी नियुक्त नहीं किये हैं ऐसे स्थानों पर स्टेट बैंक रिर्जव बैंक के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है। रिर्जव बैंक का केन्द्रीय प्रधान कार्यालय 10 (दस) भागों में विभक्त हैं, सेक्रेटरी का कार्यालय, चीफ एकाउन्टेण्ट का कार्यालय, निरीक्षण विभाग, कानूनी विभाग, बैंकिग विकास विभाग, कृषि साख विभाग, औद्योगिक वित्त विभाग, विनिमय नियत्रंण विभाग, अनुसंधान एवं सांखिकी विभाग।

केन्द्रीय/प्रधान कार्यालय के अतिरिक्त अन्य कार्यालयों को संगठन के तौर पर दो भागों में बांटा जाता है। (अ) नोट निर्गमन विभाग (ब) बैंकिग विभाग/निगमन विभाग पुनः दो भागों में विभाजित होता है। (अ) सामान्य विभाग (ब) नकदी विभाग। बैंकिग विभाग सरकार की तरफ से बैंकिग के सभी कार्य करता है। यह चार उप विभागों में विभाजित होता है।

(अ) जमा खाता विभाग

(ब) प्रतिभूति विभाग

(स) सरकारी खाता विभाग

(द) सरकारी ऋण विभाग।

वित्तीय निरीक्षण

रिर्जव बैंक वित्तीय निरीक्षण के कार्य को वित्तीय निरीक्षण बोर्ड के मार्गदर्शन में पूरा करता है। इस बोर्ड का गठन नवम्बर 1994 ई में रिर्जव बैंक के केन्द्रीय बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स की समिति के रूप में किया गया। इस बोर्ड का मुखिया गवर्नर होता है तथा केन्द्रीय बोर्ड से चार संचालकों को 2 साल के लिए नियुक्त किया जाता है। एक उप गवर्नर को (मुख्यतः गवर्नर इनचार्ज बैंकिग

रेगुलेशन एण्ड सुपरविजन) को बोर्ड आफ फाइनेशियल सुपरविजन उप चेयरमैन नामित किया जाता है। इस बोर्ड ठैथ सदस्यों महीने में एक मिलकर अपने कार्यो का अन्जाम देना पडता है।

रिर्जव बैंक का संगठन

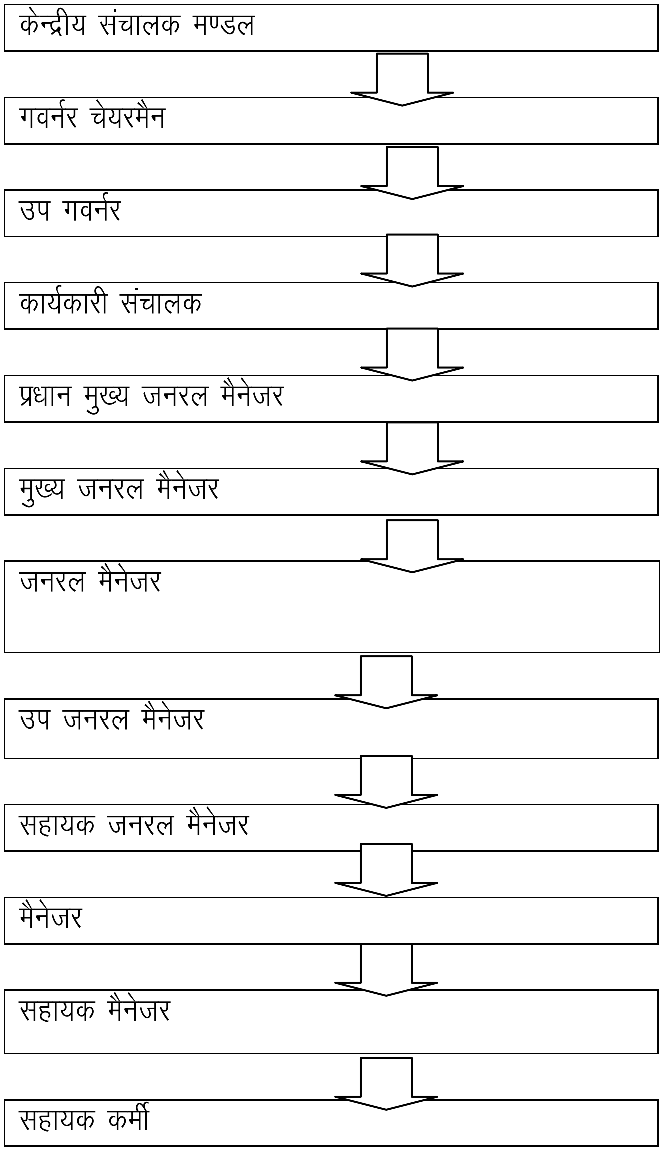

7.6 रिर्जव बैंक के कार्य (FUNCTIONS OF RESERVE BANK)

सन् 1934 ई0 में पारित रिर्जव बैंक आफ इण्डिया एक्ट की प्रस्तावना के अनुसार रिर्जव बैंक प्रमुख रूप से भारत में मौद्रिक स्थिरता स्थापित करने तथा देशहित में मुद्रा तथा साख प्रणाली का संचालन करने के उद्देश्य से नोटों के निर्गमन का नियमन करना तथा रक्षित कोषों को रखने का कार्य करता है। इसके अतिरिक्त देश मे वर्तमान की परिस्थितियों के अनुरूप रिजर्व बैंक को समय–समय पर अनेक प्रकार के कार्य करने पडते है रिजर्व बैंक के कार्यों को मुख्यतः निम्न भागों में बांटा जा सकता है।

1. केन्द्रीय बैकिग के कार्य
1. रिजर्व बैंक करेन्सी अधिकारी के रूप में।
2. साख नियत्रंण एवं मुद्रा पूर्ति।
3. बैंकिग तथा वित्तीय व्यवस्था का नियमन।
4. बैकों का बैक और पर्यवेक्षक के रूप में
5. रिजर्व बैंक सरकार के बैकर अभिकर्ता एवं सलाहकार के रूप में।
6. विदेशी विनिमय का प्रबंधन एवं नियत्रंण ।
7. कृषि वित्त प्रवर्तन एवं साख व्यवस्था।
8. समाशोधन गृहों की व्यवस्था।
9. औद्योगिक वित्त का प्रवर्तन।
10. मौद्रिक तथा वित्त संबंधी आकडों तथा सूचना का प्रकाशन
11. बैकिंग विकास से संबंधित कार्य
2. सामान्य बैकिंग कार्य
3. उपभोक्ता केन्द्रित कार्य

केन्द्रीय बैकिंग कार्य **(CENTRAL BANKING FUNCTION)**

1. रिजर्व बैंक करेन्सी अधिकारी के रूप में

भारत में एक रूपये का नोट, सिक्के और छोटे सिक्कों को नोट, सिक्के तथा छोटे सिक्कों को छोडकर सभी करेन्सी नोटों के निर्गमन का एकाधिकार रिर्जव बैंक को प्राप्त है। एक रूपये के नोट, सिक्के तथा छोटे सिक्कों को भारत सरकार द्वारा जारी किया जाता है। वर्तमान में रिर्जव बैंक भारतीय करेन्सी का बडा भााग 2, 5, 10, 20, 50, 100, 500, 1000 तथा 2000 रूपये के नोटों के रूप में निर्गमन करता है। पूर्व में यह 5000 एवं 10,000 रूपये के नोटों का भी निर्गमन करता था लेकिन बाद में अर्थव्यवस्था में काले धन को चलन से बाहर से बाहर करेन तथा कोलधन की रोकथाम करने के लिए उन्हें विमुद्रीकृत कर दिया गया। वर्ष 2016 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र दामोदर दास मोदी ने 8 नवम्बर की आधी रात से 500 तथा 1000 रूपये के नोटों को विमुद्रीकृत किया तथा रिर्जव बैंक आफ इण्डिया कालेधन की रोकथाम के लिए 500 का नया नोट तथा 2000 रूपये का नोट लेकर आया। रिर्जव बैंक द्वारा जारी सभी नोट असीमित विधिग्राहा होते हैं और केन्द्र सरकार की उन पर गारंटी होती है। बैंक द्वारा नोट निर्गमन का कार्य अन्य बैंकि कार्य से अलग होता है। इसलिए रिर्जव बैंक ने दो अलग–अलग विभाग होते है। पहला– नोट निर्गमन विभाग और दूसरा बैंकिग विभाग।

नोट निर्गमन विभाग का स्थिति विवरण बैंकिग विभाग से अलग रखा जाता है। निर्गमन विभाग की परिसम्पत्तियां तथा देनदारियां बैकिंग विभाग की परिसम्पत्तियों तथा देनदारियों से अलग रखी जाती है। देश की करेन्सी पर जनता का विश्वास कायम रहे इसके लिए रिर्जव बैंक का नोट निर्गमन विभाग करेन्सी मूल्य के नोटों के बराबर सुरक्षित कोष में स्वर्ण के सिक्के, बहुमूल्य धातुऐं (सोना, चॉदी) विदेशी प्रतिभूतियॉ भारत सरकार की प्रतिभूतियॉ रूपये के सिक्के तथा ऐसे विनिमय विल व प्रतिज्ञा पत्र रखता है। जिनका भुगतान भारत में होना है। बैंकिग विभाग की मॉग तथा इसके द्वारा हस्तान्तरित विनिमय विलों अथवा सरकारी प्रतिभूतियों आदि के आधार पर निर्गमन विभाग नोट जारी अथवा रद्द करता है। चलन में मुद्रा को लाने तथा हटाने का कार्य बैंकिग विभाग द्वारा किया जाता है।

सन् 1935 ई0 से 1956 ई0 तक रिर्जब बैक ने अनुपातिक कोष प्रणाली के आधार पर नोटों का निर्गमन किया। इस प्रणाली के अनुसार जारी निर्गमन नोटों के मूल्य के 40 प्रतिशत सोने के सिक्कों तथा विदेशी प्रतिभूतियों के रुप में आवश्यक रुप से रखना होता था तथा शेष राशि को रुपये में रखी जा सकती थी इसके साथ ही यह व्यवस्था भी थी कि किसी भी समय सोने के सिक्कों व स्वर्ण धातुओं के कोषों की न्यूनतम सीमा 40.02 करोड रुपये से कम न हों अक्टूबर 1956 को इस पद्धति के स्थान पर ''न्यूनतम विदेशी कोष पद्धति'' को अपना लिया गया। इस प्रणाली के आनुसार रिर्जव बैंक न्यनतम 515 करोड रुपये की परिसम्पत्तियॉ (इससे 115 करोड रुपये का न्यूनतम स्वर्ण कोष और 400 करोड रुपये की विदेशी प्रतिभूतियॉ और शेष राशि को में रखकर किसी भी सीमा तक नोटों का निर्गमन कर सकता है। सन् 1957 में इस प्रणाली को आसान बनाते हुए स्वर्ण तथा विदेशों प्रतिभूतियों के कोष की न्यूनतम सीमा 200 करोड रुपये कर दिया। जिसमें 115 करोड का स्वर्ण होना आवश्यक तथा शेष राशि के रुप में रखी जा सकती थी।

2 साख नियंत्रण एवं मुद्रा पूर्ति–

भारत के केन्द्रीय बैंक के रुप में रिर्जव बैंक का एक महत्वपूर्ण कार्य है मुद्रा पूर्ति तथा बैकों की साख की मात्रा को राष्ट्रीय हित में उच्चतम स्तर पर नियंत्रण करना। साख नियंत्रण से अभिप्राय बैकों को ऋण देने की नीति को नियंत्रित करने से है। इन्हें प्राप्त करने हेतु साख नियंत्रण भी अति आवश्यक है। रिर्जव बैंक को साख नियंत्रण के विविध अधिकार प्राप्त हैं जिन्हें आवश्यकतानुसार प्रयोग में लाया जा सकता है। रिर्जव बैंक आफ इण्डिया एक्ट के अनुसार बैक के पास साख नियंत्रण के विभिन्न अधिकार उपाय है। जिनमें से मुख्य रुप से बैंक दर ने परिवर्तन खुले बाजार की क्रियायें करने, बैकों के नकद कोषों की मात्रा में परिर्वतन करने जैसे अधिकार हैं। आवश्यकता पडने पर रिर्जव बैंक वाणिज्यक बैकों की ऋण नीति, निवेश नीति तथा व्याज नीति को पूणतया नियंत्रित कर सकता है।

3 बैंकिग तथा वित्तीय व्यवसाय का नियमन–

बैकिग तथा वित्तीय व्यवस्था के नियमन/नियंत्रण हेतु भारतीय बैंकिग अधिनियम 1949 के अन्तर्गत देश के वाणिडयक बैकों पर नियंत्रण रखने के उद्देश्य से रिर्जव बैंक को कुछ निम्नांकित विशेषाधिकार दिये गये है।

- भारत में बैकिग व्यवसाय करने वाले बैक को रिर्जव बैक से इस संबंधित लाइसेन्स प्राप्त करना अनिवार्य है। बैंक की नीति एवं स्थिति व कार्य प्रणाली संतोषजनक न होने पर यह लाइसेन्स रद्द भी किया जा सकता है।
- वर्णातमक साख नियंत्रण के अधीन रिजर्व बैंक किसी भी बैंकिग कंपनी अथवा सभी बैंकिग कंपनियों को विशेष प्रकार के लेन–देन से रोक सकता है।
- किसी भी बैंकिग कंपनी का दूसरी बैंकिग कंपनी के साथ एकीकरण करने से पूर्व रिजर्व बैंक की अनुमति प्राप्त करना आवश्यक है। अदालत को भी यह अधिकार नहीं कि वह रिजर्व बैंक रिजर्व बैंक की पूर्वानुमति के बिना किसी एकीकरण को स्वीकृति दे दें।
- रिजर्व बैंक अपनी इच्छा से या केन्द्र सरकार के निर्देश पर किसी भी बैंक का निरीक्षण कर सकता है। असंतोषजनक स्थिति होने पर वह निरीक्षण रिपोर्ट पर विचार करने हेतु अपने सचालकों की बैंठक बुला सकता है तथा रिपोर्ट पर दिये गये सुझावों का पालन करने के

लिए बैंक को आदेश दे सकता है। यह असंतोषजनक स्थिति वाले बैंक को प्रबंधक बदलने तथा कारोबार बन्द करने के आदेश भी दे सकता है।

- बैकों के वरिष्ठ अधिकारी की नियुक्ति उनके वेतन, प्रशिक्षण आदि से संबंधित नियम बनाने तथा उन्हें स्वीकृति प्रदान करने संबंधी अधिकार भी रिजर्व बैंक को प्राप्त है। रिजर्व बैंक तथ्यात्मक रुप से किसी भी बैंक के प्रबंधक प्रशासनिक अधिकारी तथा अध्यक्ष को उनके पद से हटा सकता है।
- रिजर्व बैंक वाणित्यक बैकों का वैधानिक नकद कोषानुपात तथा वैधानिक तरलता अपुपात का निर्धारण करता है।
- प्रत्येक बैंक को नई शाखाओं के खोलने तथा पुरानी शाखाओं के स्थान परिवर्तन के लिए रिजर्व बैंक से पूर्वानुमति लेनी पडती है।
- रिजर्व बैक को किसी बैंक विशेष अथवा सभी बैकों की ऋण नीति पर नियंत्रण रखने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है।
- किसी बैक की आर्थिक स्थिति यदि असंतोषजनक है तो रिजर्व बैंक उस बैंक के लिए कानूनी तौर पर विलम्बकाल घोषित करने की सिफारिश करता है जिसकी अवधि 6 माह तक बढायी जा सकती है।

4 बैकों का बैंक एवं पर्यवेक्षक के रुप में

भारत में रिर्जव बैंक के अतिरिक्त व्यापारिक बैंक व अन्य बैकों का चलन है तथा रिजर्व बैंक व्यापारिक बैकों के बैक के रुप में कार्य कर महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस कार्य के द्वारा वह बैंकिंग व्यवस्था का संरक्षण नियमन तथा नियंत्रण करता है। रिर्जव बैंक को बहुत ऐसे अधिकार प्राप्त हैं जिनका प्रयोग क रवह देश की अर्थव्यवस्था के हित मे समय–समय पर विभिन्न प्रकार के फैसले लेकर बैकिग व्यवस्था को सुचारू रुप से चलाने का कार्य करता है।

बैकों के बैक के रुप में भारतीय रिजर्व बैंक अन्य बैकों से उनके नकद कोषों एक निशचित प्रतिशत/हिस्सा अपने पास जमा कराता है। देश का केन्द्रीय बैंक होने की वजह से रिजर्व बैंक अधिकृत है कि वह देश के वाणिज्यक बैकों से उनके कुल शुद्ध देयताओं का उसे 15 प्रतिशत तक अपने पास जमा कराये और इस अनुपात को नकद कोष अनुपात कहा जाता है। बैकों के आपात काल में रिजर्व बैंक इन्हें पैसे उधार भी देता है लेकिन यह अल्प अवधि के लिए ही किया जाता है। सभी बैकों के नकद कोषों का एक हिस्सा एक बैंक (केन्द्रीय बैंक) में एकत्रीकरण से पूरे बैकिग व्यवसाय के नकद कोषों को नियम्मयता प्राप्त होती है। क्योंकि जब कोई बैक नकदी की कमी की वजह से आपातकाल का सामना करता है तो इसे आरक्षित केन्द्री एकीकृत कोष से उधार दे कर पूरा किया जा सकता है। रिजर्व बैंक द्वारा समय–समय पर देश की अर्थव्यवस्था को देखते हुए नकद कोष अनुपात को घटाया या बढ़ाया जा सकता है। बैकों को आपातकाल से उबारने के साथ–साथ इस अनुपात का प्रयोग रिर्जव बैंक बैकिग साख को नियंत्रित करने तथा उपभोक्ताओं के हितों के संरक्षण के लिए भी किया जाता है जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रुप में हो सकता है।

5 रिजर्व बैंक सरकार के बैंकर, अभिकर्ता एवं सलाहकार के रुप में

भारतीय रिर्जव बैंक भारत सरकार तथा राज्य सरकारों के बैंकर, अभिकर्ता तथा सलाहकार की भूमिका भी निभाता है। सरकारी बैकर के रूप में वह भारत सरकार तथा राज्य सरकारों का बैकिंग संबंधी सभी लेन–देन के कार्यो को करता है। इसके अन्तर्गत वह सरकार की तरफ से नकदी

जमा करता है। अन्य संस्थाओं या व्यक्तियों द्वारा सरकार को चुकाई जाने वाली राशि वसूल कर सरकार के खाते में जमा करता है तथा सरकार की ओर से किये जाने वाले भुगतान सम्पन्न करता है, इसमे विनिमय का कार्य, सरकारी कोषों के स्थानान्तरित का कार्य तथा सरकारों के लिए विदेशों विनिमय की व्यवस्था करना सम्मिलित होता है। सरकार की ओर से सम्पन्न किये गये साधारण बैंकिग कार्यो के लिए रिजर्व बैक को कोई कमीशन नहीं दिया जाता है। साथ ही सरकारी जमाओं पर रिर्जव बैंक ब्याज भी नहीं चुकाता है।

सरकार का बैंकर होने के कारण कभी–कभी सरकारी जमाओं से ज्यादा भुगतान रिर्जव बैंक को करना पडता है। इस होने वाले घाटे को पूरा करने के लिए रिर्जव बैंक द्वारा सरकार को अल्पकालीन ऋण दिया जाता है। रिजर्व बैंक द्वारा भारत सरकार के साथ–साथ राज्य सरकारों को भी यह अल्पकालीन ऋण दिया जाता है। इन ऋणों को उपाय एवं साधन अग्रिम कहा जाता है। इन ऋणों का भुगतान अधिक से अधिक 90 दिनों के भीतर कर दिया जाता है। सरकार के लिए सार्वजनिक ऋण का प्रबंधन भी रिजर्व बैंक करता है इसके निर्वहन के लिए रिजर्व बैंक सरकार के सभी ऋणों के नये निर्गमों का प्रबंधन करता है। अशोधित सार्वजनिक ऋणों का शोधन करता है और सरकारी प्रतिभूतियों के बाजार की देखे–रेख करता है।

लोगों में सरकारी ऋण लेने के कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिए सरकार तथा रिजर्व बैंक ने कई महत्वपूर्ण कदम उठाये है। इन उपायों में महत्वपूर्ण है सरकारी प्रतिभूतियों में विनियोग करने के लिए वैधानिक अनिवार्यता पूरी होना। इसके अन्तर्गत विभिन वित्तीय संस्थाऐं जैसे भारतीय जीवन बीमा निगम, वाणित्यक बैंक, जी0आई0सी0 और सहायक कंपनियों आदि के लिए कानून आवश्यक होता है। कि वे अपनी कुल परिसम्पत्तियों को निधारित न्यूनतम अनुपात सरकारी प्रतिभूतिों तथा मान्य प्रतिभूतियों पर कर व्यय करें। सरकार के ऐजण्ड (अभिकर्त्ता) के रुप में रिर्जव बैंक सार्वजनिक ऋणों का प्रबंधन करता है। सार्वजनिक ऋण प्राप्त करने की पद्वति, व्यवस्था निश्चित तिथि पर व्याज तथा मूलधन के भुगतान तक सभी कार्य रिर्जव बैंक द्वारा सम्पन्न किये जाते है। आवश्यकता पडने पर रिर्जव बैंक सरकार की ओर से कोषागार बिल बेचकर अल्पकालीन ऋणोंकी व्यवस्था करता है। इसके साथ ही इसका पूरा हिसाब–किताब रिर्जव बैंक द्वारा रखा जाता है। नये–ऋणों को प्राप्त करने की सफलता के लिए ये बाजार को तैयार करता है। ताकि बाजार में नये ऋणों के प्रति लोगों में जागरूकाता तथा आकर्षण बढे। सामान्यतया बैंक नये ऋणों को भारी मात्रा में स्वयं खरीदता है और बाद में उन्हें बेचता है। वह नये तथा पुराने, निर्मयों का बृहद संग्रह अपने पास रोके रखता है ताकि वह निवेशकों की विभिन्न प्रकार की मागों को पूरा कर सकें।

आर्थिक मामलों में सरकार के सलाहकार के महत्वपूर्ण कार्य के निर्वहन में रिर्जव बैंक सरकार को मौद्रिक वित्तीय अथवा आर्थिक कार्यो में सलाह देता हैं और इससे संबंधित सरकारी नितियों को सफल बनाने की दिशा में कार्य करता है। इसके साथ ही अन्तरराट्रीय वित्त के मामलों में पंचवर्षीय योजना के वित्तीय स्वरूप के बारे में साधनों की गतिशीलता के बारे मे तथा बैंकिग व्यवस्था के बारे में रिर्जव बैक सरकार को सलाह देकर आवश्यक कार्यवाही करता है।

6 विदेशी विनिमय का प्रबंधन एवं नियंत्रण

भारतीय रिर्जव बैंक देश के विदेशी विनिमय कोषों के संरक्षक के रुप में कार्य करता है, विनिमय नियत्रंण का प्रबन्ध करते हुए भारत सरकार के अन्तरर्राष्ट्रीय मुद्रा को IMF सदस्य के रुप मे सरकार के अभिकर्ता के तौर पर कार्य करता है। रिर्जव बैंक का विनिमय नियंत्रण विभाग देश मे विदेशी विनिमय का मॉग और पूर्ति का सम्पर्ण हिसाब–किताब रखता है और उमे संतुलन बनाने का

प्रयास करता है। केन्द्रीय बैंक होने के कारण भारत में विदेशी मुद्राओं का समस्त राष्ट्रीय कोष रिर्जव बैंक के आधीन तथा नियंत्रण में रहता है तथा इनमें से किसी भी तरह का भुगतान रिर्जव बैंक की स्वीकृति से ही किया जाता है। विनिमय नियंत्रण सर्वप्रथम सितम्बर 1939 में भारत में लागू हुआ और इसके अन्तर्गत प्राप्तियों और भुगतानों दोनों में नियंत्रण को लागू किया गया था। विदेशी विनिमय नियंत्रण के अन्तर्गत कानूनन यह आवश्यक है कि सभी विदेशी विनिमय की प्राप्तिया (किसी भी श्रोत से प्राप्त हुई हों आयात अथवा सरकारी श्रोत) निश्चय ही सीधे या अधिकृत विक्रेता द्वारा कोषों को एक स्थान पर एकत्रित कर इनके विनियोगों को करने में सरलता तथा तत्परता होगी। भारतीय मुद्रा के मल्य को स्थिरता प्रदान करने के लिए भी रिर्जव बैंक द्वारा समय–समय पर कदम उठाये जाते है। अथवा विदेशी विनिमय का क्रय विक्रय किया जाता है। हांलाकि रुपये की विनिमय दर निर्धारण अब स्वतंत्र बाजार में मॉग–पूर्ति के आधार पर निर्धारित होता है। परन्तु यथासम्भव इसमें स्थिरता बनाये रखना रिर्जव बैंक का दायित्व है। अन्ततः मह कहा जा सकता है कि विदेशी विनिमय नियंत्रण इस तरह कार्यान्वित किया जाता है। जिससे विदेशी विनिमय की मॉग इसकी पूर्ति के अनुरुप सिमित किया जा सके।

7 कृषि वित्त प्रवर्तन एवं साख व्यवस्था

रिर्जव बैंक की स्थापना क समय से ही इसकी वैधानिक जिम्मेदारी के रुप में कृषि वित्त प्रवर्तन इसका प्रमुख कार्य रहा है तथा बीते दशकों में रिजर्व बैंक ने कृषि क्षेत्र में अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन वित्त व्यवस्था के लिए अनेक सहराहनीय कार्य किये है। अल्पकालीन साख की व्यवस्था के लिए सहकारी समितियों के विकासके साथ–साथ दीर्घकालीन वित्त की व्यवस्था हेतु इसने 1963 में कृषि पुनर्वित्त एवं विकास निगम की स्थापना की थी। बाद मे राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक की स्थापना होने के बाद कृषि पुनवित्त एवं विकास निगम का इसमें विलय कर दिया गया।

प्रारम्भ से ही रिजर्व बैंक का एक प्रत्यक कृषि विभाग था जिसके मुख्य कार्य थे। (1) कृषि साख संबंधी प्रश्नों का अध्ययन करना, राज्य तथा केन्द्र सरकारों, सहकारी समितियों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं को कृषि साख से संबंधित सलाह देना (2) कृषि साख प्रदान करने वाली संस्थाओं के साथ संबंध सथापित करना था।

कृषि के उत्थान के लिए रिर्जव बैंक द्वारा दिया गया वित्त किसानो तक राज्य सहकारी बैकों तथा भूमि विकास बैकों के माध्यम से पहुचता था। रिर्जव बैंक राज्य सहकारी बैकों को अलग–अलग कार्यो के लिए अल्पकालीन तथा मध्यकालीन ऋण रियायती दरों पर देता था इसके साथ–साथ रिर्जव बैंक राज्य सरकारों को कृषि साख हेतु दीर्घकालीन ऋण भी दे रहा है। रिर्जव बैंक ने सहकारिता के विकास तथा सहकारी साख के विस्तार क लिए अनेक प्रकार से सहायता प्रदान की है। वाणिज्यक बैकों को भी आदेशित किया गया है कि वह कृषि साथ को प्राथमिकता दे इसी क्रम मे 1975 मे क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों की स्थापना की गई तथा 1982 मे स्थापित किये गये राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक की 100 कराड की पूंजी भारत सरकार तथा रिर्जव बैंक द्वारा समान अनुपात मे लगायी गयी। नावार्ड के द्वारा कृषि के अतिरिक्त ग्रामीण उद्योगों तथा अन्य उत्पादक कार्यों क लिए भी ऋण स्वीकृत किये जाते है। जिससे ग्रामीण विकास क कार्यक्रमों को प्रोत्साहित किया जा सके।

8 समाशोधन गृहों की व्यवस्था

समाशोधन कार्य का महत्व इस बात से लगाया जा सकता है कि यदि समाशोधन का कार्य धीमी गति से हुआ या इसमें रुकावट आयी तो अर्थव्यवस्था की क्रियायें मन्द पडने लगती है। बैकों का बैक तथा अंतिम ऋणदाता होने के कारण रिर्जव बैंक प्रारम्भ से ही समाशोधन कार्य कर रहा है।

अर्थवस्वस्था के विस्तार व विकास के कारण अधिक समाशोधन गृहों की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। 1935 मे देश में केवल चार समाशोधन गृह स्थापित थे जो मुम्बई, दिल्ली, चेन्नई तथा कोलकत्ता में कार्य कर रहे थे। 1962 मे इनकी संख्या बढकर 69 तथा 1975 मे यह संस्था 212 हो गई इनमें से 9 संचालन रिर्जव बैंक करता है। यह सभी 9 समाशोधन गृह उन शहरों में है जहा रिर्जव बैंक के स्थानीय कार्यालय हैं। 170 समाशोधन गृहों की व्यवस्था स्टेट बैंक आफ इण्डिया तथा 33 समाशोधन गृहों की व्यवस्था स्टेट बैंक के सहायक बैंक कर रहे है।

समाशोधन गृहों की कार्याविधि को समझने के लिए यह आवश्यक है कि केन्द्रीय बैक की क्रियायें समझी जायें। केन्द्रीय बैंक के पास सभी बैंकों के नकद कोषों का एक हिस्सा या एक निश्चित प्रतिशत जमा होता है अर्थात केन्द्रीय बैंक में सभी बैकों के खाते होते है। समाशोधन से आशय है विभिन्न बैकों के आपसी लेन–देन को व्यवहारिक रुप से न करके सीधे इनके खातों की प्रभावित कर दिया जाय। बैक बैंक उपभेक्ताओं के पास विभिन्न बैंकों के चैक तथा डाफ्ट के लिए आपस मे लेन–देन नही करते बल्कि केन्द्रीय बैक ऐसे सभी बैकों का लेन–देन का एक सामूहिक विवरण तैयार करता है। इस विवरण के आधार पर केन्द्रीय बैक विभिन्न बैकों के खातों की रकम बढा या घटा (लेन–देन के अनुसार) देता है। सइ प्रक्रिया से कुछ भी रकम व्यवहारिक रुप से चुकाये बिना बडे से बडा लेन–देन का निपटारा किया जा सकता है। गत वर्षो मे समाशोधन गृहों में आने वाले चैकों की संख्या में और उनकी राशि में निरन्तर वृद्धि हो रही है जो प्रमाणित करता है कि भारत में चैकों का प्रयोग दिन प्रतिदिन वढ रहा है। इसी क्रम में निरन्तर समाशोधन व्यवस्था में सुधार पर विचार किया जाता रहा है।

9 औद्योगिक वित्त प्रवर्तन

किसी भी अल्पविकसित या विकासशील देश के लिए आगे बढने के लिए औद्योगिक विकास बहुत आवश्यक होता है लेकिन औद्योगिक विकास के लिए पूँजी की आवश्यकता होती हैं। सामान्यतया औद्योगकि विकास के लिए दीर्घकालीन वित्त/ऋण की आवश्यकता होती है जिसे वाणिज्यक बैकों के द्वारा प्रदान नहीं किया जाता है। इस तरह के दीर्घकालीन साख को देने का कार्य औद्योगिक वित्त की विशिष्ट शाखाओं का होता है। स्वतंत्रता के समय तक भारत में इस कार्य हेतु कोई भी संख्या अस्तित्व में नहीं थी। 1935 में रिर्जव बैंक की स्थापना के बाद इस बैंक ने संस्थागत औद्यौगिक वित्त की स्थापना करने के उद्देश्य से भारतीय औद्योगिक वित्तत निगम और राज्य वित्त निगमों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई राज्य वित्त निगमों तथा भारतीय औद्योगिक वित्त निगम में रिजर्व बैंक ने अंश पूँजी गता रखी है। औद्यागिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाला भारतीय औद्यागिक विकास बैंक 16 फरवरी 1976 तक रिजर्व बैक की एक सहायक संस्था के रुप में कार्य करता है। अब यह बैंक एक स्वायत्त संस्था के रुप में कार्य कर रहा है। सन 1964 में रिजर्व बैंक अधिनियम में संशोधन कर राष्ट्रीय औद्यागिक साख (दीर्घकालीन कार्य) कोष की स्थापना की गई जिसका प्रमुख उद्देश्य बडे उद्योगों को दीर्घकालीन वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना था। रिजर्व बैंक ने भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक की स्थापना के साथ–साथ आयात–निर्यात बैक की स्थापना में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया 1 जुलाई 1960 को भारत सरकार द्वारा साख गारंटी योजना चालू की गई जिसका मुख्य उद्देश्य लघु एवं मध्यमय आकार के उद्योगों को बैंक तथा वित्तीय संस्थाओं द्वारा वित्तीय सहायता दिलाना था। इस योजना का संचालन रिजर्व बैंक द्वारा किया जाता है। परन्तु साख की गारंटी भारत सरकार द्वारा दी जाती हे।

10 मौद्रिक तथा भारत संबंधी सूचनाओं तथा ऑकडों का प्रकाशन

किसी भी देश के केन्दीय बैंक की तरह भारत का केन्द्रीय बैंक (रिजर्व बैंक) समय–समय पर मुद्रा, साख, आर्थिक स्थिति, कीमत, विदेशी, विनिमय, विदेशी व्यापार की दशा, दिशा मात्रा तथा भुगतान संतुलन आदि के बारे में आकड़ों का सजग रुप से संकलन कर विश्वस्त जानकारी प्रकाशित करता है। रिजर्व बैंक प्रतिवर्ष संचालक मण्डल की वार्षिक रिपोट, मुद्रा तथा वित्त संबंधी रिपोर्ट और भारतीय बैंकिग वित्तीय एवं प्रवृति और प्रगति के ऑकडे प्रकाशित करता है। ये ऑकडे देश की मौद्रिक,वित्तीय एवं आर्थिक समस्याओं का अध्ययन करने तथा लाभदायक सिद्ध होते है। रिजर्व बैंक आफ इण्डिया का मासिक वुलेटिन तथा वार्षिक करेन्सी एण्ड फाइनेन्स रिपोर्ट महत्वपर्ण आर्थिक सूचनायें तथा आकडे प्रदान करत है।

11 बैंकिग विकास से संबंधित कार्य

भारतीय रिजर्व बैंक देश के बैकों तथा बैकिग व्यवस्था पर नियत्रण रखने के साथ–साथ उनके विकास के लिए भी महत्वपूर्ण कार्य करता है। बैंकिग विकास के स्वरूप शाखा विस्ताार की एक निश्चित नीति अपनाकर बैंक विहीन क्षेत्रों खासकर ग्रामीण क्षेत्रों मे बैंकों की शाखायें खोली गई है। ‘लीड बैंक’ योजना के अन्तर्गत बैकों को आर्थिक विकास के कार्यो में भागीदार बनाने का प्रयास किया गया है। जमा बीमा निगम जिसकी स्थापन 1961 में की गई थी। 1970 में साख गारंटी निगम के साथ मिलाकर जमा बीमा तथा साख गारंटी मिगम बना दिया गया। प्रशिक्षित अधिकारी तथा कर्मचारी ही किसी संस्था को उन्नति पर अग्रसर कर सकते है। इसको ध्यान में रखते हुए रिजर्व बैंक आफ इण्डिया ने सन् 1954 में बम्बई में ‘‘बैंकर्स टेनिंग कालेज’’ की स्थापना की जहां बैकों के अधिकारियों को प्रशिक्षित किया जाता है। पुणे ने कृषि बैंकिग कालेज की स्थापना के साथ ही चेन्नई में स्ट्राफ ट्रैनिग कालेज खोला गया। बैंकिग कलर्को के प्रशिक्षण के लिए चार क्षेत्रीय प्रशिक्षण केन्द्र मुम्बई, दिल्ली, कोलकत्ता तथा चेन्नई में कार्य कर रहे है। बैंक प्रबंधन की राष्ट्रीय संख्या बैंकिग प्रशिक्षण में अहम योगदान दे रहा है। रिजर्व बैक के विकास एवं प्रवर्तन से संबंधित महत्वपूर्ण कार्य निम्नॉकित है।

1. वाणिज्यिक बैंक व्यवस्था का विकास
2. सहकारी बैकिंग व्यवस्था का विकास
3. बिल मार्केट का विकास
4. प्राथमिकता वाले क्षेत्र मे साख उपलब्ध कराना
5. साख गारंटी
6. विभेदात्मक व्याज दर योजना
7. निर्यात के लिए वित्त का प्रवर्तन
8. औद्योगिक वित्त का प्रवर्तन

2. सामान्य बैंकिग कार्य

भारत का केन्द्रीय बैंक होने के कारण केन्द्रीय बैकिग कायों के अतिरिक्त रिजर्व बैंक सामान्य बैकिग कार्य भी करता है जो निम्नॉकित हो सकते है।

- रिजर्व बैक द्वारा केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारो को काम चलाऊ ऋण दिया जा सकता है जिसकी अवधि 90 दिन से अधिक नही हो सकती है।
- रिजर्व बैक केन्द्र सरकार, राज्य सरकार तथा वाणिज्यक बैकों के अतिरिक्त अन्य अर्द्धसैनिक गैर सरकारी, सरकारी संस्थाओं तथा व्यक्तियों से जमा स्वीकार कर सकता है परन्तु इन जामाओं पर किसी भी तरह का व्याज रिजर्व बैंक द्वारा नहीं दिया जाता है।

- 90 दिन या इससे कम अवधि के विदेशी विनिमय किसी का क्रय–विक्रय रिजर्व बैंक द्वारा किया जा सकता है जिसका भुगतान अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के किसी सदस्य देश में होना हो।
- रिजर्व बैंक 90 दिन या इससे कम अवधि के व्यापारिक विलों का क्रय–विक्रय तथा पुनर्कवेती करता है, जिसका भुगतान भारत में होने वाला हो।
- रिजर्व बैंक सदस्य बैकों से विदेशी विनिमय का क्रय–विक्रय कर सकता है किन्तु यह क्रय–विक्रय एक लाख रुपये से कम मूल्य क नहीं होना चाहिए।
- फसल की बिक्री तथा कृषि के लिए वित्तीय सहायता देने के उद्देश्य को निर्मित कृषि बिलों को रिजर्व बैंक खरीदने–बेचने के साथ–साथ भुना भी सकता है। किन्तु इनकी अवधि 15 माह से अधिक नही होनी चाहिए।
- रिजर्व बैंक विदेशी सरकारों द्वारा जारी की गई उस प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय कर सकता है जिसका भुगतान अधिकतम 10 वष्रे के अन्दर हो जाता हो।
- अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के किसी सदस्य देश के केन्द्रीय बैंक के यहा रिजर्व बैंक अपना खाता खोल सकता है अथवा उससे अभिकर्ता संबंध स्थापित कर सकता है तथा अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं के साथ लेन–देन कर सकता है।
- रिजर्व बैंक स्वर्ण के सिक्के तथा स्वर्ण धातु खरीद–बेच सकता है।

3. उपभोक्ता केन्द्रित कार्य

रिजर्व बैंक का एक महत्वपूर्ण कार्य है बैंक उपभोक्ताओं के हितों का संरक्षण। रिजर्व बैंक द्वारा उपभोक्ताओं के हितों के संरक्षण का संज्ञान 1949 में ही लिया गया था जब उपभोक्ता सेवा उपभोक्ता अनुभव उपभोक्ता से संबंध तथा उपभोक्ता केन्द्रित जैसे शब्द सामने लाये गये। इन सबका आशय सिर्फ यही था कि उपभोक्ता सबसे ऊपर है। बैकों के नियंत्रक के रुप में रिजर्व बैक अपनी स्पापना से ही बैंकों द्वारा प्रदा की जा सकी उपभोक्ता सेवाओं को पुनरीक्षेत्र करता है। विचार करता है तथा मूल्यांकित करता है। यह काय रिजर्व बैक द्वारा समय–समय पर तथा लगातार किये जाते है। जो बैकिग व्यवसाय को लगातार उपभोक्ता मित्र बनाने का प्रयास है। रिजर्व बैंक द्वारा आजादी के बाद बैकिग व्यवसाय को प्रतियोगी बनाया गया है। जिससे बैंक उपभोक्ताओं के उच्च दर्जे की सेवायें प्राप्त हो रही है। लेकिन इसके साथ ही रिजर्व बैक द्वारा यह महसूस किया गया। कि केवल प्रतिस्पर्धात्मक तत्व हो बैंक उपभोक्ताओं को उनका विनिमय अधिकार प्रदान नहीं कर पायेगा। इसी सन्दर्भ में रिजर्व बैंक ने संस्थात्मक ढॅाचे में कुद इस तरह के निमय कार्यप्रणाली विधियॅा तथा पर्यवेसात्मक ढॅाचा स्थापित किया जिससे बैंकिग व्यवस्थाय के उपभोक्ता सेवाओं में गुणात्मक सुधार लााया जा सके। रिजर्व बैंक द्वारा उपभोक्ता सेवा को सुधारने व बेहतर बनाने के लिए निर्धारित सेवा किये गये कदमों या मानकों का वर्णन निम्न प्रकार है।

(1) बैकों में उपभोक्ता सेवा केन्द्रो की स्थापना–

रिजर्व बैक द्वारा नियुक्त की गई धारायें कमेटी ने सन् 2003 में उपभोक्ता सेवाओं में सुधार के लिए विभिन्न सुझाव दिये जिनके आधार पर रिजर्व बैंक ने बैकिग प्रणाली में उपभोक्ता सेवाओं में सुधार के लिए संस्थान प्रणाली में निम्न सुधार निर्देशित किये।

(अ) बैकों द्वारा उपभोक्ता सेवा समिति बोर्ड गणित किया जाना आवष्यक होगा इस समिति के सदस्यों में आमंत्रित सदस्य विषेशण तथा उपभोक्ता प्रतिनिधयों को सम्मिलित किया जायेगा जो बैंक को नीतियों बनाने में तथा इन नीतियो पर कार्य करने मे सहायता करेगें।

(ब) उपभोक्ता सेवा पर कार्यकारी स्टेन्डिग कमेटी की नियुक्ति जो समय–समय पर बैकों के अपने षिकायत निस्तारण मषानरी के नीतियों तथा प्रणाली का पुनरीक्षण कर सके।

(स) सभी बैकों के प्रधान कार्यालय पर उपभोक्ता सेवाओं के लिए एक नोडल विभाग तथा इसमें अधिकारियो की नियुक्ति यह विभाग कार्यालय षिकायतकर्ता बैक उपभोक्ता द्वारा आसानी से सम्पर्क स्थापित किया जा सके तथा जिससे रिजर्व बैंक तथा संबंधित बैंक भी सम्पर्क कर सकें।

(2) रिजर्व बैंक मे उपभोक्ता सेवा केन्द्र की स्थापना–

बैंकिग व्यवसाय के उपभोक्ता सेवा विभाग पर नियंत्रण रखने तथा निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए 1 जुलाई 2006 को रिजर्व बैंक में एक नया विभाग स्थापित किया गया जिसका नाम उपभोक्ता सेवा विभाग हैं। इस विभाग का कार्य ऐसी विभिन्न गतिविधियों को पूरा करना था जिनका संबंध उपभोक्ता सेवा तथा शिकायत निस्तारण से था।

(3) उधार देने वालो के लिए स्वच्छ अभ्यास कोड–

रिजर्व बैंक बैकों से उधार लेने/कर्ज लेने वालों के हितों के प्रति भी जागरुक था इसलिए सन् 2003 में रिजर्व बैंक ने उधार लेने वालों के हितों का सुरक्षित रखा जा सके तथा बैकों की यातना से बचाया जा सकें यह कोड सन् 2007 में पुनरीक्षित किये गये तथा यह सम्मिलित किया गया कि बैंक कर्ज लेने वालों को उनके द्वारा लिये गये कर्ज का पूरा ब्यौरा देगें तथा यदि किसी कर्ज कि आवेदक की प्रार्थनापत्र को अस्वीकार किया गया है तो उसका स्पष्ट कारण बताना होगा।

(4) पारदर्शी तथा यथोचित बैंक चार्ज–

बैकिंग सेवा में स्वच्छ कार्य प्रणाली बनाये रखने के लिए रिजर्व बैंक आफ इण्डिया ने प्रत्येक बैंक के लिए यह आवश्यक कर दिया कि वह अपने प्रधान कार्यालय तथा शाखाओं में तथा अपनी वेबसाईट के होम पेज में विभिन्न सेवाओं के प्रदान करने की फीस/चार्ज दिखायेगा तथा इसको लगातार अपडेट करेगा। यह रिजर्व बैंक द्वारा दिये गये प्रारुप में प्रदर्शित करना आवश्यक होगा।

(5) बैंकिग अमवड्रसमैन योजना–

सन् 1995 में रिजर्व बैंक आफ इण्डिया ने बैंकिग सेवाओं से संबंधति उपभोक्ताओं की विभिन्न शिकायतों के शीघ्र तथा नितब्ययी निस्तारण के लिए बैंकिग अनवड्रसमैन योजना का शुभारम्भ किया। इस योजना को पुनः 2002 में तथा इसके बाद 2006 में पुनरीक्षित किया गया कि इसमें उपभोक्ता शिकायतों के और विभिन्न नये क्षेत्रों को जोडा जा सके। नयी पुनरीक्षित योजना के तहत शिकायकर्ता अब ऑनलाइन अपनी शिकायत दर्ज करा सकता है।

7.7 साख नियंत्रण (CREDIT CONTROL)

रिजर्व बैंक का केन्द्रीय बैंक होने के कारण प्रमुख कार्य है। व्यापारिक बैकों के ''साख निर्माण की क्षमता'' को नियंत्रित करना है। अतः सामान्य शब्दों में रिजर्व बैंक द्वारा व्यापारिक बैकों के साख निर्माण की क्षमता तथा साख की मात्रा को समय–समय पर कम या ज्यादा करना ही साख की मात्रा कहलाता है। आधुनिक समय में साख मुद्रा का चलन अत्यधिक बढ जाने के कारण साख की मात्रा में होने वाले परिवर्तनों का देश की अर्थव्यवस्था पर प्रत्यक्ष तथा परोक्ष प्रभाव पडता है। सामान्यतः व्यापारिक जितना ऋण दिने है वह उनके पास एकत्रित नकद जमा से कई गुना अधिक होता है इस अधिकता (ऋण की) को ही साख का निर्माण कहा जाता है परन्तु व्यापारिक बैंक साख

निर्माण में अपनी मनमानी नही कर सकते है क्योंकि इस साख निर्माण पर देश के केन्द्रीय बैंक का प्रत्यक्ष व परोक्ष नियंत्रण रहता है। साख निर्माण की सीमा देश को अर्थव्यवस्था तथा अन्य हालात देखते हुए केन्द्रीय बैंक द्वारा व्यापारिक बैकों के लिए समय–समय पर निर्धारित की जाती है। इसे ही साख नियंत्रण कहते है।

7.8 साख नियंत्रण के उद्देश्य (OBJECTIVES OF CREDIT CONTROL)

केन्द्रीय बैक देश की अर्थव्यवस्था के हित में निम्नॉकित उद्देश्यों के लिए साख नियंत्रण के विभिन्न तरीके अपनाये जाते है।

1. आर्थिक विकास की गति में स्थिरता या बढोत्तरी
2. कीमत स्तर में स्थिरता
3. आय और रोजगार के उच्च स्तर पर स्थिरता
4. विभिन्न दरों में स्थिरता

एक अच्छी मौद्रिक तथा साख नीति किसी भी देश के लिए वह मानी जाती है जो विकास तथा स्थिरता के उद्देश्यों में बेहतर समन्वय स्थापित कर सके। उपरोक्त वर्णित साख नियंत्रण के उद्देश्य एक दूसरे के पूरक है एक उद्देश्य की प्राप्ति दूसरे उद्देश्य की प्राप्ति पर कर निर्भर करती है।

7.9 साख नियंत्रण की रीतियाँ (METHODS OF CREDIT CONTROL)

साख नियंत्रण का कार्य देश के केन्द्रीय बैंक द्वारा किये जाने वाले मौद्रिक प्रबंधन के अन्तर्गत आने वाला प्रमुख कार्य है। प्रत्येक केन्द्री बैंक देश की परिस्थितियों को देखते हुए मुख्यतः साख सारण नियंत्रण की दो विधियों को अपनाता है। यह निम्नॉकित हे।

7.9.1 परिमाणात्मक साख नियंत्रण

7.9.2 गुणात्मक साख नियंत्रण

7.9.1 परिमाणात्मक साख नियंत्रण–

परिमाणात्मक साख नियंत्रण साख नियंत्रण से आशय साख की मात्रा तथा साख की कीमत (ब्याज दर) के नियंत्रण से है इस कार्य में केन्द्रीय बैंक मुख्यतः व्यापारिक बैंको के नकद कोषों पर प्रभाव डालकर उन्हें आवश्यकतानुसार घटा–बढा सकता है। बैकों के नकद कोषों का नियमन कर उनकें साख निर्माण की शान्ति (अधिकार) को पत्यक्ष रुप से प्रभावित किया जाता है। बैकों के साख के परिमाणात्मक नियंत्रण में विभिन्न तरीके केन्द्रीय बैंक द्वारा समय–समय पर अपनाये जाते है। इनमें से मुख्य रुप में अपनाये जाने वाले तरीके निम्नॉकित है।

1. बैंक दर नीति
2. खुले बाजार की क्रियायें
3. परिवर्तनीय नकद कोषानुपात
4. गौण कोषों की मॉग

1– बैंक दर नीति–

बैक दर सामान्य भाषा में वह दर है जिस दर पर केन्द्रीय बैंक अपने सदस्य बैकों को ऋण देता है। इसमें सदस्य बैकों के प्रथम श्रेणी के बिलों की पुनर्कटोती अथवा स्वीकार्य प्रतिभूतियों पर ऋण सम्मिलित होता है। बैंक दर को बढता–दर कहा जाता है। जिसकी घोषणा देश के केन्द्रीय बैक द्वारा समय–समय पर की जाती है तथा आवश्यकतानुसार इसमें परिवर्तन भी किया जा सकता है।

प्रायः बैक दर बढ जाने से ब्याज दर में वृद्धि होती है और बैंक दर कम होने से बाजार दर घट जाती है। केन्द्रीय बैक द्वारा वसूली जाने वाली ब्याज दर का अप्रत्यक्ष प्रभाव मूल उपभोक्ता पर पडता है क्योंकि यदि केन्द्रीय बैंक द्वारा सदस्य बैकों से ऊचाी ब्याज दर वसूली जा रही है। तो वाणिज्यक बैंक भी अपने ग्राहकों से ऊची ब्याज दर मॉग करेगें इसके विपरीत यदि रिजर्व बैंक (केन्द्रीय बैंक) अपने सदस्य बैको से नीची ब्याज दर वसूलता है तो वाणिज्यक बैक भी अपने ग्राहकों को नीची दर पर ऋण उपलब्ध करा पायेगें। इसका बल प्रभाव पडता हे। कि यदि बैंक दर बढती है तो बाजार ब्याज दर भी बढती है जिसके कारण ऋण लेना महंगा हो जाता है जिसके फलस्वरुप उपभोक्ताओ की ऋण के लिए मॉग कम हो जाती है। इसके विपरीत बैंक दर घटा देने से बाजार ब्याज दर कम हो जाती है जिससे ऋण लेना अपेक्षाकृत सस्ता हो जाता है। फलस्वरुप उपभोक्ता अधिक ऋण की मॉग करते है। बैंक दर में परिर्वतन के साथ–साथ केन्द्रीय बैंक साख सृजन से संबंधित नियमों को भी परिवर्तित कर सकता है अतः साख सृजन को नियमों/शर्तों को ढीला या कठोर करने से साख नियंत्रण किया जा सकता है।

केन्द्रीय बैंक द्वारा साख निर्माण पर नियंत्रण के लिए बैंक दर में परिवर्तन (घटाना/बढाना) करने के विभिन्न प्रभाव बाजार तथा देश की अर्थव्यवस्थता पर पडते है। बैंक दर परिवर्तन से देश में व्यापारिक बैंकों की साख का संकुचन एंव प्रसार किया जा सकता है। बैंक दर के बढने से ऋण लेना महंगा होगा फलस्वरूप ऋण की मॉग कम होगी तथा बैंक दर घटने के बढने से ऋण लेना प्रायः सलता होगा जिससे ऋण की मॉग बढेगी। बैंक दर ऋणों की लागत को ही प्रभावित नहीं करता बल्कि इसकी उपलब्धता को भी प्रभावित करता है। इसके साथ ही बैंक दर बढने से बचतों में वृद्धि होती है। परन्तु ऋण की मॉग कम हो जाती है इससे निवेश गिरता है उत्पादन में कमी आ जाती है। अन्ततः रोजगार में कमी आने लगती है। बैक दर घटने से इसके विपरीत आर्थिक गतिविधियॉ होती है। बैंक दर परिवर्तन का प्रभाव पूॅजी के अन्तरराष्ट्रीय प्रवाह पर भी दिखाई देता है बैंक दर बढने से ब्याज दर बढ जाती है। जिसके फलस्वरुप अधिक ब्याज दर के कारण अल्पकालीन विदेशी पूॅजी के आगमन को प्रोत्साहन मिलता है। बैंक दर में वृद्धि के कारण ब्याज दर बढने से विदेशी पूॅजी देश में आने लगनी है फलस्वरूप देश का भुगतान संतुलन अनुकूल होता है, और विनिमय दर भी अनूकूल हो जाता है।

2. खुले बाजार की क्रियायें–

देश के केन्द्रीय बैंक को मुद्रा बाजार में किसी भी प्रकार के बिलों अथवा प्रतिभूतियों के क्रय विक्रय का अधिकार प्राप्त है अतः जब केन्द्रीय बैंक मुद्रा बाजार में बिलों अथवा प्रतिभूतियों को खरीदने तथा बेचने का कार्य करता है, इसे खुले बाजार की क्रियाये कहा जाता है। खरीदता है तो बॉड/बिल अथवा प्रतिभूतियॉं अर्थव्यवस्था से केन्द्रीय बैंक के अधिकार में आ जाती है और केन्द्रीय बैंक द्वारा इन बॉड/बिल अथवा प्रतिभूतियों पर चुकाई गई कीमत अर्थव्यवस्था में चलन में आ जाती है इससे चलन में मुद्रा की मात्रा बढ जाती है। इस तरह केन्द्रीय बैंक कोषों को प्रभावित करता है। देश की अर्थव्यस्था को ध्यान में रखते हुऐ जब साख का संकुलन करना हो तो केन्द्रीय बॉड/बिल अथवा प्रतिभूतियों का विक्रय करता है इसके विपरीत यदि साख का विस्तार किया जाता है, तो इन प्रतिभूतियों का केन्द्रीय बैंक द्वारा क्रम कर लिय जाता है। उल्लेखनीय है कि बैकों के साख एवं मुद्रा के संकुलन तथा विस्तार पर जहा बैंक दर नीति के अप्रत्यक्ष रुप से प्रभाव पड़ता है वही केन्द्रीय बैंक द्वारा अपनायी जाने वाली खुले बाजार की क्रियाओं का मुद्रा तथा साख के संकुचन तथा विस्तार पर

प्रत्यक्ष तथा तत्काल प्रभाव पडता है। खुले बाजार की क्रियाओं का उद्देश्य साख नियंत्रण के उद्देश्य से अधिक व्यापक भी हो सकते है।

3– परिवर्तन नकद कोषानुपात–

बैकों का बैंक केंन्द्रीय बैंक होता है इसी कारण समस्त सदस्य बैंकों को अपने नकद कोषों का एक निशचित अंश/प्रतिशत देश के केन्दीय बैंक के पास जमा कराने के साथ–साथ एक निशचित प्रतिशत अपने पास भी सुरक्षित रखने होते है। ऐसा करना वाणिज्यक बैकों के लिए इसलिए आवश्यक होता है ताकि वह अपने उपभोक्ताओं के मांगन पर उनका पैसा उन्हें वापस प्रतिशत रिजर्व रखने की पद्धति में सइस दर को बैकों से अपने पास नकद जमाओं का एक निशचित निर्माण को नियंत्रित करने के लिए समय–समय पर पुनराक्षित करता रहता है। वाणिज्यक बैकों द्वारा केन्द्रीय बैंक के पास रखे जाने वाले नकद कोष के अनुपात (प्रतिशत में वृद्धि का प्रभाव होता है कि वाणिज्यक बैकों के पास नकद कोषों की मात्रा कम हो जाती है तथा उनकी साख निर्माण शान्ति कम हो जाती है। इसके विपरीत रिजर्व बैंक (केन्द्रीय बैंक के पास रखे जाने वाले अनुपात में कमी करने पर सदस्य बैंकों के पास नकद कोषों का अधिक शेष रहेगा। परिणामस्वरुप चलन में मुद्रा के अधिक होने के साथ–साथ साख निर्माण शान्ति में भी वृद्धि होगी।

4– गौण कोषों की मॉग–

साख नियंत्रण नीति के अन्तर्गत साधारण न्यूनतम नकद कोषानुपात केन्द्रीय बैंक को यह अधिकार प्राप्त है कि वह सदस्य बैकों से सहायक (गौण) कोष रखने की मॉग कर सकता है इसके अन्तर्गत वह सदस्य बैकों को यह आदेश दे सकता है। कि वह अपने जमाओं का एक निशचित प्रतिशत(न्यूनतम नकद कोषानुपात के अतिरिक्त) सरकारी प्रतिभूतियों या तरल आदेशों में लगायें परिणाम स्वरुप बैकों द्वारा सरकारी प्रतिभूतियों तथा तरल आदेशों में लगाये गये धन की सीमा तक बाजार ने मुद्रा का चलन कम होगा। साथ ही सदस्य बैंकों भी इस सीमा तक साख निर्माण शान्ति में गिरावट आयेगी।

7.9.2 गुणात्मक साख नियंत्रण

परिणात्मक साख नियंत्रण में केन्द्रीय बैंक द्वारा विभिन्न तरीकों से सदस्य/वाणिज्यिक बैंकों के पास उपलब्ध नकद कोषों की मात्रा को कम कर मुद्रा के चलन तथा साख सृजन को नियंत्रण क्रिया जाता है। इसके विपरीत गुणात्मक साख नियंत्रण में केन्द्रीय बैंक द्वारा कुल मुद्रा चलन मात्रा तथा साख के सृजन पर अंकुश लगेगा बिल साख प्रयोग को नियंत्रित करना होता है। इसका उद्देश्य साख के उपयोग को प्रभावित कर आवश्यक तथा उपयोगी प्रयोजनों के लिए आवश्यक मात्रा में साख उपलब्ध कराना होता है। देश की अर्थव्यवस्था में ऐसी स्थितियों उत्पन्न हो सकती है जब जरूरी परियोजनाओं/उद्देश्यों अथवा कायों के लिए आवश्यक साख की मात्रा उपलब्ध न हो इस परिस्थित में यह आवश्यक हो जाता है कि आवश्यक कार्यो के निश्पादन के लिए पर्याप्त मात्रा में साख उपलब्ध कराई जायें।

वस्तुतः गुणात्मक साख नियंत्रण परिणात्मक साख नियंत्रण की भॉति पूरे बैंकिग व्यवस्थाय को एक साथ तथा एक ही तरीके से प्रभावित नहीं करता है वरन केन्द्रीय बैंक समय–समय पर विभिन्न क्षत्रों तथा उद्योगों के लिए आवश्यक ऋणों का अनुमान लगाकर गुणात्मक साख के निम्नॉकित तरीकों का प्रयोग कर सकता है।

(साख राशनिंग) साख की सीमा का निर्धारण– साख राशनिंग के अन्तर्गत के अन्तर्गत देश का केन्द्रीय बैंक प्रत्येक बैंक का साख का कोटा निश्चित कर देना है कि किस बैंक को अधिकाधिक

कितना ऋण दिया जायेगा। इसके साथ ही प्रत्येक बैंक का भी ऋण प्रदान करने का कोटा निश्चित कर दिया जाता है जिससे वाणिज्यिक/सदस्य बैंक इच्छानुसार साख का सृजन नहीं कर सकते हैं। (ब्याज की दरों में भिन्नता) ब्याज तथा कटौती की भिन्न दरों का प्रयोग कर केन्द्रीय बैंक गुणात्मक साख नियन्त्रण का बेहतर कार्य करता है। जिन क्षेत्रों में ऋण तथा साख की आवश्यकता की होती है, उनके लिए बैंकों को कम ब्याज दर पर ऋण तथा कम कटौती दर पर बिलों तथा प्रतिभूतियों को केन्द्रीय बैंक द्वारा भुनाया जाता है। इसके विपरीत कुछ अनावश्यक या गौण क्षेत्रों के ऋण के लिए ब्याज तथा कटौती दरों में वृद्धि की जा सकती है।

(3) ऋणों की प्राप्ति पर नियन्त्रण–

जिन क्षेत्रों/परियोजनाओं में ऋणों/साख को सीमित करना होता है उन क्षेत्रों तथा परियोजनाओं को एक निश्चित राशि से अधिक राशि से अधिक ऋण देने पर केन्द्रीय बैंक द्वारा प्रतिबन्ध लगाया दिया जाता है।

(4) प्रतिभूति ऋणों की सीमा में परिवर्तन–

इस विधि के अन्तर्गत केन्द्रीय बैंक समय समय पर वाणिज्यिक बैंकों को आदेशित करता है कि वह सट्टे के कारोबार के लिए दिये जाने वाले ऋण की क्या सीमा रखेगा? इस सीमा के बढने पर सट्टा व्यापारियों को अधिक ऋण मिलेगा। तथा सीमा के घट जाने पर ऋण प्रदान करने की मात्रा एवं क्षमता कम हो जायेगी।

7.10 सारांश

भारतीय रिजर्व बैंक की भारत के केन्द्रीय बैंक के रुप मे सन् 1934 में एक एक्ट पारित कर स्थापना की गयी। इसने 1 अप्रेल 1935 से अपना कार्य प्रारम्भ किया। इसके पूल कार्यों में मुख्यतः सरकारी बैंकर के रुप में कार्य करना, भारतीय मुद्रा के आन्तरिक तथा वाह्य मूल्य में स्थिरता लाना, विदेषों में मौद्रिक सम्बन्ध स्थापित करना, बैंकिंग उपभोक्ता हितों का ध्यान रखना, केन्द्रीय कोश का निर्माण करने के अतिरिक्त मुद्रा निर्गमन मुख्य हैं। रिजर्व बैंक के कार्यों की गम्भीरता को देखते हुऐ 1 जनवरी 1949 को इसका राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। रिजर्व बैंक के संगठन पर अप्रत्यक्ष रुप से केन्द्र सरकार की नजर रहती है। रिजर्व बैंक के कार्यों को प्रमुखतः केन्द्रीय बैंकिंग के कार्य, सामान्य बैंकिंग कार्य तथा उपभोक्ता केन्द्रित कार्य के रुप में देखा गया है। देष का केन्द्रीय बैंक होने के कारण देष की मौद्रिक नीति, साख नीति तथा बैंकों के नियंत्रण की विषेश जिम्मेदारी रिजर्व बैंक के पास है। रिजर्व बैंक देष की अर्थव्यवस्था तथा अन्तराष्ट्रीय बाजार की जरुरतों के अनुसार विभिन्न नीतियों में यथोचित परिवर्तन कर अपने विभिन्न कार्यों का निशपादन करता है। केन्द्रीय बैंक ने बैंकिंग व्यवसाय के उपभोक्ताओं के हित में विभिन्न अनिवार्यतायें बैंकों में लगा दी हैं, जिनमें बैंकों में उपभोक्ता सेवा केन्द्रों की स्थापना, रिजर्व बैंक में उपभोक्ता सेवा केन्द्र की स्थापना, उधार देने वालों के लिए स्वच्छ अभ्यास कोड, परदर्षी तथा यथोचित बैंक चार्ज, बैंकिंग अमवड्समेन योजना प्रमुख हैं। रिजर्व बैंक द्वारा साख नियंत्रण के लिए परिणात्मक साख नियंत्रण तथा गुणात्मक साख नियंत्रण तरीकों का प्रयोग किया जाता है।

7.11 **श**ब्दावली

वित्तीय निरीक्षण:रिर्जव बैंक वित्तीय निरीक्षण के कार्य को वित्तीय निरीक्षण बोर्ड के मार्गदर्शन में पूरा करता है। इस बोर्ड का गठन नवम्बर 1994 ई में रिर्जव बैंक के केन्द्रीय बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स की समिति के रूप में किया गया।

साख नियंत्रण : साख नियंत्रण से अभिप्राय बैकों को ऋण देने की नीति को नियंत्रित करने से है। रिर्जव बैंक को साख नियंत्रण के विविध अधिकार प्राप्त हैं जिन्हें आवश्यकतानुसार प्रयोग में लाया जा सकता है।

विदेशी विनिमयः भारतीय रिर्जव बैंक देश के विदेशी विनिमय कोषों के संरक्षक के रुप में कार्य करता है, विनिमय नियत्रंण का प्रबन्ध करते हुए भारत सरकार के अन्तरर्राष्ट्रीय मुद्रा को IMF सदस्य के रुप मे सरकार के अभिकर्ता के तौर पर कार्य करता है। रिर्जव बैंक का विनिमय नियंत्रण विभाग देश मे विदेशी विनिमय का मॉग और पूर्ति का सम्पर्ण हिसाब–किताब रखता है और उसमे संतुलन बनाने का प्रयास करता है।

समाशोधन गृहः समाशोधन से आशय है विभिन्न बैकों के आपसी लेन–देन को व्यवहारिक रुप से न करके सीधे इनके खातों की प्रभावित कर दिया जाय। बैक बैंक उपभेक्ताओं के पास विभिन्न बैंकों के चैक तथा डाफ्ट के लिए आपस मे लेन–देन नही करते बल्कि केन्द्रीय बैक ऐसे सभी बैकों का लेन–देन का एक सामूहिक विवरण तैयार करता है।

साख नियंत्रणः रिजर्व बैंक का केन्द्रीय बैंक होने के कारण प्रमुख कार्य है, व्यापारिक बैकों के ''साख निर्माण की क्षमता'' को नियंत्रित करना है। अतः सामान्य शब्दों में रिजर्व बैंक द्वारा व्यापारिक बैकों के साख निर्माण की क्षमता तथा साख की मात्रा को समय–समय पर कम या ज्यादा करना ही साख की मात्रा कहलाता है।

खुले बाजार की क्रियायें: देश के केन्द्रीय बैंक को मुद्रा बाजार में किसी भी प्रकार के बिलों अथवा प्रतिभूतियों के क्रय विक्रय का अधिकार प्राप्त है । अतः जब केन्द्रीय बैंक मुद्रा बाजार में बिलों अथवा प्रतिभूतियों को खरीदने तथा बेचने का कार्य करता है। इसे खुले बाजार की क्रियाये कहा जाता है।

परिमाणात्मक साख नियंत्रणः परिमाणात्मक साख नियंत्रण से आशय साख की मात्रा तथा साख की कीमत (ब्याज दर) के नियंत्रण से है । इस कार्य में केन्द्रीय बैंक मुख्यतः व्यापारिक बैकों के नकद कोषों पर प्रभाव डालकर उन्हें आवश्यकतानुसार घटा–बढा सकता है।

गुणात्मक साख नियंत्रणः गुणात्मक साख नियंत्रण में केन्द्रीय बैंक द्वारा कुल मुद्रा चलन मात्रा तथा साख के सृजन पर अंकुश लगेगा बिल साख प्रयोग को नियंत्रित करना होता है। इसका उद्देश्य साख के उपयोग को प्रभावित कर आवश्यक तथा उपयोगी प्रयोजनों के लिए आवश्यक मात्रा में साख उपलब्ध कराना होता है।

7.12 बोध प्रश्न

1 1935 मे भारतीय रिजर्ब बैंक की स्थापना हुई थी।

2 1939 मे भारतीय रिजर्ब बैंक का राष्टीयकरण हुआ।

3 भारतीय रिजर्ब बैंक पर प्रारम्भ से ही सरकारी स्वामित्व था।

4 भारतीय रिजर्ब बैंक की स्थापना इम्पिरियल बैंक आफ इण्डिया के स्थान पर की गयी ।

5 बैकों की व्याज दरे पूर्णरुप से रिजर्ब बैक द्वारा नियंत्रित होनी हैं।

6 बचत जमा राशियों पर व्याज दर रिजर्ब बैंक द्वारा निर्धारित की गयी हैं।

7 बैकों की व्याज दर नीति मुद्रा बाजार की स्थिति से निदेशित होती हैं।

8 गुणात्मक साख नियन्त्रण उपाय साख के उपयोग को नियन्त्रिण करने के उद्देशय से अपनाये जाते हैं।

9 रिजर्ब बैक की वर्तमान मौद्रिक नीति सरकारी प्रतिभूतियों के क्रय विक्रय कों प्रेरित करती हैं।

7.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

(1) सत्य (2) असत्य (3) असत्य (4) असत्य (5) असत्य (6) असत्य (7) सत्य (8) सत्य (9) सत्य

7.14 स्वपरख प्रश्न

1. रिजर्व बैंक की स्थापना के उद्देश्यों को विस्तार पूर्वक समझाइये।
2. रिजर्व बैंक ने अपने कार्यों से अपनी स्थापना का औचित्य कहाँ तक सिद्ध किया है?
3. रिजर्व बैंक का राष्ट्रीयकरण क्यों किया गया?
4. भारतीय रिजर्व बैंक देश में बैंकिंग व्यवस्था का नियंत्रण किस प्रकार करता है? इसके अधिकारों की व्याख्या कीजिए।
5. सख नियंत्रण के परिमाणात्मक तथा गुणात्मक तरीकों में अंतर समझाइयें।
6. परिमाणात्मक साख नियंत्रण के तरीकों की व्याख्या कीजिए।
7. गुणात्मक साख नियंत्रण क्या है? इसकी आवश्यकता क्यों पड़ती है? इसमें प्रयोग में लाई जाने वाली विधियों को विस्तार पूर्वक समझाइये।

7.15 सन्दर्भ पुस्तकें

- सेठी, टी0टी0 (2015), मुद्रा बैंकिंग एवं लोक वित, आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिसर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- गुप्ता, शान्ति के0 और अग्रवाल, निशा, इंडियन फाइनैन्शियल सिस्टम्स, कल्याणी पब्लिसर्स, 2016।
- प्रतियोगिता दर्पण, जुलाई 2016।
- इंडियन इकोनोमी, जुलाई 2016।
- अग्रवाल, दीपक (2010), मुद्रा बैंकिंग, लोक वित्त एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, हिमालया पब्लिशिंग हाउस मुबई।
- बिशनोई, आर0के0, बीमा के सिद्धांत, साहित्य भवन पब्लिसर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा।
- श्रीवास्तव, आर0एम0 और निगम, दिब्या मैनेजमैन्ट ऑफ इंडियन फाइनैन्शियल इंस्टीट्यूशन्स
- विभिन्न इंटरनैट साइट्स।
- जैन, टी0आर0 इंडियन फाइनैन्शियल सिस्टम्स, वी0के0 ग्लोबल पब्लिकेशन्स और खन्ना, ओ0पी0, प्राईवेट लिमिटेट, 2014–15।

इकाई 8 भारतीय प्रतिभूति विनियमय बोर्ड (Securities Exchange Board of India)

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
8.2 बोर्ड के उद्देश्य
8.3 भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड का प्रबन्ध
8.4 बोर्ड के अधिकार एवं कार्य
8.5 भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा निर्देश
 8.5.1 प्राथमिक बाजार
 8.5.2 सार्वजनिक निर्गमनों पर नियंत्रण
8.6 भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड की प्रबन्धक के रूप में स्थापना
8.7 भारतीय प्रतिभूति बाजार हेतु SEBI की नियमावली
8.8 डिस्क्लोजर आफ डोकूमेन्ट और कोड आफ एडभर्टिजमेन्ट के संदर्भ में बोर्ड की भूमिका
8.9 अंशधारियों के हितों के संरक्षण में मध्यस्थों के संदर्भ में बोर्ड की भूमिका
8.10 सारांश
8.11 शब्दावली
8.12 बोध प्रश्न
8.13 बोध प्रश्नों के उत्तर
8.14 स्वपरख प्रश्न
8.15 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड के स्थापना के बारे मे सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकें ।
- भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड के उददेश्यों को समझ सकें ।
- भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड के प्रबन्ध कार्य एंव अधिकार के सन्दर्भ मे जानकारी दे सकें ।
- भारतीय प्रतिभूति बोर्ड द्वारा विभिन्न प्रकार के कम्पनियो द्वारा किये जाने वाले विभिन्न प्रकार के निर्गमनो के बारे मे उल्लेख कर सकें ।
- भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा अंशधारियो के हितो के संरक्षण, डिस्क्लोजर आफ आफर डोकूमेन्ट व विज्ञापन के सन्दर्भ मे तथा भारतीय प्रतिभूति बाजार के संदर्भ मे निभायी जाने वाली भूमिका के बारे मे अवगत करा सकें ।

8.1 प्रस्तावना

80 के दशक के प्रारम्भ से ही भारतीय पूँजी बाजार विभिन्न अनियमितताओं तथा भारी उछाल (Growth) का साक्षी रहा। भारतीय पूँजी बाजार में इस दौर में भारी वृद्धि देखी गयी। इस भारी उछाल तथा वृद्धि के दौर में निवेशकों के तथा कम्पनियों के द्वारा विभिन्न प्रकार की अनियमितताओं तथा अशुद्ध तरीकों का प्रयोग निरन्तर बाजार में किया जाने लगा। इन अनियमितताओं में पत्यक्ष या परोक्ष रुप से दलाल, व्यवसायी दलाल, निवेश सलाहदाता (Investors consultants) सम्मिलित थे। इस तरह की अनियमितताओं तथा अशुद्ध तरीकों ने निवेशकों के बाजार पर विश्वास को तोड दिया तथा निवेशकों की शिकायतों को कई गुना बढ़ा दिया, बाजार में इस दौर में प्रचलित कुछ अनियमितता निम्न थीः 1. व्यवसायी बैंकर्स के अपने तरीके, 2. अनैतिक नियुक्तियां, 3. मूल्यों में बढोत्तरी, 4. नये निर्गमनों पर अनैतिक प्रिमियम, 5. कम्पनी अधिनियम के नियमों का पालन न होना, 6. भारत के स्टाक मार्केट के सूचित नियमों का पालन न होना, 7. शेयर देने में देरी।

इन सब अनियमितताओं पर निवेशकों को विश्वास दिलाने तथा उनकी शिकायतों का समाधान करने में भारतीय सरकार तथा स्टॉक मार्केट, तत्कालीन नियमावली में सक्षम प्रावधान न होने के कारण असहाय महसूस करने लगे। इन सब के सम्भावित समाधान के लिए भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड (Securities Exchange Board of India -SEBI) की स्थापना एक प्रशासनिक संगठन के रुप में भारत सरकार द्वारा 12 अप्रैल 1988 को की गयी। तब इसका मुख्य उद्देश्य था अनुशासित और स्वच्छ तरीको का पूँजी बाजार में प्रयोग, स्वच्छ पूँजी बाजार वृद्धि तथा निवेशकों के हितों की रक्षा, यह पूरी तरह से भारत सरकार के वित्त मंत्रालय के आधीन कार्य करता है। सरकार द्वारा एक विधेयक द्वारा 30 जनवरी 1992 को इसे एक वैधानिक दर्जा दे दिया गया तथा बाद में इसको लोकसभा में ''भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड एक्ट–1992'' का रुप दे दिया गया।

बाजार मध्यस्थों का किसी भी बाजार के विकसित होने में उनके द्वारा प्रदान की जाने वाली विभिन्न सेवाओं के कारण एक महत्वपूर्ण स्थान होता है तथा बाजार मध्यस्थों को उनके द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। मुख्य रुप से यह शेयर दलाल, अंश हस्तान्तरण ऐजेन्ट, व्यापारिक बैंकर, ऋणपत्र न्यासी, पोर्टपोलियो मेनेजर, रजिस्ट्रार आफ इश्यू, उप दलाल आदि नाम से जाने जाते हैं।

भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड अधिनियम के लागू होने से एक से अधिक स्तरों पर पर्यवेक्षण की प्रक्रिया लागू हुई जिसमें बोर्ड द्वारा आन साईट तथा आफ साइट निरीक्षण नीति तथा नियमों की अवमानना पर पूछताछ तथा न्यायालय में केस चलाना मुख्य था। भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड तथा स्टॉक एक्सचेंज द्वारा मध्यस्थों की विभिन्न स्तरों पर जांच भी की जाने लगी। भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड स्वयं निश्चित अन्तराल के पश्चात विभिन्न स्थितियों की जांच करता है, विशेष शिकायत तथा अनियमितता का निरीक्षण करता है तथा यह सब करने के लिए स्टॉक एक्सचेंज तथा जमाकर्ताओं को समय–समय पर आदेशित करता है। विभिन्न नियमों के अनुसार

भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड, दलालों, उपदलालों तथा अन्य मध्यस्थों से विभिन्न प्रकार की जानकारियां प्राप्त करता है।

8.2 बोर्ड के उद्देश्य (OBJECTIVES OF THE BOARD)

भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड अधिनियम के अनुसार बोर्ड की स्थापना का मूल उद्देश्य प्रतिभूतियों में निवेशकर्ताओं के हितों को संरक्षण प्रदान करना, प्रतिभूति बाजार को अनुशासित तथा स्वच्छ तरीके से विकसित तथा प्रोत्साहित करना तथा प्रतिभूति बाजार की हर छोटी,बड़ी घटना तथा शिकायत का निवारण और संस्थाओं पर नियंत्रण करना है। भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड के उद्देश्य को निम्नवत समझा जा सकता है।

(i) निवेशकर्ताओं का संरक्षण

(ii) प्रतिभूतियों के निर्गमनकर्ताओं द्वारा उचित व्यवहार सुनिश्चित करना

(iii) मध्यस्थों पर नियन्त्रण

(i) निवेशकर्ताओं का संरक्षणः— निवेशकर्ता किसी भी बाजार की रीढ की तरह कार्य करता है । निवेशकर्ता के संतुष्टता से ही किसी भी बाजार की उन्नति और विकास सम्भव है । 80 के दशक के प्रारम्भ में भारतीय प्रतिभूति बाजार में विभिन्न तरह की अनियमिततायें उजागर हुई जिनका प्रत्यक्ष तथा परोक्ष नकारात्मक प्रभाव सीधे निवेशकर्ताओं के हितों पर पडा, जिससे निवेशकर्ताओं का विश्वास बाजार से डगमगाने लगा। इस विश्वास को वापस प्राप्त करने तथा बाजार के द्वारा विभिन्न नीति एवं नियमों का कड़ाई से पालन करते हुऐ निवेशकर्ताओं के हितों का संरक्षण बोर्ड का प्रमुख उद्देश्य है।

(ii) प्रतिभूतियों के निर्गमनकर्ताओं द्वारा उचित व्यवहार सुनिश्चित करनाः— प्रतिभूतियों के निर्गमनकर्ता मुख्यतः कम्पनियाँ होती हैं उक्त वर्णित समय अन्तराल में देखा गया कि प्रतिभूतियों के निर्गमन में कम्पनी अधिनियम की विभिन्न धाराओं का पालन नहीं किया जा रहा है। उदाहरण के तौर पर प्रतिभूतियों पर अनैतिक प्रीमियम की माँग, मूल्यों में बढोत्तरी इत्यादि थे। इन घटनाओं का संज्ञान लेते हुऐ भारत सरकार द्वारा भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड में ऐसे प्रावधानों की व्यवस्था की है जिनके पालन से प्रतिभूतियों के निर्गमनकर्ताओं द्वारा प्रतिभूतियों के निवेशकों से उचित व्यवहार सुनिश्चित किया जा सकेगा।

(iii) मध्यस्थों पर नियंत्रणः— पूँजी बाजार में मध्यस्थों की उपस्थिति इसके सफल संचालन तथा निवेशकर्ताओं की सुविधा के अनुसार आवश्यक है। यहां विभिन्न प्रकार के मध्यस्थ कार्य करते हैं जिन्हें उनके कार्य के अनुसार पहचाना जाता है। 180 के दशक में यह भी देखा गया कि भारतीय पूँजी बाजार में मध्यस्थों ने भी विभिन्न नियमों तथा नैतिकताओं की अवहेलना की। अतः इन्ही नियमों का पालन करवाना तथा मध्यस्थों को नियमों के अन्तर्गत कार्य करने तथा सुनिश्चित व्यवहार करने को विवश करना भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड का उद्देश्य है।

8.3 भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड का प्रबन्ध (MANAGEMENT OF SEBI)

भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड का प्रबन्ध (Management of Securities Exchange Board of India) भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड के प्रबन्ध को विस्तार से समझने के लिए इसको निम्नांकित चार भागों में विभाजित किया गया है
बोर्ड की स्थापना
बोर्ड का कार्यालय,
कार्यालय से सदस्य को हटाना
सभायें

बोर्ड की स्थापना (Formation of the Board)

सन 1992 में प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड अधिनियम के अनतर्गत भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड की स्थापना की गयी। भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय (संशोधित) बोर्ड अधिनियम, 2002 द्वारा संशोधित SEBI अधिनियम, 1992 की धार 4 के अनुसार बोर्ड में निम्नलिखित सदस्य सम्मिलित होगे।

(a) अध्यक्ष
(b) केन्द्र सरकार के दो सदस्य (जो कम्पनी अधिनियम, 1956 के वित्त एवं प्रशासन का कार्य करते हों)
(c) रिजर्व बैंक के अधिकारियों में से एक अधिकारी,
(d) पाँच अन्य सदस्य (तीन सदस्य स्थायी सदस्य होगें जिनकी नियुक्ति केन्द्र सरकार द्वारा की जायेगी)

बोर्ड का कार्यालय (Office of the Board)

भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड के कार्यालय, बोर्ड के अध्यक्ष तथा केन्द्र सरकार द्वारा नियुक्त किये गये सदस्यों की सेवा शर्ते स्पष्ट तथा पहले से निर्धारित होती हैं तथा किसी भी पदाधिकारी को समय से पहले हटाने के लिए तीन महिने का नोटिस देना अनिवार्य है।

कार्यालय से सदस्य को हटाना (Removal of the Member from the Office)

केन्द्र सरकार निम्नांकित दशाओं में किसी भी सदस्य को कार्यालय से हटा सकती हैः

(a) व्यक्ति दिवालिया (Insolvent) हो या किसी भी समय दिवालिया घोषित किया जा चुका हो,
(b) व्यक्ति को अदालत द्वारा अस्वस्थ मस्तिष्क का घोषित किया गया हो,
(c) नैतिक चरित्रहीन या व्यक्ति को अपराधी घोषित किया गया हो
(d) जनता (निवेशकर्ताओं) के हितों के विरुद्ध अपनी स्थिति या पद का इस्तेमाल कर रहा हो।

सभायें (Meeting)

भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा निर्धारित विभिन्न विषयों पर समय–समय पर सभायें आयोजित की जायेगी तथा इन सभाओं में लेन–देन तथा व्यवसाय सम्बन्धी प्रक्रियाओं के नियमों पर नजर रखेगा। सभा में उपस्थित सदस्यों के बहुमत के अनुसार निर्णय लिये जाते हैं।

8.4 बोर्ड के अधिकार एवं कार्य (RIGHTS AND FUNCTIONS OF THE BOARD)

भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड की स्थापना के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए केन्द्र सरकार द्वारा बोर्ड को निम्नॉकित अधिकार दिये गये है जिनके मद्देनजर बोर्ड को विभिन्न कार्य करने होते है जिनका संदर्भ भी नीचे दिया गया है:

(i) प्रतिभूति बाजार व्यवसाय को नियंत्रित तथा स्वच्छ करना

(ii) स्वयं नियंत्रक संगठनों पर नियंत्रण रखते हुऐ इनको प्रोत्साहित करना,

(iii) व्यापारिक बैकरों, अभिगोपकों, शेयर दलालों, उप दलालों, पोर्ट पोलियो मैनेजरों, निवेश सलाहकारों, अंश हस्तान्तरण ऐजेन्टों आदि मध्यस्थों पर नियत्रण रखना

(iv) प्रतिभूति बाजार से किसी भी रुप में सम्बन्ध रखने वाले का पंजीकरण करना,

(v) प्रतिभूति बाजार में हो रहे अनुचित व्यापार व्यवहार व धोखाधडी को रोकना तथा सजा के प्रयास करना

(vi) प्रतिभूतियों के अन्तः व्यापार को रोकना

(vii) प्रतिभूति बाजार के मध्यस्थों को प्रशिक्षण देना तथा तथा निवेश शिक्षा को प्रोत्साहित करना

(viii) जोखिम पूँजी कोष तथा सामुहिक निवेश प्रणाली की कार्यशीलता पर नियत्रण करना तथा इनका पंजीकरण करना

(ix) अंशों के वास्तविक अधिग्रहण तथा कम्पनियों के अधीनीकरण पर नियंत्रण रखना

(x) प्रतिभूति बाजारों, शेयर बाजारों तथा म्यूचवल फंडों से सम्बन्धित अन्य व्यक्तियों, मध्यस्थों तथा नियंत्रक संगठनों के निरीक्षण, जाँच पड़ताल तथ अंकेक्षण की सूचना जारी करना,

(xi) प्रतिभूति अनुबन्ध (नियंत्रण) अधिनियम, 1956 के प्रावधानों के ऐसे कोई भी अधिकार प्रयोग करना तथा कार्य करना जो इसे केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रदान किये गये हों,

(xii) बोर्ड द्वारा निर्धारित की गई ऐसे ऐजेन्सियों को सूचना प्रदान करना जिनके द्वारा सूचना माँगी गयी हो,

(xiii) अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शोध तथा अनुसन्धान कार्य करना।

8.5 भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा निर्देश (GUIDELINES BY SECURITIES EXCHANGE BOARD OF INDIA)

8.5.1 प्राथमिक बाजार (Primary Market)

प्राथिमिक बाजार पूँजी बाजार का एक अभिन्न अंग है जिसके द्वारा नयी प्रतिभूतियों के निर्गमन के कार्य को अन्जाम दिया जाता है। कम्पनियाँ, सरकारें तथा सार्वजनिक उपक्रम प्राथमिक बाजार के माध्यम से अपनी नयी प्रतिभूतियों की बिक्री कर फन्ड्रस प्राप्त करते हैं। यह सब कार्य प्राथमिक बाजार में उपलब्ध मध्यस्थों के

माध्यम से किया जाता है। निवेशकर्ताओं को नयें प्रतिभूतियों के बेचने की प्रक्रिया को अभिगोपन (Underwriting) कहा जाता है। कम्पनियां प्राथमिक बाजार के माध्यम से अपने लिए लम्बी अवधि के फन्ड्रस प्राप्त करते है। इस बाजार की मुख्य विशेषता है कि इसमें मध्यस्थों के माध्यम से नई प्रतिभूति को कम्पनियों द्वारा सीधे निवेशक को बेचा जाता है जिसके संदर्भ में कम्पनियां सार्टेफिकेट (Share certificate, Debenture certificate) निर्गत करती है जो प्रमाण होता है कि विशेष व्यक्ति विशेष कम्पनी में निश्चित अंशों तथा ऋणपत्रों का स्वामी है। भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा प्राथमिक बाजार से सम्बन्धित महत्वपूर्ण निर्देश है :

(अ) प्रतिभूतियों का निर्गमन, जोखिम पूँजी कोष का पंजीकरण,

(ब) व्यापारिक बैंकरों का पंजीकरण,

(स) सविलयन व समामेलन

8.5.2 सार्वजनिक निर्गमनों पर नियंत्रण (Regulation/ control of Public issue)

भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड की स्थापना के बाद 29 मई, 1992 को पूँजी निर्गमन (नियंत्रण) अधिनियम 1947 को समाप्त कर दिया गया, इसलिए यह आवश्यक हो गया कि बोर्ड द्वारा कुछ ऐसे निर्देश दिये जाये जिनके पालन करने से उपक्रम द्वारा निर्गमन तथा प्राप्त होने वाली पूॅजी पर नियंत्रण रखा जा सके। अतः उचित प्रकटीकरण तथा निवेशक हितों की संरक्षण के लिए बोर्ड द्वारा इस संदर्भ में दिशा निर्देश जारी किये गये । इन दिशा निर्देशों में विद्यमान के साथ–साथ नई कम्पनियों द्वारा जारी अंशों, ऋणपत्रों तथा वाण्डों के माध्यम से पूँजी निर्गमन को शामिल किया गया। यह दिशा निर्देश सभी पूँजी निर्गमनों पर लागू होते हैं। इन निर्देशों को निम्न भागों में विभाजित किया गयाः

- सामान्य दिशा निर्देश,
- ऋणपत्र सम्बन्धी दिशा निर्देश
- वाणिज्यक पत्र निर्गमन सम्बन्धी निर्देश
- अंशों के निर्गमन सम्बन्धी निर्देश
- अधिकार अंशों के निर्गमन सम्बन्धी निर्देश
- बोनस अंशों के निर्गमन सम्बन्धी दिशा निर्देश
- पूर्वाधिकार अंशों के आवंटन सम्बन्धी दिशा निर्देश
- भारत में स्टॉक विकल्प से सम्बन्धित निर्देश
- कर्मचारी स्टॉक विकल्प प्रणाली सम्बन्धित निर्देश
- बुक बिल्डिंग सम्बन्धी दिशा निर्देश।

सामान्य दिशा–निदेश (General guidelines)

(अ) अभिदान सूची (Subscription list)– भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा जारी किये गये सामान्य दिशा निर्देशों में सार्वजनिक निर्गमन के लिए अभिदान सूची को कम से कम तीन (03) कार्य दिवसों के लिए खुला रखना चाहिए तथा इसका उल्लेख प्रविवरण में किया जाना अनिवार्य होगा। अधिकार अंशों के लिए यह नियम में 60 दिन

से अधिक खुला नहीं रखा जा सकता है। निर्गमित पूँजी के 90 प्रतिशत को प्रार्थित कर लिए जाने के पश्चात ही निर्गमन को बन्द किये जाने की घोषणा की जानी चाहिए।

(ब) अंशों की न्यूनतम संख्या तथा आवेदन राशि (Minimum number of shares and Application money)– (i) सार्वजनिक समता निर्गमनों के लिए अंशों की न्यूनतम संख्या जिनके लिए आवेदन किया जाना है, 200 अंशों तक सीमित होनी चाहिए तथा इनका अंकित मूल्य रू 10 होना चाहिए। भुगतान की जाने वाली न्यूनतम आवेदन राशि अंकित मूल्य के 25 प्रतिशत से कम नहीं होनी चाहिए

(ii) यदि यह निर्गमन प्रीमियम पर हो या परिवर्तनीय व अपरिवर्तनीय ऋणपत्रों में समाविष्ट हो तो प्रत्येक आवेदन पर भुगतान की जाने वाली राशि रू. 5000/– से कम नहीं होनी चाहिए।

(iii) सफल आवेदकों को अंश प्रमाण पत्र व्यापार योग्य हिस्सों के ससांधन निर्गमित किये जायेगें।

(स) अति अनुदान (over subscription) :– अति अनुदान किसी भी रुप में स्वीकार्य नहीं है। निर्गमन की संख्या मात्रा विवरणिका में स्पष्ट होनी चाहिए।

(द) अनुवर्ती रिपोर्ट (Compliance Report)– प्रत्येक उपक्रम को निर्गमन के समापन के 45 दिनों के अन्दर चार्टर एकाउन्टेन्ट द्वारा प्राप्त अनुवृत्ति प्रमाण पत्र (Compliance Report) के निर्धारित फार्म में (भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा निर्धारित) अग्रिम प्रबन्धक को सोंपी जानी चाहिए।

ऋणपत्र सम्बन्धी निर्देश (Guidelies for Debentures)

भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा ऋण पत्रों के सम्बन्ध में जारी निर्देशों में स्पष्ट रुप से ऋणपत्रों के वर्गीकरण कर विभिन्न निर्देश दिये गयें हैं जो निम्नवत हैः

(i) पूर्णतया परिवर्तनीय ऋण पत्र के संदर्भ में (Regarding fully conuertible debentures) भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा ऋण पत्रों की प्रवर्तन अवधि 36 महिने तक सीमित की गयी है। 36 महिने के पश्चात प्रवर्तन तभी किया जायेगा जब प्रवर्तन विक्रय तथा माँग विकल्प के अन्तर्गत किया गया हों। ऋणपत्रों के प्रवर्तन पर प्रीमियम की राशि पूर्व में ही निर्धारित होनी चाहिए तथा इसका स्पष्ट उल्लेख प्रविवरण में किया जाना चाहिए। प्रवर्तन विकल्प (Conversion option) के रुप में यदि धारक द्वारा ऋण पत्र का प्रर्वतन निर्गमन के 18 माह बाद तथा 36 माह से पहले किया जाता है तो ऋणपत्रों का आंशिक तथा पूर्ण प्रवर्तन ऋणपत्रधारकों के पास विकल्प (Option) के रुप में होगा।

(ii) ऋणपत्र ट्रस्टी (Debenture trusee)

ऋणपत्र ट्रस्टियों के नाम विवरणिका में स्पष्ट रुप से प्रदर्शित होने चाहिए। भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा ऋण पत्र के ट्रस्टियों के दायित्वों तथा अधिकारों को अनुबद्ध किया है। बोर्ड ने निरीक्षण की एक प्रक्रिया तथा एक व्यवहार संहिता भी बनायी है जिसका पालन अवश्य होना होगा। ऋण पत्र ट्रस्टी द्वारा कोई भी ऐसा धन न दिया गया हो जिसका पुर्नभुगतान उपक्रम द्वारा न किया गया हो तथा कम्पनी

उपक्रम को कोई राशि उधार देने की न सोच रहा हो अर्थात ऋणपत्र ट्रस्टी किसी कम्पनी/उपक्रम का सहचारी नहीं होना चाहिए।

(ब) गैर–परिवर्तनीय तथा आंशिक रुप से परिवर्तनीय ऋण पत्र के सम्बन्ध में (Regading non-conuertible and partially conuertible Debentures)

गैर परिवर्तनीय ऋणपत्रों के संदर्भ में यदि ऋण पत्रों की भुगतान अवधि 18 माह से अधिक है तो एक ऋणपत्र विमोचन संचय खाता बनाना होगा। यह खाता बनाने के लिए प्रतिवर्ष बराबर किस्तों का प्रयोग करने के साथ यदि किसी वर्ष लाभों की अधिकता होने से शेष अवधि में अधिक राशि जमा की जा सकती है। यह संचय बनाने के पश्चात यदि लाभांश वितरण के लिए लाभ अनुपयुक्त होते है तब ऐसी परिस्थिति में उपक्रम द्वारा सामान्य संचय से लाभांश का वितरण किया जा सकता है। कोई भी विद्यमान कम्पनी अग्रिम संस्था की पूर्व अनुमति के बिना 20 प्रतिशत से अधिक लाभांश घोषित नहीं कर सकती है। ऋणपत्र निष्पादन संचय को बोनस निर्गमन प्रस्तावों के प्रतिफल तथा मूल्य निर्धारण के लिए सामान्य/साधारण संचय के रुप में माना जायेगा।

(ii) 18 महिने की अवधि से कम अवधि के ऋणपत्र (debentures of less than 18 Months Duration)

जब ऋणपत्रों का शोधन/भुगतान 18 महिने की अवधि से कम अवधि में किया जाता है तो कोई प्रभार बनाने, ऋण पत्र ट्रस्टी नियुक्त करने तथा ऋणपत्र शोधन संचय बनाने की आवश्यकता नहीं होती है। कोई प्रभार न बनाने पर ऋणपत्र असुरक्षित होते है तथा जमा के रुप में माने जाते है।

(iii) आंशिक परिवर्तनीय तथा गैर परिवर्तनीय ऋणपत्रों का प्रविवरण (Regarding prosepectus of partially or non convertible debentures)

दोनों ही तरह के ऋणपत्रों पर शोधन के समय चुकाई जाने वाली राशि (प्रीमियम) पूर्व निर्धारित होनी चाहिए तथा प्रविवरण में स्पष्ट रुप से घोषित होनी चाहिए। संशोधन राशि, भुगतान अवधि तथा संशोधन पर प्राप्त आय का पूर्ण ब्यौरा भी प्रविवरण में दर्शाया जाना चाहिए।

(iv) ऋणपत्रो के निर्गमन की घोषणा (Disclosure of issue of debentures)

ऋण पत्र निर्गमन सम्बन्धी घोषणा के संदर्भ में उपक्रम द्वारा प्रविवरण में स्पष्ट रुप से ऋण–समता अनुपात, आवधिक ऋणों तथा ऋणपत्रों पर भुगतान तिथियों पर दिया जाने वाला ब्याज का भुगतान, बैंकरों तथा वित्तीय संस्थाओं द्वारा प्रस्तावित ऋणपत्र निर्गमन के लिए ट्रस्टी के लिए आपत्ति न होने का प्रमाण पत्र सम्मिलित होना चहिए।

(v) गैर परिवर्तनीय भाग की समाप्ति (Rollover of non convertible portion)

ऋणपत्रों के गैर परिवर्तनीय भाग की समाप्ति केवल सकारात्मक सहमति द्वारा ही की जा सकती है निष्क्रिय सहमति पर नहीं। कम्पनी द्वारा उन ऋणपत्र धारकों को अनिवार्य रुप से सहविकल्प देना होगा जा कि ऋणपत्रों के आहरण तथा भुगतान की इच्छा रखते हों।

- **ऋणपत्र निर्गमन का प्रकटीकरण (Disclosure of issue of debentures):–** ऋण पत्र निर्गमन करने वाली प्रत्येक कम्पनी/उपक्रम को ऋण पत्रों का निर्गमन करते समय कुछ तथ्यों का प्रकटीकरण आवश्यक है जैसे वर्तमान तथा भावी ऋण–समता अनुपात, आवधिक ऋणों तथा ऋण पत्रों पर देय तिथियों पर ब्याज का भुगतान, वर्तमान ऋणपत्रधारियों का सेवा समबन्धी व्यवहार, वित्तीय संस्था अथवा बैंकर्स द्वारा ट्रस्टी सम्बन्धी व अन्य प्रमाण पत्र आदि।
- **ऋणपत्र धारकों के हितों का संरक्षण (Protection of Debenture Holder"s Interest):–** ऋणपत्र निर्गमित करने वाली प्रत्येक कम्पनी द्वारा ऋणपत्र ट्रस्टियों को वह सभी अधिकार दिये जाने चाहिए जिनसे वह ऋणपत्र धारियों के हितों का संरक्षण कर सकें। इनमें मुख्य हैं ऋणपत्रधारियों के साथ सलाह से कम्पनी में एक नामांकित संचालक की नियुक्ति का अधिकार, आधुनीकीकरण, विविधिकरण, विस्तार, योजना वित्त अथवा सामान्य पूँजी व्ययों के लिए निर्गमित किये जाने वाले ऋणपत्रों का प्रबन्ध अग्रणी संस्था द्वारा किया जाना चाहिए। कार्यशील पूँजी हेतु निर्गमित किये जाने वाले ऋणपत्रों का प्रबन्ध अग्रणी बैंक द्वारा किया जाना चाहिए। अंकेक्षकों द्वारा संस्थागत ऋणपत्रधारियों तथा ट्रस्टियों को योजना के प्रतिपादन के समय कोशों के उपयोग का ब्यौरा सम्बन्धी एक प्रमाण पत्र दिया जाना चाहिए। कार्यशील पूंजी से सम्बन्धित ऋणपत्रों की दशा में प्रत्येक वित्तीय वर्ष के अन्त में एक प्रमाण पत्र मिलना चाहिए।

ऋणपत्रों के निर्गमन पर प्रायः जमानत रखी जाती है इसलिए प्रत्येक कम्पनी जिसने ऋणपत्रों के निर्गमन पर जमानत रखी हो उन्हें यह प्रमाण पत्र भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड के पास जमा करना पडता है जिसमें इस बात की घोषणा होनी चाहिए कि जिस सम्पत्ति पर जमानत दी जा रही है उस पर किसी भी प्रकार का अन्य प्रभार (Charge) नहीं है तथा उस सम्पत्ति को गिरवी रखने की अनिवार्य अनुमति ले ली गयी है। यदि इस सम्पत्ति पर पहले से कोई प्रभार है तो वित्तीय संस्था तथा बैंक द्वारा अनापत्ति प्रमाण पत्र लेना चाहिए। ऋणपत्र निर्गमन की तिथि से छः महिने के अन्दर जमानत दी जानी चाहिए। यदि कम्पनी ऋण पत्र निर्गमन की तिथि से 12 महिने तक जमानत देने में असमर्थ रहती है तो उस दशा में कम्पनी द्वारा ऋणपत्रधारकों को 2 प्रतिशत ब्याज दिया जाना चहिए। यदि 18 महिने तक भी जमानत नहीं दी जाती है तो अगले 21 दिनों में ऋणपत्रधारियों की एक सभा बुलाकर, जमानत न देने का कारण स्पष्ट करना चाहिए तथा जमानत मिलने की तिथि का उल्लेख करना चाहिए।

आंशिक परिवर्तनीय तथा पूर्ण परिवर्तनीय ऋणपत्रों के पूर्व निर्गमन के सम्बन्ध में (Regarding past issue of partially conuertible and fully convertible debentures)

भूतकाल में निर्गमित आंशिक परिवर्तनीय तथा पूर्ण परिवर्तनीय ऋणपत्रों की स्थिति में जहां इनकी परिवर्तनीय कीमतों का निर्धारण पूँजी निर्गमन नियंत्रक द्वारा

निर्धारित कीमतों के आधार पर बाद में किया जाना हो वहां भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा निर्धारित किया गया है कि कम्पनी द्वारा अंशधारियों तथा ऋणपत्रधारियों की सभा में ऋण पत्रों की परिवर्तन की कीमत तथा परिवर्तन का समय निर्धारित किया जायेगा। ऐसे परिवर्तन वैकल्पिक होने के साथ सभा में लिये गये निर्णयों को अंशधारियों द्वारा प्रमाणित किया जायेगा।

वाणिज्यक पत्र निर्गमन सम्बन्धी दिशा निर्देश (Guidelines for issue of commercial papers)

वाणिज्यक पत्र कार्यशील पूँजी का एक गैर बैंकिग स्त्रोत है यह ऋण पत्र से बिल्कुल भिन्न है क्योकिं ऋण पत्र पूँजी बाजार का प्रपत्र है तथा वाणिज्यक पत्र मुद्रा बाजार का प्रपत्र होता है। बड़ी मात्रा में कर्ज लेने वाला तथा अच्छी वित्तीय स्थिति वाले अपने अल्पकालीन ऋणों का वाणिज्यिक प्रपत्रों द्वारा विविधिकरण कर सकते हैं। वाणिज्यिक पत्रों द्वारा कोश उत्पन्न करने पर रिजर्व बैंक के निर्देशानुसार नियंत्रण किया जा सकता है। वाणिज्यिक पत्र निर्गमन पर गैर बैंकिंग कम्पनी के (वाणिज्यिक पेपर के माध्यम से जमा स्वीकृति) निर्देश, 1989 द्वारा नियंत्रण किया जाता है जो 01 जनवरी 1990 से लागू किये गये। कुछ कम्पनियों के वाणिज्यक पत्रों का राष्ट्रीय शेयर बाजार में लेन–देन होता है।

वाणिज्यिक पत्र उस कम्पनी द्वारा निर्गमित किये जा सकते हैं जिनकी मूर्त शुद्ध सम्पत्ति रूपया 4, करोड़ से कम न हो, कोषों पर आधारित कार्यशील पूँजी सीमा रूपया 4, करोड़ से कम न हो, उधार लेने की क्षमता को कोड न0 1 में वर्गीकृत किया गया हो, वर्तमान अनुपात निर्धारित हो। वाणिज्यिक पत्र अधिक से अधिक एक वर्ष तथा कम से कम तीन महिने की अवधि के लिए निर्गमित होने चाहिए। वाणिज्यिक बैंक का प्रत्येक निर्गमन नया निर्गमन माना जाता है तथा इनके भुगतान के लिए अधिक अवधि नहीं दी जाती है यदि भुगतान का दिन किसी छुटटी के दिन पड रहा है तो भुगतान छुट्टी से एक दिन पहले किया जायेगा।

वाणिज्यिक पत्र पाच लाख रूपये के मूल्य वर्ग में निर्गमित किया जाना चाहिए। गौण बाजार के लेन–देन रूपया पांच लाख या बहुगुण हो सकते हैं। निर्गमन के लिए निर्धारित कुल राशि उस तिथि से वृद्धि की जानी चाहिए जिस तिथि पर बैंक द्वारा प्रस्ताव को अपने रिकार्ड में लिखा गया हो। पत्रों का निर्गमन एक ही दिन में किया जा सकता है या कुछ हिस्सों में अलग–अलग भी किया जा सकता है परन्तु भुगतान तिथि सभी की एक ही होनी चाहिए/होगी। वाणिज्यिक पत्रों से प्राप्त होने वाली राशि कम्पनी के कोशों पर आधारित कार्यशील पूँजी के 75 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए।

- **निर्गमन विधि तथा कटौती दर (Mode of issue and discount Rate):–** वाणिज्यिक पत्र आवधिक वचन पत्र होता है जो बेचान तथा सुपुर्दगी पर देय होना चाहिए। यह प्रपत्र निर्गमनकर्ता द्वारा निर्धारित कटौती पर निर्गमित किया जा सकता है

- **निर्गमन व्यय (Issue Expenses):–** निर्गमन व्यय कम्पनी द्वारा वहन होना चाहिए तथा निर्गमन ब्यय में लेन देन कर्ता का शुल्क, श्रेणीयन ऐजेन्सी की फीस, बैंक द्वारा प्रदान की जाने वाली सुविधाओं का शुल्क तथा अन्य सम्बन्धित ब्यय सम्मिलित होता है।
- **निवेशक (Investors):–** वाणिज्यिक प्रपत्र को पंजीकृत नैगमिक या समामेलित संस्था, बैंक, कम्पनी तथा व्यक्ति द्वारा निर्गमित किया जा सकता है। भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड ने यह स्पष्ट किया है कि NRI को गैर परिवर्तनीय तथा अहस्तांतरणीय वाणिज्यिक पत्र ही निर्गमित किया जा सकता है। NRI को निर्गमित वाणिज्य पत्र पर यह दोनों बातें स्पष्ट रूप से लिखी हों ।
- **निगमन प्रक्रिया (Procedure for issue):–** वाणिज्यिक प्रपत्रों का निर्गमन कराने की इच्छुक कम्पनी रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित फार्म पर अपना प्रस्ताव भरकर उस बैंक के पास जमा करेगा जो बैंक उस कम्पनी को कार्यशील पूँजी तथा साख श्रेणीयन प्रदान करता हो। यदि बैंक आवेदन पत्रों की जॉच के बाद कम्पनी के प्रस्ताव को विभिन्न दिशा निर्देशों के अनुसार योग्य समझता है तो बैंक दो सप्ताह के अन्दर कम्पनी अथवा व्यापारी बैंकर के अच्छे कार्यालयों के माध्यम से निजी रूप से इन प्रपत्रों को निर्गमित कर सकता है। प्रारम्भिक निवेशकर्ता वाणिज्यिक पत्रों के कटौती मूल्य का भुगतान उस बैंक में कम्पनी के खाते में लिखित रूप से करेगें। वाणिज्यक पत्र केवल उन्हीं बैंकों के माध्यम से निर्गमित किये जाने चाहिए जिन्होने कम्पनी की कार्यशील पूँजी सीमा स्वीकृत की हो।

अंशों के निर्गमन से सम्बन्धित दिशा निर्देश (Guidelines for issue of Shares)

भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा निवेशक के हितों को सुरक्षित रखने तथा नियमों का कडाई से पालन करने के उद्देश्य से कम्पनियों द्वारा किये जाने वाले अंश निर्गमन के सम्बन्ध में कुछ दिशा निर्देश स्पष्ट रूप से निर्धारित किये हैं। ये निर्देश अंश निर्गमित करने वाली कम्पनियों को निम्न आधारों में वर्गीकृत करते हैंः

(अ) वाणिज्य उत्पादन में लगे वर्षों की संख्या

(ब) पिछला रिकार्ड,

(स) प्रवतकों/उद्यमियों का स्वभाव तथा आधार।

(I) नई कम्पनी द्वारा पहला निर्गमन (First issue by a New company)

(अ) निर्माण कम्पनियों द्वारा (By Manufacturing Companies):– 16 अप्रैल 1996 तथा 12, अगस्त 1997 के भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा दिये गये दिशा निर्देशो के अनुसार सार्वजनिक निर्गमन करने से पहले किसी भी कम्पनी का पिछले तीन वर्षो में लाभांश भुगतान रिकार्ड होना चाहिए। यदि किसी निर्माण कम्पनी का पिछला रिकार्ड ऐसा नहीं है तो वह तब तक सार्वजनिक निर्गमन नहीं कर सकती है जब तक इसके प्रोजेक्ट का मूल्यांकन किसी सार्वजनिक वित्तीय संस्थ अथवा अनुसूचित वाणिज्यक बैंक द्वारा किया गया हो तथा यह मूल्यांकन करने वाली संस्था प्रोजेक्ट निधिकरण में भी भाग लेती हो। 1999 में किये गये संशोधन के अनुसार अब भारतीय

प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा किसी कम्पनी का पिछले पाँच सालों में कम से कम तीन सालों में वितरण योग्य लाभों का अच्छा रिकार्ड होना चाहिए तथा निर्गमन से पहले पिछले पांच सालों में से तीन सालों की शुद्ध सम्पत्ति एक करोड़ से कम नहीं होनी चाहिए।

(ब) प्रथम सार्वजनिक आफर तथा निर्गमन से पूर्व शुद्ध पूँजीः– भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा जून 2000 को प्रथम सार्वजनिक निर्गमन के प्रवेश नियमों को कडा कर दिया गया है अब निर्गमन पूर्व शुद्ध सम्पत्ति के 5 गुणा तक प्राथमिक सार्वजनिक निर्गमन की तब ही अनुमति दी जायेगी जब कम्पनी की लाभदायकता तथा शुद्ध सम्पत्ति का रिकार्ड निर्देशों के अनुरूप हो। यदि कम्पनी का पिछला रिकीर्ड आवश्यकतानुरूप नहीं है और वह शुद्ध सम्पत्तियों के 5 गुना से अधिक के लिए अंश निर्गमन कर रही है तब वह केवल बुक बिल्डिंग प्रक्रिया से ही ऐसा कर सकती है।

(स) मीडिया, मनोरंजन, IT तथा टेलीकाम कम्पनियों द्वारा न्यूनतम सार्वजनिक प्रस्तावः– अगस्त, 1999 में IT कम्पनियों को 10 प्रतिशत के प्रारम्भिक सार्वजनिक प्रस्ताव की स्वीकृति दी गयी। सार्वजनिक प्रस्ताव कम से कम 50 करोड़ रूपये का होना चाहिए तथा 20 लाख प्रतिभूतियों का प्रस्ताव रखा जाना चाहिए। अप्रैल 2000 में अन्य कम्पनियों को भी समता निर्गमन के पश्चात 10 प्रतिशत सार्वजनिक प्रस्ताव करने की स्वीकृति प्रदान की गई। सार्वजनिक रूप से किये जाने वाले शुद्ध प्रस्ताव 5 करोड़ रूपये से कम के नहीं होने चहिए।

(द) आधारभूत कम्पनियाँ (Infrastructure Companies)ः–9 सितंबर 1998 को आधारभूत कम्पनियों को अपने प्रतिभूतियों के 25 प्रतिशत तक न्यूनतम सार्वजनिक प्रस्ताव करने तथा कम से कम 1 लाख रूपये के प्रस्ताव के पाँच अंशधारी तथा 90 प्रतिशत के न्यूनतम अंशदान से मुक्त किया गया है।

- वित्त कम्पनियाँ (Finance Companies)ः– प्रत्येक वह वित्त कम्पनी प्रतिभूतियों का निर्गमन करने योग्य है जिनका पिछला कम से कम 2 वर्ष का रिकार्ड अच्छा हो तथा आर0बी0आई0 द्वारा गैर बैकिंग वित्तीय संस्था के रूप में पंजीकृत हो तथा भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा मध्यम कम्पनी के रूप में पंजीकृत हो।

(II) वर्तमान कम्पनी द्वारा स्थापित नई कम्पनी द्वारा पहला निर्गमन (Firt issue by New Company set up by an existing company)

वर्तमान कम्पनी जिसका पिछले पाँच वर्षो का लाभदायकता का रिकार्ड अच्छा है वह नई कम्पनी का निर्माण कर सकती है तथा वह अपने निर्गमन मूल्य को निर्धारित करने के लिए स्वतंत्र है बशर्ते प्रवर्तन करने वाली कम्पनी का नयी कम्पनी की समता पूँजी में कम से कम 50 प्रतिशत की भागेदारी हो तथा सभी निवेशकर्ताओं के लिए निर्गमन मूल्य समान हो।

(III) वर्तमान सूचीबद्ध कम्पनियों द्वारा सार्वजनिक निर्गमन (Public issue by Exiting listed commpanies)

वर्तमान सूचीबद्ध कम्पनियाँ बाजार में नई कम्पनियों का उत्थान कर सकती हैं। यह कम्पनियां अपने नये निर्गमनों का मूल्य निर्धारण कर सकती है तथा स्वतंत्र

हैं। यद्यपि निर्गमनों से सम्बन्धित अग्रिम प्रबन्धकों की सलाह पर ही मूल्य निर्धारण किया जाना चाहिए। भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड को प्रविवरण की जाँच का अधिकार प्राप्त है जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि निर्देशों तथा नियमों के अनुरूप उसमें प्रर्याप्त घोषणायें की गयी है। कम्पनियों को अपने निर्गमन प्रस्तावों में प्रपत्रों में अपने अंशों के पिछले दो वर्षों के उच्चतम तथा न्यूनतम मूल्यों का भी संकेत देना होगा। यदि ऐसे निर्गमनों द्वारा विदेशी अंशधारिता 51 प्रतिशत या इससे अधिक हो जाती है तो ऐसे निर्गमन उस मूल्य पर किये जा सकते हैं जो कि अंशधारियों द्वारा कम्पनी अधिनियम की धारा 81 (1) (A) के तहत एक विशेष प्रस्ताव के द्वारा निर्धारित की जाती है। इसके लिए रिजर्व बैंक आफ इण्डिया तथा भारत सरकार की पूर्वानुमति अनिवार्य है।

(IV) वर्तमान असूचीबद्ध सार्वजनिक कम्पनियों द्वारा सार्वजनिक निर्गमन (Public issue by Existing Unlisted Companies)

इन कम्पनियों के लिए भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा निर्गमन पूर्व की आवश्यकताओं के लिए मानदण्ड भी निश्चित किये हैं वर्तमान असूचीबद्ध सार्वजनिक कम्पनी पूँजी बाजार में तभी प्रवेश कर सकती हैं जब इसमें पिछले पाँच वर्षो में से तीन वर्षों में लांभाश का भुगतान किया हो।

(v) वर्तमान निजी स्वामित्व वाली कम्पनी द्वारा प्रथम निर्गमन (First issue by existing private company)

निजी स्वामित्व वाली जिन कम्पनियों का पिछला रिकार्ड अच्छा नहीं है वह केवल सममूल्य पर कीमत निर्धारण कर सकते है। एक असूचिबद्ध कम्पनी स्वतंत्रता पूर्वक अपनी प्रतिभूतियों का मूल्य निर्धारण कर सकती है इसके लिए यह शर्त है कि वह असूचीबद्ध कम्पनी पिछले तीन वर्षों में लाभ प्राप्त कर रही हो। ऐसी कम्पनियां जिनका प्रवर्तन ऐसी कम्पनियों द्वारा किया जा रहा है जिनका पिछले पाँच वर्ष का रिकार्ड अच्छा है प्रवर्तन होने वाली कम्पनी का रिकार्ड अच्छा हो या ना हो, वे अपने निर्गमनों के मूल्य का निर्धारण स्वतंत्रता पूर्वक कर सकती हैं।

समता अंशों का कम से कम 20 प्रतिशत का सार्वजनिक प्रस्ताव रखना चाहिए। भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा पूर्ण प्रकटीकरण के निर्धारण के लिए प्रविवरण की जाँच की जा सकती है। कम्पनी की नवीनतम अंकेक्षित स्थिति विवरण के अनुसार शुद्ध सम्पत्ति मूल्य के सम्बन्ध के विशेष प्रकटीकरण के आधार पर निर्गमनकर्ता तथा अग्र प्रबन्धकों द्वारा मूल्य निर्धारण किया जायेगा।

अधिकार अंशों के निर्गमन सम्बन्धी निर्देश (Guidelines for Right Issue)

भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा 23 मई, 1995 को दिये गये निदेशानुसार जो कम्पनियां किसी मान्यता प्राप्त शेयर बाजार में सूचीबद्ध हैं उन कम्पनियों को बोर्ड से पावती पत्र प्राप्त करने के लिए, प्रारूप पत्र जाँच के लिए प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है। विशेषकर उस वर्ग की कम्पनियों को जिनके व्यापारिक बैंकरों द्वारा बोर्ड के पास प्रस्ताव प्रपत्र प्रस्तुत नहीं किया गया हो उन कम्पनियों को अधिकार अंशों के आधार पर 50 लाख से अधिक पूँजी उत्थित करने की स्वीकृती नहीं है। यदि कम्पनी निर्गमन की समापन तिथि के समाप्त होने के 42 दिन के अन्दर न्यूनतम

अभिदान प्राप्त नहीं कर पाती है तो कम्पनी द्वारा आवेदक को अगले 8 दिनों में अंशदान की सम्पूर्ण राशि वापस करनी चाहिए यदि कम्पनी ऐसा करने में असफल रहती है तो कम्पनी अधिनियम 1956 की धार 37 की उपधारा (2) तथा (2A) में निर्धारित दरों पर देर की गयी अवधि के लिए ब्याज देना होगा।

बोनस अंशों के निर्गमन सम्बन्धी दिशा निर्देश (Guidelines for the Issue of Bonus Shares)

भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड ने सन् 1994 में बोनस अंशों के निर्गमन से सम्बन्धित पुराने निर्देशों में कुछ बदलाव किये हैः

(i) स्थिर सम्पत्तियों के पुनर्मूल्यॅाकन द्वारा बनाये गये कोषों को पंजीकृत नहीं करना चाहिए।

(ii) ऐसे संचित कोषो का प्रयोग बोनस अंश निर्गमन के लिए किया जाना चहिए जो वास्तविक लाभों में से बनाये गये हों या नकद प्राप्त अंश प्रीमियम से बनाये गये हों।

(iii) बोनस अंशों का ऐसा कोई भी निर्गमन नहीं किया जायेगा जिससे आंशिक रूप से तथा पूर्णतया परिवर्तनशील ऋणपत्रधारकों के अधिकारों के मूल्य में कमी होती हो।

(iv) अवशेष संचय परीक्षा के उद्देश्य की गणना के लिए विकास छूट संचय तथा विनियोग भत्ता संचय को मुक्त कोष में सम्मिलित किया जाना चाहिए ।

(v) प्रबन्ध संचालकों द्वारा बोनस अंश निर्गमन की स्वीकृत के 6 महिने के अन्दर कम्पनी द्वारा इन प्रस्तावों को प्रतिपादन करना होगा ।

(vi) लाभांश की देय राशि निश्चित करने हेतु दिये गये दिशानिर्देश के अनुसार कम्पनी के पिछले तीन वर्षों में कर से पूर्व औसत लाभ के 30 प्रतिशत से बढ़ी हुई पूँजी पर 10 प्रतिशत दर से लाभांश दिया जाना चाहिए।

(vii) प्रस्तावित पूँजीकरण के बाद अवशेष संचय बढ़ी हुई प्रदत्त पूँजी का कम से कम 40 प्रतिशत होना चाहिए।

(viii) लाभांश की जगह बोनस की घोषणा नहीं की जानी चाहिए।

(ix) आंशिक दत्त अंशों को पूर्णदत्त बनाने से पहले बोनस अंश निर्गमित नहीं किये जाने चाहिए।

(x) अवशेष संचयों की गणना करते समय अंकेक्षित खातों में दिखाये गये आकस्मिक दायितवों का ध्यान रखा जाता है जो शुद्ध लाभों में से देय होने हैं।

(xi) बोनस अंशों के निर्गमन के संदर्भ में 40 प्रतिशत के अवशेष संचय की गणना करने के लिए कम्पनी की स्थिति विवरण में दिखाई गयी पूँजी संचय जो कि सम्पत्ति के पुनर्मूल्यांकन के कारण उत्पन्न हुआ हो अथवा बिना नकद संसाधनों के उपार्जित संचय को नही लिया जाना चाहिए।

कम्पनी के अन्तर्नियमों में ऐसा प्रबन्धन होना चाहिए जिससे संचित कोषों का पूँजीकरण किया जा सके और यदि यह प्रावधान नहीं है तो कम्पनी को एक साधारण सभा बुलाकर एक प्रस्ताव द्वारा अन्तर्नियमों में सुधार करना चाहिए। कम्पनी साधारण सभा में बोनस अंशों के निर्गमन के लिए एक प्रस्ताव पास कर लेगी तथा इस प्रस्ताव में बोनस निर्गमन के बाद के एक वर्ष में घोषित किये जाने वाले लाभांश की दर के सम्बन्ध में प्रबन्धकों की इच्छा भी जाहिर होनी चाहिए कम्पनी को इस बात का विश्वास होना चाहिए कि कम्पनी के कर्मचारियों के सभी वैधानिक भुगतान कर दिये गये हैं इसमें प्रोविडेन्ट फण्ड में योगदान, ग्रेच्यूटी आदि सम्मिलित है।

आरक्षण तथा स्थाई आंवटन (Reservation and Firm Allotment)

SC (R) नियम 1957 से यह नियम चला आ रहा था कि कम्पनियां प्रत्येक वर्ग की प्रतिभूतियों का 25 प्रतिशत सार्वजनिक निर्गमन करेगी तथा शेष प्रतिभूतियों का स्थायी आंवटन (Firm allotment) तथा आरक्षण के आधाार पर निवेशकों के विभिन्न वर्गो में निर्गमित किया जा सकता था। भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड के निर्देश 11 अक्टूबर, 1993 के अनुसार आरक्षण तथा स्थायी आंवटन कुल निर्गमन राशि के 75 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए। 10 अक्टूबर, 1994 में भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड ने फिर स्पष्ट किया कि स्थायी आवंटन में किसी प्रकार की प्रतिबन्धित अवधि नहीं हैं।

अंश निर्गमन मे आरक्षण (Reservation in Issue of Shares)

निवेशकों के अग्रलिखित वर्ग स्थायी आवंटन के योग्य हैं:

(i) कम्पनी के संचालक/स्थायी कर्मचारी तथा नयी कम्पनी की दशा में प्रवर्तक तथा कम्पनी के स्थायी कर्मचारी को अधिकतम अनुज्ञेय राशि 10 प्रतिशत है।

(ii) नयी कम्पनी की दशा में प्रर्वतक कम्पनी के अंशधारी तथा वर्तमान कम्पनी की दशा में सामूहिक कम्पनियों के अंशधारी को अधिकतम अनुज्ञेय राशि 10 प्रतिशत है।

(iii) भारतीय म्यूचुअल फण्ड (प्रतिस्पर्धात्मक आधार पर) अधिकतम अनुज्ञेय राशि 20 प्रतिशत है।

(iv) भारतीय तथा बहुपक्षीय विकासात्मक वित्तीय संस्थायें को अधिकतम अनुज्ञेय राशि 20 प्रतिशत है।

(v) विदेशी संस्थागत निवेशक जिसमें नान रेजिडेन्ड इण्डियन तथा ओ0सी0बी0 शामिल हैं को अधिकतम अनूज्ञेय राशि 30 प्रतिशत है।

भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा 11 अक्टूबर 1993 के परिपत्र में स्थायी आवंटन जिसमें विदेशी संस्थागत निवेशक तथा ओ0सी0बी0 शामिल हैं, विकासात्मक वित्तीय संस्थाओं, भारतीय म्युचुअल फण्ड़ों तथा निर्गमनकर्ता कम्पनी के नियमित स्थायी कर्मचारियों के लिए स्वीकृत किया गया है। इन्हें स्थायी आवंटन अग्रलिखित शर्तों के साथ स्वीकृत किया गया है :

(i) विदेशी संस्थागत निवेशकों को 30 प्रतिशत,

(ii) विकासात्मक वित्तीय संस्थाओं को 20 प्रतिशत।

(iii) भारतीय म्यूचुअल फण्डों को 20 प्रतिशत तथा स्थायी नियमित कर्मचारियों को 10 प्रतिशत दिया जा सकता है।

29 सितम्बर 1995 के अपने परिपत्र में एक बार फिर स्पष्ट किया कि अग्रिम व्यापारिक बैंकर कुल निर्गमन के 5 प्रतिशत तक स्थायी आवंटन के योग्य है। इससे पहले अक्टूबर 1994 में यह स्पष्ट किया था कि निर्गमनकर्ता तथा विकासशील वित्तीय संस्थाओं के लिए अपने सार्वजनिक निर्गमनो में एक निर्धारित प्रतिशत से अनुसूचित बैंकों को स्थायी आंवटन कर सकता है। इसके पश्चात भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड में 1995 में स्थायी आरक्षण आधार से सम्बन्धित व्यक्तिगत प्रतिबन्ध को हटा दिया था तथा कर्मचारियों तथा अंशधारियों पर 10 प्रतिशत की वही सीमा लागू होगी।

पूर्वाधिकार अंशों के आंवटन से सम्बन्धित दिशा निर्देश (Guidelines for Preferential Share Allotment)

भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा दिये गये दिशानिर्देशों के अनुसार निर्गमनकर्ता कम्पनी को यह अनुमति प्राप्त है कि वह कम्पनी, कम्पनी अधिनियम की विभिन्न धाराओं का पालन करते हुऐ अपने प्रर्वतकों को पूर्वाधिकार अंश निर्गमित कर सकती है। दिसम्बर, 1993 को दिये गये दिशा निर्देशानुसार वर्तमान अथवा नये स्थानीय प्रर्वतकों, विदेशी समायोजकों को पूर्वाधिकार अंशों का आवंटन केवल उन अंशधारियों की सहमति से किया जा सकता है जो कुल समता पूंजी के 90 प्रतिशत के धारक है। यह आवंटन बाजार मूल्य पर किया जाना चाहिए। भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा 1994 में दिये गये दिशा निर्देशों के अनुसार सूचीबद्ध कम्पनियों द्वारा किसी भी चुनिन्दा व्यक्तियों के समूह को पूर्वाधिकार अंशों का निर्गमन किया जा सकता है लेकिन यह निर्गमन बाजार मूल्य पर किया जायेगा। भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा सूचीबद्ध कम्पनियों को यह भी अधिकार प्राप्त है यदि वह बोर्ड द्वारा पंजीकृत हैं तो विकासात्मक वित्तीय संस्थाओं (FIIs) को पूर्वाधिकार अंशों का आवंटन कर सकती हैं। इनकी अधिकतम धारिता 30 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए। भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा पूर्वाधिकार आधार पर निर्गमित किये गये अंशों, ऋणपत्रों तथा अंश वारटों के लिए प्रतिबन्धित अवधि 5 वर्ष निश्चित की है यह प्रतिबन्ध विकासात्मक वित्तीय संस्थाओं (FIIs) तथा म्यूचुअल फण्ड़ों पर भी लागू होगी। मार्च 1996 को केवल प्रवर्तकों के अतिरिक्त शेष सभी वर्गो को इस प्रविवन्ध से मुक्त कर दिया गया। 15 जून 2000 को सूचीबद्ध कम्पनियों द्वारा किसी भी व्यक्ति को किये जाने वाले पूर्वाधिकार अंश निर्गमन पर 6 महिने (2005 में संशोधित) की प्रतिबन्धित अवधि लगा दी है।

कर्मचारी स्टाक विकल्प प्रणाली (Employee Stock Option System)

जैसा कि इसके नाम से ही ज्ञात होता है कि कर्मचारी स्टाक विकल्प प्रणाली एक ऐच्छिक प्रणाली है जो विभिन्न कम्पनियों द्वारा कर्मचारियों की भागीदारी को प्रोत्साहित करने के लिए प्रायः अपनायी जाती है । यह प्रणाली विशेष रूप से उन कम्पनियों के लिए लाभकारी होती है जिनकी गतिविधियां मुख्य रूप से कर्मचारी की योग्यता पर निर्भर करती है। ऐसी कम्पनियां जिनकी कार्यप्रणाली कर्मचारियों

की योग्यता से अधिक श्रम तथा मोनोटोनी पर निर्भर करती हे वहां यह प्रणाली अधिक लाभकारी सिद्ध नहीं समझी जाती है कर्मचारियों को प्रतिभूतियों की खरीद का विकल्प देने का सीधा तात्पर्य है कि जब योग्यता पर आधारित कारोबार वाली कम्पनी के कर्मचारियों का कम्पनी में स्वयं की हिस्सेदारी होगी तब उनकी योग्यता का बेहतर उपयोग किया जा सकता है तथा प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण से बेहतर निपटा जा सकता है जैसे साफ्टवेयर कम्पनियाँ।

भारत में स्टाक विकल्प से सम्बन्धित निर्देश (Guidelines Regarding Stock Option in India)

प्रत्येक कम्पनी जो स्टाक बाजार में सूचीबद्ध है वह अपने कर्मचारियों को प्रतिभूतियां प्रस्तुत कर सकती है। प्रतिभूतियों के प्रस्तुतीकरण की निम्नशर्तें हैं :

(i) किसी भी कम्पनी की एक वर्ष में प्राप्त चुकता पूँजी से 5 प्रतिशत से अधिक स्टाक मूल्य विकल्प के लिए उपलब्ध नहीं किया जाना चाहिए।

(ii) कम्पनी किसी भी दशा में स्टाक विकल्प के रूप में अपने प्रर्वतकों तथा अंशकालिक निवेशकों को प्रतिभूतियों का आवंटन नही कर सकती है बशर्ते वह कम्पनी के कर्मचारी ही क्यों न हों।

(iii) कम्पनियां स्टाक विकल्प प्रणाली अपनाने के लिए स्वतंत्र है जिसमें भुगतान की शर्ते सम्मिलित हों।

(iv) स्टाक विकल्प प्रणाली में पूर्वाधिकार आधार पर अंशों का निर्गमन किया जा सकता है लेकिन इनके मूल्य के लिए कुछ शर्तें निश्चित की गयी हैं जैसे पिछले छः महिने में शेयर बाजार में उद्वत अंशों का उच्च तथा निम्न अन्तिम कीमतों का साप्ताहिक औसत, तथा इससे सम्बन्धित तिथि से पिछले दो सप्ताह के अन्तर्गत शेयर बाजार में उद्वत अंशों की उच्च तथा निम्न कीमतों का साप्ताहिक औसत।

(v) प्रत्येक कम्पनी जो स्टाक विकल्प प्रणाली को अपनाती है उसे शेयर बाजार में एक प्रमाण पत्र देना होगा जिसमें कम्पनी द्वारा घोषणा की जायेगी कि प्रतिभूतियों का निर्गमन प्रणाली के अनुसार स्थायी कर्मचारियों को ही निर्गमत किया गया है।

आवासीय तथा गैर–आवासीय स्थायी कर्मचारियों के लिए भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा जून 1998 में भारतीय साफ्टवेयर कम्पनियों के लिए विशेष स्टाक प्रणाली के निर्देश जारी किये गये। भारत तथा विदेशों में कार्य कर रहे संचालक भी इस प्रणाली के अन्तर्गत प्रतिभूतियों के निर्गमन के योग्य थे। इस प्रकार का निर्गमन निर्गमनकर्ता कम्पनी अपनी चुकता पूँजी का 10 प्रतिशत से अधिक नहीं कर सकती । 16 जून 2000 में सरकार ने विदेशी मुद्रा, परिवर्तनीय बाण्ड तथा साधारण अंशों के निर्गमन के लिए इस योजना का क्षेत्र बढ़ा दिया।

कर्मचारी स्टाक विकल्प प्रणाली से सम्बन्धित निर्देश (Guidelines on Employee Stock Option Scheme)

कर्मचारी स्टाक विकल्प प्रणाली से सम्बन्धित विभिन्न निर्देश अग्रलिखित हैः

(i) कर्मचारियों के कर्मचारी स्टाक विकल्प प्रणाली (ESOS) के अनुसार कर्मचारी की कार्य अवधि में अपने विकल्प का अवसर प्रदान किया जायेगा। कम्पनी समता अंशों में परिवर्तनीय प्रतिभूतियां तथा समता अंश प्रस्तुत कर सकती हैं।

(ii) कर्मचारी स्टाक विकल्प प्रणाली का तात्पर्य ऐसी प्रणाली से होगा जिसमें कम्पनी अपने कर्मचारियों को विकल्प प्रदान करती है तथा कर्मचारियों को सार्वजनिक निर्गमनों से तथा अन्य प्रकार की प्रतिभूतियों की खरीद का विकल्प प्रस्तुत करती है।

(iii) कर्मचारियों को प्रतिभूतियों का आंवटन पूर्व निर्धारित कीमतों पर प्राप्त करने का अधिकार होगा परन्तु उन पर कोई आभार नहीं होगा।

(iv) कम्पनी को प्रतिभूतियों की प्रयोग कीमतें तथा कीमत निर्धारण करने की स्वतंत्रता होगी।

(v) जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है इस विकल्प का उपयोग कर्मचारी द्वारा अपने सेवाकाल में किया जायेगा इसलिए यदि किसी कर्मचारी के आचरण या किसी अन्य कारण से उसे कार्यमुक्त किया जाता है तो उसको दिया गया विकल्प का अधिकार भी स्वतः समाप्त हो जायेगा।

(vi) कर्मचारी स्टाक विकल्प प्रणाली में कर्मचारियों के अधिकार स्वरूप प्रतिभूतियों के आवेदन के लिए विकल्प हेतु एक समय सीमा निर्धारित की जाती है जिसका प्रयोग कर्मचारी द्वारा किया जायेगा।

(vii) विकल्प दिये जाने तथा पूरा होने के बीच कम से कम एक वर्ष की अवधि होनी चाहिए। कर्मचारी स्टाक विकल्प प्रणाली के अनुसार कम्पनी को निर्गमित अंशों की समापन अवधि निर्दिष्ट करने की स्वतंत्रता प्राप्त होगी।

(viii) अंशधारियों द्वारा सामान्य सभा में एक विशेष प्रस्ताव की स्वीकृति के पश्चात ही कम्पनी के कर्मचारियों को स्टाक विकल्प दिया जा सकता है।

(ix) कर्मचारियों को अंशों का निर्गमन होने के पश्चात ही उन्हें किसी प्रकार का लाभांश प्राप्त करने का, वोट देने का या अंशधारियों के किसी भी अधिकार के प्रयोग का अधिकार प्राप्त होगा।

(x) किसी कर्मचारी को दिया गया विकल्प किसी अन्य व्यक्ति को हस्तान्तरित नहीं किया जा सकता है इसके साथ ही कर्मचारी को दिया गया विकल्प किसी प्रतिभूति, बन्धक अथवा गिरवी के रूप में नहीं रखा जा सकता है।

(xi) किसी भी लेखा अवधि में कर्मचारी स्टॉक विकल्प प्रणाली के अनुसार दिये गये विकल्प का लेखा मूल्य उसी प्रकार लिखा जायेगा जैसे कि कम्पनी के वित्तीय विवरण में अन्य कर्मचारी क्षतिपूर्ति को लिखा जाता है।

बुक–बिल्डिंग के लिए दिशा निर्देश (Guidelines for Book Building)

बुक विल्डिंग के सम्बन्ध में भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा प्रथम बार निर्देश 12 अक्टूबर 1995 को जारी किये गये जिन्हें इसके बाद समय–समय पर आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तित भी किया गया। बुक बिल्डिंग प्रतिभूतियों के

निर्गमन का नया विकल्प है। यह अंशों के निर्गमन की एक ऐसी विधि है जो उस न्यूनतम मूल्य/कीमत पर आधारित है जो इस प्रक्रिया के प्रारम्भ होने से पहले ही निश्चित किया जा चुका हो। बुक बिल्डिंग में व्यापारी बैंकर्स तथा व्यापार संघों को प्रपत्र का पूर्ण आवंटन निहित है निर्गमन के अग्रिम व्यापारी बैंकर्स तथा व्यवसाय संघ के सदस्यों को निर्गमन करने वाली कम्पनी द्वारा बुक स्तर नामांकित किया जाता है। बुक रनर द्वारा भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड तथा अन्य संस्थाओं के क्रेता को प्रस्तुत किये जाने वाले प्रारूपित प्रविवरण की प्रतियाँ वितरित करी जानी चाहिए जो सुदृढ आंवटन के लिए योग्य है। प्रस्तावित प्रविवरण द्वारा मूल्य प्रसार इंगित किया जाता है जिसके मध्य प्रतिभूतियां अभिदान के लिए प्रस्तावित की जायेंगी। अग्रिम बैकर्स तथा संस्थागत क्रेताओं द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली प्रतिभूतियों की संख्या का विवरण बुक रनर्स द्वारा नियोजित भाग के अन्तर्गत रखा जाता है। इस प्रक्रिया में अभिगोपकों को भी उसके द्वारा नियोजित भाग के अन्तर्गत प्राप्त आदेशों तथा उस कीमत की सूचना देनी चाहिए जिस पर बुक रनर को आदेश प्राप्त हुआ हो। निर्गमन की कीमत बुक रनर्स तथा निर्गमनकर्ता कम्पनी द्वारा निर्धारित की जाती है इसमें ध्यान रखना आवश्यक होता है कि नियोजित भाग तथा जनता को किये जाने वाले प्रस्ताव की कीमत मे अन्तर नहीं होना चाहिए। बुक रनर संस्थागत क्रेताओं तथा अभिगोपकों द्वारा क्रय हेतु आवेदन जनता के सम्मुख निर्गमन से एक दिन पहले आवेदन राशि सहित आवेदन पत्र एकत्रित करता है। भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा कभी भी इस प्रक्रिया का निरीक्षण किया जा सकता है। ऐसी कम्पनियाँ जिनके लाभों का कोई निर्धारित रिकार्ड नहीं है उन कम्पनियों के प्रारम्भिक प्रस्तावों के लिए बुक बिल्डिंग आवश्यक है। इन कम्पनियों द्वारा भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा समय–समय पर निर्धारित कम से कम निर्गमन प्रतिशत विशेष संस्थागत क्रेताओं जैसे अग्रिम बैंकर्स, वित्तीय सस्थायें, म्यूचुअल फण्डस आदि को प्रस्तावित किया जायेगा। इस सम्बन्ध में भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा दिये गये कुछ आवश्यक निर्देश निम्नवत स्पष्ट हैः

(i) बुक बिल्डिंग हिस्से की आंवटन की कीमत का निर्धारण निर्गमन से पहले निर्धारित कर ली जाती है।

(ii) वित प्रबन्ध में बुक विल्डिंग के माध्यम से घाटे के वित को पूरा करने की प्रणाली से सम्बन्धित तथा अतिरिक्त कोषों के फैलाव से सम्बन्धित अतिरिक्त प्रस्तावों के प्रकटीकरण में किया जायेगा।

(iii) 75 प्रतिशत बुक बिल्डिंग प्रणाली में बुक लिस्ट हिस्सें में केवल अभौतिक रूप से आंवटन किया जाना चाहिए।

(iv) स्थायी कीमत हिस्से में किया गया अतिरिक्त अंशदान को बुक बिल्ट हिस्सें में रखा जा सकता है जो उन व्यक्तिगत निवेशकों में बॉटने के लिए संचित किया गया था जिन्होने 10 व्यापार हिस्सों में बोली लगायी हों।

8.6 भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड की प्रबन्धक के रूप में स्थापना (Establishment of SEBI as a Regulator)

भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड की स्थापना एक स्वतंत्र संगठन के रूप में एक बड़ी पहल थी जिसका मुख्य उद्देश्य प्राथमिक तथा द्वितीयक बाजारों में प्रतिभूतियों के क्रय–विक्रय में विस्वास कायम करना था। भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड के निर्माण के पश्चात इसको सक्षम अधिकार देते हुऐ अग्रलिखित कार्यो को सम्पन्न कराने के लिए जिम्मेदारी भी दी गई।

(i) प्रतिभूतियों में निवेश पर निवेशकों के हितों की रक्षा करना।

(ii) भारत में प्रतिभूति विनिमय बाजारों का विकास करना।

(iii) भारतीय प्रतिभूति विनिमय बाजारों का प्रबन्धन तथा संचालन।

बाजारों के प्रबन्धन तथा संचालन में भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड का कार्य क्षेत्र न केवल बाजार तक ही सीमित था बल्कि इसमे प्रतिभूतियों के निर्गमन, प्रतिभूतियों के हस्तान्तरण के भी सम्मिलित किया गया था। इसके नियंत्रण में प्रतिभूति विनिमय बाजारों से सम्बन्ध रखने वाले सभी प्रकार के माध्यस्थ तथा इनका प्रबन्धन तथा नियमन भी सम्मिलित था। भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड ने प्रतिभूति निर्गमन कम्पनियों के लिए यह आवश्यक कर दिया कि इन कम्पनियों या प्रतिस्थानों को एक समायोजन अधिकारी की नियुक्ति करनी आवश्यक होगी जिसकी जिम्मेदारी होगी कि वह बोर्ड द्वारा तथा विभिन्न अधिनियमों द्वारा निर्धारित नियमों का प्रतिभूतियों के विनिमय में पालन करवाना तथा निवेशकों के शिकायतों का निवारण करना। भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड का विकास एक लम्बी प्रक्रिया रही जिसका विकास कई सालों में हुआ। 1602 में एक्स्टरडम स्टाक एक्सचेंज की स्थापना इस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा अपनी प्रतिभूतियों के विनिमय के लिए किया गया इसके पश्चात 1875 में आज का बाम्बे स्टाक एक्सचेंज कहा जाने वाला नेटिव शेयर और स्टाँक ब्रोकर्स ऐसोसियेशन की स्थापना की गयी और असकी स्थापना को ही भारत में तथा एशिया में स्टाक एक्सचेंज की शुरूआत माना गया।

8.7 भारतीय प्रतिभूति बाजार हेतु SEBI की नियमावली (SEBI,s Regulations of Indian Securities Market)

प्राथमिक बाजार वह बाजार होते है जहां नयी प्रतिभूतियों को कम्पनियों द्वारा विनिमय किया जाता है। यह बाजार सरकारी, अर्धसरकारी निजी तथा कोरपेरेट्रस को नयी प्रतिभूतियों के निर्गमन से अपने सस्थान के लिए पूँजी प्राप्त करने का बेहतर तरीका प्रदान करता है। प्रतिभूति विनिमय नियमों की आवश्यकता मूल रूप से निवेशकों की सूचनाओं सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए है क्योकि विभिन्न बाजारों में प्रतिभूतियों को बेचकर विभिन्न सस्थान अपनी पूंजी सम्बन्ध आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं तथा इन प्रतिभूतियों के मूल्यों की अस्थिरता तथा इसके नियमन के लिए यह आवश्यक था। भारतीय प्रतिभूति बाजारों का नियमन विभिन्न ऐजेन्सीज के द्वारा किया जाता है जैसे डिपार्टमेन्ट आफ इकानोमिक एफेयर (DAE), डिपार्टमेन्ट

आफ कम्पनी अफेयर (DC), भारतीय रिजर्व बैंक (RBI), भारतीय कम्पनी अधिनियम (CL) तथा भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड (SEBI)।

1992 में हुए एक बड़े प्रतिभूति घोटाले (हर्शद मेहता प्रतिभूति घोटाला, 1992) ने भारतीय वित्तीय प्रणाली को झकझोड दिया तथा तत्कालीन नियामक प्रणाली सवालों के घेरे में आ गयी तथा अप्रर्याप्त लगने लगी और आवश्यकता हुई कि एक ऐसी स्वतंत्र नियामक संगठन या प्रणाली का निर्माण किया जाये जो पूँजी बाजार को एक कर फिर निर्विधन कार्यवाही करने की राह पर ले जा सके। इस आवश्यकता की पूर्ति हेतु भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड की स्थापना हुई जो अप्रैल 1988 से ही अस्तित्व में था लेकिन अब इसकों पूँजी बाजार पर नियंत्रण हेतु वैधानिक अधिकारों से तथा स्वतंत्र सस्थान के रूप में फिर से स्थापित किया गया। अब भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड ने प्रयत्न किया कि वह प्रतिभूति विनिमय के पूँजी बाजार पर प्रभावी नियत्रण रख सके और पूँजी बाजार में प्रतिभाग करने वाले प्रत्येक सस्थान तथा व्यक्ति को जिम्मेदारी तथा जबाबदेही के साथ प्रोत्साहित कर सके और यह निश्चित करे कि पूँजी बाजार के खेल का प्रत्येक खिलाड़ी विभिन्न नियमों तथा नियमावली का पालन करना सुनिश्चित करें।

8.8 डिस्क्लोजर आफ डाकूमेन्ट और कोड आफ एडभर्टिजमेन्ट के संदर्भ में बोर्ड की भूमिका (Role of SEBI in Regulating Disclosure of Offer Document and Code of Advertisement)

भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड (डिस्क्लोजर एण्ड इनवेस्टर्स प्रोटेक्शन) निर्देशिका, 2000 के चेप्टर छः आफर डाकूमेन्ट के संदर्भ में स्पष्ट बात करता है कि कम्पनी अधिनियम 1956 के सेड्रयूल II के अनुसार कम्पनी का प्रविवरण में इससे सम्बन्धित सभी बाते सत्य और निश्चित रूप से समाहित होनी चाहिए जिनसे किसी भी तरह का निवेशक प्रतिभूतियों में निवेश से सम्बन्धित निर्णयों को स्वतंत्रता पूर्वक ले सके। यह सब जानकारियां किसी भी निवेशक के लिए अपनी इच्छानुरूप निवेश निर्णय लेने के लिए प्रर्याप्त होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड यह भी सुनिश्चित करता है कि निवेशकों को गलत विज्ञापनों द्वारा मूर्ख न बनाया जाय। भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड के चेप्टर चार (डिस्क्लोजर एण्ड इन्वेस्टर्स प्रोटेक्शन) निर्देशिका 2000 में संस्थानों द्वारा प्रतिभूति विनिमय से सम्बन्धित विभिन्न दिशा निर्देश एवं नियम समाहित हैं। इसमें साफ किया गया है कि विज्ञापन साफ, निश्चित तथा समझ आने वाली भाशा में हों, तकनीकी शब्दावली का अधिक उपयोग से बचना चाहिए, इसके अतिरिक्त इसमें बताया गया है कि गुमराह करने वाला विज्ञापन किसे कहा जायेगा तथा इसके क्या प्रावधान होगें।

8.9 अंशधारियों के हितों के संरक्षण में मध्यस्थों के संदर्भ में बोर्ड की भूमिका (Role of SEBI in Preserving the Shareholders' Interest Through Regulation Over Intermediaries)

भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड का एक मुख्य उद्देश्य है कि दलाल, मर्चेन्ट बैंकर्स और अन्य मध्यस्थों जो पूँजी बाजार में सक्रिय है उनके द्वारा स्वच्छ और प्रभावी

सेवाओं को प्रोत्साहित करना ताकि एक पेशेवर तथा प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण तैयार किया जा सके। किसी भी प्रतिस्पर्धात्मक बाजार में जोखिम स्वाभाविक है तथा निवेशकों का लाभ आवश्यक, इसलिए पूँजी बाजार के मध्यस्थों का प्रबन्धन तथ नियमन किसी बाजार की उन्नति तथा प्रभावी कार्यप्रणाली के लिए आवश्यक है जिसके लिए भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा विभिन्न तरह की नियमावली तैयार कर उसका पालन करवाना सुनिश्चित करता है। निवेशकों तथा निर्गमनकर्ताओं के मध्य बेहतर माहोल तैयार करवाने हेतु पूँजी बाजार के मध्यस्थों की समय–समय पर विभिन्न तरह की कक्षाओं का आयोजन बोर्ड द्वारा किया जाता है।

8.10 सारांश

भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड को स्वतंत्र वैधानिक तथा पहले से अधिकारों के संदर्भ में अधिक शक्तिशाली बनाने की आवश्यकता सन 1992 में हर्शद मेहता प्रतिभूति स्केम के पश्चात पडी । क्योकि इस स्कैम के पश्चात भारतीय पूँजी बाजार पर निवेशकों का भरोसा डगमगाने लगा तथा निवेशकों के बीच एक डर का माहोल पैदा हो गया। निवेशकों के भरोसे को वापस पाने के लिए आवश्यक था कि पूँजी बाजार में एक स्वच्छ कार्य प्रणाली को जन्म दिया जाय, बाजार से सम्बन्ध रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति और संस्था के कार्य, कर्तव्य, जबावदेही तथा जिम्मेदारी निश्चित हो, निवेशकों के हितों का व्यापक रूप से संरक्षण हो। इन सब कार्यो तथा भारतीय प्रतिभूति बाजार को विकसित तथा संवृद्ध करने के लिए केन्द्र सरकार ने 1992 में भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड को अधिकारो से सम्वृद्ध बनाया कि भारतीय पूँजी बाजार में कोई भी ऐसी घटना दोबारा न हो सके जिससे निवेशकों के विश्वास में गिरावट आये। भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा अभिदान सूची, अंशों की न्यूनतम संख्या तथा आवेदन राशि, अतिअनुदान, अनुवृत्ति रिपोर्ट सम्बन्धी सामान्य निर्देशों के अतिरिक्त ऋण पत्रों सम्बन्धी निर्देश, वाणिज्यक पत्र निर्गमन सम्बन्धी निर्देश, अंशों के निर्गमन सम्बन्धी निर्देश, अधिकार अंशों के निर्गमन सम्बन्धी निर्देश, बोनस अंशों के निर्गमन सम्बन्धी निर्देश, पूर्वाधिकर अंशों के आवंटन सम्बन्धी दिशा निर्देश, भारत में स्टाँक विकल्प से सम्बन्धि दिशा निर्देश, कर्मचारी स्टाक विकल्प प्रणाली से सम्बन्धित दिशा निर्देश, बुक बिल्डिंग नियमावली, तथा बोर्ड की विभिन्न भूमिकाओं का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया गया तथा पाठक को भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड के प्रत्येक पहलू के बारे में जानकारी उपलब्ध करायी गयी है।

8.11 शब्दावली

प्राथमिक बाजार (Primary Market): प्राथिमिक बाजार पूँजी बाजार का एक अभिन्न अंग है जिसके द्वारा नयी प्रतिभूतियों के निर्गमन के कार्य को अन्जाम दिया जाता है।

वाणिज्यक पत्र निर्गमन (Issue of Commercial Papers):वाणिज्यक पत्र कार्यशील पूँजी का एक गैर बैंकिग स्त्रोत है । यह ऋण पत्र से बिल्कुल भिन्न है क्योकिं ऋण पत्र पूँजी बाजार का प्रपत्र है तथा वाणिज्यक पत्र मुद्रा बाजार का प्रपत्र होता है।

ऋणपत्र निर्गमन का प्रकटीकरण (Disclosure of Issue of Debentures):ऋण पत्र निर्गमन करने वाली प्रत्येक कम्पनी/उपक्रम को ऋण पत्रों का निर्गमन करते समय

कुछ तथ्यों का प्रकटीकरण आवश्यक है जैसे वर्तमान तथा भावी ऋण–समता अनुपात, आवधिक ऋणों तथा ऋण पत्रों पर देय तिथियों पर ब्याज का भुगतान, वर्तमान ऋणपत्रधारियों का सेवा समबन्धी व्यवहार, वित्तीय संस्था अथवा बैंकर्स द्वारा ट्रस्टी सम्बन्धी व अन्य प्रमाण पत्र आदि।

निर्गमन व्यय (Issue Expenses): निर्गमन व्यय कम्पनी द्वारा वहन होना चाहिए तथा निर्गमन ब्यय में लेन देन कर्ता का शुल्क, श्रेणीयन ऐजेन्सी की फीस, बैंक द्वारा प्रदान की जाने वाली सुविधाओं का शुल्क तथा अन्य सम्बन्धित ब्यय सम्मिलित होता है।

8.12 बोध प्रश्न

बताइये निम्न कथन सत्य है या असत्य ।

1 भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड की स्थापना 1988 में हुई।

2 निवेशकर्ताओं का संरक्षण प्रतिभूतिय विनिमय बोर्ड का उद्देश्य नहीं है।

3 प्रतिभूतियों के निर्गमनकताओं द्वारा उचित व्यहावर करवाना बोर्ड का उद्देश्य है।

4 प्राथामिक बाजार से किसी भी प्रतिभूति का निर्गमन किया जा सकता है।

5 द्वितीयक बाजार मे मध्यस्थों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

6 वाणिज्यक पत्र लम्बी अविघ के ऋण के लेनदेन का प्रपत्र होता हैं।

7 बोनस अंश पहले से विद्यमान अंशधारियो को ही निर्गमित किये जा सकते है।

8 अंश निर्गमन पहले से पर आरक्षण के सम्बन्ध मे बोर्ड (SEBI) द्वारा विशेष निर्देश दिये गये हैं।

9 कर्मचारी स्टाक विकल्प प्रणाली भारत मे अपनायी जाती है।

10 हर्षद मेहता प्रतिभूति धोटाला सन् 1995 मे हुआ था।

8.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

(1) सत्य (2) असत्य (3) सत्य (4) असत्य (5) सत्य (6) असत्य (7) सत्य (8) सत्य (9) सत्य (10) असत्य

8.14 स्वपरख प्रश्न

1. भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड की स्थापना के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।
2. भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड के प्रबन्धन को समझाइये।
3. भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड के कार्यों तथा अधिकारों का विस्तारपूर्वक समझाइये।
4. भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा पूँजी बाजार में सम्पन्न की जाने वाली विभिन्न भूमिकाओं का वर्णन कीजिए।
5. भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा अंशों, बोनस अंशों तथा पूर्वधिकार अंशों के निर्गमन सम्बन्धी महत्वपूर्ण दिशा निर्देशों को स्पष्ट कीजिए।
6. भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा ऋणपत्रों के सम्बन्ध में दिये गये दिशा निर्देशों पर प्रकाश डालिए।
7. निवेशकों के विश्वास को बढ़ाने तथा पूँजी बाजार के विकास के लिए भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड के प्रयासों की व्याख्या कीजिए।

8.15 सन्दर्भ पुस्तकें

- श्रीवास्तव, आर0एम0 और निगम, दिब्या मैनेजमैन्ट ऑफ इंडियन फाइनैन्शियल इंस्टीट्यूशन्स
- विभिन्न इंटरनैट साइट्स।
- जैन, टी0आर0 इंडियन फाइनैन्शियल सिस्टम्स, वी0के0 ग्लोबल पब्लिकेषन्स और खन्ना, ओ0पी0, प्राईवेट लिमिटेट, 2014–15।
- गुप्ता, शान्ति के0 और अग्रवाल, निषा, इंडियन फाइनैन्शियल सिस्टम्स, कल्याणी पब्लिसर्स, 2016।
- प्रतियोगिता दर्पण, जुलाई 2016।
- इंडियन इकोनोमी, जुलाई 2016।
- सेठी, टी0टी0 (2015), मुद्रा बैंकिंग एवं लोक वित, आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिसर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- अग्रवाल, दीपक (2010), मुद्रा बैंकिंग, लोक वित्त एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, हिमालया पब्लिषिंग हाउस मुबई।
- बिशनोई, आर0के0, बीमा के सिद्धांत, साहित्य भवन पब्लिसर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा।

इकाई 9 भारतीय शेयर बाजार एंव पूजी बाजार (Indian Stock Market And Capital Market)

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
9.2 भारतीय पूंजी बाजार का विकास
9.3 भारतीय पूंजी बाजार का ढांचा
    9.3.1 पूंजी बाजार
9.4 वित्तीय प्रपत्र
9.5 पूंजी बाजार का संगठन
    9.5.1 गैर बैंकिग वित्तीय व्यवस्था
    9.5.2 स्टाक बाजार
9.6 प्राथामिक बाजार के कार्य
    9.6.1 नये निर्गमन का प्रबन्ध
    9.6.2 नये निर्गमन का अभिगोपन
    9.6.3 नये निर्गमन का वितरण
9.7 प्राथामिक बाजार की संस्थाये तथा साख पत्र
9.8 गौण बाजार के कार्य
    9.8.1 तरलता प्रदान करना
    9.8.2 भावी निवेश को प्रोत्साहन
9.9 द्वितीयक बाजार की संस्थायें
    9.9.1 शेयर बाजार
    9.9.2 प्रत्यक्ष सौदेबाजी
9.10 स्टाक मार्केट के कार्य या महत्व
9.11 भारत के प्रमुख शेयर बाजार
    9.11.1 राष्टीय शेयर बाजार
    9.11.2 बाम्बे स्टाक एक्सचेज
    9.11.3 मल्टीकामोडिटी एक्सचेज
    9.11.4 ओवर द काउन्टर एक्सचेंज आफ इण्डिया
    9.11.5 ग्रीनेक्स
    9.11.6 रेसीडेक्स
    9.11.7 भारत में वायदा कारोबार
9.12 भारतीय स्टाक एक्सचेंज की कार्यप्रणाली
9.13 सारांश
9.14 शब्दावली
9.15 बोध प्रश्न
9.16 बोध प्रश्नों के उत्तर
9.17 स्वपरख प्रश्न

9.18 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- पूँजी बाजार की अवधारणा तथा इसके विकास पर प्रकाश डाल सकें ।
- पूँजी बाजार के ढाँचे से अवगत हो सकें ।
- पूँजी बाजार में प्रतिभाग करने वाली संस्थाओं को विस्तार से जान सकें ।
- प्राथमिक बाजार तथा गौण बाजार की संस्थाओं को समझ सकें ।
- भारत में स्टाक मार्केट के उद्देश्य कार्य तथा महत्व का वर्णन कर सकें।

9.1 प्रस्तावना

डुगल के शबदों में, "पूँजी बाजार में दीर्घकालीन कोष जैसे ऋणों और शेयरों का लेन देन होता है।" (The capital market deals in long term funds, both debt and equity –Dougal.) पूँजी बाजार से अभिप्राय उस केन्द्र से है जिससे मुद्रा का दीर्घकालीन विनिमय किया जा सकता है। पूँजी बाजार में प्रायः सरकारी, अर्धसरकारी, निजी संस्थान तथा व्यक्ति उधार लेने वाले तथा व्यक्तिगत निवेशकर्ता, संस्थागत निवेशक, स्टॉक एवं संचय, वाणिज्यक बैंक, बीमा कम्पनियाँ इत्यादि उधार देने वाले होते हैं। यह बाजार मूलतः लम्बी अवधि की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। यह भी कहा जा सकता है कि पूँजी बाजार लम्बे अवधि के साख पत्रों का लेन देन करता है।

9.2 भारतीय पूँजी बाजार का विकास (Development of Indian Capital Market)

भारतीय पूँजी बाजार के विकास पर यदि नजर डालें तो स्वतंत्रता से पहले तथा स्वतंत्रता के पश्चात दो भागों में भारतीय पूँजी बाजार का विश्लेषण किया जा सकता है। स्वतंत्रता से पहले भारतीय पूँजी बाजार अस्तित्व में होने के बावजूद अविकसित था और इस अविकसित होने के विभिन्न कारणों में मुख्य थे :

(1) अंग्रेजों की भारतीय पूँजी बाजार पर कम निर्भरता (अंग्रेज भारतीय पूँजी बाजार पर निर्भर रहने की तुलना में अपनी पूँजी सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लंदन बाजार पर अधिक निर्भर रहते थे।)

(2) विशिष्ट वित्तीय तथा गैर बैंकिंग संस्थाओं का अल्प विकास (शासकों की आवश्यकताओं तथा नीतियों के प्रभावीकरण की आवश्यकताओं की पूर्ति भारत से बाहर के संसाधनों से होने के कारण इन संस्थाओं के विकास के बारे में प्रयाप्त नहीं सोचा गया।)

(3) पूँजी बाजार में निवेशकों तथा कम्पनियों की संख्या कम होने के कारण स्टॉक एक्सचेंज का विकास नहीं हो पाया क्योंकि स्टॉक एक्सचेंज में व्यापार की जाने वाली प्रतिभूतियों की संख्या काफी कम होती थी।

(4) इन सब का निष्कर्ष यह था कि वित्तीय संस्थायें तथा निवेशकर्ताओं की अत्यधिक कमी थी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत को स्वयं विकास का मार्ग तलाशना था । अतः पूँजी बाजार के विकास का मार्ग भी प्रशस्त हुआ तथा पूँजी बाजार सही दिशा में विकास के मार्ग पर आगे बढ़ने लगा। भारत में संयुक्त पूँजी कम्पनियों, सरकारी, अर्धसरकारी तथा निजी क्षेत्र की कम्पनियों का विकास तेज गति से होने लगा। विशिष्ट बैंकिंग तथा गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं का देश की प्रगति के लिए निर्माण किया जाने लगा। बचतों को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न प्रकार के प्रोत्साहन और करों में छूट दी जाने लगी। संयुक्त पूँजी कम्पनियों के विकास के साथ प्राथमिक निर्गमन बाजार तथा नये स्टॉक एक्सचेंज स्थापित किये गये। आज भारतीय अधिक निवेश प्रेरक तथा स्टॉक सचेत हो चुके हैं। अगर भारतीय पूँजी बाजार के पिछले दो दशकों पर नजर डाली जाती है तो देखने में आता है कि पूँजी बाजार की कार्यप्रणाली में विविधता आने के साथ–साथ पूँजी बाजार में लेन–देन के मूल्य में तेजी से वृद्धि आयी है। नये वित्तीय प्रपत्र जैसे पूर्ण व आंशिक परिवर्तनीय डिवेन्चर, वाणिज्य प्रपत्र आदि का चलन बढ़ने के साथ नयी वित्तीय संस्थयें, म्यूचुअल फण्ड, मर्चेण्ट बैंकर, साहस पूँजी कम्पनियाँ तथा विकास बैंकों की स्थापना भी हुई है। इन सब के साथ यह कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय पूँजी बाजार निरन्तर विकास कर रहा है।

9.3. भारतीय पूँजी बाजार का ढाँचा (Structure of Indian Capital Market)

भारतीय पूँजी बाजार मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन कोषों में व्यवहार करते हैं। भारतीय पूँजी बाजार के ढाँचे में शामिल होते हैं :

(i) अंग संस्थाएँ और

(ii) वित्तीय यंत्र/प्रपत्र निम्नलिखित चार्ट पूँजी बाजार के ढाँचे को व्यक्त करता है।

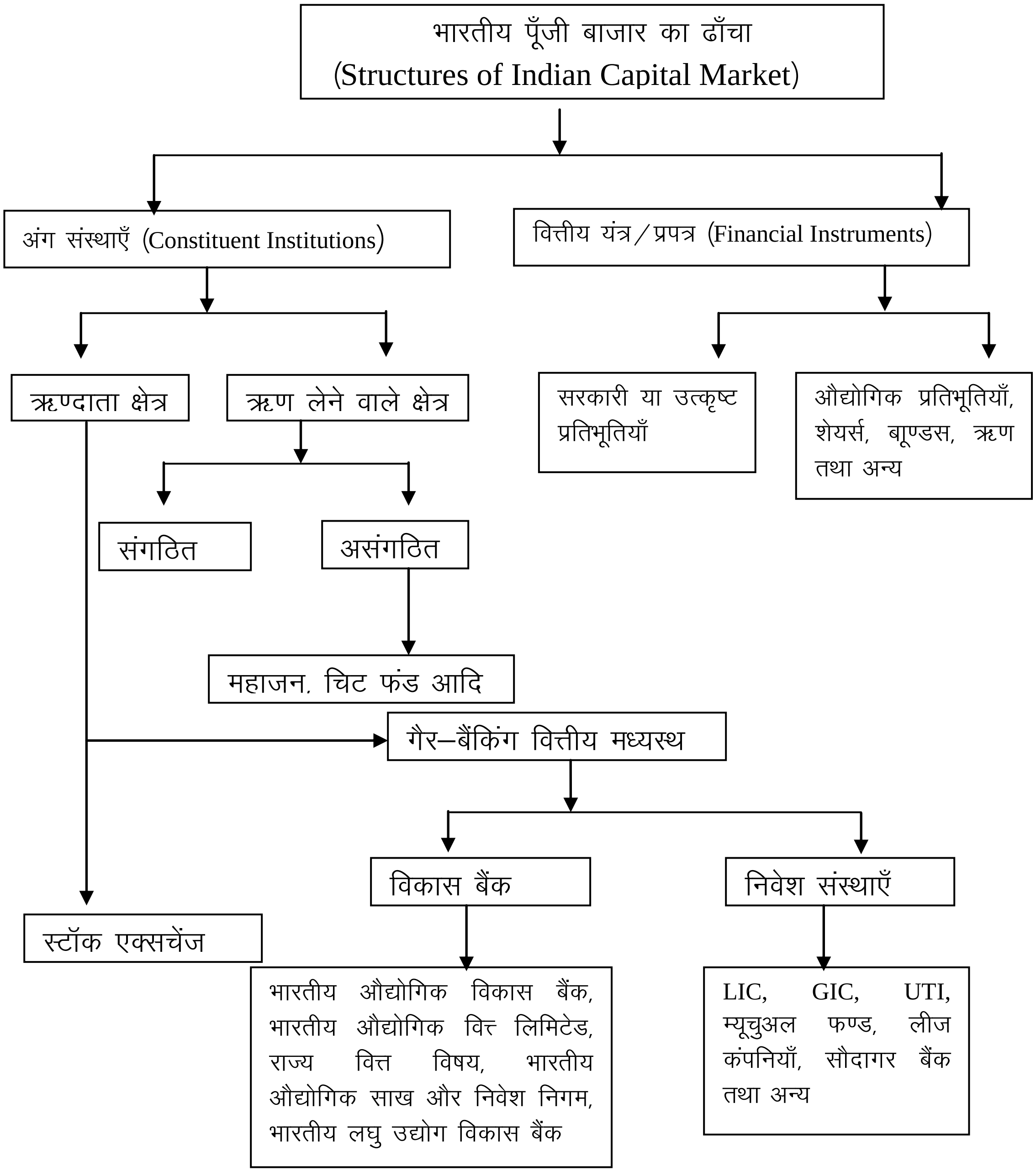

पूँजी बाजार के अंग
(Constituents of capital market)

भारतीय पूँजी बाजार के अंगों को मुख्य रूप से अध्ययन की दृष्टि से दो भागों में बाँटा जा सकता है :

(अ) ऋणदाता (Lender's sector),

(ब) ऋण लेने वाला (Borrower's sector)

पूँजी बाजार के अंग (Constituents of capital market)

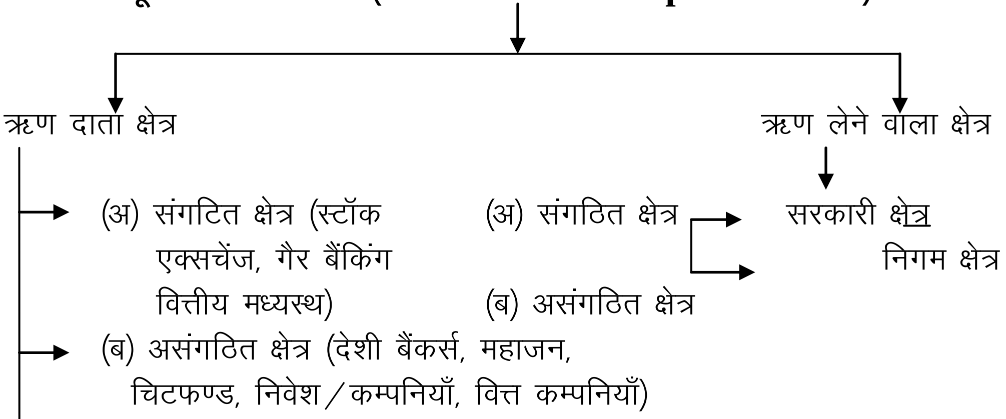

9.3.1 पूँजी बाजार (Capital Market)

पूँजी बाजार मूलतः दो वर्गों द्वारा निर्धारित किया जाता है जिसमें ऋणदाता क्षेत्र तथा ऋण लेने वाला क्षेत्र मुख्य है। ऋणदाता क्षेत्र (Lender's sector) में पूँजी की पूर्ति की जाती है और ऋणी क्षेत्र (Borrower's sector) में पूँजी की मांग की जाती है। दोनों ही क्षेत्रों पूँजी की पूर्ति की माँग किनके द्वारा की जाती है इसका विस्तृत अध्ययन पूँजी बाजार को समझने के लिए अतिआवश्यक है।

ऋण्दाता क्षेत्र (Lender's Sector)

इस क्षेत्र में पूँजी की पूर्ति की जाती है तथा इस क्षेत्र में व्यक्ति तथा संस्थायें दोनों प्रतिभाग करते हैं इनके द्वारा दीर्घकालीन ऋण आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है इसको दो भागों में विभाजित किया जाता है।

(अ) संगठित क्षेत्र (Organised Sector)

ब) असंगठित क्षेत्र (Unorganised Sector)

(अ) संगठित क्षेत्र (Organised Sector)

पूँजी बाजार का ऋण्दाता क्षेत्र का संगठित ढाँचा निम्नलिखित संस्थाओं से बनता है :

(1) स्टाक एक्सचेंज (Stock exchange)

निगमित प्रतिभूजियों में सीधे व्यापार स्टाक एक्सचेंज द्वारा किया जाता है जैसे शेयर, डिवेन्चर, बाण्ड तथा सरकारी प्रतिभूतियाँ। यह अंग पूँजी बाजार का अत्यधिक महत्वपूर्ण घटक है। इसमें निगमित प्रतिभूति बाजार तथा सरकारी प्रतिभूति बाजार सम्मिलित होते हैं। निर्गमित प्रतिभूतियों का वर्गीकरण पुनः प्राथमिक बाजार तथा गौण बाजार के रूप में किया जाता है। प्राथमिक बाजार नये प्रतिभूतियों के निर्गमन में तथा गौण बाजार पुरानी निगमित प्रतिभूतियों, शेयर, डिवेन्चर तथा बाण्ड आदि का क्रय–विक्रय करता है।

(2) गैर बैंकिंग वित्तीय संस्था में (Non Banking Financial Intermederies)गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थायें वह मध्यस्थ होते हैं जो बैंकों की भाँति मांग जमा से जमायें स्वीकार नहीं करते हं बल्कि लोगों/जनता की जमा/बचतों को एकत्रित करते हैं और विभिन्न पक्षों को उधार देते हैं। यह मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं।

(a) विकास बैंक (Deveopment banks)

(b) निवेश संस्थायें (Investment institutions)

(a) विकास बैंक (Deveopment banks)

यह विशिष्ट बैंकिंग संस्थायें होती हैं लिसका मुख्य कार्य मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन ऋण प्रदान करना है। भारतीय औद्योगिक वित्त निगम लिमिटेड (IFCI), भारतीय औद्योगिक साख और निवेश निगम लिमिटेड (ICICI), भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (IDBI), भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (SIDBI), भारतीय औद्योगिक पुनर्निमाण बैंक (IRBI), राज्य वित्त निगम (SFC) तथा राज्य औद्योगिक विकास निगम (SIDC's) को विशेषतः इसमें सम्मिलित किया जाता है।

(b) निवेश संस्थायें (Investment Institutions)

निवेश संस्थायें वह संस्थायें होती हैं जो विभिन्न प्रकार की कम्पनियों के प्रतिभूतियों में बढ़ती निवेशकर्ताओं की निवेश सुविधाओं को उपलब्ध कराते हैं। भारतीय निवेश संस्थाओं में मुख्य रूप से भारतीय यूनिट ट्रस्ट (UTI), भारतीय सामान्य बीमा निगम (GIC), भारतीय जीवन बीमा निगम (LIC), मर्चेन्ट बैंकर्स, म्यूचुअल फण्डस, लीज कम्पनियाँ और साहस पूँजी वित्त कम्पनियों को सम्मिलित किया जाता है।

(ब) असंगठित क्षेत्र (Unorganised Sector)

असंगठित क्षेत्र में मुख्य भूमिका निभाने वाले मुख्य रूप से हैं, देशी बैंक, महाजन, चिट फण्ड कम्पनियाँ तथा ऐसी ही अन्य संस्थायें जैसे वित्त कम्पनियाँ, भाड़ा खरीद कम्पनियाँ इत्यादि हैं। पूँजी बाजार पर असंगठित क्षेत्र का अप्रत्यक्ष तथा बहुत कम प्रभाव पड़ता है।

ऋण लेने वाला क्षेत्र (Borrower's Sector)

उधार लेने वाले (मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन ऋण) इस क्षेत्र में सम्मिलित होते हैं। इस क्षेत्र के व्यक्तियों या संस्थाओं द्वारा पूँजी की दीर्घकालीन तथा मध्यकालीन माँग का निर्माण किया जाता है। इस प्रकार की पूँजी माँग मुख्यतः निम्नलिखित क्षेत्रों में की जाती है:—

1. निगम क्षेत्र (Corporate Sector)

निगम क्षेत्र में निजी निगम क्षेत्र तथा सार्वजनिक निगम क्षेत्र दोनों को सम्मिलित किया जाता है तथा निजी निगम तथा सरकारी निगम क्षेत्रों से उनकी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु दीर्घकालीन पूँजी की आवश्यकता होती है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति सामान्यतः विकास बैंकों तथा निवेश संस्थाओं से उधार लेकर, शेयर तथा डिवेन्चर बेचकर तथा सामान्य जनता से सामयिक जमायें एकत्रित कर पूर्ण की जाती हैं।

2. सरकारी क्षेत्र (Government Sector)

केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकार दोनों को सम्मिलित कर बनता है। यह क्षेत्र, भारत में सरकार द्वारा विकासीय तथा गैर विकासीय क्रियाओं के विकास तथा विस्तार को समयबद्ध सम्पन्न करने के लिए सरकार द्वारा दीर्घकालीन पूँजी कोषों की माँग की जाती है जैसे क्षेत्र यातायात, सड़क यातायात, बिजली, पाली, शान्ति निगम जैसे

सरकारी विभागीय उद्यम पूँजी बाजार से अपनी योजनाओं को पूर्ण करने के लिए पूँजी बाजार को कोषों की समय–समय पर माँग करते हैं।

9.4 वित्तीय प्रपत्र (Financial Instruments)

पूँजी बाजार में जिनके माध्यम से पूँजी का प्रवाह होता है उन्हें वित्तीय प्रपत्र कहा जाता है। इन्हें मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया जाता है।

(1) सरकारी प्रतिभूतियाँ (Government Securities)

(2) निगम प्रतिभूतियाँ (Corporate Securities)

(1) सरकारी प्रतिभूतियाँ (Government Securities)

समय–समय पर केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों द्वारा विभिन्न प्रकार के वित्तीय प्रपत्रों का निर्गमन मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन ऋणों की प्राप्ति के लिए किया जाता है, जिसमें मुख्य हैं : राष्ट्रीय बचत प्रमाण पत्र (NSC), रेलवे बॉण्ड, विशेष वाहक बाण्ड, गोल्ड बाण्ड आदि। सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश निवेशकर्ता को कई प्रकार से कर छूट प्रदान करने के साथ उच्च कोटि की सुरक्षा प्रदान करता है, परन्तु इन वित्तीय प्रपत्रों पर ब्याज अपेक्षाकृत कम होता है।

(2) निगम प्रतिभूतियाँ (Corporate Securities)

विभिन्न कम्पनियों (सरकारी, निजी तथा अर्धसरकारी) द्वारा अपनी मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन पूँजी की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु निम्नांकित प्रतिभूतियाँ निर्गमित की जाती हैं :

(a) शेयर (Shares)

संयुक्त पूँजी कम्पनियों को अपनी लम्बी अवधि की पूँजी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए या बची पूँजी के निर्माण के लिए अंशों या शेयरों के निर्गमन का अधिकार होता है। कम्पनी अधिनियम 1956 की विभिन्न धाराओं के अनुसार संयुक्त पूँजी वाली कम्पनियाँ मुख्यतः दो प्रकार के अंशों का निर्गमन कर सकती है

(1) समता अंश (Equity Shares) (2) पूर्वाधिकार अंश (Proferential shares)।

समता अंशधारी कम्पनी के वास्तविक स्वामी होते हैं जबकि पूर्वाधिकार अंशधारी सम्ता अधिकारियों की तुलना में विभिन्न पूर्वाधिकारों पर अधिकार रखते हैं। पूर्वाधिकार अंशों को पुनः निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है :

(i) परिवर्तनीय तथा अपरिवर्तनीय पूर्वाधिकार अंश

(ii) संचयी तथा असंचयी पूर्वाधिकार अंश

(iii) शोधनीय तथा अशोधनीय पूर्वाधिकार अंश

अंशधारीयों को लाभ तभी प्राप्त होता है जब कम्पनी या निगम लाभ कमाता है। लगातार लाभ अर्जित करने वाले कम्पनीयाँ निगमों के अंशों के मूल्य बढ़ते हैं तथा हानि होने वाले कम्पनियों या निगमों के अंशों के मूल्य घटते हैं। नये अंशों के निर्गमन प्राथमिक बाजार से तथा इसके पश्चात इनका क्रय–विक्रय गौण बाजार से किया जाता है।

(b) ऋणपत्र (Debentures)

ऋणपत्र जैसा कि इसके नाम से ज्ञात होता है कि यह एक ऐसा वित्तीय प्रपत्र है जो उस व्यक्ति या संस्था को निर्गत किया जाता है जिसके द्वारा पूर्व निर्धारित ब्याज तथा अन्य शर्तों पर कम्पनी या निगम को निश्चितकालीन ऋण दिया गया है। ऋणपत्र धारा को ब्याज की एक निश्चित दर से भुगतान किया जाता है, यह इस बात पर निर्भर नहीं करता है कि कम्पनी या निगम द्वारा लाभ कमाया गया या नहीं। कुछ कम्पनी या निगमों द्वारा अपने ऋण पत्र धारकों को एक विशेष अधिकार भी दिया जा सकता है जिसके द्वारा ऋणपत्र धारी एक निश्चित अवधि के बाद ऋणपत्र को समता अंशों में परिवर्तित कर सकता है।

(c) सार्वजनिक जमायें तथा संस्थओ से ऋण (Public Deposits and Loans from Institution)

कम्पनियाँ तथा निगम अपनी दीर्घकालीन पूँजी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जनता से सावधिक जमायें स्वीकार कर सकते हैं। इसके साथ ही निगम भारतीय औद्योगिक बैंक जैसी विशिष्ट संस्थाओं से भी दीर्घकालीन ऋण लेकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं।

9.5 पूँजी बाजारों का संगठन (Organisation of Capital Market)

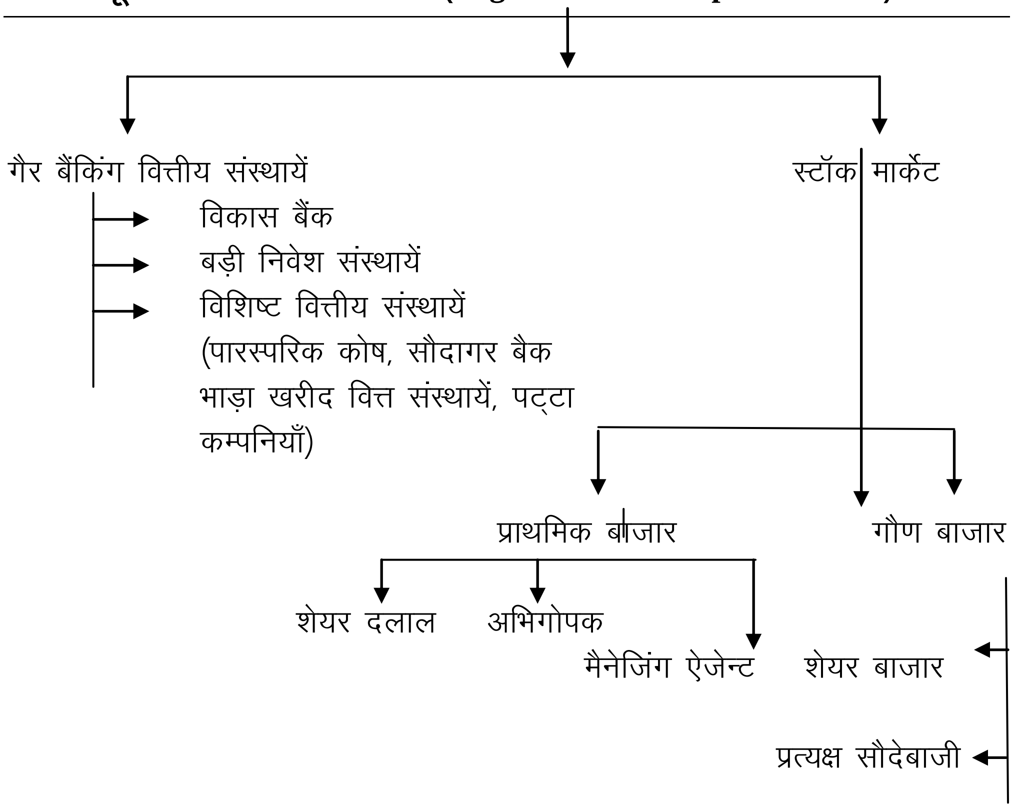

पूँजी बाजार के संगठन से तात्पर्य उन सब संस्थाओं के क्रम तथा कार्यों से है जो पूँजी बाजार में सम्मिलित होती हैं, संगठन के रूप में उपरोक्त वर्गीकरण द्वारा स्पष्ट करने की कोशिश की गयी है कि किन–किन संस्थाओं द्वारा पूँजी बाजार के संगठन को पूर्ण रूप दिया जाता है।

9.5.1 गैर–बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थ (Non Banking Financial Intermediaries)

गुरले (Gurley) तथा शाँ (Shaw) द्वारा गैर बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थों की अवधारणा को लोकप्रिय बनाकर पूँजी बाजार की कार्यप्रणाली को तुलनात्मक रूप से आसान बनाने का कार्य किया गया। व्यापारिक बैंकों के विपरीत गैर बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थ वह संस्थायें होती हैं जो जनता से जमा स्वीकार नहीं करती हैं बल्कि जनता की बचतों को इकट्ठा करती हैं और निवेशकर्ताओं को उधार देने का प्रबन्ध करती हैं। इनका नाम मध्यस्थ इसलिए रखा गया क्योंकि ये संस्थायें किसी भी अर्थव्यवस्था में बचतकर्ताओं और निवेशकर्ताओं के बीच मध्यस्था कर पूँजी की माँग तथा पूर्ति में सामन्जस्य बनाने का कार्य करती हैं तथा बैंकों की तरह बैंक के सभी कार्य नहीं करती हैं। जैसाकि पहले बताया जा चुका है कि वित्तीय परिसम्पत्तियों को प्राथमिक प्रतिभूति तथा द्वितीयक प्रतिभूति दो शीर्षकों में विभाजित किया जाता है। प्राथमिक प्रतिभूति सीधे अन्तिम निवेशकर्ता द्वारा अन्तिम बचतकर्ता को जारी की जाती है; इसमें शेयर तथा बंधक सम्मिलित होते हैं। द्वितीयक प्रतिभूतियाँ वह दायित्व हैं जो मध्यस्थों द्वारा अन्तिम बचतकर्ताओं को उनकी बचतों के बदले में जारी की जाती हैं। यह अन्तिम निवेशकर्ता तथा अन्तिम बचतकर्ता के बीच दलाल/मध्यस्थ का कार्य करते हैं। इनमें विभिन्न वित्तीय संस्थायें सम्मिलित हैं:

(i) विकास बैंक (Developments Banks)

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (IDBI), राज्य वित्त निगम (State Financial Corporation), भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Financial Corporation of India) इत्यादि इसमें सम्मिलित होते हैं।

(ii) निवेश संस्थायें (Investment Institutions)

इसमें भारतीय जीवन बीमा निगम (Life Insurance Corporation of India), सामान्य बीमा निगम (General Insurance Corporation), भारतीय यूनिट ट्रस्ट (Unit Trust of India) इत्यादि को शामिल करते हैं।

(iii) विशिष्ट वित्तीय संस्थायें (Special Financial Institutions)

विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं का निर्माण विशेष कार्यों को पूर्ण करने के उद्देश्य से किया जाता ह। इसमें निम्नांकित संस्थाओं को सम्मिलित किया जाता है:

(a) सौदागर बैंक (Merchant Banking)

सौदागर बैंकों का मुख्य कार्य कम्पनियों तथा निगमों के नये निर्गमनों के प्रबन्धन का है। यह बैंक कम्पनी तथा निगमों के अंशों के मूल, अभिगोपन तथा वितरण सम्बन्धी तीनों कार्यों का प्रावधान करते हैं। प्रारम्भ में व्यापारिक बैंकों द्वारा इन कार्यों के लिए सौदागर बैंकिंग विभाग खोला जाता था लेकिन संयुक्त पूँजी कम्पनियों तथा निगमों के विकसित होने के साथ सौदागर बैंकों को अपना अलग अस्तित्व में आन पड़ा। भारत में निजी क्षेत्र में भी कुछ विदेशी कम्पनियों के साथमिलकर सौदागर बैंकों का निर्माण किया है। भारत में सौदागर बैंकों के मुख्य कार्य हैं :

(1) कम्पनियों तथा निगमों के नये निर्गमनों का प्रबन्ध करना जिसमें हामी भरना भी सम्मिलित है।

(2) ग्राहकों को कोष बढ़ाने तथा अन्य वित्तीय पहलुओं के संदर्भ में परमर्श तथा विशेषज्ञों सलाह प्रदान करना।

भारतीय प्रतिभूति विनियम बोर्ड (SEBI) द्वारा सौदागर बैंकों का नियमन किया जाता है। भारतीय व्यापारिक बैंकों पदाधिकारियों की सहायक संस्थाओं के रूप में कार्य कर रहे सौदागर बैंकों पर भारतीय रिजर्व बैंक निगरानी रखता है।

(b) पारस्परिक कोष (Mutual Funds)

अपनी स्टॉक को बचतकर्ताओं को बेचकर, आय प्राप्त कर उस आय से विभिन्न प्रचलित कम्पनियों की प्रतिभूतियाँ खरीदने का कार्य पारस्परिक कोषों द्वारा किया जाता है। कम्पनियों की प्रतिभूतियों से प्राप्त होने वाली आय का एक भाग अपने पास लाभ के रूप में रखकर, इनके स्टॉक में निवेशकर्ताओं को भुगतान किया जात है। बचतकर्ताओं के बचत को विशेषज्ञों की सलाह से लाभ वाली प्रतिभूतियों में निवेश कर बचतकर्ताओं के भुगतान के पश्चात लाभ कमाना पारस्परिक कोषों का मुख्य कार्य है। अनेक सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र व बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं ने पारस्परिक कोष खोले हैं। वर्तमान में भारत में पारस्परिक कोषों का नियमन तथा देखभाल भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड (SEBI) द्वारा किया जाता है।

(c) भाड़ा खरीद वित्त संस्थायें (Hire Purchase Finance Institution)

जिन वस्तुओं का भुगतान किस्तों में होता है उनकी सुपदर्गी करना भाड़ा खरीद वित्त संस्थाओं का कार्य होता है। किस्त योजना की स्वीकृति में जिस साख का योगदान होता है, वह साख इन संस्थाओं द्वारा प्रदान की जाती है। छोटे किसानों, छोटे विनियोगकर्ताओं और परिवहनकर्ताओं की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भाड़ा खरीद वित्त संस्थाओं की अधिक आवश्यकता होती है। यह संस्थायें भाड़ा खरीद प्रणाली पर उपभोक्ताओं को वस्तुऐं खरीदने में सहायता प्रदान करती हैं। आजकल भारत में भाड़ा खरीद प्रणाली पर उपभोक्ताओं को वस्तुऐं खरीदने में सहायता प्रदान करती हैं। आजकल भारत में भाड़ा खरीद प्रणाली में साख तथा वित्त की सुविधा अग्रलिखित संस्थाओं द्वारा उपलब्ध करायी जा रही हैं :

(1) राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम

(2) व्यापारिक बैंक

(3) राज्य वित्त निगम।

इन संस्थाओं का स्वामित्व व्यक्तियों तथा साझेदारी द्वारा किया जाता है तथा अन्य प्रदेशों की तुलना में दक्षिणी प्रदेशों की इन संस्थाओं का चलन अधिक है। भारत में बैंकिंग आयोग के अनुसार इन संस्थाओं के लिए लाइसेन्स बनवाना अनिवार्य किया जाना चाहिए। इन संस्थाओं को संस्थागत बना देना चाहिए तथा व्यापारिक बैंकों को इस क्षेत्र में प्रवेश की अनुमति देनी चाहिए।

(d) पट्टा कम्पनियाँ (Leasing Companies)

पट्टा एक किराया प्रणली है जिसका आगमन भारत में ज्यादा पुराना नहीं है। संयंत्रों को पट्टे पर औद्योगिक कम्पनी को देना तथा इसका प्रबन्धन करना ही पट्टा कम्पनियों का मुख्य कार्य है। पूँजी संयत्र अत्यधिक समय तक उपयोग किया जाता है तथा अत्यधिक कीमत का होता है इसलिए पूँजी संयत्र का उपयोग करने वाला इसको स्वयं नहीं खरीदना चाहता है, केवल संयत्र रखने वाली पट्टा कम्पनी को किराया देकर एक निश्चित समय के पट्टे के द्वारा इसका उपयोग करना चाहता है। भारत में

पट्टा व्यवसाय का संचालन अधिकतर सीमित कम्पनियों द्वारा किया जाता है। पट्टा व्यवसाय में पट्टेदार को मुख्य लाभ यह होता है कि उसको पूँजी संयत्र खरीदने के लिए भारी रकम खर्च नहीं करनी पड़ती है।

9.5.2 स्टॉक बाजार (Stock Exchange)

पूँजी बाजार का एक महत्वपूर्ण अंग स्टॉक बाजार है। स्टाक बाजार में सरकारी, अर्धसरकारी तथा निजी कम्पनियों के निर्गमित प्रतिभूतियों से सम्बन्धित विभिन्न बाजार सम्मिलित होते हैं। निर्गमित प्रतिभूतियों से तात्पर्य उन प्रतिभूतियों से है जो निर्गमित क्षेत्र में जनता से दीर्घकालीन पूँजी प्राप्त करने के लिए निर्गमित की जाती हैं। निर्गमित प्रतिभूतियों का बाजार दो प्रकार से विभाजित होता है :

(अ) प्राथमिक बाजार (Primary market)

(ब) द्वितीयक बाजार (Secondary market)

(अ) प्राथमिक बाजार (Primary market)

प्राथमिक बाजार को नये निर्गमन बाजार के नाम से भी पूकारा जाता है और नाम से ही स्पष्ट होता है जिस बाजार से नयी परिसम्पत्तियों/प्रतिभूतियों को निर्गमित किया जाता है उस बाजार को प्राथमिक बाजार कहते हैं। नये अंशों, पूर्वाधिकार अंशों तथा डिवेन्चरों की जनता तथा संस्थाओं को बिक्री प्राथमिक बाजार द्वारा की जाती है। प्राथमिक बाजार का उद्देश्य उद्यमों के लिए प्राथमिक प्रतिभूतियों के निर्गमन से पूँजी प्राप्त करना होता है। नये तथा पुराने उद्यमों द्वारा इस तरह की प्रतिभूतियाँ निर्गमित की जाती हैं। पुरान उद्यमों द्वारा अपने व्यवसाय के विस्तार के लिए समय–समय पर नये प्रकार के अंशों तथा ऋणपत्रों का निर्गमन किया जाता है जिसकी प्रक्रिया प्राथमिक बाजारों द्वारा पूरी की जाती है। यह उद्यम सरकारी, अर्थव्यवस्था तथा निजी के साथ–साथ सार्वजनिक (Public) तथा निजी (Private Limited) हो सकते हैं।

(ब) गौण/द्वितीयक बाजार (Secondary market)

गौण तथा द्वितीयक बाजार स्टॉक मार्केट का वह भाग है जिसमें पुराने अंशों तथा प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय किया जाता है। विभिन्न प्रकार के उद्यमों को इस बाजार से अपनी प्रतिभूतियों के क्रय–विक्रय कावाने की सुविधायें प्राप्त होती हैं।

9.6 प्राथमिक बाजार के कार्य (Functions Of Primary Market)

प्राथमिक बाजार का मुख्य कार्य किसी उद्यम के नये दृश्य या नये प्रतिभूतियों के निर्गमन प्रक्रिया की सफलतापूर्वक सम्पन्न कर उद्यम के लिए दीर्घकालीन पूँजी उपलब्ध कराना है। इस प्रक्रिया में मुख्यतः तीन तरह के कार्य किये जाते हैं:

9.6.1 नये निर्गमन का प्रबन्ध (Organisation of New Issue)

इस चरण का सबसे मुश्किल तथा आवश्यक कार्य है कि तथ्यों की जाँच कर विभिन्न प्रश्नों के उत्तर ढूढ़ना, जैसे नयी कम्पनी की लाभदायकता क्या होगी, उद्यम ने भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड के नियमों के पालन की सत्यता की जाँच, निवेशकों के नयी कम्पनी की प्रतिभूतियों की खरीद में विश्वास इत्यादि। इस सब प्रश्नों में सबसे मुश्किल है नयी कम्पनी की लाभप्रदता की जाँच, क्योंकि कम्पनी ने अभी तक कोई कार्य/व्यवसाय नहीं किया है, इसलिए इसका अध्ययन रिकार्डस से नहीं लगाया जा सकता है। नामी कम्पनी की लाभप्रदता का अनुमान लगाने के लिए उस कम्पनी

की तकनीकी, उसका व्यवसाय तथा साधनों के माध्यमों से लगाया जा सकता है। अन्य प्रश्नों के उत्तर विशेषज्ञों की जाँच द्वारा प्राप्त किया जाता है। साधनों का अनुमान लगाने में मानवीय तथा अमानवीय दोनों प्रकार के साधनों की समीक्षा की जाती है। अमानवीय साधनों से भूमि, पूँजी, ऊर्जा, जल इत्यादि हैं तथा मानवीय साधनों में श्रम, प्रबन्धकों की योग्यता के साथ–साथ व्यवसाय के प्रकार की भी समीक्षा की जानी चाहिए। नये अंशों तथा प्रतिभूतियों के निर्गमन से पहले यह बात आवश्यक जाँच लेनी चाहिए कि कम्पनी का वित्तीय ढाँचा पर्याप्त है या नहीं। वित्तीय ढाँचों के अन्तर्गत कम्पनी स्थापित करने वालों (Promoters) की अंश पूँजी, बेचे जाने वाले अंशों का मूल्य, अल्पकालीन कोष, तरलता अनुपात, ऋण अंश अनुपात तथा विदेशी विनिमय की आवश्यकता आदि का सम्मिलित किया जाता है। कम्पनी को स्थापित करने तथा उसके द्वारा व्यापार प्रारम्भ करने में कितना समय अन्तराल है इसकी भी जाँच की जानी चाहिए। कुल मिलाकर नयी कम्पनी के इस प्रोजेक्ट की अनुमानित लागत तथा इससे मिलने वाले अनुमानित लाभ के आधार पर ही कम्पनी के प्रबन्धन द्वारा भविष्य में कम्पनी के लाभप्रदता का अनुमान लगाया जाता है।

9.6.2 नये निर्गमन का अभिगोपन (Understanding of New Issue)

अभिगोपक शब्द का प्रयोग व्यक्तियों के उस समूह तथा संस्था के लिए किया जाता है जो कम्पनी द्वारा किये जाने वाले नये निर्गमन के निर्गमित होने की गारन्टी कम्पनी को देता है। नये निर्गमन की बिक्री के लिए उठाया गया दूसरा कदम अभिगोपन है। जैसा कि इससे पहले व्याख्या की जा चुकी है कि नयी कम्पनी द्वारा नया निर्गमन यदि किया जाता है या पुरानी कम्पनी द्वारा नया निर्गमन किया जाता है तो कम्पनी को इस बात की निश्चितता नहीं होती है कि खरीददारों द्वारा सभी निर्गमित प्रतिभूतियाँ खरीद ली जायेंगी। इस अनिश्चितता से मुक्ति दिलाते हैं अभिगोपक जो कम्पनी से निर्धारित/निश्चित मिलने वाले कीमत/कमीशन पर निर्गमित की जाने वाली प्रतिभूतियों को खरीदने/बेचने की गारन्टी देते हैं। अभिगोपक इन प्रतिभूतियों को अपने स्वयं के लिए खरीदने, जनता में बेचने तथा दोनों के लिए खरीदने की गारन्टी देते हैं। यदि अभिगोपकों द्वारा जितनी प्रतिभूतियों के निर्गमन की गारन्टी कम्पनी को दी है उतनी प्रतिभूतियों को वह जनता को बेचने में असमर्थ रहता है तो शेष प्रतिभूतियों को अभिगोपकों द्वारा स्वतः खरीदा जायेगा। अभिगोपन का यह कार्य सामान्यतया वित्तीय संस्थाओं के एक समूह द्वारा किया जाता है तथा इस कार्य के लिए अभिगोपकों को पूर्वनिर्धारित कमीशन कम्पनी द्वारा दिया जाता है।

9.6.3 नये निर्गमन का वितरण (Distribution of New Issue)

नये निर्गमन के वितरण से यहाँ तात्पर्य है नये प्रतिभूतियों को जनता को बेचना तथा शेयरों को जनता को बेचने के लिए निम्नांकित तीन कदम उठाये जाते हैं:

(1) जनता को प्रविवरण जारी करना (Issue of Prosepectus to the Public)

प्रतिवरण एक लिखित दस्तावेज होता है जो प्रतिभूति निर्गमित करने वाली कम्पनी/निगम द्वारा जनता को प्रोत्साहित तथा सूचना प्रदान करने के लिए निर्गत किया जाता है। किसी भी उद्यम द्वारा जनता को अपनी नयी प्रतिभूतियाँ बेचने के लिए प्रविवरण जारी करना आवश्यक है यह कम्पनी अधिनियम 1956 के आधीन भी अनिवार्य

है। प्रविवरण में कम्पनी के बारे में विभिन्न सूचनाओं के अतिरिक्त अंशों के निर्गमन से सम्बन्धित सूचनायें विस्तारपूर्वक होती हैं। इसके द्वारा कम्पनी की प्रतिभूतियों को खरीदने के लिए जनता को आमन्त्रित किया जाता है। प्रविवरण के माध्यम से ही कम्पनी निर्गमन के अभिगोपकों के बारे में जनता को जानकारी प्रदान करती है।

(2) **निजी प्रयास (Private Placement/Sale)** जनता में नये प्रतिभूतियों को बेचने के अतिरिक्त इन्हें बेचने का दूसरा तरीका है कि नये निर्गमन को निर्गमन गृहों (Issue Houses) या बड़ी वित्तीय संस्थाओं/संस्था को बेच दिया जाय। इसके पश्चात यह निर्गमन गृह तथा वित्तीय संस्थायें इन प्रतिभूतियों को अपने ग्राहकों को बेच देते हैं।

(3) **स्वत्व निर्गमन (Right Issue)** इस तरह का निर्गमन नयी कम्पनी द्वारा नहीं किया जा सकता है यह प्रक्रिया केवल पुरानी कम्पनी द्वारा ही अपनाया जा सकता है। इसमें नये निर्गमन को पुरानी कम्पनी द्वारा अपने मौजूदा अंशधारियों को पत्र भेजकर उन्हें उनके अंशों के अनुपात में नये अंश खरीदने का प्रस्ताव देती है। इस प्रस्ताव की विशेषता यह है कि मौजूदा अंशधारियों को कम्पनी द्वारा दिया गया, यह अंश खरीदने का प्रस्ताव बाजार मूल्य से कम मूल्य पर दिया जाता है। इसलिए स्वत्व निर्गमन केवल पुरानी कम्पनियाँ ही कर सकती हैं।

9.7 प्राथमिक बाजार की संस्थायें तथा साख पत्र (Institutions And Instruments of Primary Market)

शेयर दलाल (Stock Brokers) तथा अभिगोपों (underwriters) जैसी विशिष्ट संस्थायें प्राथमिक बाजार के अन्तर्गत कार्य करती हैं। स्वतंत्रता से पूर्व प्राथमिक बाजार में मुख्य संस्था मैनेजिंग ऐजेन्ट (Managing Agent) होता था जो प्राथमिक बाजार के निर्गमनों का सम्पूर्ण प्रबन्धन करता था लेकिन स्वतंत्रता से पूर्व प्राथमिक बाजार में प्रतिभाग करने वाले कम्पनियों की संख्या भी सीमित होती थी। स्वतंत्रता के पश्चात भारत ने इस क्षेत्र में तेजी से विकास करते हुए नये–नये कम्पनियों या उद्यमों के निर्माण से प्राथमिक बाजार की गतिविधियों को नये संस्थानों द्वारा नया रूप दिया गया। 1955 में स्थापित "भारतीय औद्योगिक साख एवं निवेश निगम" प्राथमिक बाजार की पहली विशिष्ट संस्था थी, इसके पश्चात कई अन्य संस्थाओं ने प्राथमिक बाजार में कदम रखा जिसमें मुख्य हैंः भारतीय जीवन बीमा निगम, भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक तथा युनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया, व्यापारिक बैंक, सामान्य बीमा निगम तथा शेयर दलाल।

अंश, ऋणपत्र, पूर्वाधिकार अंश प्राथमिक बाजार के मुख्य साख पत्र हैं। पूर्वाधिकार अंशों के विभिन्न प्रकार प्राथमिक बाजार में निर्गमित किये जाते हैं जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है। पिछले कुछ समय से भारतीय प्राथमिक बाजार में कुछ नये प्रकार के साख पत्र निर्गमित किये जा रहे हैं, जिनमें मुख्य हैंः पूर्णतः परिवर्तनीय संचयी पूर्वाधिकार अंश, पूर्णतः परिवर्तनीय ऋणपत्र, शून्य ब्याज पर पूर्णतः परिवर्तनीय ऋणपत्र, सिक्योर्ड प्रिमियम नोट्स इत्यादि।

9.8 गौण बाजार के कार्य (Functions of Secondary Market)

द्वितीयक/गौण बाजार के कार्यों को मुख्यतः दो भागों मे विभाजित किया जा सकता है

9.8.1 तरलता प्रदान करना

9.8.2 नये निवेश को प्रोत्साहन

9.8.1 तरलता प्रदान करना (To provide Liquidity)

तरलता से सामान्य भाषा में तात्पर्य होता है किसी भी प्रतिभूति को कम से कम हानि में नकदी के रूप में परिवर्तित करना। सामान्यतः निवेशक दो प्रकार के होते हैं। एक प्रकार के निवेशक कम्पनियों की प्रतिभूतियों में निवेश करते हैं और लम्बे समय के लिए इसे छोड़ देते हैं। दूसरा इन प्रतिभूतियों की टेडिंग कर लाभ कमाते हैं। तरलता की उपस्थिति किस भी प्रतिभूति का एक मुख्य लक्षण है और गौण बाजार की उपस्थिति निवेशकों को यह तरलता उपलब्ध कराने का महत्वपूर्ण कार्य करता है। गौण बाजार का मुख्य कार्य है प्रतिभूतियों को तरलता प्रदान करना। तरलता का लाभ प्राप्त करने के लिए प्रतिभूतियों को एक बाजार की आवश्यकता होती है जहाँ कम से कम लागत या हानि पर किसी भी प्रतिभूति को खरीदा या बेचा जा सके। निवेशकों को आकर्षित करते का कार्य भी तरलता की उपस्थिति करती है क्योंकि कम्पनियों द्वारा अपने प्रतिभूति धारकों को यह विश्वास दिलाया जा सकता है कि जब कभी भी प्रतिभूतियों के बदले में धन प्राप्त करना चाहेंगे तो प्रतिभूतियों को गौण बाजार में आसानी से बेचकर प्राप्त कर सकते हैं।

9.8.2 भावी निवेश को प्रोत्साहन (Encouragement to New Investment)

गौण बाजार पुरानी प्रतिभूतियों के क्रय–विक्रय का एक महत्वपूर्ण स्थान है तथा इसकी उपस्थिति से देश में विभिन्न कम्पनियों की प्रतिभूतियों के मूल्य में आने वाले उतार–चढ़ाव का ज्ञान भी आसानी से प्राप्त होता है। अतः गौण बाजार के अन्दर जब प्रतिभूतियों में वृद्धि हो रही होती है तभी प्राथमिक बाजार में कम्पनियों द्वारा नये प्रतिभूतियों के निर्गमन को प्रारम्भ किया जाता है तथा प्रभाव यह पड़ता है कि इस माहौल में नये प्रतिभूतियों को निवेशकों द्वारा आसानी से क्रय करा लिया जाता है। यह कहना गलत नहीं होगा कि अर्थव्यवस्था के प्रचलित वातावरण का गौण बाजार एक प्रमुख सूचक है। इसके विपरीत जब गौण बाजार में क्रय–विक्रय कम हो रहा होता है तथा पुराने प्रतिभूतियों की कीमतों में कमी के संकेत होते हैं, तो प्राथमिक बाजार भी हतोत्साहित होते हैं तथा नये निर्गमन या तो कुछ समय के लिए रोक दिये जाते हैं या कम मात्रा में निर्गमन किया जाता है।

9.9 द्वितीयक बाजार की संस्थायें (Instutions of Secondary Market)

द्वितीयक या गौण बाजार में सक्रिय दो संस्थायें हैं

9.9.1 शेयर बाजार (Stock exchanges)

9.9.2 प्रत्यक्ष सौदेबाजी (Over the Counter Market)

9.9.1 शेयर बाजार (Stock exchanges)

अनुसूचित मौजूदा (listed) अंशों तथा अन्य ़द्वितीयक प्रतिभूतियों क्रय–विक्रय करने वाला संगठन शेयर बाजार कहलाता है। अनुसूचित अंशों से तात्पर्य उन अंशों से

होता है जिन्हें शेयर बाजार द्वारा स्वीकृती प्रदान होती है। शेयर बाजार में प्रतिभूतियों के क्रय–विक्रय के लिए उनका अनुसूचित (listed) होना आवश्यक होता है।

9.9.2 **प्रत्यक्ष सौदेबाजी (Over the Counter Market)**

सवाल उठता है कि उन प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय कैसे किया जायेगा जिनको किसी स्टाक मार्केट में अनुसूचित नहीं किया गया है। ऐसे प्रतिभूतियों का लेन–देन जिनको अनुसूचित नहीं किया गया है प्रत्यक्ष सौदेबाजी (Over the CounterMarket) द्वारा किया जाता है। ये शेयर/अंश प्रायः छोटी कम्पनियों क होते हैं इसी वजह से इनका बाजार सीमित होता है तथा इस बाजार में शेयरों/अंशों का मूल्य दलालों की प्रत्यक्ष सौदेबाजी से तय किया जाता है।

9.10 स्टाक मार्केट के कार्य या महत्व (Functions or Importance of Stock Market)

स्टाक मार्केट के महत्वपूर्ण कार्य निम्नाँकित हैं।

1. **तैयार बाजार उपलब्ध कराना:** शेयर मार्केट का मुख्य तथा महत्वपूर्ण कार्य है कि द्वितीयक प्रतिभूतियों के क्रय–विक्रय के लिए निवेशकों तथा सट्टेबाजों के लिए बाजार उपलब्ध कराना। मूल रूप से स्टाक मार्केट का अस्तित्व ही क्रय–विक्रय कर सकते हैं। इन बाजारों को नियंत्रित करने के लिए देश में विभिन्न प्रकार के नियम तथा अधिनियम उपलब्ध हैं।

2. **निवेशकों की गतिविधियों का संरक्षण:** विभिन्न प्रकार के नीति और नियमों के तहत स्टाक मार्केट के विभिन्न विभाग बाजार में निवेश करने वालों की गतिविधियों पर नियंत्रण के साथ–साथ इनका संरक्षण भी करते हैं। निवेशक किसी भी प्रतिभूति पर अपना निष्पक्ष निर्णय ले सकता है। वह यदि कुछ जानकारी चाहता है तो वह सब जानकारियाँ उसे उपलब्ध करानी होंगी जिससे उसका निवेश निर्णय प्रभावित हो सकता है। कम्पनियों के निवेशकों को वह सब तथ्य निवेशकों के सामने रखने होते हैं जिन्हें विधान द्वारा आवश्यक समझा जाय। इस प्रकार चालाक दलालों से निवेशकों के हितों तथा गतिविधियों का संरक्षण करता है।

3. **अनुशासन स्थापित करना:** कम्पनी अधिनियम 1956, तथा भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा स्थापित विभिन्न नियमों तथा कानूनों का पालन निवेशकों तथा प्रतिभूति निर्गमन करने वाली कम्पनियों द्वारा किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। किसी भी नियम की अवहेलना नहीं की जा सकती है। स्टाक मार्केट संगठन के विभिन्न विभाग तथा इनके सदस्यों का एक मुख्य कार्य यह भी है कि बाजार में प्रतिभूतियों के क्रय–विक्रय की गतिविधियाँ नियमानुसार ही हों।

4. **गतिविधियों की जाँच:** स्टॉक मार्केट के एक विभाग का कार्य केवल बाजार की गतिविधियों पर नजर रखना है। इन गतिविधियों में बाजार से सम्बन्ध रखने वाले प्रत्येक विभाग, संस्था तथा व्यक्ति की गतिविधियाँ सम्मिलित हैं। मध्यस्थों के बिना स्टाक मार्केट की कल्पना नहीं की जा सकती है लेकिन मध्यस्थों पर नियमों के अनुसार कार्य करने की वाह्यता रखना भी अतिआवश्यक है। इसके अतिरिक्त प्रतिभूतियों तथा निवेशकों की गतिविधियों की जाँच भी एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया होनी चाहिए।

5. **सन्तुलन स्थापित करनाः** किसी विशेष प्रकार की प्रतिभूति के मूल्य में उतार–चढ़ाव को नियंत्रित करने का कार्य भी अप्रत्यक्ष रूप से स्टाक मार्केट द्वारा किया जाता है। सभी जानते हैं कि स्टॉक मार्केट में मध्यस्थों द्वारा विभिन्न कम्पनियों की प्रतिभूतियाँ विक्रय के लिए उपलब्ध कराये जाते हैं तथा निवेशकों द्वारा विभिन्न पैमानों पर परीक्षण के पश्चात प्रतिभूतियों का क्रय किया जाता है अर्थात प्रतिभूतियों की माँग तथा पूर्ति दोनों ही स्टॉक मार्केट द्वारा उपल्बध करायी जाती हैं, जिसमें किसी विशेष प्रतिभूति के मूल्य/कीमत में अधिक उतार–चढ़ाव नहीं आता है तथा कीमत माँग और पूर्ति के नियम के तहत निर्धारित हो जाती है।

6. **तरलता प्रदान करनाः** स्टॉक मार्केट में नि प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय होता है उन्हें निवेशक अपनी आवश्यकता अनुसार कभी भी खरीद या बेच सकता है तथा स्टॉक मार्केट में जिन प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय होता है उन्हें निवेशक अपनी आवश्यकता अनुसार कभी भी खरीद या बेच सकता है तथा स्टॉक मार्केट एक ऐसा मैकेनिजम उपलब्ध कराता है जिससे निवेशक को कम हानि के साथ कम समय में तरलता उपलब्ध हो पाती है।

7. **बचत की आदतों को प्रोत्साहनः** सामान्य के लिए स्टॉक मार्केट एक ऐसा स्थान बनाता है जहाँ वह बचतों (छोटी–छोटी) का निवेश कर सकते हैं। इसलिए यह प्रत्यक्ष रूप से सामान्य जनता के मन में बचत की भावना को बढ़ाकर निवेश की प्रवृत्ति पैदा करन का कार्य करता है। यह बचत स्वयं तथा विशेषज्ञों की मदद से निगमों तथा सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश की जाती है। इस तरह की छोटी–छोटी बचतों के प्रोत्साहन तथा इनके निवेश की सुविधा प्रदान करने से स्टॉक मार्केट, सरकार तथा कम्पनियों को इन बचतों को देश की अर्थव्यवस्था में उत्पादक कार्यों में लगाता है।

8. **उ़द्योगों के विकास में सहायकः** स्टॉक मार्केट के प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष कार्यों में सबसे महत्वपूर्ण कार्य है कि यह देश में व्यापार, व्यवसाय तथा उद्योगों की वित्तीय तथा विशेषज्ञों की सेवाओं से विशेष सहायता करता है। यह पूँजी प्रवाह को उत्पादकता की महत्वपूर्णता को देखते हुए प्रवाहित करता है। इस प्रकार अनुत्पादक क्षेत्र से उत्पादक क्षेत्र में पूँजी प्रवाह होने से देश की अर्थव्यवस्था के साथ–साथ इन क्षेत्रों की कम्पनियों को भी प्रोत्साहन मिलता है।

9. **पूँजी निर्माण को प्रोत्साहनः** स्टॉक मार्केट द्वारा प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से देश की अर्थव्यवस्था में सक्रिय योगदान दे रहे उद्योगों की प्रतिभूतियों की पब्लिसिटी इस तरह से की जाती है जिससे सम्पूर्ण जानकारी जनता तथा सम्भावित निवेशकों तक पहुँती है तथा एक ऐसा माहौल बनता है जिसमें निवेश न करने वाले व्यक्ति तथा संस्थान भी निवेश करने के बारे में सोचने लगते हैं। इस तरह निवेश बढ़ने के साथ ही पूँजी निर्माण को प्रोत्साहन मिलता है।

10. **सरकारी संसाधनों को बढ़ानाः** स्टॉक मार्केट का प्रमुख कार्य है कम्पनियों तथा सरकारी संस्थानों की द्वितीयक प्रतिभूतियों के व्यापार हेतु बाजार का निर्माण करना। इसलिए सरकारें देश के हित में महत्वपूर्ण प्रोजेक्ट को तथा समाज हित में महत्वपूर्ण

प्रोजेक्ट को बढ़ाने तथा विकसित करने के लिए स्टॉक मार्केट द्वारा आसानी से अपनी प्रतिभूतियों का विक्रय कर संसाधनों की प्राप्ति कर सकते हैं।

11. **प्रतिभूतियों का मूल्यांकनः** स्टॉक एक्सचेंज किसी भी कम्पनी तथा सरकारी संस्थान की कार्य–कुशलता का इसकी प्रतिभूतियों के मूल्यों/कीमतों के आधार पर निर्धारित करने का मार्ग प्रशस्त करता है। स्टॉक एक्सचेंज कम्पनियों की प्रतिभूतियों की समग्र माँग तथा पूर्ति को बेहतर तरीके से प्रस्तुत कर माँग और पूर्ति के आधार पर कीमतों के निर्धारण से कम्पनी की कार्यकुशलता आँकने का मौका देते हुए किसी कम्पनी विशेष की स्थापित्व के बारे में निवेशकों की संकाओं का समाधान करने का भी कार्य करता है। इस प्रकार इन आकलनों द्वारा निवेशक एक बेहतर निर्णय लेने की स्थिति में होता है।

12. **बचतों का प्रवाहः** स्टॉक एक्सचेंज द्वारा निवेशकों की बड़ी बचतों को कम्पनियों की प्रतिभूतियों में निवेश करने का सीधा अवसर प्रदान करते हैं। आज के दौर में इन्वेस्टमेन्ट ट्रस्ट तथा पारस्परिक कोषों द्वारा भी निवेशकों की निवेश करने में सहायता प्रदान की जा रही है। पारस्परिक कोष जनता की छोटी–छोटी बचतों को प्रवाहित कर एक बड़ी राशि को प्रतिभूतियों में निवेश करने का कार्य कर रहे हैं। इससे छोटे निवेशक भी अप्रत्यक्ष रूप से इस बाजार के निवेशक हैं तथा बाजार की प्रतिक्रियाओं के प्रतिफल का आनन्द ले सकते हैं।

13. **आर्थिक पैमानाः** किसी देश की अर्थव्यवस्था की क्या स्थिति है, इस स्थिति को देश की आर्थिक पैमाने के सूचक के रूप में प्रस्तुत करना किसी भी देश के स्टॉक एक्सचेंज का एक प्रमुख कार्य है। एक राजनीतिक तथा आर्थिक तौर पर मजबूत सरकार वाला देश इस सूचक में अच्छा तथा इसके विपरीत बुरा, स्टॉक एक्सचेंज द्वारा प्रदर्शित होगा तथा यह प्रदर्शन देश के निवेशकों के साथ–साथ विदेशी निवेशकों के निवेश निर्णयों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करेगा। इसलिए देश की सरकारों को इस तरह की नितियों को अपनाना चाहिए जिससे स्टॉक एक्सचेंज की प्रतिक्रिया आपके पक्ष में है।

14. **कम्पनियों पर नियंत्रणः** पंजीकृत सरकारी तथा गैर सरकारी कम्पनियों पर नियंत्रण रखना भी स्टॉक एक्सचेंज का एक महत्वपूर्ण कार्य है। जिन कम्पनियों की प्रतिभूतियों किसी भी स्टॉक एक्सचेंज में अनुसूचित हैं उन कम्पनियों को अपनी खातों से सम्बन्धित वार्षिक रिपोर्ट तथा अकेंशित स्थिति विवरण सम्बन्धित स्टॉक एक्सचेंज में प्रतिवर्ष जमा करना होता है तथा यह दोनों दस्तावेजों का अध्ययन स्टॉक एक्सचेंज में इस कार्य के विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है तथा यह ज्ञात किया जाता है कि देश में निर्धारित नियमों तथा कानूनों का पालन हो रहा है या नहीं, इस तरह केवल वही कम्पनियाँ भविष्य में कार्य कर सकती हैं जो नियमानुसार अपना कार्य कर रही हों। यदि कम्पनियाँ नियमों की अनदेखी करती हैं तो ऐसी कम्पनियों को ब्लेक लिस्टेड किया जाता है तथा नियमानुसार इन कम्पनियों पर कार्यवाही की जाती है।

15. **विदेशी पूँजी को आकर्षित करनाः** स्टॉक एक्सचेंज के विभिन्न कार्यों का आँकलन कर यह भी निःसंदेह कहा जा सकता है कि इसका एक कार्य देश में विदेशी पूँजी को आकर्षित करना भी है। इसका प्रमुख कार्य है कम्पनियों की प्रतिभूतियों के

क्रय तथा विक्रय को सम्भव बनाना इस कार्य द्वारा ही स्टॉक एक्सचेंज द्वारा कम्पनियों की प्रतिभूतियों की समग्र माँग तथा समग्र पूर्ति का आँकलन कर बाजार द्वारा इसकी कीमत निर्धारित कर इस सूचना को प्रत्येक सम्भावित निवेशक के लिए उपलब्ध करना होता है, दूसरा कार्य स्टॉक एक्सचेंज से विभिन्न कम्पनियों की प्रतिभूतियों के आधार पर संस्थानों का प्रत्यक्ष मूल्यांकन तथा देश की अर्थव्यवस्था का सूचक ज्ञात किया जा सकता है जिसके आधार पर विदेशी संस्थानों, कम्पनियों तथा अन्य निवेशकों को अपने निवेश सम्बन्धी निर्णय लेने में सहायता मिलती है। पूँजी पर अधिक दर से प्रतिफल देने पर स्टॉक एक्सचेंज विदेशी निवेशकों को निवेश करने के लिए आकर्षित करता है। यह प्रत्यक्ष रूप से किसी देश की मुद्रा के विनिमय मूल्य में भी सुधार करता है जिससे देश में निवेश का माहौल बनता है।

16. **पूँजी की सुरक्षाः** स्टॉक एक्सचेंज के अन्तर्गत की जाने वाले प्रत्येक गतिविधियाँ जनता के समक्ष विभिन्न विधानों, एक्टों, अधिनियमों के नियमानुसार तथा बपनियमानुसार की जाती हैं जिसके आधार पर यह निवेश तथा पूँजी पूर्णतया सुरक्षित होती है। इस तरह के निवेश का चरणबद्ध तरीके से नियंत्रण किया जाता है जिसमें महत्वपूर्ण भूमिका भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड (Securities Exchange Board of India), भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 (Indian Companies,1956) भारतीय रिजर्व बैंक (Reserve Bank of India) के साथ–साथ स्टॉक एक्सचेंज द्वारा निभायी जाती है। यह विभिन्न प्रकार के अधिनियम संस्थानों/कम्पनियों की स्थापना से उनके द्वारा किये जाने वाले कार्यों तथा निर्गमित की जाने वाली प्रतिभूतियों की जाँच–पड़ताल कर नियमों का पालन करवाले का एक अति महत्वपूर्ण कार्य करते हैं, जिसमें निवेशक सुरक्षित रहता है।

17. **व्यवसाय उन्नति का पैमानाः** देश में व्यवसाय उन्नति के पैमाने के रूप में स्टॉक एक्सचेंज कार्य करते हैं। स्टॉक एक्सचेंज उछाल तथा गिरावट के दौर में विभिन्न कम्पनियों की प्रतिभूतियों के मूल्यों को दर्शाता है तथा स्टॉक एक्सचेंज द्वारा दर्शाये गये उछाल तथा गिरावट के दौर में मूल्यों के तुलनात्मक अध्ययन से निवेशक अपने निर्णय लेता है तथा किसी व्यवसाय विशेष की स्थिति तथा देश में व्यवसाय की समग्र स्थिति का अनुमान आसानी से लगाया जाता है।

9.11 भारत के प्रमुख शेयर बाजार (Stock Exchanges In India)

भारत के प्रमुख शेयर बाजार निम्नांकित हैं–

9.11.1 राष्ट्रीय शेयर बाजार (National Stock Exchange)

राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज की स्थापना की संस्तुति 1991 में 'फेरवारी समिति' (Pherwari Committee) ने की थी तथा 1992 में सरकार ने भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (Industrial Development Bank of India) को इस एक्सचेंज की स्थापना का कार्य सौंपा। भारतीय औद्योगिक विकास बैंक ही राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज प्रमुख प्रवर्तक (Promoter) हैं। राष्ट्रीय शेष्र बाजार ऋणपत्र (Debentures), इक्विटी शेयर (Eqiuty Shares) तथा सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों के बाण्ड तथा सरकारी प्रतिभूतियों में कारोबार करता है। इसका मुख्यालय दक्षिण मुम्बई में वर्ली में स्थित है। स्टॉक एक्सचेंज में 49 प्रतिशत तक विदेशी निवेश की अनुमति है। इनमें विदेशी प्रत्यक्ष

निवेश (Foreign Direct Investment) अधिकतम 26 प्रतिशत तथा शेष 23 प्रतिशत संस्थागत विदेशी निवेश (Foreign Institutional Investment) हो सकता है।

9.11.2 बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज (Bombay Stock Exchange)

एशिया के सबसे प्राचीन शेश्र बाजार बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज (Bombay Stock Exchange) की स्थापना 1875 में की गयी थी। भारतीय पूँजी बाजार के विकास में इस एक्सचेंज की व्यापक भूमिका रही है और इसका सूचकांक विश्व विख्यात है। मैनेजिंग डायरेक्टर्स के नेतृत्व में डायरेक्ट्रेर्स बोर्ड द्वारा एक्सचेंज काा संचालन किया जाता है। इस डायरेक्ट्रर्स बोर्ड में प्रतिष्ठित प्रोफेसनल्स, ट्रेडिंग सदस्यों के प्रतिनिधियों और सार्वजनिक प्रतिनिधियों के सदस्यों का समावेश है। एशिया का यह सबसे पुराना बाजार (BSE) 19 अगस्त 2005 को एक पब्लिक लिमिटेड कम्पनी में रूपान्तरित हो गया। वर्ष 2002 में स्टॉक एक्सचेंज मुम्बई का नाम बदलकर BSE कर दिया गया। इस प्रकार BSE तथा दलाल स्ट्रीट अब एक ही हैं। इसमें वर्तमान में 4800 से अधिक भारतीय कम्पनियाँ पंजीकृत हैं। अक्टूबर 2007 में BSE दक्षिण एशिया का सबसे बड़ा तथा विश्व का 10वें नम्बर का स्टॉक एक्सचेंज बन गया है। विश्व का सबसे पहला संगठित शेयर बाजार वर्ष 1602 में एम्सटर्डम नीदरलैण्ड में स्थापित किया गया था। भारत देश में बाम्बे स्टॉक एक्सचेंज द्वारा सेन्सेक्स के अलावा कुछ सेक्टोरल सूचकांकों का भी प्रयोग किया जाता है। इसमें बी0एस0ई0 500, बी0एस0ई0 200, बी0एस0ई0 100, बी0एस0ई0–पी0एस0यू0, बी0एस0ई0–फास्ट मुविंग कन्ज्यूमर गुड्स, बी0एस0ई0 कन्ज्यूमर ड्रयूरेविल्स, बी0एस0ई0 मैरल शामिल है। बी0एस0ई0 पावर इन्डेक्स इस श्रृंखला का नया सूचकांक है।

मुम्बई शेयर बाजार के शेयर मूल्य सूचकांक

मुम्बई शेयर बाजार ने 27 मई 1994 को दो शेयर मूल्य सूचकांकों बी0एस0ई0 200 तथा डालेक्स (DOLLEX) चालू किये थे। बी0एस0ई0 200 मे 200 चुनिन्दा कम्पनियों के शेयरों का समावेश किया गया है, जिसमें से 85 विशिष्ट श्रेणी ए (Specified List A) के तथा 115 अविशिष्ट श्रेणी बी (Non-Specified List B) के शेयर हैं। सूचकांकों बी0एस0ई0 200 का ही डालर मूल्य में अन्य सूचकांक डालेक्स है। इन सूचकांकों का आधार वर्ष 1989–1990 निर्धारित किया गया है। मुम्बई स्टॉक एक्सचेंज का राष्ट्रीय सूचकांक (National Index) 100 शेयरों का होता है जबकि मुम्बई स्टॉक एक्सचेंज का सवेदी शेयर सूचकांक (Share Sensex) 30 शेयरों का होता है। सेन्सेक्स (SENSEX) सूचकांक का रचना वर्ष 1986 है।

9.11.3 मल्टी कॉमोडिटी एक्सचेंज (Multi Commodity Exchange)

मल्टी कॉमोडिटी एक्सचेंज देश में राष्ट्रीय स्तर का तीसरा ऑनलाइन स्टाक एक्सचेंज है। मल्टी कॉमोडिटी स्टॉक एक्सचेंज में अंशों का कारोबार फरवरी 2013 में शुरू हो गया है। 9 फरवरी 2013 को मुम्बई में इसका उदघाटन वित्तमंत्री श्री पी0 चिदम्बरम ने किया। बाम्बे स्टॉक एक्सचेंज (BSE) तथा राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज (National Stock Exchange) के पश्चात यह ऑनलाईन कारोबार वाला देश का तीसरा राष्ट्रीय स्तर का स्टॉक एक्सचेंज है। इस बाजार में मल्टी कॉमोडिटी एक्सचेंज

(MCE) की इक्विटी 51 प्रतिशत है। इस एक्सचेंज के कार्यशील होने से शेयर कारोबार में प्रतिस्पर्धा में वृद्धि होगी तथा निवेशकों के जिए विक्लप बढ़ेंगे।

9.11.4 ओवर द काउन्टर एक्सचेंज ऑफ इण्डिया (Over the Counter Exchange of India)

लघु तथा मध्यम औद्योगिक इकाईयों के एक्यचेंज के रूप में मशहूर "ओवर द काउन्टर एक्सचेंज ऑफ इण्डिया" (OTCEI) भारत में सर्वप्रथम ऑनलाईन ट्रेडिंग सुविधा सम्पन्न कम्प्यूटराइज्ड एक्सचेंज की स्थापना 1992 में मुम्बई में हुई। इसी अवधारणा अमेरिकी स्टॉक एक्सचेंज 'नेस्डेक' के आधार पर की गयी थी। मेस्डेक का कम्प्यूटर नेटवर्क पूरे अमेरिका से जुड़े होने के कारण वहाँ की लघु तथा मध्यम औद्योगिक इकाईयाँ कहीं से भी तुरन्त उससे सम्पर्क स्थापित कर सकती हैं। भारत में भी वृहद् स्तर पर इस प्रकार के ऑनलाईन नेटवर्क की स्थापना की आवश्यकता महसूस की जा रही है। ओवर द काउन्टर एक्सचेंज ऑफ इण्डिया (OTCEI) में उन कम्पनियों को सूचीबद्ध किया गया है जिनकी पूँजी का स्तर 30 लाख रूपये से 25 करोड़ रूपये तक हो।

9.11.5 ग्रीनेक्स

यह देश का पहला पर्यावरण अनुकूल शेयर मूल्य सूचकांक है। देश में हरित निवेश को बढ़ावा देने के लिए बम्बई शेयर बाजार ने देश का पहला पर्यावरण अनुकूल इक्विटी सूचकांक शरू किया है। बी0एस0ई0 ग्रीनेक्स नाम से इस सूचकांक का उद्घाटन कम्पनी मामलों के मंत्री बीरप्पा मोइली ने 22 फरवरी 2012 का स्टॉक एक्सचेंज में घंटी बजाकर किया।

9.11.6 रेसीडैक्स (RESIDEX)

देश के विभिन्न भागों में भूमि (Land) के मूल्यों में होने वाले उतार–चढाव पर निगरानी के लिये पहली बार एक सूचकांक राष्ट्रीय आवास बैंक (National Housing Bank) ने 11 जुलाई 2007 से जारी किया था। रेसीडैक्स (RESIDEX) नाम के इस सूचकांक के द्वारा समानान्तर अर्थव्यवस्था/काले धन की अर्थव्यवस्था पर निगरानी में भी मदद मिलेगी। ऐसा माना जाता है कि काले धन को प्रायः जमीन की खरीद फरोक्त में ही खपाया जाता है। प्रारम्भ में देश के पाँच प्रमुख शहरों दिल्ली, बैंगलुरू, भोपाल, मुंबई व कोलकत्ता के लिये 2001 –2005 तक के लिये सूचकांक 2007 जून में जारी किये गए थे। अगले चरण में 10 लाख से अधिक जनसंख्या 2001 जनगणना आधार वाले 35 शहरों के लिये तथा उसके पश्चात जवाहर लाल नूहरू राष्ट्रीय शहरी नवीकरण मिशन के आधीन 63 शहरों के लिये यह सूचकांक जारी करने का प्रावधान था।

9.11.17 भारत में वायदा कारोबार (Commodity Exchange in India)

भारत में शेयर बाजार की अवधारणा काफी पुरानी है। शेयरों की खरीद फरोक्त के लिये भारत में दो प्रमुख शेयर बाजार "बॉम्बे स्टॉक एक्सचेन्ज" (Bombay Stock Exchange) तथा "नेशनल स्टॉक एक्सचेन्ज" (National Stock Exchange) हैं। शेयर बाजारों की तरह ही गाँवों तथा कस्बों की मण्डियों तथा हॉट बाजार भी अब धीरे

धीरे हाई टैक हो रही हैं। तथा खाद्य पदार्थों, तेलों तथा प्रमुख अनाजों का भाव ऑनलाईन कोट कर रहे हैं। इसे वायदा कारोबार बाजार के नाम से जाना जाता है।

9.12 भारतीय स्टॉक एक्सचेन्ज की कार्य प्रणाली (Trading In Indian Stock Exchanges)

स्टॉक मार्केट एक ऐसा स्थानीय बाजार है जहाँ निवेशकर्ता द्वारा खरीदा या बेचा जाता है। उसे पूर्ण रूप से बाजार की प्रतिक्रियाएं तय करती हैं । भारत का द्वितीय बाजार या स्टॉक मार्केट मुख्य रूप से स्टॉक एक्सचेन्ज, ओवर द काउन्टर एक्सचेन्ज ऑफ इंडिया, स्टौकहोल्टिंग कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया से सम्बन्ध रखता है। भारतीय स्टॉक मार्केट एशिया का सबसे बड़ा स्टॉक मार्केट है। जिसे लगभग 200 वर्षों से अधिक हो गए हैं।

स्टॉक होल्डिंग कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया (Stock Holding Corporation of India)

स्टॉक होल्डिंग कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया का समामेलन 1986 में एक पब्लिक लिमिटेट कम्पनी के रूप में हुआ। इस कम्पनी को सामूहिक रूप से प्रवर्तन तथा स्वामित्व विभिन्न बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं द्वारा किया गया जिनमें मुख्य थे Industrial Developement Bank of India (IDBI), Industrial Credit and Investment Corporation of India (ICICI), AXIS Bank, Industrial Finance Corporation of India limited (IFCI), General Insurance Corporation (GIC), National Insurance Agency (NIA), NIC, UIC तथा TOICL जो अपने अपने व्यवसाय क्षेत्र में नेतृत्व कर रहे थे। स्टॉक होल्डिंग कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड की स्थापना एक ही स्थान पर अधिकतर वित्तीय सुविधाएं प्रदान करने वाली संस्था के रूप में किया गया।

स्टॉक एक्सचैन्ज प्रतिभूतियों के विनिमय हेतु एक संगठित बाजार है। इस संघटित बाजार (स्टॉक एक्सचेन्ज) का उदय भारत में तुलनात्मक रूप से नया है यदि हम अन्य वित्तीय बाजारों की तुलना करें। भारत में सन् 1875 में पहला स्टॉक एक्सचेन्ज नेटिव शेयर एण्ड स्टॉक ब्रोकर्स एसोसिएशन्स ऑफ बॉम्बे (Native Share and Stock Brokers Associations of Bombay) के नाम से स्थापित किया गया आज यह बॉम्बे स्टॉक एक्सचेन्ज (Bombay Stock Exchange BSE) के नाम से जाना जाता है। स्टॉक एक्सचेन्ज की यह संख्या साल 2009 मार्च तक बढकर 20 हो गई। साल 2009 मार्च 20 स्टॉक एक्सचेन्ज भारत में भारतीय गतिभूति विनिमय बोर्ड (Security Exchange Board of India) के आधीन रजिस्टर्ड थे। इनमें कुल 8652 स्टॉक दलाल (Stock Brokers) तथा 62471 उपदलाल (Sub- Brokers) रजिस्टर्ड होकर कम्पनियों की प्रतिभूतियों का व्यापार आसान बनाने का कार्य कर रहे हैं।

प्रतिभूतियों का स्टॉक एक्सचेन्ज में अनुसूचित (Listed) करना इन प्रतिनितियों की स्टॉक एक्सचेन्ज में व्यापार हेतु अनिवार्य है। भारत में प्रतिभूतियों का अनुसूचित करना निम्नांकित प्राविधानों द्वारा नियंत्रित किया जाता है–

1. कम्पनी अधिनियम 1856
2. सिक्योरिटी, कॉन्ट्रैक्ट (Regulation) एक्ट 1856।
3. सिक्योरिटी, कॉन्ट्रैक्ट (Regulation) रूल 1957।

4. सर्कुलर/गाईडलाईन्स इस्यूड बाई सैन्ट्रल गवर्मैन्ट एण्ड सेबी।
5. रूल्स एण्ड सेगुलेशन्स ऑफ कनसर्न्ड स्टॉक एक्सचेन्ज।

स्टॉक एक्सचेन्ज जहाँ कम्पनियों द्वारा अपनी प्रतिभूतियों को अनुसूचित किया जाता है द्वारा कम्पनियों द्वारा कम्पनियों पर अनुसूचन फीस लगाई जाती है। स्टॉक एक्सचेन्ज द्वारा लगाई जाने वाली कुल फीस को दो भागों में बाँटा जाता है।

(अ.) आरम्भिक फीस (Initial Fees)

(ब.) वार्षिक फीस (Annual Fees)

9.14 सारांश

भारतीय पूँजी बाजार का विकास स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हुआ जब देश में सरकारी, अर्धसरकारी तथा संयुक्त पूँजी कम्पनियों की स्थापना शीघ्र गति से प्रारम्भ हुई। भारतीय पूँजी बाजार के ढ़ाँचे को दो भागों अग संस्थायें (Constituents Institutions) और वित्तीय प्रपत्र (Financial Instrument) में बाँटा जाता है। इसमें से अग संस्थाओं को पुनः दो भागों में बाँटा गया ऋण दाता क्षेत्र (Lendor's Sector), ऋण लेने वाला क्षेत्र (Borrower's Sector)। इनमें ऋण लेने वाले क्षेत्र को पुनः संगठित (Organised) तथा असंगठित (Unorganised) क्षेत्र में बाँटा गया। संगठित क्षेत्र में जहाँ स्टॉक एक्सचेंज/मार्केट, विकास बैंक तथा निवेश संस्थायें हैं तो असंगठित क्षेत्र में महाजन तथा चिटफण्ड इत्यादि की उपस्थिति है।

वित्तीय प्रपत्रों को भी दो भागों में विभाजित किया गया है प्रथम सरकारी तथा उत्क्रष्ट प्रतिभूतियाँ, दूसरा निगमित प्रतिभूतियाँ हैं। सरकारी प्रतिभूतियों पर आय तुलनात्मक रूप से कम होती हैं लेकिन यह अत्यधिक सुरक्षित होती हैं। निगमित प्रतिभूतियाँ इसके विपरीत हैं। निगमित प्रतिभूतियों के बाजार को भी दो भागों मे विभजित किया जाता है प्राथमिक तथा द्वितीयक बाजार। प्राथमिक बाजार में नये प्रतिभूतियों का निर्गमन होता है, वहीं द्वितीयक बाजार में पुरानी प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय किया जाता है।

स्टॉक एक्सचेंज के द्वारा देश तथा कम्पनियों के लिए विभिन्न तरह के कार्य किये जाते हैं, जिनमें से मुख्य है तैयार बाजार उपलब्ध कराना, निवेशकों की गतिविधियों का संरक्षण, अनुशासन स्थापित करना, तरलता प्रदान करना, बचतों की आदतों को प्रोत्साहित करना, उद्योगों के विकास में सहायक, पूँजी निर्माण को प्रोत्साहन, सरकारी संसाधनों को बढ़ाना, प्रतिभूतियों का मूल्यांकन, बचतों का प्रवाह, कम्पनियों पर नियंत्रण, विदेशी पूँजी को आकर्षित करना तथा पूँजी की सुरक्षा है। भारत में मुख्यतः निम्नांकित शेयर बाजार प्रतिष्ठित हैं राष्ट्रीय शेयर बाजार (National Stock Exchange), बाम्बे स्टॉक एक्सचेंज (Bombay Stock Exchange), मल्टी कॉमोडिटि एक्सचेंज (Multi Commodity Exchange), ओवर द काउन्टर एक्सचेंज ऑफ इण्डिया (Over The Counter Exchange of India), ग्रीनेक्स (Greenex), रेसीडेक्स (Residex), भारतीय वायदा कारोबार (Commodity Exchange in India)

9.13 शब्दावली

- **पूँजी बाजार (Capital Market):** पूँजी बाजार से तात्पर्य ऐसे बाजार से है जहाँ कम्पनियों की प्रतिभूतियों को आसानी से क्रय–विक्रय किया जा सकता है।
- **ऋणदाता क्षेत्र (Lendor's Sector):** इस क्षेत्र में पूँजी की पूर्ति की जाती है। इस क्षेत्र की संस्थाओं तथा व्यक्तियों द्वारा दीर्घकालीन ऋण आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है।
- **ऋण लेने वाला क्षेत्र (Borrower's Sector):** मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन ऋणों की माँग करने वाले संस्थानों तथा व्यक्तियों को इसमें सम्मिलित किया जाता है। इस क्षेत्र के संस्थानों तथा व्यक्तियों द्वारा मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन पूँजी की माँग का निर्माण किया जाता है।
- **वित्तीय प्रपत्र (Financial Instrument):** वित्तीय प्रपत्र (Financial Instrument) वह प्रपत्र/लेख होते हैं जिनके माध्यम से पूँजी बाजार में पूँजी का प्रवाह (Flow) होता है। इन्हें मुख्यतः सरकारी प्रतिभूतियों (Government Securities) तथ निगमित प्रतिभूतियों (Cooporate Securities) में विभाजित किया जाता है।
- **अंश (Share):** संयुक्त पूँजी कम्पनियाँ अपनी लम्बी अवधि की पूँजी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जनता तथा संस्थानों को विभिन्न विधानों के अनुसार इन प्रपत्रों का निर्गमन करती हैं। इनके द्वारा प्राप्त पूँजी (Owners Capital) के नाम से जानी जाती है।
- **ऋणपत्र (Debentures):** यह एक ऐसा वित्तीय प्रपत्र है जो उन व्यक्तियों या संस्थानों को निर्गत किया जाता है, जिनके द्वारा पूर्वनिर्धारित ब्याज तथा अन्य शर्तों पर कम्पनी या निर्गमनकर्ता को निश्चितकालीन ऋण दिया जाता है।
- **स्टॉक एक्सचेंज (Stock Exchange):** स्टॉक एक्सचेंज एक ऐसा बाजार है जिसमें सरकारी, अर्धसरकारी, निगम तथा संयुक्त पूँजी कम्पनियों के निर्गमित प्रतिभूतियों से सम्बन्धित विभिन्न बाजार सम्मिलित होते हैं।
- **प्राथमिक बाजार (Primary Market):** जिस बाजार में नयी परिसम्पत्तियों एवं प्रतिभूतियों को जनता तथा संस्थानों से दीर्घकालीन पूँजी की प्राप्ति के लिए निर्गमित किया जाता है उक्त बाजार को प्राथमिक बाजार कहते हैं।
- **द्वितीयक बाजार (Secondary Market):** गौण तथा द्वितीयक बाजार स्टॉक मार्केट का वह भाग है जिसमें पुराने अंशों तथा प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय किया जाता है तथा इस बाजार में प्रतिभूतियों का मूल्य बाजार की ताकतों द्वारा निर्धारित किया जाता है।

9.16 बोध प्रश्न

बताइये निम्न कथन सत्य है या असत्य

1. पूंजी बाजार प्रथामिक तथा द्वितीयक बाजार के रुप मे विभाजित है।
2. स्टाक एक्सचेंज संगठित क्षेत्र का संगठन है।
3. सरकारी प्रतिभूतियो केन्द्र तथा राज्य सरकार द्वारा निर्गमित नही की जा सकती है।
4. ऋणपत्र कम्पनियो द्वारा निर्गमित किये जाने वाले प्रतिभूति का एक प्रकार है।

5. अभिगोपक कार्य सामान्यतः कमीशन पर किये जाते है।
6. सार्वजनिक कम्पनी कों पब्लिक निर्गमन के लिए विवरण जारी करना आवश्यक है।
7. वित्तीय प्रपत्र पूंजी बाजार मे पूंजी का प्रवाह बढाने मे सहायक होते है।
8. स्टाक मार्केट किसी देश या संस्था के आर्थिक पैमाने की पहचान मे मदद करता है।
9. राष्टीय शेयर बाजार की स्थापना 1990 मे हुई।
10. मल्टी कामोडिटी एक्सचेज ने अपना कारोबार सन् 2013 मे प्रारम्भ किया।

9.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

उत्तर: (1) सत्य (2) सत्य (3) असत्य (4) सत्य (5) सत्य (6) सत्य (7) सत्य (8) सत्य (9) असत्य (10) सत्य

9.15 स्वपरख प्रश्न

1. पूँजी बाजार से आप क्या समझते हैं? इसका संगठन विस्तारपूर्वक समझाइये।
2. पूँजी बाजार के संगठित तथा असंगठित क्षेत्र पर प्रकाश डालिए ।
3. गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं से आप क्या समझते हैं? वर्णन करें।
4. वित्तीय प्रपत्र की परिभाषा देते हुए पूँजी बाजार के विभिन्न वित्तीय प्रपत्रों को समझाइये।
5. स्टॉक एक्सचेंज से आप क्या समझते हैं? स्टॉक एक्सचेंज की कार्यप्रणाली को समझाइये।
6. प्राथमिक तथा द्वितीयक बाजार में क्या अन्तर है? प्राथमिक तथा द्वितीयक बाजार के कार्यों को विस्तार पूर्वक समझाइये।
7. स्टॉक मार्केट के महत्व अथवा कार्यों पर प्रकाश डालिए।
8. भारत में प्रतिष्ठित स्टॉक एक्सचेंज के बारे में संक्षिप्त रूप से समझाइये।

9.17 सन्दर्भ पुस्तकें

- बिशनोई, आर0के0, बीमा के सिद्धांत, साहित्य भवन पब्लिसर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा।
- श्रीवास्तव, आर0एम0 और निगम, दिब्या मैनेजमैन्ट ऑफ इंडियन फाइनैन्शियल इंस्टीट्यूशन्स
- सेठी, टी0टी0 (2015), मुद्रा बैंकिंग एवं लोक वित, आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिसर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- गुप्ता, शान्ति के0 और अग्रवाल, निशा, इंडियन फाइनैन्शियल सिस्टम्स, कल्याणी पब्लिसर्स, 2016।
- प्रतियोगिता दर्पण, जुलाई 2016।
- इंडियन इकोनोमी, जुलाई 2016।
- अग्रवाल, दीपक (2010), मुद्रा बैंकिंग, लोक वित्त एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, हिमालया पब्लिशिंग हाउस मुबई।
- विभिन्न इंटरनैट साइट्स।
- जैन, टी0आर0 इंडियन फाइनैन्शियल सिस्टम्स, वी0के0 ग्लोबल पब्लिकेशन्स और खन्ना, ओ0पी0, प्राईवेट लिमिटेट, 2014–15।

इकाई – 10 वाणिज्यिक बैंक (Commercial Bank)

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना

10.2 बैंकः अर्थ व परिभाषा

- 10.2.1 कानून के आधार पर परिभाषा
- 10.2.2 बैंकों के कार्यों के आधार पर परिभाषा
- 10.2.3 साख व्यवस्था करने वाली संस्थाओं के आधार पर परिभाषा

10.3 बैंकों के विविध प्रकार

- 10.3.1 वाणिज्यिक बैंक
- 10.3.2 औद्योगिक बैंक
- 10.3.3 विदेशी विनिमय बैंक
- 10.3.4 बचत बैंक
- 10.3.5 कृषि बैंक
- 10.3.6 असंगठित बैंक

10.4 वाणिज्यिक बैंकों की सगठनात्मक प्रणालियां

- 10.4.1 शाखा बैंकिंग
- 10.4.2 इकाई बैंकिंग

10.5 वाणिज्यिक बैंकों के कार्य

10.6 बैंक की कार्य प्रणाली तथा स्थिति विवरण

- 10.6.1 बैंक पूँजी के साधन
- 10.6.2 बैंकों द्वारा धन का निवेश
- 10.6.3 बैंकों का स्थिति विवरण

10.7 बैंकों निवेशों के प्रकार

- 10.7.1 अलाभाकर निवेश
- 10.7.2 लाभकर निवेश

10.8 सारांश

10.9 शब्दावली

10.10 बोध प्रश्न

10.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.12 स्वपरख प्रश्न

10.13 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- वाणिज्यिक बैंकों के उदय एवं परिभाषाओं से अवगत हो सकें तथा विभिन्न आधारों पर दी गयी परिभाषाओं की व्याख्या कर सकें।
- बैंकिंग कार्य करने वाले विभिन्न प्रकार के बैंकों जैसे वाणिज्यिक बैंक (Commercial Bank), औद्योगिक बैंक (Industrial Bank), विदेशी विनिमय

बैंक (Foreign Exchange Bank), बचत बैंक (Saving Bank), कृषि बैंक (Agriculture Bank), असंगठित बैंक (Indigneous Bank) तथा केन्द्रीय बैंक के बारे में संक्षिप्त रूप से अवगत हो सकें।

- वाणिज्यिक बैंकों की संगठनात्मक प्रणालियों का अध्ययन कर सकें।
- वाणिज्यिक बैंकों के कार्यों का विस्तार पूर्वक अध्ययन कर सकें।
- वाणिज्यिक बैंकों के पूँजी के साधनों की विवेचना कर सकें तथा बैंको के निवेशों (Investment) के विभिन्न प्रकारों का अध्ययन कर सकें।
- बैंकों के स्थिति विवरण के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी प्राप्त सकें।

10.1 प्रस्तावना

ऐसी धारणा है कि प्राचीन काल में इटली में कुछ लोग या व्यापारी बैंचों पर बैठकर मुद्रा परिवर्तन या प्रारम्भिक बैंकिंग का कार्य किया करते थे। उनको 'Banchi' अथवा 'Bancheri' कहा जाता था। इन मुद्रा परिवर्तन करने वाले व्यापरियों में से जिसका व्यापार बन्द हो जाता था उसके बैंचे को तोड़ दिया जाता था। यही शब्द बदलता हुआ अंग्रेजी भाषा में बैंक हो गया तथा कालान्तर में इसका प्रयोग मुद्रा परिवर्तन करने वाली तथा बाद में साख की व्यवस्था करने वाली संस्थाओं के लिए किया जाने लगा।

10.2 बैंकः अर्थ व परिभाषा

बैंक की परिभाषा के बारे में संक्षेप में कहा जा सकता है की बैंक मुद्रा का व्यवसाय, साख निर्माण तथा इनके नियमन में सहयोग करने वाली संस्था है। मुद्रा के व्यवसाय से तात्पर्य जनता को ऋण देने तथा जमा स्वीकार करने तथा आवश्यकतानुसार राशि निकालने से है। ऋण देने तथा जमा स्वीकारने दोनों ही दशाओं में मुद्रा की कीमत ब्याज के रुप में आँकी जाती है। बैंक मुद्रा के व्यवसाय के साथ–साथ साख का भी क्रय–विक्रय करता है। बैंक साख का निर्माण करता है। प्रत्येक बैंक मुद्रा व्यवसाय तथा साख निर्माण करनेके साथ–साथ केन्द्रीय बैंक के निर्देशानुसार इसके नियमन का प्रत्यक्ष रुप से कार्य करता है। देश की अर्थव्यवस्था के अनुसार इस सम्बन्ध में केन्द्रीय बैंक समय–समय पर अनेक नियम बनाकर बैंकों को निर्देशित करता है जिसका पालन प्रत्येक बैंक द्वारा किया जाता है।

बैंक की परिभाषायें (Definitions of Bank)

बैंक शब्द के प्रारम्भिक प्रयोग से लेकर आज तक बैंक के रुप तथा इनके कार्यों में अनेक परिवर्तन आ चुके हैं कि उनकी एक संक्षिप्त और उपयुक्त परिभाषा देना बहुत कठिन होगा, इसलिए बैंकों को विभिन्न मूलभूत आधारों पर परिभाषित किया गया है। मुख्य निम्नवत हैं:–

10.2.1 कानून के आधार पर परिभाषा

10.2.2 बैंकों के कार्यों के आधार पर परिभाषा

10.2.3 साख व्यवस्था करने वाली संस्थाओं के आधार पर परिभाषा

10.2.1 कानून के आधार पर परिभाषा :–

बैंको के सुचारु संचालन के लिए प्रत्येक देश में बैंकिंग अधिनियम का निर्माण किया जाता है। इस अधिनियम में दी गयी परिभाषा बैंक की कानूनी परिभाषा मानी जाती है। कुछ कानूनी परिभाषायें निम्नवत हैः

1. भारतीय विनिमय साध्य विलेख अधिनियम (Indian Negotiable Instrument Act) के अनुसार "बैंकर के अन्तर्गत बैंकिंग का कार्य करने वाला प्रत्येक डाकघर बचत बैंक तथा व्यक्ति को सम्मिलित किया जाता है"।
2. इंग्लेण्ड के विनिमय बिल विधान (1882) के अनुसार "बैंकर के अन्तर्गत बैंकिंग का कार्य करने वाले व्यक्तियों का एक समूह, चाहे वह समामेलित हो अथवा नहीं को सम्मिलित किया जाता है"।
3. भारतीय बैंकिंग अधिनियम के अनुसार "बैंक वह है जो बैंकिंग का व्यवसाय करे। बैंकिंग से तात्पर्य ऋण देने या विनियोग के लिए जनता से जमा स्वीकार करने से है जो माँग पर लौटाया जायेगा और और चैक, ड्राफ्ट या आदेश द्वारा निकाला जा सकेगा।

10.2.2 बैंकों के कार्यों के आधार पर परिभाषा :–

कार्यों के आधार पर बैंक की परिभाषा निम्नवत है :

1. भारतीय बैंकिंग कम्पनीज एक्ट 1949 की धारा 5(b) के अनुसार "बैंक अथवा बैंकिंग कम्पनी वह है जो ऋण देने के लिए अथवा निवेश करने के लिए जनता से मुद्रा की जमा राशियों का स्वीकार करती है जिन्हें माँगे जाने अथवा किसी अन्य प्रकार से लौटाया जा सके तथा चैक, ड्राफ्ट, आदेश अथवा किसी अन्य प्रकार से निकाला जा सके।" इस परिभाषा में मुख्य रुप से बैंकों के कार्यों में ऋण स्वीकृत करना तथा जनता से मुद्रा के रुप में निक्षेप स्वीकारने को प्राथमिकता प्रदान की गई है, परन्तु बैंक अपने इन मूलभूत कार्यों के अतिरिक्त भी विभिन्न महत्वपूर्ण कार्य करता है जिनका उल्लेख निम्नाँकित परिभाषाओं में किया गया है।
2. हार्ट के अनूसार "बैंकर वह व्यक्ति है जो अपने साधारण व्यवसाय के अन्तर्गत लोगों की मुद्रा जमा करता है, जिससे वह व्यक्तियों के चैकों का भुगतान करता है, जिन्होंने इसे जमा किया है अथवा जिनके खातों में जमा किया गया है।"
3. किनले के अनुसार "बैंक एक ऐसी संस्था है जो ऋण की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुऐ ऐसे व्यक्तियों को उधार देती है जिन्हें उसकी आवश्यकता होती है तथा जिसके पास व्यक्तियों द्वारा अपनी अनिरिक्त मुद्रा जमा की जाती है।" इस परिभाषा में भी बैकिंग व्यवसाय के केवल दो कार्यों का ही उल्लेख किया गया है।
4. इंग्लेण्ड के प्रसिद्ध बैंकिंग वेत्ता सर जॉन पेजर (Sir John Pager) के अनुसार किसी भी व्यक्ति अथवा संस्था को तभी बैंकर कहा जा सकता है जब वह निम्नाँकित कार्य कर रहा हो।

- स्थाई जमा स्वीकार करना,

- चालू जमा स्वीकार करना,
- चैकों का निर्वहन और भुगतान करना,
- ग्राहको के लिए रेखांकित (crossed) और अरेखांकित चैकों का संग्रह करना,
- उसे स्वयं को बैंकर क रुप में प्रसिद्ध करना चाहिए और लोगों को उसे इस रुप में स्वीकार करना चाहिए,
- अंततः बैंकिग उसका प्रमुख व्यवसाय होना चाहिए

  सर जॉन पेजर ने अपनी परिभाषा में बैंकों के कार्यों को स्पष्ट करने पर जोर दिया है तथा इस परिभाषा से बैंकों के मुख्य कार्यों को स्पष्ट करने में आसानी रही है लेकिन बैंक का एक मुख्य कार्य 'ऋण लेना ' पेजर अपनी परिभाषा में सम्मिलित नहीं कर सके।

10.2.3 साख व्यवस्था करने वाली संस्थाओं के आधार पर परिभाषा :–

बैंकों के साख व्यवसाय के आधार पर निम्न परिभाषा दी गई है :

1. हारेस के अनुसार बैंकों को "साख का निर्माणकर्ता तथा विनिमय की सुविधा प्रदान करने वाला यंत्र कहा है।"
2. फिंडले शिवराज के अनुसार "बैंकर वह व्यक्ति, फर्म या कम्पनी है जिसके पास ऐसा कोई व्यापारिक स्थान हो जहाँ मुद्रा की जमा द्वारा साख का कार्य किया जाता है और जिसका ड्राफ्ट, चैक या आदेश द्वारा भुगतान किया जाता है जहाँ स्टॉक, बान्ड, बुलियन या विपत्रों पर मुद्रा उधार दी जाती है या जहाँ प्रतिज्ञापत्र (Promissory Note) बट्टे पर बेचने के लिए दिये जाते हों।" इस परिभाषा में बैंक के साख निर्माण कार्य से लेकर लगभग सभी महत्वपूर्ण कार्यों पर जोर दिया गया है। यद्यपि इसमें भी यह नहीं बताया गया है कि बैंक व्यापार की वित्त व्यवस्था तथा मुद्रा का विनिमय भी करता है।
3. वाल्टर लीफ के अनुसार "बैंक वह व्यक्ति या संस्था है जो हर समय जमा के रुप में मुद्रा लेने को तैयार हो और उसे जमा करने वालों द्वारा लिखे गये चैकों से वापस करती हो।" यह परिभाषा भी सिर्फ बैंक के दो कार्यों तक ही सीमित है इसमें बैंक के साख निर्माण का जिक्र तक नहीं किया गया है।
4. सेमस के शब्दों में "बैंक एक ऐसी संस्था है जिसके ऋण अन्य लोगों के ऋणों के परस्पर भुगतान के लिए विस्तृत रुप से स्वीकार किये जाते हैं।
5. काउथर के अनुसार "बैंकर अपने तथा अन्य लोगों के ऋणों का व्यवसाय होता है।"
6. वेबस्टर के अनुसार "मुद्रा का व्यवसाय करने वाली वह संस्था जहाँ धन जमा, संरक्षण तथा निर्गमन होता है तथा ऋणों एवं कटौती की सुविधायें प्रदान की जाती हैं इसके साथ ही एक स्थान से दूसरे स्थान तक मुद्रा/राशि भेजने की व्यवस्था की जाती है।" इस परिमाण का वाक्य "मुद्रा का व्यवसाय करना" अपने आप में व्यापक है जो बैंक के अधिक कार्यों को सम्मिलित करता है।

उपरोक्त सभी परिभाषाओं का विश्लेषण कर यह निस्कर्ष निकलता है कि आज बैंकों का जो स्वरुप एक विशाल रुप में सामने आया है। किसी भी ज्ञाता ने बैंक के

सभी कार्यों को देखते हुऐ कोई पूर्ण परिभाषा नहीं दी है तथा अधिकतर परिभाषायें साख निर्माण के साथ–साथ कई अन्य कार्यों का जिक्र नहीं करती हैं।

10.3 बैंकों के विविध प्रकार (Types of Bank)

जैसा कि बैक की परिभाषाओं से हम अध्ययन कर चुके हैं कि बैंकिंग संस्थायें अनेक कार्य करती हैं परन्तु कुछ बैंकों का निर्माण कुछ विशेष प्रकार के कार्यों को करने के लिए ही किया जाता है। ये कुछ ही विशेष कार्यों को अधिक कुशलता तथा विशेष उद्देश्य या लक्ष्य की प्राप्ति के लिए करते हैं। इसी आधार पर (विशेषज्ञता/कार्यों) बैंकों का वर्गीकरण किया जाता है लेकिन इसका आशय यह नहीं हे कि एक वर्ग में रखा गया बैंक दूसरे किसी वर्ग के बैंक का कार्य नहीं कर सकता है। बैंकों को उनके प्रमुख कार्यों /उद्देश्यों के आधार पर निम्नवत वर्गीकृत किया जा सकता है।

10.3.1 वाणिज्यि बैंक (Commercial Bank)

वाणिज्यिक बैंक, बैंकिंग व्यवसाय करने वाली वह संस्थायें होती हैं जो जनता से छोटी तथा बड़ी बचतों को एकत्रित कर देश में उत्पादक व्यवसायों को प्रायः अल्पकालीन ऋण उपलब्ध कराते हैं। जमा स्वीकार करने तथा ऋण निर्गत करने के लिए एक मूल्य निश्चित किया जाता है जिसे ब्याज कहते हैं। जनता से स्वीकार की जाने वाली जमाओं पर बैंक एक निश्चित दर से ब्याज देते हैं तथा इन जमाओं को जमाकर्ता द्वारा माँगे जाने पर इन्हें वापस कर दिया जाता है यही कारण है कि ये बैंक देश के उत्पादकों की दीर्घकालीन ऋण की आवश्यकताओं को पूर्ण नहीं करते हैं। वाणिज्यिक बैंकों द्वारा निर्गत किये जाने वाले अल्पकालीन ऋण पर बैंकों द्वारा एक निश्चित दर से ब्याज लिया जाता है। भारत में निजी क्षेत्र में मिश्रित पूँजी बैंक (Joint Stock Bank) तथा सार्वजनिक क्षेत्र में स्टेट बैंक (State Bank) इसके सहायक बैंक तथा उन्नीस राष्ट्रीयकृत बैंक ही वाणिज्यिक बैंकों की श्रेणी में रखे गये हैं। ये बैंक जमा प्राप्त करने, व्यवसाय के लिए ऋण निर्गत करने के साथ–साथ बैंकों का संग्रह एवं भुगतान करने और ऐजेन्सी सम्बन्धी अनेक कार्य करता है। वाणिज्यिक बैंक कहलाने वाली संस्थाओं का निरन्तर विकास हो रहा है तथा यह सिर्फ वाणिज्यिक कार्यों के अतिरिक्त भी अनेक महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। इन संस्थाओं की प्रमुख विशेषता यह है कि मुद्रा के समान ही इनके द्वारा साख निर्माण तथा केन्द्रीय बैंक के नियमानुसार साख नियंत्रण का कार्य भी करते हैं। इन संस्थाओं/बैंकों को नोट छापने का अधिकार नहीं है परन्तु यह अपने जमाओं के आधार पर साख का निर्माण करते हैं।

10.3.2 औद्योगिक बैंक (Industrial Bank)

किसी भी देश के उद्योगों के निर्माण कार्यों को सुचारु रुप से चलाने के लिए मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन ऋणों की आवश्यकता होती है अतः उद्योगों के लिए मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन ऋणों की व्यवस्था करने वाली संस्थायें औद्योगिक बैंक कहलाती हैं। यह संस्थायें उद्योगों को ऋण निर्गत करने के साथ–साथ इन उद्योगों के अंश तथा ऋण पत्रों की बिक्री करवाकर इन उद्योगों को अपनी पूँजी प्राप्त करने में

मदद/सहायता करते हैं। उद्योगों के अंशों, ऋण पत्रों तथा बाण्डों को बिकवाने में इन संस्थाओं के द्वारा अभिगोपक (under writer) की प्रमुख भूमिका निभायी जाती है। सामान्यतः औद्योगिक बैंकों के तीन प्रमुख कार्य होते हैं–

- दीर्घकालीन जमा प्राप्त करना।
- औद्योगिक संस्थाओं की दीर्घकालीन ऋण की आवश्यकताओं को पूरा करना।
- परामर्श एवं सहायता देना (औद्योगिक कम्पनी के अंशों तथा ऋण पत्रों के क्रय विक्रय में सहायक की भूमिका निभाना तथा विभिन्न विषयों पर विशेषज्ञता से परामर्श देना इन संस्थाओं का एक महत्वपूर्ण कार्य है)।

भारत में औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Financial Corporation), राज्य वित्त निगम (State Finance Corporation) औद्योगिक विकास बैंक (Industrial Development Bank) आदि की स्थापना देश में औद्योगिक बैंकों के अभाव में की गई।

10.3.3 विदेशी विनिमय बैंक (Foreign Exchange Bank)

ऐसी बैंकिंग संस्थायें जिनका प्रमुख कार्य विदेशी मुद्रा का लेन देन तथा विदेशी व्यापार के लिए आवश्यक वित्तीय व्यवस्था करना होता है उन्हें विदेशी विनिमय बैंकों के नाम से जाना जाता है। यह संस्थायें विदेशी विनिमय बिलों का क्रय विक्रय कर अन्तराष्ट्रीय व्यापार का भुगतान करती है। इस प्रकार के बैंकों की अपनी शाखायें विश्व के विभिन्न देशों में फैली होती हैं, जिनके माध्यम से यह विदेशी व्यापार हेतु अर्थ प्रावधान तथा उनके पारस्परिक लेन–देन का भुगतान करते हैं। इन बैंकों की स्थापना के लिए प्रायः अधिक पूँजी तथा अधिक कुशल प्रबन्धन तथा कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। विदेशी व्यापार के विभिन्न देशों में विस्तार तथा विभिन्न देशों में अलग–अलग मुद्रा के चलन से इसके भुगतान में समस्यायें उत्पन्न होती हैं। इस समस्या का समाधान विदेशी विनिमय बैंक द्वारा एक देश की मुद्रा को दूसरे देश की मुद्रा में परिवर्तित कर दिया जाता है जिसमें अनेक देशों में फैली इन बैंक की शाखाओं द्वारा सहायता प्रदान की जाती है। ऐसे बैंक विदेशी विनिमय तथा विदेशी व्यापार में सहायक होने के साथ–साथ अन्य बैंकिंग कार्य भी करते हैं। अनेक देशों में विदेशी मुद्रा का लेन–देन वाणिज्यिक बैंकों द्वारा ही किया जाता है परन्तु भारत में इस कार्य के लिए अलग से विदेशी विनिमय बैंकों की स्थापना की गयी है। इस तरह के अधिकांश बैंक विदेशी स्वामित्व में हैं।

10.3.4 बचत बैंक (Saving Bank)

समाज की छोटी–छोटी बचतों के प्रोत्साहन के लिए बचत बैंकों की स्थापना की जाती है। पाश्चत्य देशों में यह दंखने को मिलता है तथा यह बचत बैंक वाणिज्यिक बैंकों के निर्देशानुसार ही कार्य करते हैं, परन्तु भारत में यह कार्य सीधे वाणिज्यक बैंकों द्वारा ही किया जाता है। यहाँ अलग से बचत बैंकों की स्थापना नहीं की गयी है। भारत में वाणिज्यिक बैंक ही बचत खातों का संचालन तथा इन बचतों को प्रोत्साहित करने का कार्य करते हैं।

भारत के साथ–साथ इंग्लेण्ड में भी डाक घर लोगों की बचत जमा के रुप में स्वीकार करते है। बचतकर्त्ता अपनी आवश्यकतानुसार बचत से पैसा निकाल भी सकता है। इन बचतों पर डाकघर द्वारा ब्याज दिया जाता है। भारत में बचतों को प्रोत्साहित करने के लिए जहाँ वाणिज्यक बैंक स्थापित नहीं हैं, वहाँ डाकघरों द्वारा यह कार्य किया जा रहा है।

10.3.5 कृषि बैंक (Agriculture Bank)

व्यापारिक तथा औद्योगिक बैंकों द्वारा पूर्ण की जाने वाली वित्तीय ऋणों से पृथक् वित्तीय आवश्यकतायें होती हैं कृषि क्षेत्र की। अधिकतर व्यापारिक तथा औद्योगिक बैंक मुख्य रुप से व्यापार तथा उद्योगों का क्रमशः मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन ऋण उपलब्ध कराते हैं। कृषि क्षेत्र में कृषक को भी अल्पकालीन ऋणों (बीज, खाद, औजार आदि हेतु) तथा दीर्घकालीन ऋणों (कृषि भूमि में स्थायी सुधार हेतु) की समय–समय पर आवश्यकता पड़ती है । परन्तु कृषक सामान्यतः उस प्रकार की जमानत नहीं दे पाते जिस प्रकार वाणिज्यिक तथा औद्योगिक बैंक चाहते हैं। अतएव कृषि की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अलग प्रकार के बैंको की स्थापना करनी पड़ी। भारत में केन्द्र सरकार तथा केन्द्रीय बैंक के दिशानिर्देश पर वाणिज्यिक बैंक भी कृषि वित्त की उपलब्धता कराते हैं। सन् 1975 में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (Regional Rural Bank) स्थापित किये गये हैं। राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (National Bank For Agriculture aAnd Rural Development) के रुप में एक मुख्य संस्था का निर्माण 1982 में किया गया। भारत में कृषि बैंक मुख्य रुप से दो हैं

- सहकारी बैंक (Co-Operative Bank)
- भूमि विकास बैंक (Land Development Bank)

सहकारी बैंक (Co-Operative Bank) –

सहकारी बैंकों की स्थापना का प्रारम्भ जर्मनी में हुआ था। 1904 में भारत में 'सहकारी समिति एक्ट' के पारित होने के साथ सहकारी संस्थाओं का प्रारम्भ हुआ तथा समय–समय पर इन संस्थाओं के संगठनात्मक स्वरुप में परिवर्तन होता रहा। शहरों तथा ग्रामीण क्षेत्रों में सहकारी बैंकों की गतिविधियाँ/कार्यों में अन्तर पाया जाता है। शहरी क्षेत्रों में सहकारी बैंक वाणिज्यक बैंकों की भाँति कार्य करते हैं परन्तु ग्रामीण क्षेत्रों के लिए ग्रामीण सहकारी ऋण संस्थाओं की स्थापना की जाती है। अल्पकालीन ऋणों के लिए प्राथमिक कृषि समितियाँ (Primary Agriculture Credit Societies) गठित की जाती हैं। कृषक प्राथमिक समितियों के सदस्य होते हैं, ये समितियाँ सदस्यों को जमा स्वीकार करके तथा शेयर बेचकर पूँजी एकत्र करती हैं। इन समितियों की देखरेख के लिए तथा सहायता के लिए राज्य सहकारी तथा मध्यवर्ती (Central) बैंकों का संगठन किया जाता है जो प्रारम्भिक समितियों को ऋण प्रदान करते हैं। भारतीय बैंकिंग अधिनियम 1949 के अनुसार केवल शहरी सहकारी बैंक, राज्य सहकारी बैंक और जिला मध्यवर्ती सहकारी बैंक सहकारी सेवा के बैंक कहलाने के पात्र हैं।

भूमि विकास बैंक (Land Development Bank) –

भूमि सुधार बैंक के नाम से पहचानी जाने वाली यह ऐसी सहकारी, गैर सहकारी तथा अर्धसहकारी संस्थायें हैं जो भूमि को बन्धक रखकर भूमि सुधार के लिए दीर्घकालीन ऋण प्रदान करती है। इसलिए इन्हें भूमि बन्धक बैंक (Land Mortage Bank) भी कहा जाता था। इनका प्रारम्भ 1882 में फ्रॉंस से हुआ तथा कालान्तर में इनका प्रयोग विभिन्न देशों में किया गया। कुछ वर्ष पूर्व भारत में इन्हें भूमि विकास बैंक (Land Development Bank) कहा जाने लगा और अब इन्हें सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (Agriculture And Rural Development Bank) के रुप में जाना जाता है।

10.3.6 देशी या असंगठित बैंक (Indegenous Bank)

भारत में आधुनिक बैंकों के विविध रुपों के अतिरिक्त देशी बैंकों का अस्तित्व भी महत्वपूर्ण है। भारत जैसे विशाल देश, जहाँ कई लाख गाँव अस्तित्व में हैं तथा इन ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा की स्थिति ठीक न होने की वजह से इन असंगठित बैंकों का महत्व बढ़ जाता है। इनको महाजन, साहूकार, सर्राफ आदि नामों से भी जाना जाता है। भारतीय केन्द्रीय बैंकिंग जाँच समिति की रिपोर्ट के अनुसार "देशी बैंकर अथवा बैंक वह व्यक्ति अथवा व्यक्तिगत फर्म है जो जमा स्वीकारने, हुण्डियों मे व्यवसाय करने अथवा ऋण देने का कार्य करते हैं।" यह भारत के प्रत्येक हिस्से में उपस्थित हैं तथा कृषि व व्यापार की अल्पकालीन ऋणों की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। यह बैंक अन्य बैंकों से भिन्न इसलिए होते हैं क्योंकि इनकी जमा राशियाँ या तो बहुत कम होती हैं या नहीं होती हैं।

यह बैंक प्रायः ऊँची ब्याज दरें लेते हैं तथा किसानों पर जुल्म करने के साथ–साथ उनकी जमीनों को भी अपने कब्जे में ले लेते हैं। भारतीय बैंकिंग कम्पनी अधिनियम के अनुसार इनको बैंक अथवा बैंकर नहीं माना गया है और इन पर अधिनियम की व्यवस्थायें भी लागू नहीं होती हैं।

10.3.7 केन्द्रीय बैंक (Central Bank)

प्रत्येक बैंक का एक बैंक केन्द्रीय बैंक होता है तथा इसका मुख्य अस्तित्व इसके कार्यों से होता है। यह मुख्यतः देश की मुद्रा चलन का नियमन करता है। यह सरकार का बैंक होता है तथा सरकार की ओर से सभी भुगतान तथा प्राप्तियों को प्राप्त करता है इसके साथ ही यह विदेशी विनिमय पर भी नियंत्रण रखता है। यह देश के बैंकों का बैंक भी होता है। यह देश के आर्थिक स्थिति को देखते हुए विभिन्न नियम तथा कानूनों को अस्तित्व में लाकर देश की अर्थव्यवस्था को स्थिर या अग्रसर बनाये रखने का महत्वपूर्ण कार्य करता है। यह देश के बैंकों से अपने नकद कोषों का एक निश्चित प्रतिशत अपने पास जमा करवाता है। आर्थिक संकट काल में सरकार तथा बैंकों का अल्पकालीन ऋण उपलब्ध भी करता है। केन्द्रीय बैंक का देश की मुद्रा के निर्गमन पर एकाधिकार होता है। भारत में एक रुपये से अधिक मूल्य की प्रत्येक मुद्रा का निर्गमन केन्द्रीय बैंक (रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया) द्वारा किया जाता है। यह सरकार का वित्तीय अभिकर्ता होने के साथ–साथ बैंकों का बैंक, नियंत्रक,

अन्तिम ऋण दाता और मार्ग दर्शक होता है। केन्द्रीय बैंक का एक महत्वपूर्ण कार्य है आर्थिक आकड़ों को एकत्रित कर इनका प्रकाशन करना।

10.4 वाणिज्यक बैंकों की संगठनात्मक प्रणलियाँ (Organising Structure of Commercial Bank)

संगठनात्मक दृष्टि से वाणिज्यिक बैंकों को दो मुख्य भागों में विभाजित किया जाता है –

शाखा बैंकिंग (Branch Banking)

इकाई बैंकिंग (Unit Banking)

10.4.1 शाखा बैंकिंग (Branch Banking)

जैसा कि इसके नाम से ही ज्ञात होता है इस प्रणाली में देश में बैंक के एक प्रधान कार्यालय की उपस्थिति के साथ ही विभिन्न स्थानों पर इसकी शाखाओं की स्थापना की जाती है। अर्थात बैंक की शाखायें पूरे देश में फैली होती हैं। जर्मनी, फ्राँस, कनाडा, इंग्लेण्ड, आस्ट्रेलिया आदि देशों में इसी प्रकार की बैंकिंग व्यवस्था है। भारत में भी वाणिज्यक बैंकों की शाखायें पूरे देश में फैली हुई हैं। अमेरिका में शाखा बैंकिंग का आरम्भ 1909 में केलीफोर्निया में एक अधिनियम पारित कर हुआ था, इसके पश्चात यह निरन्तर उन्नति पर हैं।

शाखा बैंकिंग के कई लाभ होने के साथ–साथ कुछ हानियाँ भी हैं। इनके लाभों में श्रम विभाजन, बैंकिंग सेवाओं का विस्तार, व्यवसायिक जोखिम का भौतिक वितरण, सस्ती मुद्रा प्रेषण, देश की आर्थिक स्थिति का ज्ञान प्रमुख होने के साथ इसके विभिन्न हानियाँ, व्यय पूर्ण प्रणाली, एकाधिकार को प्रोत्साहन, लोच का अभाव, छोटे व्यापारियों की उपेक्षा, पिछड़े क्षेत्र के विकास में कठिनाई इत्यादि हो सकते हैं।

10.4.2 इकाई बैंकिंग (Unit Banking)

बैंकिंग व्यवसाय के इकाई बैंकिंग प्रणाली में एक बैंक का कार्य सामान्यतः एक ही कार्यालय तक सीमित रहता है। इस प्रणाली में प्रत्येक बैंक का अलग निगम होता है जो अपना कार्य नियमानुसार स्वतंत्रता से कर सकता है। केण्ट के अनुसार "इकाई बैंकिंग प्रणाली में प्रत्येक स्थानीय बैंकिंग संस्था एक पृथक निगम होती है जिसका पृथक पंजीकरण होता है और जिसकी स्वयं की पूँजी संचालक मण्डल तथा स्कन्धधारी होते हैं।" एक ही कार्यालय वाले इकाई बैंकिंग प्रणाली का चलन अमेरिका में बहुत प्रचलित है। यहाँ हजारों बैंक हैं जिनके अपने कार्यालय हैं। शाखा बैंकिंग व्यवसाय की तुलना में इकाई बैंकिंग प्रणाली का व्यवसाय क्षेत्र सीमित होता है तथा इकाई बैंकिंग प्रणाली में बैंकों के कार्यों का स्थानीय आर्थिक तथा सामाजिक संगठन के साथा एकीकरण होता है।

इकाई बैंकिंग प्रणाली में एक बैंक अपनी शाखायें एक निश्चित/सीमित क्षेत्र में खोल सकते हैं, लेकिन इनका विस्तार सीमित होता है। विभिन्न क्षेत्रों में धन हस्तान्तरण तथा अन्य कार्यों के लिए विभिन्न बैंकों के बीच समझौते किये जाते हैं जिसके अन्तर्गत एक बैंक दूसरे बैंक का प्रतिनिधित्व करता है। प्रबन्ध, निरीक्षण तथा नियंत्रण में सुविधा के साथ–साथ स्थानीय आवश्यकताओं पर आधारित होते हुए इस

प्रणाली के एकाधिकार पर रोक, कार्यकुशलता में वृद्धि, व्यवसाय पहल की प्रेरणा के साथ–साथ मुक्त उद्यम सिद्धान्त का लाभ पहुँचाती है।

10.5 वाणिज्यिक बैंकों के कार्य (Functions of Commercial Bank)

विश्व में बैंकिंग प्रणाली/व्यवसाय का विकास धीरे–धीरे हुआ है तथा बैंकों के वर्गीकरण में वाणिज्यक बैंक सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। इनके कार्यों का विस्तार भी धीरे–धीरे हुआ है। आधुनिक बैंकिंग व्यवसाय से पहले प्राचीनकाल में बैंकर केवल मुद्राओं का आदान–प्रदान ही करते थे, बाद में वह लोगों से ब्याज पर ऋण स्वीकार करने तथा ऋण प्रदान करने का कार्य भी करने लगे। धीरे–धीरे चैक, ड्राफ्ट का प्रयोग आरम्भ हुआ तथा अन्य साख पत्रों का विकास हुआ। आज वाणिज्यिक बैंकों के उद्देश्य तथा कार्य बहुमुखी तथा व्यापक हैं। व्यापारिक बैंक आज विश्वस्तर पर अपनी मजबूत साख बनाये रखते हुए, उत्कृष्ट ग्राहक सेवा, कर्मचारियों तथा अंशधारियों की संतुष्टि को लिए प्रतिबद्ध और विकास बैंकिंग की भूमिका पर लगातार बल दे रहे हैं। इसके अतिरिक्त यह बैंक उत्कृष्ट ग्राहक सेवा बैंक के प्रति लगाव एवं प्रतिबद्धता लाभीन्मुखता, सामूहिकता की भावना, जाखिम एवं नवोन्मेषिता, सतत ज्ञान अर्जन तथा नवीनीकरण और विश्वसनीयता पर विशेष ध्यान दे रहे हैं। वाणिज्यक बैंकों के आज के लक्ष्यों/उद्देश्यों को प्रप्त करने के लिए यह बैंक विविध प्रकार के कार्यों को अंजाम दे रहे हैं। इनके द्वारा किये जाने वाले विविध कार्यों को क्रमबद्धता से नौ मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है जो निम्नलिखित हैं :

1. जमा योजनायें (Deposit Schemes)

(अ) चालू खाता (Current Account)
(ब) बचत बैंक खाता (Saving Bank Account)
(स) निश्चितकालीन जमा खाता (Fixed Deposit Account)
(द) आवर्ती जमा खाता (Recurring Deposit Account)
(ई) मनी बॉक्स जमा स्कीम (Money Box Deposit Scheme)
(फ) किसान मित्र जमा योजना
(ज) वरिष्ठ नागरिकों के लिए जमा योजना (Deposit Scheme For Senior Citizens)
(च) गृह बचत खाता (Home Safe Saving Bank Account)

(अ) चालू खाता :–

यह खाता व्यवसायियों, कम्पनियों, सार्वजनिक संस्थाओं, उद्योगपतियों तथा ठेकेदारों के लिए अत्यधिक लाभप्रद होता है। स्वाभाविक रुप से इस सभी वर्ग के उपभोक्ताओं को दिन में कई बार पैसों का लेन–देन करना पड़ता है। इस प्रकार के खाते में जमाकर्ता एक दिन में कई बार पैसा जमा तथा निकाल सकता है। पैसा हमेशा चैक द्वारा ही निकाला जा सकता है। इस खाते का उपयोग करने वाले व्यक्ति के लेन–देनों का सारा हिसाब बैंक द्वारा रखा जाता है और बैंक खाते के विवरण को प्रत्येक माह के प्रथम सप्ताह में ग्राहक को उपलब्ध कराता है। साधारणतः चालू खाते की जमाओं पर बैंक द्वारा ब्याज नहीं दिया जाता है और कभी–कभी तो कुछ बैंक इस खाते पर प्रदान की जाने वाली विभिन्न सेवाओं के लिए सेवा व्यय वसूलते हैं। इस

खाते के धारक को इसमें एक न्यूनतम रकम को बनाये रखना पड़ता है। न्यूनतम रकम के सीमा से कम होने पर बैंक धारक से उस कम रकम पर उस अवधि का ब्याज वसूलता है। चालू खाते में जमा राशि को बैंक की माँग देनदारी (Demand Liability) कहा जाता है। इसका अर्थ है कि इस खाते मे जमा राशि/उपलब्ध राशि को धारक द्वारा माँगे जाने पर बैंक को देना होगा।

(ब) बचत बैंक खाता :–

बचत बैंक खातों का उद्गम कम आय वाले परिवारों, निम्न श्रेणी के लोगों, नौकरी पेशा व्यक्तियों में छोटी–छोटी रकमों को बचत में परिवर्तित करने के उद्देश्य से किया गया था, जिससे कम आय वर्ग की छोटी–छोटी बचतों को प्रोत्साहित किया जाय तथा इन अल्प बचतों को उत्पादक कार्यों मे लगाकर देश की अर्थव्यवस्था में हिस्सेदारी की जाय। इस प्रकार के खातों में सप्ताह में कई बार रकम जमा की जा सकती है, परन्तु एक या दो बार से अधिक नहीं निकाली जा सकती है। इन खातों से पैसा दो तरीकों से निकाला जा सकता है। एक है चैक द्वारा खाते से पैसा निकालना तथा दूसरा है पासबुक प्रस्तुत कर निकासी (Withdrawl) फार्म भरकर पैसा निकालना। सैद्धान्तिक रुप से बचत खातों में एक सीमा से अधिक रकम जमा नहीं की जा सकती है और यदि यह अनुमति बैंक देता भी है तो इस अधिक जमा रकम पर बैंक द्वारा ब्याज नहीं दिया जाता है। इन खातों के जमा पर अच्छा ब्याज दर मिलने के कारण यह वेतन भोगी तथा निम्न आय वर्ग वाले समुदायों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। हॉलाकि इन खातों पर निश्चितकालीन जमा की तुलना में ब्याज कम मिलता है।

(स) निश्चितकालीन जमा खाता :–

इसके नाम से ही प्रतीत होता है कि इस तरह के बचत/जमा खातों में रकम एक निश्चित अवधि के लिए जमा की जाती है। जमाकर्ता को रकम जमा की रसीद का प्रमाणमत्र दे दिया जाता है जिसमें जमाकर्ता को नाम, जमा की गई राशि, ब्याज की दर तथा जमा की अवधि स्पष्ट लिखी रहती है। यह प्रमाण पत्र (रसीद) हस्तान्तरणीय नहीं होती है तथा जमा अवधि समाप्त होने पर बैंक को दिखाने पर ही रकम निकाली जा सकती है। निश्चितकालीन जमा अवधि प्रायः 3 माह से 5 वर्ष तक के लिए हो सकती है। निश्चितकालीन जमाओं पर बैंकों द्वारा अधिक ब्याज दर से ब्याज दिया जाता है। कारण स्पष्ट है कि इन जमाओं का उपयोग बैंक एक निश्चित समय के लिए कर सकता है। इस रकम को बैंक ऋण देकर तथा अन्य उपयोगी कार्यो में लगाकर अधिक ब्याज कमाता है। इस प्रकार की जमा राशि को बैंक की ″काल देनदारी (Time Liability) कहा जाता है।

(द) आवर्ती जमा खाता :–

इस प्रकार के जमा खातों में ग्राहक द्वारा एक निश्चित समय के लिए प्रतिमाह एक निश्चित धनराशि जमा की जाती है तथा यह अवधि पूर्ण होने पर बैंक द्वारा मूलधन तथा ब्याज लौटाया जाता है। छोटी–छोटी बचतों को प्रोत्साहित करने के लिए इस तरह के जमा खातों का प्रयोग बैंकों द्वारा किया जाता है। ऐसा भी

देखने को मिलता है कि इन खातों में ग्राहक दैनिक आधार पर भी राशि जमा करते हैं।

(ई) मनी बॉक्स जमा स्कीम :–

बैंकों द्वारा चलाई जा रही इस योजना का लाभ सभी (भारतीय, अनिवासी भारतीय अवयस्क) अकेले तथा संयुक्त रुप से ले सकते हैं। इसकी अवधी न्यूनतम 12 माह से 120 माह तक हो सकती है तथा ग्राहक 100 रुपये मासिक से 1000 रुपये मासिक तक जमा कर सकते हैं। जमाकर्ता किसी भी माह को राशि के 10 गुने तक जमा कर सकता है।

(फ) किसान मित्र जमा योजना :–

निश्चिकालीन जमा योजना या सावधि जमा योजना के बहुत लोकप्रिय होने के साथ–साथ यह योजना उन जमाकर्ताओं की आवश्यकताओं के अनुरुप नहीं है जो समय–समय पर अपनी जमाओं को आंशिक रुप से निकालना चाहते हैं क्योंकि निश्चितकालीन जमा खातों में जमा रकम एक निशिचित अवधि के पश्चात ही निकालना सम्भव होता है। यदि इसे पहले निकालने की इजाजत बैंक द्वारा दी भी जाती है तो बैंक इस रकम से कटौती (Discount) काट लेते हैं। इसके साथ ही भारत या विश्व में ग्राहकों का एक समूह ऐसा है जो यह चाहता है कि उनके द्वारा जमा राशि का वह आवश्यकता पड़ने पर आंशिक रुप से निकाल भी लें तथा बाकी बची शेष राशि पर उन्हें ब्याज भी मिलता रहे। जमाकर्ताओं की इन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बैंकों ने ग्रामीण तथा अर्धशहरी क्षेत्रों मे स्थित सभी शाखाओं में किसान मित्र योजना लागू की है।

(ज) वरिष्ठ नागरिकों के लिए जमा योजना :–

21 मई 2002 को प्रारम्भ की गयी इस योजना का उद्देश्य वरिष्ठ नागरिकों के लिए अधिक ब्याज पर निकासी जमा योजना उपलब्ध कराना है। इस योजना का लाभ वह भारतीय नागरिक ले सकते हैं जिनकी उम्र 60 वर्ष या उससे अधिक है तथा इसके लिए बैंकों की वह सभी शाखायें अधिकृत हैं जहाँ वैयक्ति खण्ड स्वीकार्य है। इस योजना में जमा की न्यूनतम अवधि एक वर्ष है।

(च) गृह बचत खाता :–

घरों मे छोटी–छोटी बचतों को प्रोत्साहन देने के लिए कुछ बैंकों ने इस तरह की योजना का प्रारम्भ किया था। इस योजना के अन्तर्गत बैंकों द्वारा अपने ग्राहकों को गुल्लक (Safe) घर ले जाने के लिए दिये जाते हैं जिनमें वे समय–समय पर छोटी–छोटी बचत डालते हैं। गुल्लक की चाबी बैंक के पास होती है तथा गुल्लक के भर जाने पर या निश्चित अवधि के बाद गुल्लक को बैंक ले जाकर बैंक द्वारा खोला जाता है तथा जो रकम उससे निकलती है उसे ग्राहक के खाते में जमा कर दिया जाता है।

2. अग्रिम तथा ऋण योजनायें (Advances and Loan Schemes)

आधुनिक बैंकों में ग्राहकों द्वारा जमा कराई गई रकम रखी नहीं रहती है, इन जमाओं पर बैंक द्वारा निश्चित दर से ब्याज दिया जाता है इसलिए इस ब्याज को ग्राहकों को देने के लिए ब्याज कमाना भी पड़ता है। इसी कारण बैंक का दूसरा

महत्वपूर्ण कार्य है ग्राहकों को ऋण तथा अग्रिम देना। बैंकों के पास नकद जमाओं का कुछ भाग अपने पास रखकर बाकी जरुरतमन्द व्यवसायियों तथा कारोबारियों को ऋण के रुप मे दे दिया जाता है जिस पर बैंक द्वारा एक निश्चित दर से ब्याज दिया जाता है। यह ब्याज प्रत्येक दशा में जमाओं पर दिये जाने वाले ब्याज दर से अधिक होता है। बैंक अपने साधन बाँधने की बजाय अल्प अवधि ऋणों के रुप में चालू रखना चाहते हैं। बैंक सामान्यतः निम्नांकित प्रकार से ऋण प्रदान करते हैं :

(अ) ऋण तथा अग्रिम धन (Loans and Advances)

(ब) नकद साख (Cash Credit)

(स) अधिविकर्ष (Overdraft)

(द) विनिमय बिलों का भुगतान (Discounting of Bills)

(अ) ऋण तथा अग्रिम धन :–

बैंक द्वारा ग्राहकों को जब एक निश्चित रकम एक निश्चित अवधि के लिए दिया जाता है यह ऋण तथा अग्रिम धन कहलाता है। इस तरह के ऋण की अन्तिम किस्त ग्राहक द्वारा चुकाये जाने पर ही इसका अन्त होता है। साधारण भाषा में जब ग्राहक चैक से एकमुश्त रकम लेता है तथा इसका भुगतान छोटी–छोटी किस्तों में लगभग प्रतिमाह करता है जिस पर बैंक द्वारा एक दर से ब्याज लिया जाता है, ऋण तथा अग्रिम कहलाता है। जब बैंक द्वारा इस प्रकार का ऋण दिया जाता है तो बैंक उस ऋण से ग्राहक का खाता खोल लेता है, जिसमें किस्तों के भुगतान तथा ब्याज का हिसाब रखा जाता है। यह ऋण प्रायः जमानत पर दिया जाता है जो निश्चित अवधि के लिए होता है। ब्याज की दर का निर्धारण ग्राहक की साख, ऋण का उद्देश्य, अवधि इत्यादि पर निर्भर करती है।

(ब) नकद साख :–

इस व्यवस्था के अन्तर्गत बैंक अपने ग्राहक को एक निश्चित सीमा तक ऋण प्राप्त करने का अधिकार दे देता है। यह अधिकतम सीमा होती है तथा ग्राहक अपनी आवश्यकतानुसार इस सीमा तक ऋण ले सकता है तथा वापस भी कर सकता है। ब्याज उसी रकम पर लिया जाता है जो वास्तव में ऋणी के पास रहती है। इस तरह के ऋण के लिए व्यापारिक माल, बाण्ड तथा स्वीकृत प्रतिभूतियों की जमानत स्वीकार की जाती है।

(स) अधिविकर्ष :–

जब बैंक और ग्राहक के बीच हुए समझौते के अनुसार बचत खाता तथा चालू खाता रखने वाले ग्राहक अपने खाते में जमा रकम से अधिक रकम बैंक से निकालने का अधिकार रखते हैं, इसे अधिविकर्ष कहा जाता है। यह निकाली गयी अतिरिक्त (अधिक) रकम अधिविकर्ष कहलाती है जिस पर बैंक द्वारा ब्याज वसूला जाता है। यह सुविधा अधिकांश बैंकों द्वारा अपने चालू खाता धारकों को प्रदान की जाती है। इस पर वसूले जाने वाले ब्याज की दर सामान्यतया अधिक होती है। बैंक द्वारा यह सुविधा उचित जमानत पर विश्वसनीय ग्राहकों को दी जाती है।

(द) विनिमय बिलों का भुगतान :–

मुद्रती बिलों (Usance Bills) की अवधि पूर्ण होने से पहले यदि इन विनिमय बिलों का धारक इनका भुगतान चाहता है तो वह इन बिलों को बैंक से भुगतान करा सकता है, इस प्रक्रिया को बिलों का भुगतान कहा जाता है। बिलों पर भुगतान करने से पहले बैंक इस बात पर विशेष ध्यान देता है कि यह बिल व्यापारिक बिल ही होने चाहिए। बैंक द्वारा एक निर्धारित कटौती पर इनका भुगतान किया जाता है। भुगतान करते समय बिल की अवधि, बिल की रकम तथा बिल के जोखिम पर भी विशेष ध्यान दिया जाता है। इस सब के आधार पर ही बैंक द्वारा कटौती निर्धारित की जाती है।

3. लघु व्यवसाय के लिये वित्त (Finance to Small Traders)

लघु उद्योगों में वह इकाईयाँ सम्मिलित की जाती हैं जो वस्तुबओं के निर्माण (Manufacturing) उभिसंस्करण (Processing) परिरक्षण (Preservation) या सेवा परिचालन मं संलग्न हैं और जिनका मूल निवेश एक करोड़ रुपये से अधिक नहीं है और सेवा उद्यमों के क्षेत्र में पाँच लाख से अधिक नहीं है। इन व्यवसायों को तथा इनसे छोटे निवेशकों को बैंक वित्त प्रदान करता है। इन इकाईयों को ऋणों की आवश्यकता मुख्यतः दो प्रकार की जरुरतों हेतु पड़ती है :

(अ) स्थायी आस्तियों (जमीन, भवन, शंयत्र एवं मशीनें) खरीदने के लिए।

(ब) कार्यशील पूँजी (एक परिचालन चक्र को पूरा करने के लिए जैसे कच्चा माल, अधीनिर्मित माल, तैयार माल तथा देनदारी पे कनवेशित करने के लिए)।

बैंक इसके अतिरिक्त लघु व्यवसायियों को भी वित्त पोषण करता है। लघु व्यवसाय में निम्नांकित क्रियाकलापों में संलग्ल इकाईयों को सम्मिलित किया जाता है :

(i) व्यवसायिक एवं स्व–नियोजित व्यक्ति (ii) खुदरा व्यापारी (iii) व्यापारिक संचालन (iv) परिवहन संचालन इत्यादि।

4. साख का निर्माण करना (Credit Function)

साख निर्माण आधुनिक बैंकों का एक महत्वपूर्ण कार्य है जो किसी भी देश की अर्थव्यवस्था पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालता है। अधिक लाभ कमाने के लिए आधुनिक बैंक अपनी जमा राशि की कुल मात्रा तथा अंशपूँजी से अधिक ऋण देते हैं जिसका संभव होना साख निर्माण द्वारा ही होता है। वे अपने साधनों से कई गुना अधिक साख का निर्माण करते हैं। जब ग्राहक बैंकों से ऋण लेते हैं तो बैंक ऋण की राशि ग्राहक को नकद न देकर उसके खाते में जमा कर देता है। यह एक प्रकार से ग्राहक को ऋण देकर उसके खाते में राशि जमा करने का भी कार्य किया जाता है जिसके आधार पर वह बैंक अन्य ग्राहकों के ऋण की स्वीकृति दे सकता है।

5. कृषि बैंकिंग (Agriculture Banking)

कृषि के क्षेत्र में बैंक निम्नांकित तरीकों से कृषक का साथ निभाते हैं :

(अ) फसली ऋण (Crop Loan)

(ब) कृषि सावधि ऋण (Agriculture Term Loan)

(अ) फसली ऋण (Crop Loan) :-

भारत में विभिन्न केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा खाद्यान उत्पादन बढ़ाने के लिए कृषि क्षेत्र में आधुनिक एवं उन्नत तरीकों तथा नई प्रौद्योगिकी का प्रयोग करने के लिए

कई कार्यक्रम लागू किये गए हैं जिनमें किसानों को ऋण उपलब्ध कराकर वाँछित सहयोग देना महत्वपूर्ण है। इसके साथ ही सरकार द्वारा कृषि नीति बनाई गई तथा सरकारी कृषि नीति के अनुसार वाणिज्यक बैंकों का उद्देश्य है :

- बीज, खाद एवं कीटनाशक खरीदने के लिए किसानों को उनके कृषि क्षेत्र के अनुपातिक ऋण देना।
- किसानों को फसल की बुनाई से कटाई तक विभिन्न कार्यों में उपयोग आने वाली वस्तुओं के लिए अथवा सेवाओं के लिए आर्थिक मदद उपलब्ध कराना।
- डीजल खरीदने तथा विद्युत बिल भुगतान हेतु ऋण उपलब्ध कराना।
- ट्रेक्टर, सिचाई अथवा किसी अन्य उपकरण को किराये पर लिए जाने पर किराया चुकाने के लिए ऋण प्रदान कराना।

(ब) कृषि सावधि ऋण (Agriculture Term Loan) :–

वाणिज्यक बैंकों द्वारा जब कृषकों को किसी विशेष कृषि उद्देश्य के लिए सुनिश्चित अवधि के लिए जब ऋण स्वीकृत किया जाता है तो उस ऋण को कृषि सावधि ऋण कहते हैं। कृषि ऋण निम्नांकित उद्देश्यों के लिए दिया जा सकता है :–

- नई प्रौद्योगिकी के प्रयोग हेतु ऋण जिसका उद्देश्य कृषि उत्पादन एवं किसानों की आय में वृद्धि करना है।
- आर्थिक विकास को प्राप्त करने के लिए राष्ट्रीय योजनाओं के उद्देश्यों की पूर्ति करना।
- बेहतर आगत–निर्गत तालमेल एवं वृद्धिशील आय।

6. विदेशी मुद्रा का विनिमय (Foreign Exchange)

भारत के केन्द्रीय बैंक (रिजर्व बैक ऑफ इण्डिया) द्वारा निर्धारित नियमों के तहत भारत के वाणिज्यक बैंकों द्वारा विदेशी मुद्रा का विनिमय भी किया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का विकास तथा इसमें आने वाली बाधाओं को कम करना है। यद्यपि यह कार्य मुख्य रुप से विदेशी विनिमय बैंकों का है परन्तु भारत में वाणिज्यक बैंकों द्वारा इसमें काफी सहयोग किया जाता है।

7. अभिकर्ता सम्बन्धी कार्य (Agency Functions)

ग्राहकों के लिए बैंक अभिकर्ता सम्बन्धी विभिन्न कार्य करता है। अभिकर्ता सम्बन्धी कुछ कार्यों को बैंक द्वारा निःशुल्क तथा कुछ शुल्क लेकर किये जाते है। ऐसे कार्यों के लिए ग्राहक अपने बैंक को लिखित अनुमति प्रदान करने हैं। इस प्रकार के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं :

- ग्राहकों द्वारा भेजे गये चैक, ड्राफ्ट, विनिमय बिल तथा अन्य साख पत्रों का भुगतान एकत्र करना।
- ग्राहकों के आदेशानुसार बैंक उनके बीमा प्रीमियम, ब्याज, ऋण, चन्दा, कर आदि की किस्त का भुगतान करना।
- ग्राहकों के लिए लाभांश, ब्याज आदि वसूल करना।

- बैंक अपने ग्राहकों के लिए सरकारी प्रतिभूतियों, विभिन्न कम्पनियों के अंशों, ऋण पत्रों आदि के क्रय विक्रय करना।
- बैंक द्वारा अपने ग्राहकों की सुविधा के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर रकम भेजने की व्यवस्था करना।
- बैंक अपने ग्राहकों की सम्पत्ति के ट्रस्टी, व्यवस्थापक तथा प्रबन्धक का कार्य करते हैं।
- अपने ग्राहकों के लिए बैंक पासपोर्ट तथा यात्रा सम्बन्धी विदेशी विनिमय एवं अन्य सुविधाओं के लिए पत्र व्यवहार भी करते हैं।

8 . कोर बैंकिंग (Core Banking)

कोर बैंकिंग की शरुआत 2003 से की जा रही है। यह उच्च संचार तथा संप्रेषण तकनीक पर आधारित प्रणाली है जो व्यापार की दृष्टि से महत्वपूर्ण है जिसके माध्यम से शाखाओं के मध्य आँकड़ों और संदेशों का आदान–प्रदान तुरन्त किया जा सकता है। शाखाओं द्वारा इस माध्यम का उपयोग केन्द्रीय कार्यालय के सरकारी लेन–देन, ऐजेन्सी क्लिअरिंग तथा अन्य महत्वपूर्ण आँकड़ों के आदान–प्रदान तथा भुगतान के लिए किया जाता है।

देश के भीतर और विभिन्न देशों में आर्थिक एकीकरण, दूरसंचार, विनिमयन की उन्नति और इन्टरनेट के बेहतर प्रयोग से वित्तीय सेवाओं के स्वरुप और प्रकृति में नाटकीय परिवर्तन हुआ है। इलेक्ट्रानिक संचार के उपयोग में वृद्धि कागज लिखित के अतिरिक्त अन्य तरीकों के आधार पर विधि अन्तरण के कारण इलेक्ट्रानिक आधारित बैंकिंग कारोबार में वृद्धि हुई है।

10.4.9 विविध कार्य (Miscellaneous Functions)

उपयुक्त विभिन्न विशेषज्ञता सम्बन्धी कार्यों के अतिरिक्कत वाणिज्यक बैंकों द्वारा कुछ अन्य महत्वपूर्ण कार्य भी सम्पन्न किये जाते हैं। इन कार्यों का वर्णन निम्नलिखित वर्गों में किया गया है :

(अ) पत्र मुद्रा का निर्गमन :–

प्रत्येक देश के केन्द्रीय बैंक द्वारा अपने देश की मुद्रा का निर्गमन किया जाता है जिससे बैंकिंग व्यवसाय के नियमन तथा नियंत्रण आसान हुआ है। उन्नीसवीं सदी में प्रायः सभी देशों के व्यापारिक बैंक अपनी–अपनी देश की पत्र मुद्रा का निर्गमन किया करते थे। परन्तु अब केवल केन्द्रीय बैंक को यह अधिकार है

(ब) मूल्यवान वस्तुओं की हिफाजत/सुरक्षा :–

बैंक ग्राहकों के मूल्यवान वस्तुओं, आभूषणों, दस्तावेजों की सुरक्षा हेतु लॉकर्स सुविधा देते हैं। लॉकर एक प्रकार का लोहे का स्टॉग रुम है जिसकी दो चाबियाँ होती हैं। इनमें से एक चाबी बैंक के पास तथा दूसरी चाबी ग्राहक के पास रहती है। दोनों चाबियों की सहायता से ही लॉकर खोला या बन्द किया जा सकता है। इस सुविधा के लिए बैंक ग्राहकों से सेवा देते का किराया लेता है।

(स) आन्तरिक तथा विदेशी व्यापार का अर्थ प्रबन्धन :–

वाणिज्यिक बैंक देशी तथा विदेशी विनिमय बिलों पर अपनी स्वीकृति देकर, कटौती कर या उनकी प्रतिभूति पर अल्पकालीन ऋण देकर आन्तरिक एवं विदेशी व्यापार के वित्त प्रबन्धन में सहायता प्रदान करते हैं।

(द) आँकड़े एकत्रित एवं प्रकाशित करना :–

कई बैंक देश के विभिन्न आर्थिक मामलों/पहलुओं की स्थिति एवं विकास के सम्बन्ध को आँकड़े एकत्रित कर प्रकाशित करते हैं, जिससे विभिन्न आर्थिक पहलुओं की आपसी तुलना आसान होती है तथा समग्र स्थिति को समझना भी सरल होता है।

(ई) यात्री चैक जारी करना :–

यात्रा में नकद राशि ले जाने के कई नुकसान हाते हैं या हो सकते हैं। यात्रा में नकद धन ले जाने के जोखिम को कम करने के लिए बैंक ग्राहकों के लिए यात्री चैक जारी करते हैं जो देशी तथा विदेशी दोनों प्रकार के होते हैं और उन्हें बैंक द्वारा अधिकृत ऐजेन्सी द्वारा कहीं भी चुकाया जा सकता है।

(फ) ग्राहकों को विदेशी विनिमय एवं पासपोर्ट देना :–

बैंक अपने ग्राहकों को विदेशी विनिमय के लेन देन में सहायक होने के साथ उनके पासपोर्ट की व्यवस्था करने में भी सहायता प्रदान करते है।

(ज) सरकारी ऋणों की व्यवस्था :–

सरकार द्वार जारी किये गए ऋणों की बिक्रि की व्यवस्था भी देश के वाणिज्यक बैंकों द्वारा किया जाता है।

(च) राष्ट्रीय चन्दे संग्रह करने का कार्य :–

बाढ़ पीड़ितों हेतु कोष, सुरक्षा कोष, प्राकृतिक आपदा प्रबन्धन कोष आदि द्वारा राष्ट्रीय चन्दे संग्रह करने का कार्य भी बैंकों द्वारा किया जाता है।

(छ) क्रेडेट तथा डेबिट कार्ड जारी करना :–

इन्हें प्लास्टिक मनी या स्मार्ट मनी की संज्ञा भी दी जाती है। क्रेडिट कार्ड का धारक इसका प्रयोग करने पर बैंक का ऋणी हो जाता है। एक निर्धारित अवधि तक पैसा वसूल न होने पर बैंक ब्याज वसूलता है। डेबिट कार्ड का प्रयोग करने पर ग्राहक के बैंक खाते से स्वतः ही विक्रेता को भुगतान प्राप्त हो जाता है।

10.6 बैंक की कार्यप्रणाली तथा स्थिति विवरण (Banking Operations And Balance Sheet)

विश्व के सभी बैंकों का प्रमुख मार्य साख तथा मुद्रा का लेनदेन करना है। बैंकों की कार्यप्रणाली को समझने के लिए यह अतिआवश्यक है कि हम यह जान लें कि बैंक किस प्रकार पूँजी की व्यवस्था करते हैं और किस प्रकार बैंकों द्वारा उसका लाभकारी निवेश किया जाता है।

10.6.1 बैक पूँजी के साधन (Sources of Capital for Banks)

बैंक के पास पूँजी प्राप्त करने के निम्नांकित साधन हैं –

अंश पूँजी (Share Capital) :–

प्रायः कम्पनियों का मुख्य साधन पूँजी प्राप्ति का अंश होता है। आधुनिक बैंकों का संगठन प्रायः संयुक्त पूँजी कम्पनियों (Joint Stock Companies) के रुप में किया

जाता है। इसलिए यह बैंक अन्य कम्पनियों की तरह अंश (Share) बेचकर अपनी पूँजी प्राप्त करने हैं। अंश का अर्थ यहाँ पर किसी भी बैंक के पूँजी के सबसे छोटे हिस्से से लिया गया है। बैंकों की पूँजी की मात्रा के सम्बन्ध में बैंक का संचालक मण्डल निर्णय लेता है। बैंक की पूँजी मूलतः अधिकृत पूँजी (Authorised Capital) निर्गमित पूँजी (Issued Capital) स्वीकृत पूँजी (Subscribed Capital) और माँगी गई पूँजी (Called Up Captal) तथा प्रदान पूँजी (Paid Up Capital) के रुप में विभाजित किया जाता है। अधिकृत पूँजी से तात्पर्य उस अधिकतम राशि से है जो बैंक द्वारा अपने पूर्ण जीवनकाल में बाजार में निर्गमित कर सकता है। अधिकृत पूँजी का वह भाग जो बैंक द्वारा अपनी आवश्यकताओं हेतु बाजार में निर्गमित करने का निर्णय लिया गया है निर्गमित पूँजी कहलाता है। निर्गमित पूँजी का वह भाग जो जनता द्वारा खरीदा गया है स्वीकृत पूँजी कहलाता है। स्वीकृत पूँजी का वह भाग जो बैंक द्वारा अपने अंशधारियों से माँग लिया गया है माँगी गई पूँजी कहलाता है। माँगी गई पूँजी का वह भाग जो अंशधारियों द्वारा दिया जा चुका है प्रदत्त पूँजी कहलाता है। स्वीकृत अंशों की पूरी रकम माँग तत्काल करने से स्वीकृत/माँगी गई तथा प्रदत्त पूँजी में अन्तर समाप्त हो जाता है। बैंक की वास्तविक पूँजी प्रदत्त पूँजी ही होती है।

जमाराशियाँ (Deposits) :–

जनता से प्राप्त की गई जमाराशियाँ बैकों द्वार पूँजी प्राप्त करने का दूसरा प्रमुख साधन है। सभी बैंकों द्वारा अपने ग्राहकों के विभिन्न प्रकार के जमा खाते खोले जाते हैं तथा उनमें जमा राशियाँ स्वीकार की जाती हैं। विभिन्न प्रकार के खातों के विभिन्न नियम निर्धारित होते हैं। इन खातों में मुख्य रुप से स्थायी जमा खाते तथा चालू खाते होते हैं तथा प्रख्यात बैंकों के पास स्थायी या बचत बैंक खातों में जमाराशियों के रुप में प्रयाप्त पूँजी एकत्र हो जाती है।

ऋण (Loan) :–

मूलतः बैंक के पास दो तरह के ऋण होते हैं। प्रथम – ग्राहकों द्वारा विभिन्न खातों में जमा राशियाँ भी एक प्रकार से बैंक के लिए ऋण ही होता है, क्योंकि यह एक समय बाद ग्राहकों को ब्याज के साथ वापस करना होता है। दूसरा – असाधारण परिस्थितियों में बैंक अन्य बैंकों (केन्द्रीय बैंक, सरकार, वित्तीय संस्थाओं) से भी ऋण प्राप्त करता है। इस प्रकार के ऋण की आवश्यकता बैंक द्वारा अपने ग्राहकों की माँग को पूरा करने के लिए किया जाता है। प्रायः यह ऋण अल्पकालीन होता है तथा मौसमी माँग में वृद्धि से उत्पन्न स्थिति के सामान्य होने पर लौटा दिया जाता है।

साख सृजन (Credit Creation) :–

मूलतः साख को पूँजी नहीं माना जा सकता है परन्तु प्रत्येक बैंक साख के सृजन द्वारा पूँजी की अधिक पूर्ति कर पाने में सफल होते हैं।

सुरक्षित कोष (Reserves) :–

बैंकिंग व्यवस्था भी अन्य व्यवसायिक कम्पनियों की तरह अपने द्वारा कमाये गये सम्पूर्ण लाभ को अंशधारियों में नहीं बाँटते हैं। प्रत्येक बैंक अपने लाभ का एक

बड़ा हिस्सा सुरक्षित कोष के रुप में रखता है, जो एकत्रित होकर कुछ ही वर्षों में एक बड़ी रकम हो जाती है। भारत में बैंकिंग अधिनियम 1949 की धारा 17 के अनुसार प्रत्येक बैंक को अपने लाभ का कम से कम 20 प्रतिशत सुरक्षित कोष में रखना पड़ता है।

10.6.2 बैंकों द्वारा धन का निवेश (Investment By Banks)

बैंकिंग व्यवसाय के लिए यह आवश्यक है कि बैंक में ग्राहकों द्वारा जमा राशियों का बेहतर प्रयोग किया जाए क्योंकि इन जमा राशियों पर बैंकों द्वारा ब्याज दिया जाना होता है, अतः बैंकों के लिए यह आवश्यक है कि इन जमा राशियों का निवेश इस प्रकार किया जाए कि वह देने वाली ब्याज दर से अधिक ब्याज अर्जित करें। विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त पूँजी बैंकों द्वारा लाभ कमाने के लिए निवेश की जाती है। परन्तु यह आवश्यक नहीं की बैंक द्वारा किया गया प्रत्येक निवेश हमेशा लाभप्रद हो। विभिन्न देशों में आर्थिक परिस्थितियाँ तथा बाजार दशा में भिन्न–भिन्न होने के कारण, वहाँ बैंकों के निवेश सम्बन्धी विशेष नियम नहीं बनाए गये हैं। परन्तु निम्नलिखित सामान्य सिद्धान्त के आधार पर पूँजी का निवेश करने से बैंक अपने कोषों को सुरक्षित निवेश कर लाभ कमा सकते हैं।

1. तरलता (Liquidity)

तरलता से तात्पर्य आवश्यकता पड़ने पर नकद मुद्रा की उपलब्धता से है। सामान्यतः जनता समझती है कि बैंक से जब अपनी जमा राशियाँ माँगी जायेंगी तभी वह वापस मिल जायेंगी। इसके लिए आवश्यक है कि बैंक आवश्यकतानुसार जमा राशि को नकद मुद्रा में परिवर्तित करने की क्षमता रखे। बैंक का सर्वाधिक तरल साधन नकद कोष है इसलिए साधारण परिस्थितियों में बैंक अपनी कुल जमाओं का 20–25 प्रतिशत नकद कोषों के रुप में रखते हैं। इसके उपरान्त बैंक उन निवेशों को तरलता के लिए प्राथमिकता देते हैं, जिसमें बिना क्षति के स्थानपरिवर्ति साध्यता (Shiftability Without Loss) का गुण हो। बैंक की तरलता को ध्यान में रखते हुए उन्हीं सरकारी प्रतिभूतियों तथा व्यवसायिक पत्रों में निवेश करना चाहिए, जो कुछ आवश्यक शर्तों की पूर्ति करते हैं तथा केन्द्रीय बैंक द्वारा पुनः कटौती के लिए स्वीकार किये जाते हैं।

2. निधि की सुरक्षा (Safety of Funds)

प्रत्येक बैंक का अस्तित्व ही निधि (Funds) से है, अतः जमा राशियों को निवेश करते समय निधि की सुरक्षा (Safety of funds) प्रत्येक बैंक का प्रथम उद्‌देश्य होता है, क्योकि निधि के सुरक्षित न रहने पर बैंक का अस्तित्व ही खतरे में पड़ सकता है। निधि की सुरक्षा करने के लिए निवेश करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए :

(अ) बैंक द्वारा अपना सारा कोष/धन एक ही व्यवसाय या एक ही तरह के व्यवसाय में निवेश नहीं करना चाहिए।

(ब) बैंक को अधिकतर अपने नकद कोषों को दीर्घकालीन ऋणों में निवेश नहीं करना चाहिए।

(स) बैंकों द्वारा सस्ती साख नीति नहीं अपनायी जानी चाहिए ताकि ऋणियों मे अपव्यय की भावना उत्पन्न न हो।

(द) ऋणी द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली जमानत तथा ऋणी के आचरण का भली भाँति जाँच–पड़ताल कर लेना चाहिए।

3. लाभदायकता (Profitability)

बैंकिंग व्यवसाय तभी सफलतापूर्वक चल सकता है जब बैंक अपने निवेश पर लाभ कमा सकें। बैंकों द्वारा प्रयाप्त लाभ कमाने के उपरान्त ही बैंक ग्राहकों द्वारा जमा राशि पर ब्याज दे सकता है। इसलिए बैंकों को अपने धन का इस प्रकार निवेश करना चाहिए कि उसे नियमित रुप से पर्याप्त मात्रा में लाभ प्राप्त होता रहे। इस संदर्भ में यह कहना/समझना उचित होगा कि तरलता तथा लाभदायकता दोनों एक दूसरे के विपरीत होते हैं। तरलता अधिक होने पर लाभदायकता कम तथा तरलता कम होने पर लाभदायकता अधिक होती है। जैसे नकद कोष पूर्णतः तरल साधन है परन्तु इनसे कोई लाभ प्राप्त नहीं होता है। दूसरी ओर दीर्घकालीन निवेश अधिक लाभदायक होते हैं परन्तु यहाँ तरलता का अभाव होता है। बैंकिंग व्यवसाय में यह अतिआवश्यक है कि वह तरलता तथा लाभदायकता में सन्तुलन स्थापित करे तथा अधिक लाभ के लालच में बैक तरलता के सिद्धान्त की अवहेलना करें।

4. जोखिम का विभिन्निकरण (Diversification of Risk)

एक ही प्रकार का निवेश हमेंशा ही जोखिम भरा रहता है इसलिए विशेषकर बैंकिंग व्यवसाय में यह ध्यान रखना चाहिए कि वह एक ही प्रकार के साधनों में निवेश न करें। बैंकों को अपना धन विभिन्न प्रकार के व्यवसायों, प्रतिभूतियों, अंशों तथा ऋणपत्रों आदि में लगाना चाहिए ताकि यदि कुछ निवेशों मे हानि होती है तो उस हानि को अन्य निवेशों के लाभ से पूरा किया जा सके। इसी प्रकार अधिकांश ऋण एक ही व्यक्ति या व्यवसाय को देने की बजाय छोटे–छोटे ऋण विभिन्न व्यक्तियों तथा व्यवसायों को देने चाहिए। इन सिद्धान्तों का पालन कर बैंकों द्वारा अपने कुल जोखिम को विभक्त किया जा सकता है।

5. प्रतिभूतियों की विक्रेयता (Marketability of Securities)

प्रतिभूतियों की विक्रेयता से यहाँ तात्पर्य है कि बैंक उनके द्वारा खरीदी गई प्रतिभूतियों को कितनी जल्दी आवश्यकता पड़ने पर बेच सकते हैं। सुरक्षा तथा तरलता की दृष्टि से ऐसी प्रतिभूतियों में निवेश करना अच्छा रहता है, जिन्हें आवश्यकता पड़ने पर आसानी से बाजार में बेचा जा सकता हो। प्रतिदिन कम्पनियों के अंशों, ऋणपत्रों, विनिमय साक्ष्य साख पत्रों, सरकारी प्रतिभूतियों तथा उत्तम श्रेणी की व्यवसायिक प्रतिभूतियों में बैंकों का निवेश करना अच्छा समझा जाता है। इसके विपरीत अचल सम्पत्ति की जमानत पर दिया गया ऋण अच्छा नहीं माना जाता है। इन सब से अलग कुछ और भी सामान्य बातें बैंकों को अपने निवेश करते समय ध्यान में रखनी चाहिए जैसे यथासम्भव निवेश ऐसी प्रतिभूतियों या वस्तुओं मे किया जाना चाहिए जिनकी कीमतों में अपेक्षाकृत अधिक स्थिरता रहती है। निवेश की जाने वाली प्रतिभूतियाँ ऐसी हों जो आयकर से मुक्त हों या कर कम लगाया जाता हो। बैंकों की

निवेश नीति हमेशा केन्द्रीय बैंक या सरकार द्वारा निर्धारित नियमों के आधार पर बनायी जानी चाहिएं।

10.6.3 बैंकों का स्थिति विवरण (Balance Sheet of Bank)

किसी एक तिथि को बैंकों की देसता (Liabilities) एवं सम्पत्तियों या आस्तियों (Assets) को एक साथ दर्शाने को बैंक का स्थिति विवरण (Balance Sheet) कहते हैं। वाणिज्यक बैंकों की दृष्टि से इस ″स्थिति विवरण″ का बड़ा महत्व है। इसमें भूतकालीन आय की स्थिति स्पष्ट होन के साथ–साथ बैंक के भविष्य में आय सृजित करने की क्षमता का भी अनुमान लगाया जा सकता है। किसी भी संस्था की आर्थिक स्थिति ज्ञात करने के लिए उसके स्थिति विवरण का आकलन अनिवार्य है परन्तु इस प्रकार के विवरण का महत्व बैंकों के लिए अधिक है । क्योंकि बैंक का मुख्य कार्य लेन–देन का व्यापार है और उसे अपनी देनदारी तथा लेनदारी को समतुल्य करना पड़ता है। क्राउथर ने लिखा है ″बैंक का सम्पूर्ण व्यवसाय उसके स्थिति विवरण में होता है। इसके अतिरिक्त स्थिति विवरण का यह भी गुण होता है कि उसे एक दृष्टि देखने से वे अनुपात प्रकट हो जाते हैं जिन पर बैंक कार्य कर रहा होता है।″

भारत में बैंकिंग अधिनियम 1949 के अनुसार बैंकों को प्रत्येक वर्ष के अन्त में अपना स्थिति विवरण प्रकाशित करना पड़ता है। स्थिति विवरण में दो खाने होते है जिन में बाँयी ओर बैंक की पूँजी तथा दायित्व (Capital And Liabilities) तथा दायीं ओर बैंक की सम्पत्ति एवं आस्तियाँ (Properties And Assets) का विवरण दर्शाया जाता है। स्थिति विवरण के दोनों खानों का कुल योग हमेशा बराबर होना चाहिए। भारत में वाणिज्यक बैंकों के स्थिति विवरण का स्वरुप कानून द्वारा निर्धारित है और प्रत्येक बैंक को एक निश्चित अवधि के बाद इसे तैयार कर प्रकाशित करना पड़ता है। स्थिति विवरण का प्रारुप निम्नांकित होता है।

बैंक के स्थिति विवरण का नमूना (Specimen of Balance Sheet of Bank)

	पूँजी एवं दायित्व (Capital & Liabilities)	राशि (Amount)		सम्पत्ति एवं आदेय (Property & Assets)	राशि (Amount)
1.	पूँजी (Capital) अधिकृत पूँजी (Authorised Capital) निर्गमित पूँजी (Issued Capital) प्रार्थित पूँजी (Subscribed Capital) परिदत्त पूँजी (Paid up Capital) अधिमान प्राप्त अंश (Preference Shares) अस्थगित अंश (Deferred		1.	हस्तगत नकदी, रिजर्व बैंक तथा स्टेट बैंक में (Cash in hand and with Reserve Bank of India and State Bank of India)	

	Shares)				
2.	रक्षित कोष तथा अन्य रक्षित धन (Reserve Funds & Other Funds)		2.	अन्य बैंकों के पास धन चालू खातों में (Balance with other banks in current accounts)	
3.	जमाऐं तथा अन्य खाते (Deposits & other accounts)		3.	माँग पर अथवा अल्पसूचना राशि (Money at call & at short notice)	
4.	अन्य बैंकों, अभिकर्ताओं आदि के ऋण (Borrowing from other banks & agents)		4.	निवेश–लागत, भाव या उससे कम पर (Investment at or below cost) केन्द्रय तथा राज्य सरकारों की प्रतिभूतियाँ तथा अन्य न्यासधारी प्रतिभूतियाँ केन्द्र व राज्यों के ट्रेजरी बिल सहित (Securities of Central or State Govt. & other trustee securities, including tressury bills of central and State Govt.) पूर्णदत्त अंश (Fully paid shares) आंशिक दत्त अंश (Partly paid shares) ऋण पत्र तथा बाण्ड (Debentures &Bonds) अन्य निवेश (Other investments) स्वर्ण (Gold)	
5.	शोधनीय बिल (Bills payable)		5.	अग्रिम, ऋण, नकद साख, अधिविकर्ष इत्यादि (Advances, Loans, Cash Credit, Overdraft)	
6.	वसूली हेतु बिल, विपरीत ओर पर वसूली वाले बिल होने पर (Bills for collection being bills		6.	विपरीत ओर पर वसूली के लिए प्राप्त बिल (Bills receivable being bills for collection as per	

	receivables per contra)			contra)	
7.	अन्य दायित्व (Other liabilities)		7.	विपरीत ओर पर लेखा संघठक की स्वीकृतियों हेतु देनदारियाँ, बेचान तथा दायित्व (Constituent's & liabilities for acceptances, endorsements & obligations as per contra)	
8	स्वीकृतियाँ, बेचान तथा अन्य देनदारियाँ, विपरीत ओर पर वसूली वाले लिखे अनुसार (Acceptances, endorsements and other obligations per contra)		8.	बैंक भवन (Premises)	
9.	लाभ और हानि खाता (Profit & loss account)		9.	फर्नीचर व अन्य स्थिर सामान (Furniture & other unmovable goods)	
10	आकस्मिक दायित्व (Contingent liabilities)		10	अन्य आदेय तथा चाँदी (Other assets & silver)	
11			11	दावों की प्राप्ति हेतु अधिगृहित गैर बैंकिंग आदेय (Non banking assets acquired in satisfaction of claims)	
	कुल योग (Grand Total)			कुल योग (Grand Total)	

10.7 बैंक निवेशों के प्रकार (Types of Bank Investments)

उपरोक्त अध्ययन से समझ में आता है कि बैंकों द्वारा अपना निवेश हमेंशा तरलता तथा लाभदायकता के मध्य सन्तुलन स्थापित कर किया जाता है। बैंकों के सफलता के लिए तरलता तथा लाभदायकता दोनों ही अनिवार्य हैं। इसलिए बैंकों के निवेश को मुख्यतः दो भागों में बाँटा जाता है :–

10.7.1 अलाभकर निवेश :–

निवेशों से बैंकों को किसी भी प्रकार की प्रत्यक्ष आय/लाभ प्राप्त नहीं होता है परन्तु सुरक्षा के साथ–साथ तरलता की दृष्टि से यह सर्वोत्तम होते हैं जो निम्नलिखित हैं :

(1) नकद कोष (Cash Reserves) :–

बैंकों का मुख्य कार्य है मुद्रा तथा साख में लेन–देन तथा इस कार्य को सफलतापूर्वक करने के लिए प्रत्येक बैंक के पास किसी भी समय प्रर्याप्त मात्रा में नकद राशि होनी आवश्यक है। इसके अभाव में बैंक ग्राहकों की नकदी की माँग को पूरा नहीं कर पायेगा तथा ग्राहक बैंक के प्रति विश्वास में नहीं रह पायेगा और ग्राहकों का बैंक के प्रति अविश्वास होने से बैंक का अस्तित्व खतरे में पड़ सकता है। इसलिए नकद काष बैंकों के लिए प्रथम श्रेणी की सुरक्षा मानी जाती है तथा प्रत्येक बैंक की तरल सम्पत्ति होती है। बैंकों को कितनी मात्रा में नकद कोष रखने हैं इसका निर्धारण देश, काल, आर्थिकी तथा बैंको की अपनी–अपनी स्थिति के आधार पर लगाया जाता है। आवश्यकता से कम नकद कोष रखने पर बैंक द्वारा ग्राहकों की नकदी की माँग को पूरा नहीं किया जा सकता है तथा आवश्यकता से अधिक नकद कोष रखने पर बैंक द्वारा निवेश से होने वाली आय से हाथ धोना पड़ सकता है। इसलिए कोषों के निर्धारण में बहुत सावधानी से काम लेना चाहिए। निम्नलिखित तत्वों के आधार पर बैंक नकद कोषों की मात्रा का निर्धारण कर सकते हैं :–

वैधानिक आवश्यकता, निवेश की प्रकृति, जमा राशियों का आकार एवं स्वरुप, ग्राहकों की प्रकृति, चैक का प्रयोग तथा समाशोधन गृहों का विकास।

(2) मृत स्कन्ध (Dead Stock) :–

बैंकों की ऐसी सम्पत्तियाँ जिनसे कोई प्रत्यक्ष लाभ नहीं हो रहा हो परन्तु व्यवसाय को चलाये रखने के लिए बैंक द्वारा इनका निर्माण किया जाता है। व्यवसाय चलाने के लिए भवनों का निर्माण करना पड़ता है। मजबूत अलमारियों का निर्माण, कार्यालय की जरुरतों का निर्माण, तिजोरियों तथा लॉकर आदि का निर्माण करना पड़ता है चूँकि आवश्यकता पड़ने पर इन्हें आसानी से बेचा नहीं जा सकता इसलिए इन्हें मृत स्कन्ध कहा जाता है। डा0 राव के अनुसार "बैंक के लिए ईट और चूने में पूँजी लगाने के स्थान पर शुद्ध नकदी के रुप मे रखना अधिक श्रेष्ठ है।"

10.7.2 लाभकर निवेश :–

लाभकर निवेश वह निवेश होते हैं जिनसे बैंक को लाभ प्राप्त होते हैं, जो निम्नलिखित हैं :–

(1) माँग कर अथवा अल्प सूचना राशि :–

यह राशि बैंक द्वारा ग्राहकों को दिया गया ऐसा ऋण है जिसे बैंक द्वारा बिना किसी सूचना के तथा अल्प सूचना से वापस माँगा जा सकता है। यह अल्पकालीन ऋण होते हैं तथा बैंक अपनी आवश्यकतानुसार इन्हें वापस माँग सकता है। इन ऋणों पर बैंक को बहुत कम दर का ब्याज प्राप्त होता है परन्तु तरलता की दृष्टि से यह उत्तम होते हैं। इस प्रकार के ऋणों में निवेश करने पर बैंक तरलता के साथ–साथ लाभ भी कमाते हैं। यदि नकद कोष बैंक रक्षा की प्रथम पंक्ति है तो माँग पर ऋण रक्षा की द्वितीय पंक्ति कही जाती है। भारत में माँग पर अथवा अन्य सूचना पर ऋण प्रायः एक बैंक द्वारा दूसरे बैंक को दिया जाता है।

(2) बिलों की कटौती करना :–

बैंकों द्वारा अपने कोषों का निवेश व्यापारिक बिलों की कटौती कर भी किया जाता है । इस निवेश से बैंक को लाभ मिलता है तथा इन बिलों से बैंक में तरलता भी बनी रहती है क्योंकि इस प्रकार का निवेश अल्पकालीन होता है। बिलों की कटौती कर बैंकों द्वारा ऋण देने से अर्थव्यवस्था में बिलों के चलन को भी प्रोत्साहन मिलता है। बिल की अवधि समाप्त होने से पूर्व यदि बैंक को नकदी की आवश्यकता पड़ती है तो बैंक इन बिलों को बाजार में बिक्री अथवा केन्द्रीय बैंक से बिल की पुनर्कटौती (Rediscounting) द्वारा अपनी आवश्यकताओं को पूरा कर सकता है, इसलिए इसे बैंक की 'तृतीय रक्षा पंक्ति' भी कहा जाता है।

(3) कोषागार विपत्र तथा प्रतिभूतियाँ :–

बैंक अपनी साधनों का बड़ा हिस्सा कोषागार विपत्र तथा प्रतिभूतियों में निवेश करता है। इससे बैंकों को आय के साथ–साथ सुरक्षा भी मिलती है तथा सरकार को भी सहायता मिलती है। ये निवेश अल्पकालीन होने के साथ ही आवश्यकतानुसार इसे बेचा भी जा सकता है जो बैंक की तरलता की आवश्यकता को भी पूरा करते हैं।

(4) ऋण तथा अग्रिम :–

बैंकों की आय का प्रमुख साधन है ऋण तथा अग्रिम क्योंकि बैंकों के कोषों का बड़ा हिस्सा ऋणों तथा अग्रिम में निवेश किया जाता है। इनसे बैंकों को काफी आय प्राप्त होती है। ऋण तथा अग्रिम में निवेश करने पर बैंक को सुरक्षा का गुण भी प्राप्त होता है क्योंकि प्रत्येक ऋण या अग्रिम बिना जमानत के नहीं दिया जाता है। ऋणों के विभिन्न प्रकार साधारण ऋण तथा अग्रिम (Ordinary loans and advances) अधिविकर्ष (Overdraft) तथा नकद साख (Cash Credit) हैं।

10.9 सारांश

वाणिज्यिक बैंकों की स्थापना ने देश के मुद्रा बाजार को एक नये आयाम पे पहुँचा दिया। वाणिज्यिक बैंकों द्वारा मुद्रा का व्यवसाय, साख निर्माण तथा इनके नियमन में सहयोग करने वाली संस्था के रुप में कार्य किया है। वाणिज्यिक बैंकों के विभिन्न प्रकारों के अध्ययन में देखा गया की अर्थव्यवस्था के लगभग हर पहलू के विकास की जिम्मेदारी वाणिज्यिक बैंकों ने संभाली है। इसमें कहीं यह प्रत्यक्ष भूमिका में तो कहीं अप्रत्यक्ष भूमिका में नजर आते हैं। इनकी संगठनात्मक प्रणाली को मुख्यतः शाखा बैंकिंग तथा इकाई बैंकिंग के रुप में समझा जा सकता है। इकाई में बैंकों द्वारा किये जाने वाले निवेशों पर चर्चा की गयी है तथा बताया गया है कि बैंकों को निवेश करते समय तरलता तथा निधि की सुरक्षा के साथ–साथ जोखिम का विभिन्नीकरण एवं प्रतिभूतियों की विक्रेयता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। बैंक निवेश मुख्यतः लाभकर तथा अलाभकर होते हैं, परन्तु वाणिज्यिक बैंकों को इन दोनों के मध्य संतुलन की स्थिति के साथ ही निवेश करना चाहिए।

10.10 शब्दावली

वाणिज्यि बैंक (Commercial Bank): वाणिज्यिक बैंक, बैंकिंग व्यवसाय करने वाली वह संस्थायें होती हैं जो जनता से छोटी तथा बड़ी बचतों को एकत्रित कर देश में उत्पादक व्यवसायों को प्रायः अल्पकालीन ऋण उपलब्ध कराते हैं।

औद्योगिक बैंक (Industrial Bank): किसी भी देश के उद्योगों के निर्माण कार्यों को सुचारु रुप से चलाने के लिए मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन ऋणों की आवश्यकता होती है अतः उद्योगों के लिए मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन ऋणों की व्यवस्था करने वाली संस्थायें औद्योगिक बैंक कहलाती हैं।

विदेशी विनिमय बैंक (Foreign Exchange Bank): ऐसी बैंकिंग संस्थायें जिनका प्रमुख कार्य विदेशी मुद्रा का लेन देन तथा विदेशी व्यापार के लिए आवश्यक वित्तीय व्यवस्था करना होता है उन्हें विदेशी विनिमय बैंकों के नाम से जाना जाता है।

बचत बैंक (Saving Bank): समाज की छोटी–छोटी बचतों के प्रोत्साहन के लिए बचत बैंकों की स्थापना की जाती है। भारत में यह कार्य सीधे वाणिज्यक बैंकों द्वारा ही किया जाता है।

कृषि बैंक (Agriculture Bank): कृषि क्षेत्र में कृषक को भी अल्पकालीन ऋणों (बीज, खाद, औजार आदि हेतु) तथा दीर्घकालीन ऋणों (कृषि भूमि में स्थायी सुधार हेतु) की समय–समय पर आवश्यकता पड़ती है परन्तु कृषक सामान्यतः उस प्रकार की जमानत नहीं दे पाते जिस प्रकार वाणिज्यिक तथा औद्योगिक बैंक चाहते हैं। अतएव कृषि की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अलग प्रकार के बैंकों की स्थापना करनी पड़ी।

सहकारी बैंक (Co-Operative Bank): अल्पकालीन ऋणों के लिए प्राथमिक कृषि समितियाँ (Primary Agriculture Credit Societies) गठित की जाती हैं। भारतीय बैंकिंग अधिनियम 1949 के अनुसार केवल शहरी सहकारी बैंक, राज्य सहकारी बैंक और जिला मध्यवर्ती सहकारी बैंक सहकारी सेवा के बैंक कहलाने के पात्र हैं।

भूमि विकास बैंक (Land Development Bank): भूमि सुधार बैंक के नाम से पहचानी जाने वाली यह ऐसी सहकारी, गैर सहकारी तथा अर्धसहकारी संस्थायें हैं जो भूमि को बन्धक रखकर भूमि सुधार के लिए दीर्घकालीन ऋण प्रदान करती है। इसलिए इन्हें भूमि बन्धक बैंक (Land Mortage Bank) भी कहा जाता था।

देशी बैंक (Indegenous Bank): भारत में आधुनिक बैंकों के विविध रुपों के अतिरिक्त देशी बैंकों का अस्तित्व भी महत्वपूर्ण "देशी बैंकर अथवा बैंक वह व्यक्ति अथवा व्यक्तिगत फर्म है जो जमा स्वीकारने, हुण्डियों मे व्यवसाय करने अथवा ऋण देने का कार्य करते हैं।" भारतीय बैंकिंग कम्पनी अधिनियम के अनुसार इनको बैंक अथवा बैंकर नहीं माना गया है और इन पर अधिनियम की व्यवस्थायें भी लागू नहीं होती हैं।

केन्द्रीय बैंक (Central Bank): यह मुख्यतः देश की मुद्रा चलन का नियमन करता है। यह सरकार का बैंक होता है तथा सरकार की ओर से सभी भुगतान तथा प्राप्तियों को प्राप्त करता है इसके साथ ही यह विदेशी विनिमय पर भी नियंत्रण रखता है। यह देश के बैंकों का बैंक भी होता है।

शाखा बैंकिंग (Branch Banking): देश में बैंक के एक प्रधान कार्यालय की उपस्थिति के साथ ही विभिन्न स्थानों पर इसकी शाखाओं की स्थापना की जाती है। अर्थात बैंक की शाखायें पूरे देश में फैली होती हैं।

इकाई बैंकिंग (Unit Banking): बैंकिंग व्यवसाय के इकाई बैंकिंग प्रणाली में एक बैंक का कार्य सामान्यतः एक ही कार्यालय तक सीमित रहता है। इस प्रणाली में प्रत्येक बैंक का अलग निगम होता है जो अपना कार्य नियमानुसार स्वतंत्रता से कर सकता है।

आवर्ती जमा खाताः इस प्रकार के जमा खातों में ग्राहक द्वारा एक निश्चित समय के लिए प्रतिमाह एक निश्चित धनराशि जमा की जाती है तथा यह अवधि पूर्ण होने पर बैंक द्वारा मूलधन तथा ब्याज लौटाया जाता है। छोटी–छोटी बचतों को प्रोत्साहित करने के लिए इस तरह के जमा खातों का प्रयोग बैंकों द्वारा किया जाता है।

10.11 बोध प्रश्न

बताइये निम्न कथन सत्य है या असत्य

1. क्रेडिट कार्ड का प्रयोगकर्ता बैंक का ऋणी हो जाता है।
2. शाखा विस्तार सुद्दढ बैकिंग व्यवस्था के लिए आवश्यक है।
3. साख पत्र का प्रयोग विदेशी व्यापार के लिए किया जाता है।
4. बैंकों द्वारा सामान्यतः लम्बी अवधि के लिए ऋण नहीं दिये जाते है।
5. बैंकों के सभी निवेश लाभकर होते हैं।
6. बैंक व्यक्तिगत जमानत पर ऋण नहीं देते हैं।
7. प्रतिभूतियों की जमानत पर बैंक ऋण नहीं देते हैं।
8. लाभोपार्जन केन्द्रीय बैंक का निर्देशक सिद्वान्त नहीं है।
9. वाणिज्यिक बैकों के नकद कोषों का संरक्षण केन्द्रीय बैक का एक कार्य है।
10. खुले बाजार की कियाये साख नियत्रण रीति मे अधिक लचक का गुण है।

10.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

(1) सत्य	(2) असत्य	(3) सत्य	(4) सत्य	(5) असत्य
(6) असत्य	(7) असत्य	(8) सत्य	(9) सत्य	(10) सत्य

10.13 स्वपरख प्रश्न

1. ″बैंक जमा प्राप्त करने वाली तथा उसे लौटाने वाली संस्था है।″ इस कथन की व्याख्या कीजिए।
2. ″बैक आधुनिक व्यापार तथा उद्योगों की आधारशिला है।″ व्याख्या कीजिए।
3. बैंकों के विभिन्न प्रकारों तथा उनके कार्यों को संक्षिप्त में समझाइये।
4. इकाई तथा शाखा बैंकिंग प्रणालियाँ क्या हैं? इनके गुण पर प्रकाश डालिए।
5. बैंकों द्वारा कितने प्रकार के खातों में जमा राशियाँ स्वीकार की जाती हैं? समझाइये।
6. बैंकों के महत्व की व्याख्या कीजिए।

10.14 सन्दर्भ पुस्तकें

- श्रीवास्तव, आर0एम0 और निगम, दिब्या मैनेजमैन्ट ऑफ इंडियन फाइनैन्शियल इंस्टीट्यूशन्स
- विभिन्न इंटरनैट साइट्स।
- जैन, टी0आर0 इंडियन फाइनैन्शियल सिस्टम्स, वी0के0 ग्लोबल पब्लिकेशन्स और खन्ना, ओ0पी0, प्राईवेट लिमिटेट, 2014–15।
- गुप्ता, शान्ति के0 और अग्रवाल, निशा, इंडियन फाइनैन्शियल सिस्टम्स, कल्याणी पब्लिसर्स, 2016।
- प्रतियोगिता दर्पण, जुलाई 2016।
- इंडियन इकोनोमी, जुलाई 2016।
- सेठी, टी0टी0 (2015), मुद्रा बैंकिंग एवं लोक वित, आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिसर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- अग्रवाल, दीपक (2010), मुद्रा बैंकिंग, लोक वित्त एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, हिमालया पब्लिशिंग हाउस मुबई।
- बिशनोई, आर0के0, बीमा के सिद्धांत, साहित्य भवन पब्लिसर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा।

इकाई – 11 बीमा कम्पनियाँ (Insurance Companies)

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 जोखिम
11.3 जोखिम का वर्गीकरण
11.3.1 परिकल्पी जोखिम
11.3.2 शुद्ध जोखिम
11.4 जोखिम समाधान की विधियाँ
11.5 बीमा से आशय एवं परिभाषा
11.6 इन्श्योरेन्स तथा एश्योरेन्स में अन्तर
11.7 बीमा अनुबन्ध तथा सामान्य अनुबन्ध
11.8 बीमा तथा जुए में अन्तर
11.9 बीमा का क्षेत्र तथा सीमायें
11.10 बीमा व्यवसाय का लाभ एवं महत्व
11.11 बीमा के कार्य
11.12 बीमा का वर्गीकरण
11.13 दोहरा बीमा तथा पुनर्बीमा
11.13.1 दोहरा बीमा
11.13.2 अधिबीमा
11.13.3 अल्पबीमा
11.13.4 पुनर्बीमा
11.14 पुनर्बीमा के लाभ
11.15 सारांश
11.16 शब्दावली
11.17 बोध प्रश्न
11.18 बोध प्रश्नों के उत्तर
11.19 स्वपरख प्रश्न
11.20 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- जोखिम, जोखिम वर्गीकरण तथा जोखिम समाधान की विधियों का अध्ययन कर सकें।
- बीमा का उदय, आवश्यकता तथा परिभाषा का वर्णन कर सकें।
- बीमा तथा जुआ, बीमा अनुबन्ध तथा सामान्य अनुबन्ध, इंश्योरेन्स तथा एश्योरेन्स में अन्तर स्पष्ट कर सकें।
- बीमा का क्षेत्र तथा सीमाओं पर प्रकाश डाल सकें।
- बीमा व्यवस्था के लाभ तथा महत्व को स्पष्ट कर सकें।

- बीमा के कार्यों तथा इसके प्रकारों का विस्तृत वर्णन कर सकें।

11.1 प्रस्तावना

जोखिम से सुरक्षा प्राप्त करने के लिये या जोखिम की क्षतिपूर्ति (कुछ संदर्भों में) के लिए ही बीमा की आवश्यकता होती है। जोखिम मनुष्य के सम्मुख हमेशा से रहा है या कहें कि जोखिम जीवन के साथ जुड़ा हुआ है। विनाशकारी शक्तियाँ संसार में बनी रहती हैं, जिससे मनुष्य के जीवन और सम्पदा की हानि या क्षति होने की सम्भावनायें सदैव बनी रहती हैं। मानव सभ्यता के विकास के साथ–साथ मानव ने इस जोखिमों से बचने के लिए नाना प्रकार के उपायों का समय–समय पर सहारा लिया है और विभिन्न प्रकार के सुरक्षा साधनों को विकसित भी किया है। सुरक्षा चाहत की इसी विकास मात्रा ने बीमा प्रणाली का आविष्कार किया है। बीमा जोखिम के दुष्परिणामों से सुरक्षा प्रदान करने की एक व्यवस्था है। यदि जोखिम नहीं होगा, तो बीमा की आवश्यकता महसूस नहीं की जायेगी। अतः बीमा को समझने से पहले यह समझना आवश्यक है कि जोखिम क्या है?

11.2 जोखिम (Risk)

मानवीय सभ्यता का इतिहास इस बात को प्रमाणित करता है कि समयानुसार व्यक्तियों, समुदायों तथा विभिन्न देशों ने सुरक्षा हेतु अनेक साधनों की खोज की है। उनमें से एक 'बीमा' भी जोखिम के दुष्प्रभावों को कम करने में सहायक होता है। प्रत्येक जोखिम में किसी न किसी प्रकार की हानि निहित है ऐसी हानियों के प्रतिकूल प्रभावों को कम करने के लिए ही बीमा की आवश्यकता होती है।

'जोखिम' (Risk) का आशय किसी प्रतिकूल घटना द्वारा हानि या नुकसान होने की सम्भावना तथा तत्सम्बन्धी अनिश्चितता से है हानि की अनिश्चितता (Uncertainity of Loss) जोखिम का सबसे महत्वपूर्ण लक्षण है। यदि किसी भी घटना के होने या न होने की निश्चितता हो तो उसे जोखिम नहीं कहा जा सकता है। किसी भी घटना के होने या न होने के अनिश्चित होने पर ही जोखिम का उदय होता है। जोखिम हानि की अनिश्चितता के कारण ही उत्पन्न होता है। यदि यह अनिश्चितता न हो तो जोखिम भी नहीं होगा। किसी घटना के घटित होने से हमें हानि पहुँचेगी या नहीं, कितनी हानि पहुँचेगी तथा कब पहुँचेगी ऐसी समस्त अनिश्चितताओं को ही बीमा की भाषा में 'जोखिम' कहा जाता है। कुछ विद्वानों ने जोखिम को निम्न प्रकार परिभाषित किया है :

- फ्रेंक एच. नाइट (Frank H. Knight) के अनुसार "जोखिम गणना योग्य अनिश्चितता है।"
- बून तथा कुर्ज (Boon and Kurz) के शब्दों में "हानि या क्षति की सम्भावना को ही जोखिम कहते हैं।"
- डेनेबर्ग (Deneberg) के अनुसार "किसी हानि, क्षति, चोट या विनाश की सम्भावना ही जोखिम है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यदि घटनाओं की अनिश्चितता न हो तो जोखिम भी नहीं होगा।

11.3 जोखिम का वर्गीकरण (Classification of Risk)

ए. एच. मोब्रे (A. H. Mowbray) के अनुसार जोखिम को निम्न दो वर्गों मे विभाजित किया जाता है :

11.3.1 परिकल्पी जोखिम (Speculative Risk) :-

यदि किसी जोखिम में लाभ तथा हानि दोनों के होने की सम्भावना हो तो उसे परिकल्पी जोखिम कहते हैं। जैसे बाजार भाव के तेजी या मन्दी से होने वाला जोखिम परिकल्पी जोखिम कहलायेगा, क्योंकि यदि बाजार भाव में तेजी आयी तो लाभ और मन्दी आयी तो हानि होने की सम्भावना है। परिकल्पी जोखिम के इसी लक्षण के कारण इस जोखिम को बीमा के क्षेत्र से परे रखा जाता है।

11.3.2 शुद्ध जोखिम (Pure Risk) :–

शुद्ध जोखिम उस जोखिम को कहा जाता है जिसमें केवल हानि होने की सम्भावना होती है लाभ होने की नहीं। जैसे अग्नि का जोखिम, दुर्घटना का जोखिम, चोरी का जोखिम आदि शुद्ध जोखिम को पुनः तीन भागों में बाँटा जा सकता है :

(अ) व्यक्ति सम्बन्धी जोखिम :–

व्यक्ति सम्बन्धी जोखिम व्यक्ति की जिन्दगी से सम्बन्धित है। इसमें व्यक्ति की जान का जोखिम होता है जो मृत्यु या समकक्ष कारणों से उत्पन्न होता है।

(ब) सम्पत्ति सम्बन्धी जोखिम :–

इस जोखिम में सम्पत्ति के नष्ट होने या खो जाने, हानि होने की सम्भावना।

(स) दायित्व सम्बन्धी जोखिम :–

विशिष्ट घटनाओं के घटित होने पर जब अन्य व्यक्तियों के प्रति आर्थिक दायित्व उत्पन्न होता है, जिसके कारण हानि होने की सम्भावना रहती है।

11.4 जोखिम समाधान की विधियाँ (Methods Of Handling Risk)

मनुष्य ने अपनी सभ्यता के साथ–साथ विभिन्न प्रकार के जोखिमों से होने वाली हानियों से बचने के लिए समय–समय पर अनेक उपायों को इसके समाधान के लिए प्रयोग किया है। इन्हीं उपायों में से बीमा सिर्फ एक उपाय है। जोखिम की समस्या के समाधान के अनेक तरीके हैं, जिसमें से निम्नांकित पाँच का वर्णन यहाँ किया गया है :–

जोखिम का परिवर्जन (Avoidance of Risk) :–

जोखिम के समाधान के इस तरीके में जोखिम से दूर रहा जाता है। जोखिम नहीं, हानि नहीं (No Risk No Loss) के सिद्धान्त को मानने वालों के लिए यह तरीका परिकल्पी (Speculative) जोखिमों से मुक्ति दिला सकता है, परन्तु शुद्ध जोखिम के समाधान में सिर्फ कुछ हद तक ही यह उपयोगी हो सकता है। जोखिम समाधान कि इस विधि का सीमित उपयोग ही सम्भव है। उदाहरण के लिए दीपावली में पटाके बनाने वाली फैक्ट्रियों को बस्तियों से दूर बनाया जाता है क्योंकि इनमें आग लगने का खतरा अधिक होता है।

जोखिम का निवारण (Prevention of Risk) :–

यह तरीका जोखिम की समस्या के समाधान का बहुत प्राचीन तरीका है। जोखिम की अनिश्चितता का सामना करने के लिए पहले से ही उन उपाायों को सम्मिलित कर लिया जाता है, जिनसे जोखिम की सम्भावना खत्म या कम हो जाती है। इसके उदाहरण हैं, अग्निकांड के जोखिमों को घटाने के लिए भवन निर्माण में फायर प्रूफ सामग्री का प्रयोग करना, आग बुझाने के लिए फायर हाइड्रेंट का इस्तेमाल करना, चोरी के जोखिमों को नियंत्रित करने के लिए लॉकर सुविधा का इस्तेमाल, मजबूत ताले, चौकीदार, अन्य यांत्रिक उपकरणों का प्रयोग, भूकम्प वाले क्षेत्रों में भवन निर्माण के समय भूकम्परोधी तरीकों का प्रयोग करना ये सब जोखिम निवारण (Prevention of Risk) के उदाहरण हैं। किन्तु इनसे जोखिम की समस्या का पूर्ण हल नहीं निकाला जा सकता है। ऐसे निवारक उपायों द्वारा हम जोखिम के ज्ञात कारणों से होने वाली हानि को एक सीमा तक नियंत्रित कर सकते हैं। लेकिन हानि के बहुत से अज्ञात तथा अप्रत्याशि कारणों का समाधान इससे सम्भव नहीं होता है।

जोखिम का ग्रहण (Consumption of Risk) :

जोखिम की समस्या का एक आसान सा समाधान है कि जोखिम से हुई हानि को सहन/वहन कर लेना। इसको जाखिम ग्रहण तथा जोखिम प्रतिधारण (Retention of Risk) भी कहा जाता है। इस तरीके को अपनाने में हमें जोखिम से हुई हानियों की भरपाई के लिए प्रयाप्त मात्रा में वित्तीय साधनों को जुटाना पड़ेगा। मूलतः देखा जाय तो यह जोखिम के समाधान का तरीका नहीं है। किसी भी तरीके के न होने पर भी जोखिम द्वारा हानि होगी तथा उसे सहन करना पड़ेगा। फर्क सिर्फ इतना है कि यदि हमारे दिमाग में इस तरीके का ज्ञान पहले से ही है तो हम इससे निपटने के लिए साधन एकत्र कर सकते हैं। प्रायः लोग कतिपय विशिष्ठ जोखिमों को वहन करने के लिए एक पृथक निधि (Fund) निर्मित करते हैं, ताकि हानि होने पर उस निधि से उसकी पूर्ति की जा सके। पृथक निधि या आरक्षित (Reserve) बनाकर व्यवसायिक क्षेत्र में जोखिम को स्वयं सहन करने की एक प्रचलित नीति है। किन्तु इस रीति से असाधारण जोखिमों की समस्या का समाधान नहीं हो सकता। हानि सहन/वहन करने के लिए जो निधि निर्मित की गयी हो उससे अधिक हानि होने पर जोखिम से वांछित सुरक्षा नहीं मिल सकती है।

जोखिम का अन्तरण (Transfer of Risk) :–

जोखिम से होने वाली हानियों से बचने का एक तरीका यह भी है कि इस जोखिम अथवा हानि को किसी और व्यक्ति को अन्तरित कर दिया जाय। अनेक व्यवसायिक जोखिमों के समाधान के लिए यह रीति प्रचलित है। कई ठेकेदार अपने जोखिम का एक भाग किसी अन्य ठेकेदार को अन्तरित कर देते है। स्टॉक एक्सचेंज तथा अन्य संगठित बाजारों हैजिंग (Hedging) द्वारा जोखिम अन्तरित की जाती है। ऐसे उपायों द्वारा जोखिमों का तटस्थीकरण (Neutralization of Risk) किया जाता है। जोखिम अन्तरण भी जोखिम के समाधान का ऐसा उपाय है जिससे परिकल्पी जोखिमों से होने

वाली हानि की सुरक्षा की व्यवस्था तो की जा सकती है । परन्तु शुद्ध जोखिमों के समाधान के लिए यह उपाय भी सीमित महत्व के ही होते हैं।

जोखिम का बीमा (Insurance of Risk) :—

बीमा का जन्म ही जोखिमों से होने वाली हानि को सहन करने के लिए किया गया। उपरोक्त विधियों द्वारा सभी प्रकार के जोखिमों का समाधान नहीं किया जा सकता है। अतः बीमा के अनिश्चितताओं को समाप्त कर मनुष्य को सुरक्षा के साथ—साथ निर्भयता प्रदान की है। जो जोखिम अधिक मूल्य वाले तथा असाधारण हों कि उनको स्वयं वहन करना तथा अन्तरित करना सम्भव नहीं हो, उन जोखिमों का समाधान इनका बीमा करा कर किया जा सकता है। बीमा द्वारा कुछ प्रीमियम देकर ही मनुष्य अपने जोखिम का हस्तान्तरण बीमा कम्पनियों को कर देता है और बीमा के द्वार विभिन्न आकस्मिक जोखिमों से बचा जा सकता है।

11.5 बीमा से आशय एवं परिभाषा (Meaning & Definition of Insurance)

कौन जानता है कि कब किसकी मृत्यु हो जाय? कब किसके घर या व्यवसाय में आग से नुकसान हो जाय? कब किसकी व्यवसायिक कनसाइनमेन्ट ले जा रहा जहाज पानी में डूब जाये? इन सब प्रश्नों को इसलिए लिखा गया है क्योंकि इनके उत्तर अनिश्चित हैं। जब तक घटना घट नहीं जाती तब तक इन प्रश्नों के जवाब नहीं मिल सकते। कल क्या होने वाला है या कहें भविष्य में क्या होने वाला है, यह अनिश्चित है। प्रतिदिन अखबारों में पढ़ने को मिलता है कि अमुख व्यक्ति की हृदय गति रुक जाने से या मोटर दुर्घटना में मृत्यु हो गयी। यदि किसी परिवार का एक मात्र सदस्य जो रोटी कमाता था की अचानक मृत्यु हो जाती है, तो परिवार पर क्या गुजरती है। आय का साधन बन्द हो जाने से परिवार की सभी क्रियाकलापों पर प्रभाव पड़ता है।

इसी प्रकार मकान, दुकान, व्यवसाय, जहाज, रेल आदि के दुर्घटनाग्रस्त होने से लाखों रुपयों की हानि होने के साथ—साथ व्यवसायिक क्षेत्र में अनेक परेशानियां आ जाती हैं। कभी—कभी तो व्यवसाय हमेशा के लिए खत्म हो जाता है।

आकस्मिक दुर्घटनायें संकटों या कठिनाइयों की एक लम्बी श्रृंखला को जन्म देती है। इन विभिन्न कारणों से होने वाली दुर्घटनाओं को तो नहीं रोका जा सकता है परन्तु इनसे होने वाली आर्थिक क्षति की पूर्ति अवश्य की जा सकती है और इस क्षतिपूर्ति का नाम है बीमा। बीमा एक ऐसा उपाय या साधन है जिससे बीमा कराने वाले को आकस्मिक तथा भारी जोखिमों से सुरक्षा प्रदान करता है। बीमा प्रत्येक प्रकार के जोखिमों के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करने का एक बेहतरीन साधन है। जोखिम का अर्थ हानि की सम्भावना से है तथा बीमा इस हानि की सम्भावना से मनुष्य को सुरक्षा प्रदान करता है।

बीमा का क्षेत्र विस्तृत होने के कारण इसकी कोई एक सर्वमान्य एवं निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकी है। विभिन्न व्यक्तियों ने बीमा शब्द को भिन्न—भिन्न प्रकार से परिभाषित किया है। अध्ययन में सुविधा को देखते हुए बीमा की परिभाषाओं को निम्न दो भागों में विभाजित किया जा सकता है :

1. कार्यात्मक परिभाषायें (Functional Definitions):–

निम्नांकित परिभाषाओं को कार्यात्मक परिभाषा में सम्मिलित किया जाता है।

1. सर विलियम बेवरिज के शब्दों में "बीमा जोखिमों के सामूहिक वहन को कहते हैं।"

   "The collective bearing of risks is insurance."

2. टॉमस के अनुसार "बीमा एक प्रावधान है जो एक बुद्धिमान व्यक्ति आकस्मिक अथवा अवश्यमभावी घटनाओं, हानि अथवा दुर्भाग्य के विरुद्ध करता है। यह जोखिम फैलाने का एक स्वरुप है।"

   "A provision which a prudent men makes against fortuitous or inevitable contingencies, loss or misfortune. It isa form of spreading risk."

3. घोष तथा अग्रवाल के अनुसार "बीमा किसी जोखिम को जो कि ऐसे व्यक्तियों के समूह पर जो कि खुद उस समूह में पड़े हुऐ हैं, फैलाने का सही ढंग है।"

   "Insurance is a co-operative form of distributing a certain resk over a group of persons, who are exposed to it."

4. डिन्सडेल के शब्दों में "बीमा एक साधन है जिसके द्वारा कुछ की हानियाँ बहुतों में बाँटी जाती हैं।"

   "Insurance is an instrument of distributing the oss of few among many."

2. वैधानिक परिभाषायें (Legal Definitions):-

1. न्यायाधीश टिण्डाल के अनुसार "बीमा एक प्रसंविदा है जिसमें बीमादार बीमादाता को एक निश्चित धनराशि एक निश्चित घटना के घटित होने पर जोखिम उठाने के प्रतिफल में देता है।"

"Insurance is a contract in which a sum of money is paid to the assured in consideration of insurance incurring the risk of paying a large sum upon a given contingency."

1. ई0 डब्ल्यू0 पेटरसर के अनुसार "बीमा दो प्रश्नों के बीच तय की गई एक संविदा है जिसके अन्तर्गत एक पक्ष निश्चित प्रतिफल के बदले में दूसरे पक्ष के विशिष्ठ जोखिमों को ग्रहण करता है और उसे भविष्य में किसी उल्लिखित घटना के घटित होने पर एक निश्चित रकम देने या क्षतिपूर्ति करने का वचन देता है।"

   "Insurance is a contract by which one party for a compensation called the premium, assumes particular risks of other party and promises to pay him or his nominee a certain or ascertainable sum of money on a specific contingency."

2. न्यायाधीश चेनल के अनुसार "बीमा वह अनुबन्ध है जिसका एक पक्षकार जिसे बीमाकर्ता (Insurer) कहते हैं। एक निर्धारित प्रतिफल जिसे प्रीमियम कहते हैं, के बदले किसी दूसरे पक्षकार जिसे बीमित (Insured) कहते हैं, को किसी

विशेष घटना के घटित होने पर एक निश्चित धनराशि या उसके बराबर राशि चुकाने का वचन देता है।"

"Insurance is a contract whereby one person called the insurer undertakes in return for the agreed consideration called premium to pay to another person called insured a sum of money or its equivalent on specified event."

11.6 इन्श्योरेन्स तथा एश्योरेन्स में अन्तर (Difference Between Insurance & Assurance)

सामान्य बोलचाल में तथा आम व्यक्ति के लिए इन्श्योरेन्स तथा एश्योरेन्स शब्द का एक ही अर्थ हो सकता है लेकिन बीमा के क्षेत्र में दोनों शब्दों को अलग–अलग ढंग से परिभाषित किया गया है। एश्योरेन्स का अर्थ है आश्वासन। एश्योरेन्स बीमाकर्ता द्वारा बीमित को दिया गया एक आश्वासन है जिसके आधीन किसी निश्चित घटना के घटित होने या निश्चित समयावधि पूर्ण होने पर एक निश्चित धनराशि बीमित को स्वयं या उसके उत्तराधिकारी को दी जाती है। धनराशि निश्चित तौर पर देने का आश्वासन महत्वपूर्ण होता है जो जोखिम से होने वाली हानि की क्षतिपूर्ति करता है। यह आश्वासन केवल जीवन बीमा में ही दिया जाता है।

इन्श्योरेन्स शब्द का प्रयोग उन बीमा ठहरावों के लिए किया जाता है जिनमें बीमाकर्ता बीमित व्यक्ति को बीमा ठहरावों में उल्लिखित जोखिमों के कारण हानि होने पर क्षतिपूर्ति करने का उत्तरदायी होता है और यदि उस निर्धारित अवधि में उल्लिखित जोखिमों से कोई हानि नहीं होती है तो बीमाकर्त्ता बीमित को किसी प्रकार का भुगतान नहीं करता है। इन दोनों शब्दों का अन्तर निम्नवत स्पष्ट है :

क्र. सं.	अन्तर का आधार	इन्श्योरेन्स (Insurance)	एश्योरेन्स (Assurance)
1.	अर्थ	इसका अर्थ आश्वासन है तथा बीमा की प्रकृति को प्रकट करता है।	यह शब्द बीमा के सिद्धान्त को इंगित करता है।
2.	क्षतिपूर्ति	इस शब्द में क्षतिपूर्ति का सिद्धान्त लागू होता है।	इसमें क्षतिपूर्ति सिद्धान्त लागू नहीं होता है।
3.	प्रयोग	इसका प्रयोग जीवन बीमा के अतिरिक्त सभी प्रकार के बीमा ठहरावों में किया जाता है।	इसका उपयोग केवल जीवन बीमा में ही किया जाता है।
4.	जोखिम	इस शब्द से जोखिम की सम्भावना ही प्रकट होती है परन्तु निश्चितता प्रकट नहीं होती है।	यह शब्द जोखिम की निश्चितता को प्रकट करता है।
5.	बीमा राशि की मात्रा	इसमें बीमित राशि में से उतनी ही राशि का भुगतान किया जाता है जो क्षति हुई हों।	इसमें जितनी राशि का बीमा कराया गया है वह सम्पूर्ण राशि प्राप्त होती है।

6.	भुगतान प्रप्ति	इसमें घटना के घटित होने पर ही क्षतिपूर्ति या बीमित राशि, जो कम हो, का भुगतान प्राप्त होता है।	इसमें घटना घटित होने या समयावधि पूरी होने पर बीमित राशि का भुगतान प्राप्त होता है।
7.	घटना	इसमें जोखिम की घटना का घटित होना आवश्यक नहीं है।	इसमें किसी एक घटना (मृत्यु/समयावधि पूर्ण होना) का घटित होना निश्चित है।
8.	विनियोग तत्व	इसमें विनियोग तत्व का पूर्णतः अभाव रहता है। अर्थात निश्चित अवधि पूर्ण होने पर कुछ भी नहीं मिलता है।	इसमें विनियोग तत्व निहित रहता है अर्थात समयावधि पूर्ण होने पर राशि वापस मिल जाती है।

11.7 बीमा अनुबन्ध तथा सामान्य अनुबन्ध में अन्तर (Difference Insurance Contract & General Contract)

इन दोनों शब्दों में अन्तर निम्नवत है :

क्र. सं.	अन्तर का आधार	बीमा अनुबन्ध (Insurance Contract)	सामान्य अनुबन्ध (General Contract)
1.	उद्देश्य	सभी बीमा अनुबन्धों का उद्देश्य बीमित को सम्भावी हानियों से सुरक्षा प्रदान करना होता है न कि लाभ प्राप्त करवाना।	सामान्य अनुबन्धों का उद्देश्य लाभ प्राप्त करना हो सकता/होता है।
2.	क्रेता सावधानी नियम	बीमा अनुबन्धों में क्रेता सावधानी (Buyer Caution) का नियम लागू नहीं होता है बल्कि इनमें 'पूर्ण सदभावना' का नियम लागू होता है।	सभी सामान्य अनुबन्धों में 'क्रेता सावधानी' का नियम लागू होता है। पक्षकार बिना पूछे दूसरे पक्षकार को कुछ बताने के लिए बाध्य नहीं होता है।
3.	मौन का अर्थ	बीमा अनुबन्धों में स्वतः तथ्यों को प्रकट न करना मौन द्वारा कपट की श्रेणी में आता है।	इसमें सभी बातों की स्वतः प्रकट न करना मौन द्वारा कपट नहीं माना जाता है।
4.	निष्पादन	सभी बीमा अनुबन्धों में बीमित अपने बचत का निषपादन कर चुका होता है। जबकि बीमाकर्ता की	सभी सामान्य अनुबन्ध एक पक्षीय नहीं होते हैं। यह कभी–कभी एक पक्षीय तथा कभी–कभी

		घटना के घटित होने या समय पूर्ण होने पर अपने वचन का निष्पादन करना होता है।	द्विपक्षीय होते हैं।
5.	सदविश्वास सिद्धान्त	सभी बीमा अनुबन्धों में सद्भावना का सिद्धान्त लागू होता है।	साधारण अनुबन्धों में सद्भावना का सिद्धान्त लागू नहीं होता है।
6.	आश्वासन भंग	बीमा अनुबन्धकों में आश्वासन भंग होने की दशा में अनुबन्ध समाप्त हो जाता है।	सामान्य अनुबन्धों में आश्वासन भंग होने पर क्षतिपूर्ति होती है, अनुबन्ध समाप्त नहीं होता है।
7.	संयोगिक अनुबन्ध	बीमा अनुबन्ध संयोगिक अनुबन्ध है जिसका निष्पादन किसी घटना के घटित होने या न होने पर निर्भिर करता है।	सभी सामान्य अनुबन्ध संयोगिक अनुबन्ध नहीं होतें हैं।
8.	बीमा योग्य हित	बीमित के लिए यह आवश्यक है कि बीमा अनुबन्ध की विषय वस्तु में उसका बीमा योग्य हित हो।	सामान्य अनुबन्धों में बीमा योग्य हित का सिद्धान्त लागू नहीं होता है।

11.8 बीमा तथा जुए में अन्तर (Distinction Between Insurance And Gambling)

समाज का एक समुदाय (तबका) बीमा तथा जुए में फर्क नहीं कर सकता है क्योंकि उसे दोनों शब्दों की स्पष्ट जानकारी नहीं होती है। कभी–कभी यह भी सुनने को मिलता है कि बीमा तो एक प्रकार का जुआ है। यह भ्रम समाज में इसलिए है क्योंकि दोनों में ही किसी निश्चित घटना के घटित होने पर भुगतान करने कावचन दिया जाता है तथा अनुबन्ध का एक पक्ष अपना वचन निभा चुका होता है तथा दूसरे पक्ष का वचन निर्वहन किसी घटना विशेष के घटित होने पर निर्भर करती है। साथ ही दोनों में इन घटनाओं का घटित होना अनिश्चित होता है। इतनी समानताओं के बावजूद इन दोनों में महत्वपूर्ण अन्तर विद्यमान है। रीगल, मिलर तथा विलियम्स (Riegal, Miller and Williams) ने लिखा है कि ″बीमा जुए से एकदम विपरीत है। जुए में दो या अधिक व्यक्ति मनोरंजन या लाभ के लिए जानबूझकर कुछ जोखिम उत्पन्न कर लेते हैं, जबकि बीमा किसी विद्यमान जोख्मि से सुरक्षा प्राप्त करने के लिए करवाया जाता है।″ इस अन्तर को निम्नवत स्पष्ट किया गया है :

क्र.	अन्तर का	बीमा (Insurance)	जुआ (Gambling)

सं.	आधार		
1.	उद्देश्य	बीमा सम्भावित जोखिम या क्षति को कम करने तथा भारी हानि से बचने के लिए किया जाता है।	जुआ लाभ प्राप्त करने या मनोरंजन के लिए खेला जाता है।
2.	अर्थ	बीमा जोखिम से होने वाली हानियों से बचाव का ऐसा उपाय है जिसके अन्तर्गत कुछ व्यक्तियों की हानियों को अनेकों में फैलाया जाता है।	जुआ एक ऐसा व्यवहार है जिसमें दो पक्षकार भावी अनिश्चितता घटना पर विपरीत मत रखते हुए ठहराव करते हैं कि घटना के घटित होने पर एक पक्ष दूसरे पक्ष को एक निश्चित राशि देगा।
3.	जोखिम की विद्यमानता	जोखिम के पहले से ही विद्यमान होने के कारण इससे बचने या सुरक्षा के लिए बीमा कराया जाता है।	जुए से जोखिम का जन्म होता है।
4.	क्षेत्र	केवल शुद्ध जोखिमों (Pure Risk) का ही बीमा कराया जाता है इसलिए इसका क्षेत्र सीमित है।	जुए का क्षेत्र विस्तृत है यह पक्षकारों की विपरीत सोच से कहीं भी खेला जा सकता है।
5.	सिद्धान्त	बीमा के अनुबन्ध में सहकारिता का सिद्धान्त, परम विश्वास का सिद्धान्त तथा क्षतिपूर्ति का सिद्धान्त आवश्यक है।	जुए में केवल लाभ–हानि (जीतने तथा हारने) के अतिरिक्त कोई और सिद्धान्त लागू नहीं होता है।
6.	वैधानिकता	बीमा अनुबन्ध वैध होते हैं।	जुए के अनुबन्ध व्यर्थ और अवैध घोषित है।
7.	सामाजिक प्रतिष्ठता	बीमा कराने वाले व्यक्तियों को आर्थिक रुप से सुदृढ समझा जाता है। अतः यह सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक है।	जुआ खेलने वालों को सामाजिक रुप से हीन समझा जाता है।
8.	देश में आर्थिक योगदान	बीमा से देश को अनेक प्रकार का योगदान मिलता है, बचत तथा विनियोग को बढ़ावा मिलता है।	जुआ निष्क्रियता को बढ़ावा देता है। इससे देश की प्रगति में बाधा उत्पन्न होती है।

11.9 बीमा का क्षेत्र तथा सीमायें (Scope & Limitation of Insurance)

भविष्य अनिश्चित है तथा कब किसको कितनी हानि वहन करनी पड़ेगी इसे कोई नहीं जानता है। बीमा इसी अनिश्चितता को निश्चितता में परिवर्तित कर देता है। जब बीमा का प्रयोग किया जाता है, तो बीमित व्यक्ति को पता होता है कि भविष्य में यदि किसी विशेष प्रकार के जोखिम (जिसका बीमा कराया गया हो) से हानि होती है तो उसकी क्षतिपूर्ति बीमाकर्ता द्वारा कर दिया जायेगा। वर्तमान समय में बीमा कम्पनियों द्वारा देश की अर्थव्यवस्था में प्रत्यक्ष प्रभाव डाला जा रहा है। यह देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान निभा रहा है। बीमा आज के मानव की एक अनिवार्य आवश्यकता बल गया है। यह सत्य है कि बीमा आज की जरुरत है लेकिन आधुनिक युग में सभी प्रकार के जोखिमों का बीमा सम्भव हीं है। बीमा क्षेत्र की कुछ सीमाये निम्नांकित हैं :

- बीमा योग्य हित होना आवश्यक है।
- बीमा वित्तीय मूल्य तक ही सीमित होता है।
- सभी जोखिमों का बीमा सम्भव नहीं है।
- जोखिम महत्वपूर्ण होना चाहिए।
- हानि अचानक होनी चाहिए।
- हानि की गणना करना सम्भव होना चाहिए।
- हानियाँ अत्यधिक विनाशकारी नहीं होनी चाहिए।
- हानियाँ उचित रुप से अप्रत्याशित हों।

बीमा याग्य हित होना आवश्यक है :–

बीमा अनुबन्ध का एक महत्वपूर्ण तत्व है कि जिस वस्तु, सम्पत्ति या व्यक्ति का बीमा कराया जा रहा है उसमें बीमादार का योग्य हित होना चाहिए। अर्थात जिस व्यक्ति, वस्तु या सम्पत्ति का बीमा करवाया गया हो उसके रहने से बीमादार को लाभ तथा उसके सुरक्षित न रहने से बीमादार को हानि होना चाहिए। यदि यह हित (बीमा योग्य हित) नहीं है तो बीमा अनुबन्ध का कोई वैधानिक औचित्य नहीं होगा, अर्थात जिस वस्तु या सम्पत्ति में योग्य हित नहीं है उसका वैधानिक तौर पर बीमा नहीं किया जा सकता है।

बीमा वित्तीय मूल्य तक ही सीमित होता है :–

भौतिकता आनन्द, ऐश्वर्य आदि को बीमा द्वारा पूरा नहीं किया जा सकता है। बीमा अनुबन्ध द्वारा केवल किसी विशेष जोखिम से होने वाली हानि की क्षतिपूर्ति वित्तीय मूल्य में की जा सकती है। इसलिए बीमा का क्षेत्र उन विशेष वस्तुओं तक सीमित है जिनके लिए वह दुर्घटना के समय क्षतिपूर्ति करना है। जीवन बीमा इस सामान्य नियम का अपवाद है क्योंकि जीवन बीमा में व्यक्ति विशेष के जीवन का बीमा किया जाता है तथा किसी भी व्यक्ति के जीवन का मूल्य नहीं आँका जा सकता है। इसके साथ ही किसी व्यक्ति की मृत्यु पर उसके परिवारजनों को जो दुःख होता है

उसका भी मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है। इन दुःखों को बीमा द्वारा दूर नहीं किया जा सकता है, परन्तु बीमा उस परिवार को जिसका एक सदस्य (बीमित) मृत्यु को प्राप्त हुआ है, पालिसी के अनुरुप निश्चित राशि देती है जिससे उस परिवार पर वित्तीय बोझ को कम किया जा सके।

सभी जोखिमों का बीमा सम्भव नहीं है :–

सभी प्रकार के जोखिमों का बीमा नहीं करवाया जा सकता है। यह बीमा क्षेत्र की सबसे बड़ी सीमा है। कुछ चारित्रिक, वैधानिक, व्यापारिक तथा आस्थिक कार्य इस प्रकार के होते हैं जिनका कोई प्रतिफल नहीं होता है। अतः ऐसे जोखिमों का बीमा नहीं कराया जा सकता है।

जोखिम महत्वपूर्ण होना चाहिए :–

प्रायः यह देखा जाता है कि समाज में व्यक्तियों द्वारा केवल उन्हीं जोखिमों का बीमा किया जाता है जो महत्वपूर्ण होते हैं तथा मामूली जोखिमों का बीमा नहीं कराया जाता है। यह इस प्रकार भी समझा जा सकता है कि बीमा कम्पनियों के संचालन कार्यों का वहन भी अप्रत्यक्ष रुप से बीमित व्यक्ति द्वारा ही किया जाता है। बीमा कम्पनियों द्वारा इन संचालन व्ययों का वहन नहीं किया जाता है। इसलिए यदि मामूली जोखिमों का बीमा करवाया जायेगा तो इसके संचालन व्यय का वहन भी बीमादार द्वारा ही अप्रत्यक्ष रुप से किया जायेगा तथा बीमा काफी महंगाा होगा इसलिए कुल मिलाकर देखा जाये तो इन मामूली जोखिमों का बीमा कराना वांछनीय नहीं होगा, इस प्रकार के मामूली जोखिमों को व्यक्ति द्वारा स्वयं ही वहन कर लेना चाहिए।

हानि अचानक होनी चाहिए :–

बीमित व्यक्ति द्वारा जिन जोखिमों का बीमा कराया गया हो उनसे हानि अचानक ही होनी चाहिए। बीमित के जानबूझकर किये गये कार्यों अथवा उसके भड़काने में आने से होने वाली हानि का बीमा नहीं किया जाता है। इसके विपरीत बीमित के अलावा किसी और के द्वारा जानबूझकर किये गये कार्यों द्वारा होने वाली हानियों का बीमा कराया जा सकता है। जैसे चोरी, द्वेष के कारण नुकसान करना, जानबूझकर आग लगा देना आदि।

हानि की गणना करना सम्भव होना चाहिए :–

बीमा केवल उन्हीं हानियों का सम्भव है जिसका पूर्वानुमान पूर्व की घटनाओं तथा गणितीय सिद्धान्तों के आधार पर लगाया जा सकता है। सभी प्रकार के बीमा के पीछे यही विज्ञान है तथा जहाँ यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता है वहाँ बीमा भी सम्भव नहीं है।

हानियाँ अत्यधिक विनाशकारी नहीं होनी चाहिए :–

हानियाँ अत्यधिक विनाशकरी नहीं होनी चाहिए का अर्थ है कि बीमा कम्पनियाँ अधिकांश जोखिमों से होने वाली हानियों का बीमा करती हैं। लेकिन यदि हानियाँ इतनी बड़ी हों कि उनकी क्षतिपूर्ति बीमा कम्पनियों के इस संदर्भ में निर्मित कोष से बहुत ज्यादा हो तो ऐसी हानियों का क्षतिपूर्ति कर पाना बीमा कम्पनियों के इस संदर्भ में निर्मित कोष से बहुत ज्यादा हो तो ऐसी हानियों का क्षतिपूर्ति कर पाना बीमा

कम्पनियों के लिए सम्भव नहीं होता है। उदाहरण के लिए – युद्ध के परिणामस्वरुप राष्ट्रीय स्तर पर मौतें अथवा सम्पत्तियों की हानियाँ इतनी अधिक होती हैं कि उनका बीमा केवल सरकार द्वारा ही किया जा सकता है।

हानियाँ उचित रुप से अप्रत्याशित हों :–

उचित रुप से अप्रत्याशित का अर्थ है कि बीमित व्यक्ति, सम्पत्ति तथा वस्तु में हानि होने की सम्भावनायें प्रबल नहीं होनी चाहिए। यदि ऐसा है तो उस व्यक्ति, सम्पत्ति या वस्तु का बीमा नहीं किया जा सकता है। जैसे जीवन बीमा के क्षेत्र में दिल की गम्भीर बीमारी वाले व्यक्ति का जीवन बीमा कर पाना बसम्भव है। इसका तात्पर्य है कि बीमित क्षेत्र में जोखिम से हानि होने की सम्भावनायें सामान्य या सामान्य से कम होनी चाहिए।

11.10 बीमा व्यवसाय का लाभ एवं महत्व (Advantages & Importance of Insurance Policies)

समाज के लिए बीमा वर्तमान युग की बहुत बड़ी देन है। वर्तमान समय में बीमा का महत्व इतना अधिक बढ़ गया है कि यह कहना अनुचित नहीं होगा कि बीमा द्वारा सम्पूर्ण मानव समाज, देश तथा राष्ट्र का प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष हित होता है। मिर्ज़ा इस्माइल के शब्दों में "बीमा के अन्तर्गत दया के समान गुण होते हैं। इसके प्राप्तकर्ता तथा प्रदायक दोनों ही सौभाग्य के अधिकारी होते हैं। बीमा जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त आपकी रक्षा करता है।" बीमा के विभिन्न लाभों को अग्रांकित शीषर्कों के अन्तर्गत विस्तार से समझाया गया है।

व्यापारी तथा उद्योगपतियों को लाभ (Advantages of Insurance to Business)

(1) साझेदारी व्यवसाय
(2) ऋण प्राप्ति में सुविधा
(3) मितवययता एवं बचत का साधन
(4) व्यवसायिक जोखिमों के विरुद्ध सुरक्षा
(5) पूँजी की सुरक्षा
(6) व्यवसायिक साख मे वृद्धि
(7) विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन

समाज को बीमा के लाभ (Advantage of Insurance to Society)

(1) जीवन स्तर की स्थिरता
(2) जीवन स्तर में वृद्धि
(3) आत्मनिर्भरता
(4) अल्प बचतों का सदुपयोग
(5) व्यवसायिक अस्थिरता से सुरक्षा
(6) औद्योगिक विकास
(7) रोजगार में वृद्धि
8) मुद्रा स्फीती में कमी

व्यक्ति अथवा परिवार को लाभ (Advantage of Insurance to Individuals or Family)

(1) जीवन बीमा बचत को प्रोत्साहित करता है
(2) मानसिक शान्ति
(3) आर्थिक सुरक्षा प्रदान करता है
(4) ऋण प्राप्त करने में सुरक्षा
(5) बीमा बन्धक सम्पत्ति की सुरक्षित करता है
(6) आयकर में छूट

राष्ट्र को लाभ (Advantages of Insurance to Nation)

(अ) व्यापारी या उद्योगपतियों को लाभ :–

व्यवसाय या उद्योगों का एकमात्र उद्देश्य होता है लाभ कमाना। लाभ और जोखिम का एक सकारात्मक सम्बन्ध है। जहाँ ज्यादा जोखिम होगा वहाँ लाभ होने की सम्भावना भी अधिक होगी तथा यदि जोखिम कम है तो लाभ की सम्भावना भी कम होगी। व्यापारियों या उद्योगपतियों को अपने व्यवसाय में होने वाले जोखिमों से सम्भावित हानि की सुरक्षा चाहिए होती है और आज के युग में बीमा व्यवसाय यह सेवा प्रत्येक व्यवसायी को देता है। व्यवसायियों के लिए बीमा के लाभों का निम्नवत वर्णन प्रस्तुत है :

1. साझेदारी व्यवसाय को लाभ :–

साझेदारी दो या दो से अधिक व्यक्तियों द्वारा आपसी समझौते तथा साझेदारी अधिनियम 1932 के अन्तर्गत संचालित किया जाने वाला व्यवसाय है। इस साझेदारी व्यवसाय में साझेदार के अचानक मृत्यु हो जाने पर उसकी पूँजी उसके उत्तराधिकारी को तुरन्त वापस करनी पड़ती है तथा साझदारे की यह पूँजी वापस कर देने से व्यवसाय की आर्थिक स्थिति कमजोर हो जाती है, जिससे व्यवसाय के लाभों पर भी प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। लेकिन यदि साझेदार का संयुक्त जीवन बीमा हो रहा हो तो ऐसी स्थिति से बचा जा सकता है। बीमा कम्पनी से मिलने वाले धन से वित्तीय क्षतिपूर्ति हो जाती है तथा व्यवसाय पर वित्तीय नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ता है। इसका एक लाभ यह भी है कि साझेदारी व्यवसाय पर वित्त की कमी का प्रभाव नहीं पड़ता, जो लाभों को बनाये रखने में भी सहायक होता है।

2. ऋण प्राप्ति में सुविधा :–

ऋण दाता प्रायः उन्हीं व्यवसायियों तथा व्यक्तियों को ऋण देना पसंद करते हैं जहाँ से ऋण की वसूली में व्यवधान उत्पन्न न हो। व्यवसायियों द्वारा माल तथा सम्पत्तियों का बीमा कराये जाने से इन्हें बन्धक रखकर ऋण दाता से आसानी से ऋण प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार से बीमा एक व्यवसायिक साख का आधार का कार्य करता है। अतः बीमित सम्पत्ति या माल के जमानत पर रखे जाने से व्यवसायियों को आसान तथा अधिक मात्रा में ऋण उपलब्ध हो जाता है।

3. मितवययता एवं बचत का साधन :–

बीमा व्यवससाय समाज में मितव्ययता एवं बचत का एक ऐसा साधन है जिससे बचत के साथ–साथ भविष्य में होने वाली आकस्मिक जोखिमों से हानि की रक्षा की जाती है। प्रायः अपनी आय का छोटा हिस्सा निकालकर बीमा पालिसी द्वारा

एक बड़ी रकम संग्रह कर पाते हैं। मितव्ययता और वचन की आदतों से ही बीमा के लिए प्रतिमाह प्रीमियम की राशि का भुगतान किया जाता है।

4. व्यवसायिक जोखिमों के विरुद्ध सुरक्षा :–

व्यवसाय में जितने भी प्रकार के जोखिम होते हैं लगभग उन सभी का बीमा कराया जा सकता है। व्यवसायिक जोखिमों से होने वाली हानि का बीमा कराने पर व्यवसायिक कार्यों में एक प्रकार से सुरक्षा आ जाती है। बीमा कम्पनी उन जोखिमों की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले लेती है तथा व्यवसायी निश्चिंत होकर अपने अन्य कार्यों में संलग्न रहता है तथा आर्थिक लाभ कमाने का प्रयास करता है।

5. पूँजी की सुरक्षा :–

प्रत्येक व्यवसाय का जीवन पूँजी पर निर्भर होता है तथा प्रत्येक व्यवसाय में कम या ज्यादा पूँजी होती है। व्यवसाय की पूँजी व्यवसाय की सम्पत्तियों में विनियोजित होती है। आकस्मिक दुर्घटनाओं द्वारा जब व्यवसाय की सम्पत्तियों को नुकसान पहुँचाता है तो अप्रत्यक्ष रुप से व्यवसाय की पूँजी को नुकसान पहुँचाता है इस परिस्थिति में बीमा उन जोखिमों से हुई हानि की पूर्ति कर व्यवसाय को टूटने से बचाता है।

6. विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन :–

विदेशी व्यापार में कई तरह के जोखिम विद्यमान रहते हैं तथा बीमा व्यवसाय के आने से इनमें से अधिकतर जोखिमों का बीमा कराया जा सकता है, जिससे व्यवसायी हानियों की चिन्ता किये बिना आयात–निर्यात व्यवसाय कर सकता है।

(ब) समाज को बीमा के लाभ (Advantages of Insurance to Society)

वर्तमान समय में बीमा व्यवसाय के व्यापक विास एवं विस्तार से इसके कार्य क्षेत्र में भी काफी वृद्धि हो गयी है। आज समाज का प्रत्येक वर्ग बीमा के लाभों से लाभान्वित हो रहा है। समाज को बीमा व्यवसाय से होने वाले मुख्य लाभ निम्न हैं :

1. जीवन स्तर की स्थिरता :–

जीवन बीमा निगम के अन्तर्गत विभिन्न तरह की जीवन बीमा पालिसी चलायी जा रही हैं जिनका लाभ समाज का प्रत्येक वर्ग को मिल रहा है। इन लाभों के संदर्भ में यह महत्वपूर्ण है कि किसी व्यक्ति की अचानक मृत्यु होने पर बीमा आश्रितों के आवश्यक प्रबन्ध करने का साधन का काम करता है तथा जीवन स्तर बनाये रखने में बड़ा सहायक होता है। जीवन बीमा, सामाजिक बीमा, स्वस्थ्य बीमा तथा दुर्घटना बीमा में आश्रितों के लिए उपयुक्त प्रबन्ध हैं।

2. जीवन स्तर में वृद्धि :–

बीमा व्यवसाय की व्यापकता का लाभ लेते हुए समाज में अधिकांश लोग जीवन में आने वाली बड़ी जोखिमों का बीमा करा कर सारी जिम्मेदारी बीमा व्यवसाय को अन्तरित कर देते हैं तथा अपनी आय को बढ़ाने के साथ–साथ जीवन जीने की शैली में भी सुधार करते हैं।

3. आत्मनिर्भरता :–

बीमा करा लेने के पश्चात बीमित व्यक्ति आत्मनिर्भरता का अनुभव करता है। इसका कारण है कि बीमित व्यक्ति ने अपने जीवन के तथा व्यवसाय के बड़े जोखिमों

का बीमा कर हानियों की जिम्मेदारी बीमा व्यवसाय के कन्धों पर हस्तान्तरित कर दी है। साथ ही मृत्यु होने पर उसके परिवार की आर्थिक सहायता बीमा कम्पनी करती है।

4. अल्प–बचतों का सदुपयोग :–

बीमा कम्पनियाँ प्रीमियम के रुप में जनता तथा बीमित से छोटी–छोटी बचतों को एकत्रित करती है तथा जनता से छोटी–छोटी बचतें बीमा व्यवसाय के पास एक बड़ी राशि बन जाती है, जिसका प्रयोग यह देश की अर्थव्यवस्था में अनेक उम्पादक कार्यों के लिए करती हैं। इस प्रकार बीमा व्यवसाय द्वारा छोटी–छोटी बचतों को एक बड़ी राशि का रुप देकर उत्पादक कार्य कर समाज को अनेक लाभ प्रदान किये जाते हैं।

5. व्यवसायिक अस्थिरता से सुरक्षा :–

बीमा व्यवसाय ने अपने उद्देश्य के प्रतिरुप ही समाज में व्यक्तियों के बीच सुरक्षा का प्रबन्ध करने तथा उत्तरदायित्व निभाने का भाव भी जाग्रत किया है। बीमा ने जोखिमों से सुरक्षा प्रदान कर व्यवसायिक अस्थिरता से बहुत हद तक समाज को मुक्त कर दिया है। आज समाज में यह चिन्ता नहीं होती है कि जिस व्यवसाय में उसने विनियोग किया है उसका भविष्य क्या होगा।

6. औद्योगिक विकास :–

औद्योगिक विकास में बीमा कम्पनियों का बड़ा योगदान है। उद्योगों के विकास के लिए मूल आवश्यकता पूँजी की होती है, उसके लिए बीमा कम्पनियाँ जनता से या बीमितों से छोटी–छोटी रकम प्रीमियम के रुप में एकत्र कर इनको देश के उद्योगों में विनियोजित करती हैं। इससे देश के उद्योगों को आर्थिक सहायता के लिए इधर–उधर भटकना नहीं पड़ता है और उनकी निरन्तर उन्नति और वृद्धि होती है।

7. रोजगार में वृद्धि :–

बीमा दो तरह से रोजगार वृद्धि में सहायक है। एक तो बीमा स्वयं एक व्यवसाय है तथा किसी भी व्यवसाय को सफलता पूर्वक चलाने के लिए पूँजी के साथ–साथ मानव हाथों की भी आवश्यकता होती है। अतः बीमा व्यवसाय स्वयं देश में रोजगार अर्जित करता है। दूसरा बीमा व्यवसाय द्वारा अन्य व्यवसायों को सुरक्षा प्रदान की जाती है तथा बीमा व्यवसाय अपना पैसा भी अन्य व्यवसायों के क्रियाकलापों से लाभ कमाने के उद्देश्य से विनियोजित करता है, जिससे देश के अन्य व्यवसाय भी सुदृढ़ स्थिति में होते हुए विकास करते हैं तथा रोजगार का सृजन करते हैं।

8. **मुद्रा स्फिति में कमी** :–

बीमा कम्पनियो द्वारा मुद्रा की पूर्ति तथा माँग में सकारात्मक भूमिका निभाई जाती है। जनता से प्रीमियम वसूल कर मुद्रा की पूर्ति को कम करके तथा इन्हीं प्रीमियमों की एकत्रित राशि को उत्पादक कार्यों में लगाकर मुद्रा की माँग में सहायता कर मुद्रा स्फीति को कम करने का प्रयास किया जाता है।

(स) व्यक्ति अथवा परिवार को लाभ (Advantages of Insurance to Individuals or Family)

व्यक्ति विशेष या परिवार को मिलने वाले बीमा लाभों को निम्न प्रकार वर्णित किया गया हैः

1. बचत को प्रोत्साहन :–

जीवन बीमा तथा अन्य बीमा में अन्तर यह है कि जीवन बीमा में सुरक्षा के साथ–साथ बचत या विनियोग का तत्व भी पाया जाता है, जबकि अन्य बीमा में केवल सुरक्षा का तत्व ही पाया जाता है। जीवन बीमा में पाये जाने वाले विनियोग या बचत तत्व के कारण व्यक्ति या परिवारों की सोच रहती है कि यदि कोई दुर्घटना नहीं हुई तो भी छोटी–छोटी प्रीमियमों के जमा करने से बीमा कम्पनियों के पास अन्त में एक अच्छी रकम जमा हो जाती है जिसे समय पूर्ण होने पर वह सम्बन्धित व्यक्ति को लौटा देते हैं। अतः बचत या विनियोग तत्व की उपस्थिति मानव जीवन में बचतों को प्रोत्साहन देता है।

2. बीमा मानसिक शक्ति प्रदान करता है :–

आध्यात्मिक रुप से देखा जाय तो भविष्य में घटने वाली विभिन्न घटनाओं के जोखिमों से होने वाली हानियों को जीवन बीमा या अन्य बीमा द्वारा क्षतिपूर्ति करने का वादा कर मानव की मानसिक शान्ति प्रदान की जाती है। सुरक्षा की इच्छा के सन्तुष्ट होने पर मानसिक शान्ति तथा असन्तुष्ट होने पर मानसिक तनाव उत्पन्न होता है, जिससे प्रतिकूल प्रतिक्रिया होती है तथा व्यक्ति अपने कार्य में मन नहीं लगा सकता। हानि के विरुद्ध सुरक्षा का वादा उस हानि की चिन्ता से मुक्ति दिलाता है।

3. बीमा आर्थिक सुरक्षा प्रदान करता है :–

मानव की प्रथम इच्छा रहती है कि वह तथा उसका परिवार आर्थिक रुप से सुरक्षित हों। आर्थिक सुरक्षा की इच्छा प्रत्येक वर्ग के व्यक्तियों को उनके भविष्य के लिए होती है। बीमा द्वारा समाज में लगभग हर तरह के जोखिमों से होने वाली हानियों से सुरक्षा प्रदान की जाती है। समाज में प्रत्येक व्यक्ति के साथ उसके परिवार से जुड़ी हुई आर्थिक समस्यायें होती हैं लेकिन इन सबका बीमा करा देने से होने वाले जोखिमों की क्षतिपूर्ति बीमा कम्पनियों द्वारा की जाती है।

4. बीमा बन्धक सम्पत्ति को सुरक्षित करता है :–

यदि किसी व्यवसाय या ब्यक्ति ने सम्पत्तियों को बन्धक बनाकर ऋण लिया है और किसी दुर्धटना से सम्पत्तियाँ नष्ट हो गई हों, तो ऋणदाता का ऋण वापस लेने का अधिकार खत्म हो जाता है, क्योंकि जिन सम्पत्तियों के बन्धक होने पर ऋण दिया गया था वह नष्ट हो गई है। परन्तु यदि बन्धक सम्पत्तियों का बीमा कराया गया है तो सम्पत्तियों के दुर्घटना में नष्ट होने पर भी ऋणदाता के ऋण को बीमा द्वारा क्षतिपूर्ति कर वापस किया जायेगा।

5. बीमा से आयकर में छूट प्राप्त होती है :–

बीमा कराने पर व्यक्ति द्वारा दिया जाने वाला प्रीमियम की राशि आयकर अधिनियम की विशेष धारा, के अन्तर्गत आयकर से मुक्त है। अतः बीमा प्रीमियम से एक ओर आयकर से छूट मिलती है तथा दूसरी ओर भविष्य की सम्भावित घटना के घटित होने पर क्षतिपूर्ति।

(द) राष्ट्र को लाभ (Advantages of Insurance to Nation) :–

सरकार द्वारा बनाये गये नियम के अनुसार बीमा कम्पनियों को अपने द्वारा प्राप्त प्रीमियम का एक भाग आवश्यक रुप से सरकारी प्रतिभूनियों में विनियोजित करना होता है, जिससे सरकार को बीमा व्यवसाय से बड़ी मात्रा में धन प्राप्त होता है जिसे वह देश की अर्थव्यवस्था की बेहतरी के लिए प्रयोग करती है। इसके साथ ही बीमा कम्पनियाँ विदेशों में बीमा का कारोबार कर देश के लिए विदेशी विनिमय सफल करती हैं। किसी देश के मुद्रा बाजार के विकास में उस देश के बीमा व्यवसाय का महत्वपूर्ण योगदान है।

11.11 बीमा के कार्य (Functions of Insurance)

बीमा व्यवसाय के कार्यों को मुख्य रुप से तीन भागों में विभक्त करते हुऐ अनेक उपयोगों मे निम्नवत विभाजित किया गया है :

बीमा के प्रधान कार्य (Primary Functions)

1. निश्चितता प्रदान करना :–

प्रतिकूल परिस्थितियों तथा घटनाओं की अनिश्चितता को खत्म या कम कर निश्चितता प्रदान करना बीमा का प्रमुख कार्य है। बीमा की मूल आवश्यकता भविष्य की अनिश्चितता की वजह से है। भविष्य में सम्भावित घटनायें घटेंगी या नहीं, घटेंगी तो कब, कितनी मात्रा में और किस प्रकार। यह सब अनिश्चित है। बीमा करा लेने से यह सब अनिश्चितताओं की चिन्ता खत्म हो जाती है, क्योंकि बीमा इन सब अनिश्चितताओं की क्षतिपूर्ति का वादा कर बीमा कराने वाले से एक पूर्व निश्चित रकम प्रीमियम के रुप में लेती है तथा वही रकम हानि की निश्चितता व्यक्त करती है।

2. सुरक्षा प्रदान करना :–

भविष्य में होने वाली घटनाओं की अनिश्चितता से मानव मन में असुरक्षा का भाव उत्पन्न होता है। इन घटनाओं के घटने से कब, कितनी, और कैसी हानि होगी यह सब अनिश्चित होता है । परन्तु घटनाओं का बीमा हो जाने से यह असुरक्षा की चिन्ता बीमा कम्पनियों के कन्धों पर हस्तान्तरित हो जाती है। भविष्य निश्चित होने से व्यक्ति अपने आप को सुरक्षित महसूस करता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि बीमा का एक महत्वपूर्ण कार्य व्यक्तियों को सुरक्षा प्रदान करना है।

3. जोखिमों का वितरण :–

बीमा जोखिमों को व्यापक आधार पर वितरित करने का कार्य करता है। निश्चितता तथा सुरक्षा प्रदान करने के साथ–साथ बीमा का एक महत्वपूर्ण कार्य जोखिमों का वितरण करना भी है। बीमा कम्पनियाँ अपने जोखिमों को पूरे समूह में वितरित करती हैं। एक समूह में कुछ ही बीमित होते हैं जो दुर्घटनाग्रस्त होते हैं, जिन्हें बीमा कम्पनी द्वारा क्षतिपूर्ति करी जानी है परन्तु प्रीमियम इस समूह के सभी बीमितों द्वारा दिया जाता है। इसलिए क्षतिपूर्ति की एक निश्चित राशि को पूरे समूह में वितरित किया जाता है। बीमा कम्पनी इन जोखिमों की पूर्ति प्राप्त हुई प्रीमियमों से करती है, उनको अपने पास से कुछ नहीं देना होता है।

बीमा के गौण कार्य (Secondary Functions)

सुरक्षा की व्यवस्था द्वारा बीमा व्यवसायिक कार्यकलाप में अनेक अन्य सुविधायें, अवसर और नाम भी प्रदान करता है। इन्हें हम बीमा के गौण कार्य कहते हैं, जो निम्नलिखित हैं :

1. पूँजी की व्यवस्था करना :–

अर्थव्यवस्था में पूँजी का महत्व सर्वविदित है। पूँजी सुलभ कराने में बीमा संस्थाओं का महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है। बीमा द्वारा पूँजी निम्नांकित तीन महत्वपूर्ण तरीकों से सुलभ या गतिशील होती है :

- बीमा सुरक्षा प्रदान करता है जिससे व्यवसायियों को भविष्य में होने वाली हानियों की पूर्ति के लिए व्यवसाय की पूँजी का एक भाग हानि सम्बन्धी निधि (Fund) बनाने में सुरक्षित नहीं रखनी पड़ती है, जिससे व्यवसाय की पूँजी का उत्पादक कार्यों में सदुपयोग किया जाता है।
- बीमा पूँजी निर्माण (Capital Formation) में महत्वपूर्ण योगदान देता है। बीमा प्रीमियम के रुप में छोटी–छोटी राशियाँ बीमितों से एकत्रित कर एक बड़ी राशि एकत्र निधि (Fund) के रुप में औद्योगिक और व्यवसायिक कार्यों के लिए उपलब्ध कराता है।
- बीमा पालिसी के आधार पर आसानी से उचित सीमा तक ऋण मिल जाता है। आधुनिक वित्तीय संस्थायें व्यापारियों को उनके भवन, माल तथा अन्य सम्पदा की प्रतिभूति (Security) पर तभी ऋण स्वीकार करते हैं जब उनका बीमा करा लिया हो। इस तरह बीमा साख प्राप्त करने में भी सहायक सिद्ध होता है।

2. व्यवसायिक कुशलता में वृद्धि :–

बीमा कराने से व्यवसायी को भविष्य में होने वाली अनिश्चित घटनाओं से सुरक्षा प्राप्त हो जाती है, जिससे वह अपने कारोबार में शोध तथा विकास पर अधिक समय दे सकता है तथा नये–नये प्रयोगों को अपनाने में हिचकिचाता नहीं है और व्यवसाय की अभिवृद्धि करने का प्रयास करता है। इन सब से उसकी व्यवसायिक कुशलता में वृद्धि होती है।

3. हानियों की सम्भावनाओं को समाप्त करना :–

बीमा कम्पनियों का लाभ इस बात पर निर्भर करता है कि बीमित कम से कम दुर्घटना ग्रस्त हों। इस प्रकार बीमा कम्पनियाँ सम्भावित घटनाओं को अथवा दूर करने के लिए नये–नये उपाय तथा तकनीक खोजते रहते हैं। इस उद्देश्य से बीमा कम्पनियों ने अपने अनुभवों और निरन्तर अनुसंधान के आधार पर अनिश्चितता को दूर करने, चिन्ता हटाने तथा हानि को कम करने के उपायों के प्रचार–प्रसार से हानि निवारण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। अगर बीमादार कम्पनी द्वारा सुझाये गये उपायों को व्यवहारिक रुप में अपनाता है तो उसे प्रीमियम की राशि कम देने की सुविधा दी जाती है।

अन्य कार्य (Other Work)

उपरोक्त प्रमुख तथा गौण कार्यों के अतिरिक्त बीमा द्वारा कुछ कार्य ऐसे भी किये जाते हैं जिनको उपरोक्त वर्णित वर्गीकरणों को समामेलित नहीं किया गया है। यह कार्य प्रत्यक्ष रुप से बीमा द्वारा सम्पन्न होते हुए नहीं दिखाई देते हैं लेकिन अप्रत्यक्ष रुप से ये कार्य बीमा के सहयोग से ही सम्पन्न होते हैं। बीमा द्वारा किये जाने वाले ऐसे कार्यों का बीमा के परोक्ष कार्य या अन्य कार्य कहा जाता है जिनका वर्णन निम्न किया गया है :

1. विश्वास उत्पन्न करना :–

बीमा किसी भी देश में व्यवसायिक तथा आर्थिक जोखिमों के प्रति सुरक्षा प्रदान करती है तथा व्यवसायियों तथा उद्यमियों के लिए पूँजी की व्यवस्था करता है तथा इसमें सहायता करता है। इससे देश की अर्थव्यवस्था में विश्वास उत्पन्न होता है। इन सब कार्यों द्वारा देश के उद्यमियों को देश की अर्थव्यवस्था में अधिक सकारात्मक रुप से प्रतिभाग करने की प्रेरणा देता है। इस प्रकार की गतिविधियों से व्यवसायिक दक्षता में वृद्धि होती है तथा व्यवसाय एवं उद्योग धन्धों का विकास होता है।

2. बचत का प्रोत्साहन करना :–

मूलतः देखा जाये तो बीमा का विकास मानव जीवन में घटने वाली अनिश्चित घटनाओं के जोखिमों से सुरक्षा प्रदान के लिए किया गया। बीमा कराना मनुष्य की आवश्यकता है यदि वह भविष्य में घटने वाली नकारात्मक घटनाओं के जोखिमो से होने वाली हानियों से बचना चाहता है। इसलिए बीमा के प्रीमियम चुकाने के लिए व्यक्तियों द्वारा बचत अनिवार्य रुप से की जाती है। जिससे यह आदत धीरे–धीरे परिवारों में बचत करने की आदत को प्रोत्साहित करती है तथा सामूहिक रुप से इस प्रकार की बचतें राष्ट्र के लिए भी महत्वपूर्ण होती हैं। इस प्रकार बीमा व्यवसाय अप्रत्यक्ष रुप से समाज को बचत करने में सहायता प्रदान कर सामूहिक बचतों से राष्ट्र निर्माण में मुख्य भूमिका निभाता है।

3. व्यापार, उद्योग तथा राष्ट्र के लिए वित्तीय स्थिरता प्रदान करना :–

बीमा द्वारा किया जाने वाला व्यवसाय यदि सम्पूर्ण रुप से देखे तो पूरे देश में एक ऐसा आवरण तैयार करता है जिसमें प्रत्येक व्यापारी, उद्योगपति या व्यवसायी अपने आप को तथा अपने व्यवसाय को भविष्य की नकारात्मक घटनाओं के घटित होने से उत्पन्न हानियों से सुरक्षित महसूस करता है। बीमा व्यवसाय ने मानव जीवन के जाखिम, व्यवसायिक तौर पर आग, पानी तथा आपदाओं से होने वाले जोखिमों की सुरक्षा या क्षतिपूर्ति का वादा कर समाज के प्रत्येक वर्ग विशेषकर व्यापारियों तथा उद्योगपतियों को वित्तीय रुप से स्थिर तथा मजबूत बनाया है। भयंकर अग्निकांड या आपदा से आर्थिक बर्बादी होती है तथा सम्पूर्ण देश को हानि सहन करनी पड़ती है। लाभों की हानि के प्रति भी बीमा व्यवसाय द्वारा सुरक्षा प्रदान की जाती है। बीमा से उद्योगों को वित्तीय स्थिरता मिलती है जिसका समाज को प्रत्यक्ष लाभ प्राप्त होता है। इस प्रकार बीमा व्यवसाय देश में आर्थिक सन्तुलन लाने में भी सहायक होता है।

बीमा व्यवसाय के उपरोक्त वर्णित प्रमुख गौण तथा अन्य कार्यों से व्यवसायियों तथा आम समाज को अत्यन्त मूल्यवान लाभ प्राप्त होते हैं तथा इन कार्यों से देश की

उन्नति तथा राष्ट्र निर्माण में सहायता मिलती है। वर्तमान समय में किसी भी देश के बीमा व्यवसाय के आँकड़े उस देश की उन्नति तथा आर्थिक स्थिरता का ज्ञान कराते हैं। बीमा द्वारा प्रदान किये जाने वाले लाभों का आकलन करे तो यह प्रतीत होता है कि आज समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए बीमा आवश्यक है।

11.12 बीमा का वर्गीकरण (Classification of Insurance)

विभिन्न प्रकार के बीमा को अनेक दृष्टिकोणों से वर्गीकृत किया जा सकता है। यहाँ निम्न वर्णित दो दृष्टिकोणों से बीमा का वर्गीकरण किया गया है :

बीमा व्यवसाय के अनुसार वर्गीकरण (Classification According to Insurance Business)

मुख्य रुप से बीमा व्यवसाय द्वारा पाँच तरह से व्यापार किया जाता है जीवन बीमा, सामाजिक बीमा, समुद्री बीमा, अग्नि बीमा तथा विविध बीमा। वर्गीकरण तथा क्रियाकलापों में एकरुपता की वजह से या भिन्नता के कारण जीवन बीमा को अलग वर्ग में रखा जाता है। इसी प्रकार, सामाजिक बीमा भी पृथक वर्ग में रखा जाता है। अन्य तीन बीमा (अग्नि बीमा, समुद्री बीमा तथा विविध बीमा) को एक पृथक वर्ग में रखा गया है जिसे साधारण बीमा (General Insurance) के नाम से जाना गया है। इस प्रकार बीमा व्यवसाय के आधार पर बीमा को तीन मुख्य भागों में वगीकृत किया गया है :–

1. जीवन बीमा
2. साधारण बीमा
3. सामाजिक बीमा

इन वर्गीकरणों को बेहतर तरीके से रेखाचित्र द्वारा आगे समझाया गया है।

कारोबार के अनुसार बीमा का वर्गीकरण

(Classification on The Basis of Business)

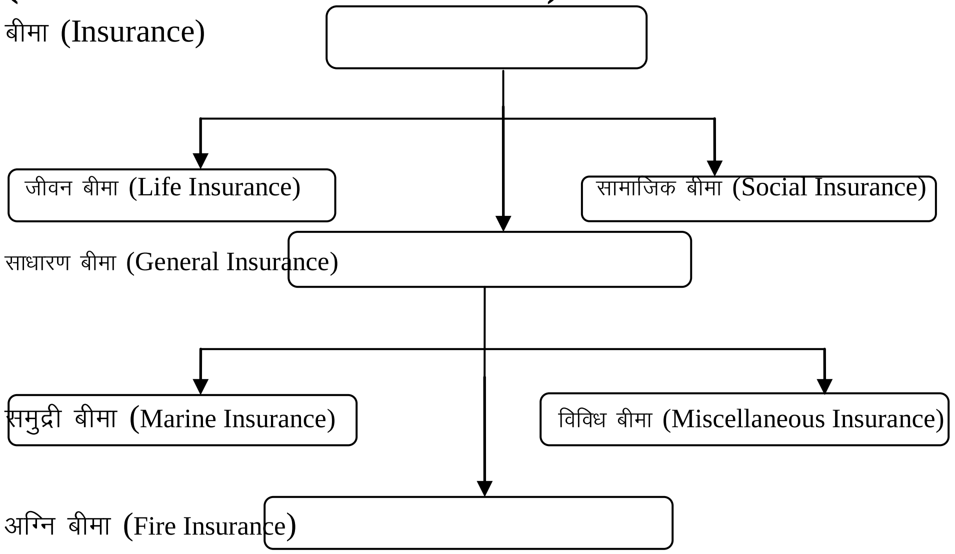

1. जीवन बीमा व्यवयाय (Life Insurance Business)

जीवन बीमा व्यवसाय, बीमा ब्यवसाय के अन्य वर्गों से भिन्न है। जैसा हम पहले यह पढ़ चुके हैं कि बीमा व्यवसाय की उत्पत्ति भविष्य में होने वाले जोखिमों के घटने से हानियों की सुरक्षा प्रदान करने के लिए की गयी या क्षतिपूर्ति के लिए की गयी। परन्तु इस बीमा व्यवसाय में क्षतिपूर्ति का नियम लागू नहीं होता है, क्योंकि किसी मनुष्य के जीवन का वित्तीय सूल्यांकन नहीं किया जा सकता है। भारतीय जीवन बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 2 के अनुसार "जीवन बीमा कारोबार" का आशय है मानव जीवन के प्रति बीमा संविदायें करना। इन संविदाओं के बीमादाता द्वारा बीमादार को यह आश्वासन दिया जाता है कि उसकी मृत्यु होने पर या एक निश्चित अवधि व्यतीत कर लेने पर बीमित धनराशि दे दी जायेगी। अर्थात जीवन बीमा व्यवसाय में बीमित की मृत्यु होने अथवा न होने, दोनों दशाओं में बीमित धनराशि प्राप्त होती है तथा बीमित व्यक्ति की मृत्यु पर उस हानि की क्षतिपूर्ति नहीं की जा सकती है।

2. साधारण बीमा व्यवसाय (General Insurance Business) :-

भारतीय बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 2 के अनुसार "साधारण बीमा व्यवसाय" का आशय अग्नि बीमा, समुद्री बीमा तथा विविध बीमा कारोबार से है, चाहे इनमें से कोई एक कारोबार किया जाय या सभी कारोबार संयुक्त रुप से किये जायें। जीवन बीमा एवं व्यक्तिदुर्घटना बीमा प्रसंविदाओं के अतिरिक्त शेष सभी बीमा संविदायें क्षतिपूर्ति के सिद्धान्त पर कार्य करती हैं। क्षतिपूर्ति सिद्धान्त का अर्थ है कि बीमित व्यक्ति को भविष्य की सम्भावित जोखिमों से जो हानि पहुँचेगी उसकी क्षतिपूर्ति बीमा कम्पनी द्वारा की जायेगी। इसी को साधारण शब्दों में समझे तो क्षतिपूर्ति सिद्धान्त का उद्देश्य बीमित व्यक्ति को हानि होने के बाद उसी वित्तीय दशा या स्थिति में रख देना, जिस दशा में वह बीमित घटना के घटित होने से तुरन्त पहले था। इस तरह के संविदाओं में बीमा कम्पनियाँ किसी निश्चित दुर्घटना या जोखिम से होने वाली वास्तविक हानी की क्षतिपूर्ति करने का आश्वासन देती है। हानि की दशा में बीमित जोखिम को जोखिम को वास्तविक दुर्घटना से वास्तविक हानि या बीमित राशि जो भी कम हो बीमा कम्पनी द्वारा क्षतिपूर्ति के रुप में चुकाया जाता है।

3. सामाजिक बीमा कारोबार (Social Insrance Business) :–

समाज के साधनहीन तथा असहाय वर्गों के हितों में बीमा व्यवसाय द्वारा जो कार्य किया जाता है उसे सामाजिक बीमा का नाम दिया जाता है। इस प्रकार के बीमा व्यवसाय द्वारा समाज के असहाय वर्ग के लिए विभिन्न प्रकार के सहयोगी तथा सहायक कार्य कर समाज में स्थिरता तथा समानता का भाव उत्पन्न करने की कोशिश की जाती है। इन कार्यों में बीमा कम्पनियों द्वारा वृद्धावस्था में पेंशन, बेरोजगारी के भत्ते, दुर्घटना, बीमारी तथा आर्थिक असमर्थता होने पर आर्थिक सहायता तथा समुचित उपचार की व्यवस्था की जाती है। सामाजिक बीमा, सामाजिक सुरक्षा का एक महत्वपूर्ण अंग है इसलिए इसे सरकार के मार्गदर्शन तथा तत्वाधान में संचालित किया जाता है।

संवृत जोखिम के अनुसार बीमा का वर्गीकरण (Classification According to Risk Covered)

बीमा का वर्गीकरण एक अन्य आधार पर भी किया जाता है कि बीमा का मूल विषय क्या है। अर्थात किस प्रकार के जोखिमों का बीमा कराया जा रहा है। बीमित विषय के मुख्य रुप से चार विषय हो सकते हैं जो निम्न प्रकार हैं :

1. वैयक्तिक बीमा 2. सम्पत्ति बीमा 3. दायित्व बीमा 4. गारन्टी बीमा

उक्त वर्गीकरणों को निम्नवत बेहतर तरीके से समझाया जा सकता है।

संवृत जोखिम के अनुसार वर्गीकरण

बीमा

- वैयक्तिक बीमा
  - जीवन बीमा
  - वैयक्ति दुर्घटना बीमा
  - स्वास्थ्य बीमा
- समपत्ति बीमा
  - अग्नि बीमा
  - समुद्री बीमा
  - फसल बीमा
  - पशु बीमा
  - मशीनरी बीमा
  - चोरी बीमा
- दायित्व बीमा
  - लोक दायित्व बीमा
  - कर्मकार प्रतिकार बीमा
  - मोटर बीमा
  - पुनर्बीमा
- गारन्टी बीमा
  - विश्वस्तता
  - गारन्टी बीमा
  - प्रत्यय गारन्टी बीमा
  - अवक्रय गारन्टी बीमा

वैयक्तिक बीमा (Personal Insurance)

यह बीमा व्यक्ति से सम्बन्धित है, इसे जीवन सम्बन्धी बीमा भी कहा जाता है। इस वर्ग में जीवन बीमा, वैयक्तिक दुर्घटना बीमा तथा स्वास्थय बीमा को सम्मिलित किया जाता है। जीवन बीमा में बीमित व्यक्ति की मृत्यु या एक निश्चित अवधि के पूर्ण होने पर तथा स्वास्थय बीमा में किसी (बीमित) व्यक्ति के अस्वस्थता के कारण उत्पन्न दायित्व का निर्वहन बीमा कम्पनियों द्वारा किया जाता है।

सम्पत्ति बीमा (Property Insurance)

मानव सम्पत्ति के किसी विशिष्ट (बीमित) भावी सम्भावित जोखिम से हानि होने पर जब हानि की क्षतिपूर्ति, बीमा कम्पनी द्वारा किया जाता है तो यह सम्पत्ति बीमा कहलाता है। इस वर्ग में अग्नि बीमा, समुद्री बीमा, फसल बीमा, पशु बीमा, मशीनरी बीमा तथा चोरी बीमा को मुख्य रुप से सम्मिलित किया जाता है। इस वर्ग में बीमा कम्पनी द्वारा व्यक्ति को आश्वासन दिया जाता है कि यदि भविष्य में व्यक्ति को किसी विशेष प्रकार (बीमित) के जोखिम से हानि होती है तो बीमा प्रीमियम चुकाये जाने के प्रतिफल स्वरुप वह उस हानि की क्षतिपूर्ति करेगी।

दायित्व बीमा (Liability Insurance)

इस वर्ग के अन्तर्गत वह सभी प्रकार की बीमायें आती हैं, जिनके अन्तर्गत बीमा कम्पनी बीमादारों को उनके दायित्वों के कारण हुई हानि की क्षतिपूर्ति करती है। ऐसी बीमाओं के उदाहरण हैं कर्मकारी प्रतिकर बीमा (Workman’s Compensation Insurance), लोक दायित्व बीमा (Public Liability Insurance), तृतीय पक्षकार दायित्व (Third Party Insurance), मोटर बीमा (Motor Insurance), पुनर्वीमा (Re-Insurance)।

गारन्टी बीमा (Guarantee Insurance)

बीमा के इस वर्ग में बीमा कम्पनियों द्वारा बीमादार को किसी अन्य तीसरे पक्षकार के बारे में इमानदारी या विश्वसनीयता की गारन्टी देनी होती है, जिससे इन दोनों पक्षकारों के मध्य समझौता हो सके या अनुबन्ध हो सके। इसके साथ ही यदि उस पक्षकार द्वारा (जिसकी गारन्टी बीमा कम्पनी ने दी है) बेईमान, धोखाधड़ी, अविश्वास तथा वचन भंग किया जाता है और इन सबके कारण बीमादार को किसी प्रकार की हानि होती है, तो उस हानि की क्षतिपूर्ति बीमा कम्पनी द्वारा किया जायेगा। विश्वसतता गारन्टी बीमा (Fidelity Guarantee Insurance), प्रत्यय गारन्टी बीमा (Credit Guarantee Insurance), अवक्रय गारन्टी बीमा (Hire-Purchase Gurantee Insurance) आदि प्रकार के बीमा को इस वर्ग में सम्मिलित किया जाता है।

11.13. दोहरा बीमा तथा पुनर्बीमा (Double & Re- Insurance)

किसी भी प्रकार के बीमा व्यवसाय का मूल तत्व है बीमा अनुबन्ध। प्रत्येक बीमा अनुबन्ध के अन्तर्गत किसी न किसी विषय वस्तु का बीमा किया जाता है परन्तु कभी–कभी कुछ व्यक्ति या व्यवसाय एक बार बीमित वस्तु या सम्पत्ति का पुनः बीमा करा देती हैं। ऐसी स्थिति में जब एक बार बीमित वस्तु या सम्पत्ति का दोबारा बीमा कराया जाता है तो इसे दोहरा बीमा या पुनर्बीमा कहा जाता है।

11.13.1 दोहरा बीमा (Double Insurance)

जब एक ही वस्तु, सम्पत्ति या व्यक्ति का बीमा एक से अधिक बीमा कम्पनियों से करा लिया जाता है तो इसे दोहरा बीमा कहा जाता है। आमतौर पर यह देखा जाता है कि जीवन बीमा में एक व्यक्ति अपने जीवन की सुरक्षा से सम्बन्धित कई बीमा अनुबन्ध पत्र एक कम्पनी से ले सकता है। परन्तु यदि एक व्यक्ति अपने जीवन की सुरक्षा एक से अधिक बीमा कम्पनियों से बीमा पत्र लेकर करता है तो इसे दोहरा बीमा कहा जायेगा। जैसे मनोहरदास ने 50,000 रुपये का बीमा भारतीय बीमा कम्पनी से करवाया, 20,000 रुपये का बीमा इण्डियन इन्श्योरेन्स कम्पनी द्वारा तथा 30,000 रुपये का बीमा न्यू इण्डिया जनरल बीमा कम्पनी से करवाया है तो कहा जायेगा कि मनोहरदास ने अपने जीवन का दोहरा बीमा कराया है।

जीवन बीमा, समुद्री बीमा तथा अग्नि बीमा सभी में दोहरा बीमा कराया जा सकता है लेकिन जीवन बीमा क्षतिपूर्ति का बीमा नहीं है और न ही जीवन बीमा में वास्तविक क्षतिपूर्ति की जा सकती है। उदाहरणतः जीवन बीमा में यदि बीमित व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो उसकी जीवन की क्षति को पूरा नहीं किया जा सकता है अर्थात जीवन अमूल्य है इसलिए जीवन बीमा में एक व्यक्ति अपने जीवन का बीमा कितनी भी बिमा कम्मपनियों से करा सकता है। इसके विपरीत जीवन बीमा के अतिरिक्त समुद्री तथा अग्नि बीमा क्षतिपूर्ति के सिद्धान्त पर काम करते हैं इसलिए कोई भी व्यक्ति अपनी सम्पत्ति या वस्तु का बीमा एक से अधिक बीमा कम्पनियों से करा सकता है, लेकिन बीमित जोखिम के घटित होने पर वह सिर्फ वास्तविक नुकसान या बीमित राशि दोनों में जो भी कम हो प्राप्त करने का अधिकार रखता है इसलिए जीवन बीमा के अतिरिक्त अन्य प्रकार की बीमा में दोहरा बीमा करा कर लाभ नहीं कमाया जा सकता है।

उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण :–

कमलनाथ ने अपने मकान का बीमा 'अ' कम्पनी से 50,000 रुपये, 'ब' कम्पनी से 70,000 रुपये तथा 'स' कम्पनी से 30,000 रुपये का करवाया। प्रथम पूर्णत्या यह पुनर्बीमा है, मकान का वास्तविक मूल्य 1,00,000 रुपये है। आग लग जाने से सम्पूर्ण मकान नष्ट हो गया। उक्त स्थिति में मकान के स्वामी कमलनाथ को अ, ब, स तीनों बीमा कम्पनियों से कुल मिलाकर अधिकतम 1,00,000 रुपये प्राप्त करने का अधिकार होगा। क्योंकि मकान का वास्तविक मूल्य 1,00,000 रुपये है। इस दशा में अ, ब तथा स बीमा कम्पनी द्वारा अनुपातिक तौर पर नुकसान की क्षतिपूर्ति की जायेगी। जैसे

अ कम्पनी द्वारा देय राशि = $\frac{50,000 \times 1,00,000}{1,50,000}$ = 33,333 रुपये

ब कम्पनी द्वारा देय राशि = $\frac{70,000 \times 1,00,000}{1,50,000}$ = 46,666 रुपये

स कम्पनी द्वारा देय राशि = $\frac{30,000 \times 1,00,000}{1,50,000}$ = 20,000 रुपये

इस प्रकार दोहरा बीमा से कुल प्राप्त धनराशि अ, ब तथा स कम्पनी से प्राप्त कुल राशि होगी जो किसी भी दशा में मकान की कीमत/मूल्य 1,00,000 रुपये से अधिक नहीं हो सकती है। इसलिए जीवन बीमा के अतिरिक्त सभी बीमा व्यवसाय क्षतिपूर्ति के सिद्धान्त पर आधारित होते हैं। दुर्घटना घटने की स्थिति में अधिकतम राशि दुर्घटना से हुई कुल क्षति तक ही बीमा कम्पनियों द्वारा प्रदान की जा सकती हैं। इस प्रकार उक्त उदाहरण में बीमा से प्राप्त कुल धनराशि है :

33,334.50 + 46,666 + 20,000.50 = कुल 1,00,000 रुपये।

11.13.2 अधिबीमा (Over Insurance)

जैसा कि इसके नाम से ही प्रतीत हो रहा है जब किसी वस्तु या सम्पत्ति की भविष्य में सम्भावित जोखिमों से बचने के लिए उसकी (वस्तु या सम्पत्ति) की वास्तविक कीमत से अधिक मूल्य का बीमा, बीमा कम्पनियों से कराया जाता है तो उसे अधि बीमा कहा जाता है। उदाहरणार्थ, यदि किसी व्यवसायी के मकान का वास्तविक मूल्य 1,00,000 रुपये है और उसने इसका बीमा 1,50,000 रुपये का करवाया है तो यह अधिबीमा कहलायेगा। इसमें बीमा कुल 50,000 रुपये की अधिक रकम से किया गया है। इसी प्रकार यदि किसी व्यापारी द्वारा अपने गोदाम में रखे गये तैयार माल जिसका वास्तवि मूल्य 50,000 रुपये है, का बीमा 75,000 रुपये से कराया गया है तो यह बीमा भी 25,000 रुपये से अधिबीमा की श्रेणी में आयेगा।

जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है कि क्षतिपूर्ति प्रसंविदा में अधिबीमा करवाने का कोई लाभ प्राप्त नहीं होता है। इसकी हानि है कि जितनी अधिक मूल्य का बीमा किया जायेगा उसके अनुसार अधिक प्रीमियम का भुगतान किया जायेगा तथा यदि घटना घटित होती है तो बीमा कम्पनी द्वारा अधिकतम क्षतिपूर्ति की रकम वास्तविक क्षतिपूर्ति ही होगी। इसलिए जीवन बीमा प्रसंविदा के अतिरिक्त अधिबीमा का लाभ किसी अन्य प्रकार के बीमा द्वारा नहीं लिया जा सकता है। एक व्यक्ति अपने

जीवन का कितनी भी राशि का बीमा करवा सकता है क्योंकि जीवन का कोई निर्धारित मूल्य नहीं है। हाँ, जीवन बीमा में यदि व्यक्ति अपने अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति का जीवन बीमा करवाता है तो बीमा की रकम उसी सीमा तक होनी चाहिए। जहाँ तक उस व्यक्ति के जीवन में बीमादार का हित हो (आर्थिक हित), इस राशि से अधिक राशि का बीमा करवाने पर यह भी अधिबीमा की श्रेणी में आयेगा।

11.13.3 अल्पबीमा (Under Insurance)

अधिबीमा के विपरीत यदि बीमित विषय वस्तु का उसके वास्तविक मूल्य से कम मूल्य का बीमा किया जाता है, तो उसे अल्पबीमा कहते हैं। मूलतः अल्पबीमा या अधिबीमा का प्रयोग जीवन बीमा प्रसंविदा के अतिरिक्त अन्य प्रकार के बीमा के लिए किया जाता है। सामान्यतः जीवन बीमा में इन शब्दों का प्रयोग इसलिए नहीं किया जाता है क्योंकि किसी भी व्यक्ति के जीवन के मूल्य को आँकलन नहीं किया जा सकता है, अर्थात जीवन अमूल्य है। इस कारण व्यक्ति अपने जीवन का बीमा किसी भी मूल्य का कर सकता है यह इस बात पर निर्भर करेगा कि वह उस मूल्य के बीमा का प्रीमियम चुका सके। समुद्री बीमा तथा अग्नि बीमा की दशा में जितनी रकम का अल्पबीमा किया गया है उस रकम के लिए बीमादार को स्वयं बीमादाता मान लिया जाता है। उदाहरणार्थ – यदि व्यापारी ने 1,00,000 रुपये के माल का समुद्री बीमा केवल 60,000 रुपये का किया है तो इस दशा में 60,000 रुपये तक की क्षति का दायित्व बीमा कम्पनी को हस्तान्तरित कर दिया गया है। बाँकी शेष राशि (1,00,000 – 60,000 = 40,000) का जोखिम स्वयं बीमादार सहन करेगा।

11.13.4 पुनर्बीमा (Re-Insurance)

बीमा कम्पनी द्वारा बीमा किये जाने पर कभी–कभी यह देखने में आता है, जब बीमा कम्पनी यह समझती है कि उसने अपनी वित्तीय क्षमता से अधिक राशि की बीमाओं को स्वीकार कर लिया है। अर्थात यदि यह दुर्घटनायें घटित हो जायें तो कम्पनी क्षतिपूर्ति में अक्षम हो सकती है। इस दशा से बचने के लिए कम्पनी शीघ्र ही अपने सम्भावित दायित्वों में से कुछ दायित्वों का किसी अन्य बीमा कम्पनी से बीमा करा लेती है, उसे पुनर्बीमा कहते हैं। किसी भी बीमा कम्पनी द्वारा किसी भी बड़े जोखिम का बीमा करने से इन्कार करने पर इसका प्रभाव उसकी ख्याति (Goodwill) तथा व्यापार (Business) पर नकारात्मक पड़ता है। अतः उसके द्वारा इन बड़े–बड़े जोखिमों को स्वीकार कर लिया जाता है, किन्तु इस पूर्ण दियित्व के सफल निर्वहन के लिए वह तुरन्त ही अपनी क्षमता से अधिक सम्भावित दायित्वों का या जोखिमों का बीमा किसी अन्य कम्पनी से करा लेती है। पुनर्बीमा दो बीमा कम्पनियों के बीच होता है।

11.14 पुनर्बीमा के लाभ (Advantage of Re- Insurance)

पुनर्बिमा के प्रचलन में आने से ही बीमा व्यवसाय का यह विकसित रुप देखने को मिलता है। इसके निम्नांकित लाभ उपलब्ध हैं :

1. प्रतिस्पर्धा की समाप्ति
2. प्रीमियम दरों की स्थिरता

3. बीमा व्यवयाय में वृद्धि
4. अधिक सुरक्षा
5. लाभ में स्थिरता
6. जोखिम का समुचित वितरण
7. कोषों की अतिरिक्त सुरक्षा

11.15 सारांश

बीमा और जोखिम का सीधा तथा प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। यदि जोखिम नहीं है तो बीमा की आवश्यकता नहीं है। मूलरुप से जोखिम परिकल्पी तथा शुद्ध प्रकार का होता है। बीमा को दो तरह से परिभाषित किया जा सकता है इसमें कार्यात्मक परिभाषा तथा वैधानिक परिभाषा सम्मिलित है। आम बोल–चाल की भाषा में समरुप समझे जाने वाले इन्श्योरेन्स तथा एश्योरेन्स एक दूसरे से मूल रुप से भिन्न हैं। आज की तिथि में बीमा व्यवसाय का क्षेत्र काफी विकसित हो चुका है। इसके विभिन्न प्रकार के लाभ हैं जो साष्ट्र से प्रारम्भ होकर आम व्यक्ति में बचत की भावना उत्पन्न करने क संदर्भ तक समझे जा सकते हैं। बीमा व्यवसाय के कार्यों को मुख्यतः तीन प्रमुख कार्य, गौण कार्य तथा अन्य कार्यों में विभाजित किया गया है। बीमा व्यवसाय का वर्गीकरण भी दो भागों में होता है, बीमा व्यवसाय के अनुसार वर्गीकरण तथा संवृत जोखिमों के अनुसार वर्गीकरण। बीमा व्यवसाय के आधार पर पुनः जीवन बीमा, साधारण बीमा तथा सामाजिक बीमा में विभक्त किया जाता है। संवृत जोखिम के आधार पर बीमा को वैयक्तिक बीमा, सम्पत्ति बीमा, दायित्व बीमा तथा गारन्टी बीमा में वर्गीकृत किया गया है। दोहरा बीमा तथा पुनर्बीमा की धारणाओं को स्पष्ट रुप से समझाया है।

11.16 शब्दावली

जोखिम (Risk): 'जोखिम' (Risk) का आशय किसी प्रतिकूल घटना द्वारा हानि या नुकसान होने की सम्भावना तथा तत्सम्बन्धी अनिश्चितता से है । हानि की अनिश्चितता (Uncertainity of Loss) जोखिम का सबसे महत्वपूर्ण लक्षण है।

परिकल्पी जोखिम (Speculative Risk): यदि किसी जोखिम में लाभ तथा हानि दोनों के होने की सम्भावना हो तो उसे परिकल्पी जोखिम कहते हैं। जैसे बाजार भाव के तेजी या मन्दी से होने वाला जोखिम परिकल्पी जोखिम कहलायेगा।

शुद्ध जोखिम (Pure Risk): शुद्ध जोखिम उस जोखिम को कहा जाता है जिसमें केवल हानि होने की सम्भावना होती है लाभ होने की नहीं। जैसे अग्नि का जोखिम, दुर्घटना का जोखिम, चोरी का जोखिम आदि ।

जीवन बीमा व्यवयाय (Life Insurance Business) : भारतीय जीवन बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 2 के अनुसार "जीवन बीमा कारोबार" का आशय है मानव जीवन के प्रति बीमा संविदायें करना। इन संविदाओं के बीमादाता द्वारा बीमादार को यह आश्वासन दिया जाता है कि उसकी मृत्यु होने पर या एक निश्चित अवधि व्यतीत कर लेने पर बीमित धनराशि दे दी जायेगी।

साधारण बीमा व्यवसाय (General Insurance Business): भारतीय बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 2 के अनुसार "साधारण बीमा व्यवसाय" का आशय अग्नि बीमा, समुद्री

बीमा तथा विविध बीमा कारोबार से है, चाहे इनमें से कोई एक कारोबार किया जाय या सभी कारोबार संयुक्त रुप से किये जायें।

सामाजिक बीमा कारोबार (Social Insrance Business): समाज के साधनहीन तथा असहाय वर्गों के हितों में बीमा व्यवसाय द्वारा जो कार्य किया जाता है उसे सामाजिक बीमा का नाम दिया जाता है।

दोहरा बीमा (Double Insurance): जब एक ही वस्तु, सम्पत्ति या व्यक्ति का बीमा एक से अधिक बीमा कम्पनियों से करा लिया जाता है तो इसे दोहरा बिमा कहा जाता है।

अधिबीमा (Over Insurance): जब किसी वस्तु या सम्पत्ति की भविष्य में सम्भावित जोखिमों से बचने के लिए उसकी (वस्तु या सम्पत्ति) की वास्तविक कीमत से अधिक मूल्य का बीमा, बीमा कम्पनियों से कराया जाता है तो उसे अधि बीमा कहा जाता है।

अल्पबीमा (Under Insurance): अधिबीमा के विपरीत यदि बीमित विषय वस्तु का उसके वास्तविक मूल्य से कम मूल्य का बीमा किया जाता है, तो उसे अल्पबीमा कहते हैं।

पुनर्बीमा (Re-Insurance): जब बीमा कम्पनी यह समझती है कि उसने अपनी वित्तीय क्षमता से अधिक राशि की बीमाओं को स्वीकार कर लिया है। अर्थात यदि यह दुर्घटनायें घटित हो जायें तो कम्पनी क्षतिपूर्ति में अक्षम हो सकती है। इस दशा से बचने के लिए कम्पनी शीघ्र ही अपने सम्भावित दायित्वों में से कुछ दायित्वों का किसी अन्य बीमा कम्पनी से बीमा करा लेती है, उसे पुनर्बीमा कहते हैं।

11.17 बोध प्रश्न

बताइये निम्न कथन सत्य है या असत्य

1. बीमा जुआ का प्रसविदा है।
2. बीमा के विकास क्रम मे सर्वप्रथम अग्नि बीमा का विकास हुआ।
3. जीवन बीमा अनुबन्ध का उद्देश्य बचत करना एंव विनियोग करना है।
4. बीमा जीवनस्तर बनाये रखने में सहायक होता है।
5. बीमा सहकारिता के सिद्वान्त पर अधारित नही है।
6. बीमा योग्यहित किसी जीवन या वस्तु मे निहित आर्थिक या वित्तीय हित है।
7. जीवन बीमा कराने से आयकर में छूट मिलती है।
8. व्यापक परिवहन पालिसियॉ अग्नि बीमा से सम्बन्धित है।
9. औसत बीमा पत्र क्षतिपूर्ति के आधर पर जारी किया जाता है।

11.18 बोध प्रश्नों के उत्तर

(1) असत्य	(2) असत्य	(3) सत्य	(4) सत्य	(5) असत्य
(6) सत्य	(7) सत्य	(8) सत्य	(9) सत्य	

11.19 स्वपरख प्रश्न

1. जोखिम से आप क्या समझते हैं ? जोखिम तथा संकट के बीच सम्बन्ध बताइये।
2. बीमा की परिभाषा की विवेचना कीजिए।

3. इन्श्योरेन्स तथा एश्योरेन्स के बीच अन्तर स्पष्ट करें।
4. वैध बीमा अनुबन्ध के आवश्यक तत्वों को उल्लेखित कीजिए।
5. बीमा तथा जुए में क्या अन्तर है ? पूर्णतया विवेचना कीजिए।
6. "बीमा एक साधन है जिससे कुछ की हानियाँ बहुतों में बाँटी जाती हैं" इस कथन की विवेचना करते हुए बीमा के कार्यों का वर्णन कीजिए।
7. दोहरा बीमा तथा पुनर्बीमा का विस्तार से वर्णन करें।

11.20 सन्दर्भ पुस्तकें

- सेठी, टी0टी0 (2015), मुद्रा बैंकिंग एवं लोक वित, आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिसर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- अग्रवाल, दीपक (2010), मुद्रा बैंकिंग, लोक वित्त एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, हिमालया पब्लिशिंग हाउस मुबई।
- बिश्नोई, आर0के0, बीमा के सिद्धांत, साहित्य भवन पब्लिसर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा।
- श्रीवास्तव, आर0एम0 और निगम, दिब्या मैनेजमैन्ट ऑफ इंडियन फाइनैन्शियल इंस्टीट्यूशन्स
- विभिन्न इंटरनैट साइट्स।
- जैन, टी0आर0 इंडियन फाइनैन्शियल सिस्टम्स, वी0के0 ग्लोबल पब्लिकेशन्स और खन्ना, ओ0पी0, प्राईवेट लिमिटेट, 2014–15।
- गुप्ता, शान्ति के0 और अग्रवाल, निशा, इंडियन फाइनैन्शियल सिस्टम्स, कल्याणी पब्लिसर्स, 2016।
- प्रतियोगिता दर्पण, जुलाई 2016।
- इंडियन इकोनोमी, जुलाई 2016।

इकाई – 12 पारस्परिक कोष और विकास बैंक (Mutual Funds and Development Banks)

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना
12.3 विकास बैंक की परिभाषा
12.4 विकास बैंकों की विशेषताय
12.5 विकास बैंक तथा व्यापारिक बैंक में अन्तर
12.6 विकास बैंकिंग के उद्‌देश्य
12.7 विकास बैंकों की आवश्यकता
12.8 विकास बैंकों के प्रमुख कार्य
12.9 विकास बैंकों का विकास
12.10 आर्थिक विकास के लिए केन्द्रीय तथा राज्य स्तर के विकास बैंक
12.10.1 भारतीय औद्योगिक वित्त निगम लिमिटेड
12.10.2 राज्य वित्त निगम
12.10.3 भारतीय औद्योगिक पुननिर्माण बैंक
12.10.4 भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक
12.10.5 भारतीय निवेश केन्द्र
12.10.6 भारतीय औद्योगिक पुनर्निमाण बैंक
12.10.7 राष्ट्रीय आवास बैंक
12.11 विकास बैंकों का मूल्याँकन
12.12 पारस्परिक कोष
12.13 पारस्परिक कोष स्कीमों के प्रकार
12.14 पारस्परिक कोष सेवायें
12.14.1 बीमा योजना
12.14.2 स्थानान्तरण लाभ/परिवर्तन अधिकार
12.14.3 स्वतः पुनः निवेश योजना
12.14.4 बचत योजनायें
12.14.5 नियमित आय योजना
12.14.6 सेवानिवृत्त पेंशन योजनायें
12.15 सारांश
12.16 शब्दावली
12.17 बोध प्रश्न
12.18 बोध प्रश्नों के उत्तर
12.19 स्वपरख प्रश्न
12.20 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्‌देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- विकास बैंक और पारस्परिक कोष के बारे में इसके उदय तथा परिभाषाओं को विस्तार से समझ सकें।
- विकास बैंक के उद्देश्यों को समझाते हुए, विकास बैंक तथा व्यापारिक बैंक में अन्तर स्पष्ट कर सकें।
- विकास बैंकों की आवश्यकता को समझते हुए इनके कार्यों का विस्तार से वर्णन कर सकें।
- भारत में प्रमुख विकास बैंकों को साक्षिप्त रूप से समझ सकें।
- विभिन्न भिक्षुओं या पहलुओं पर विकास बैंकों का मूल्यांकन कर सकें।
  पारस्परिक कोष स्कीमों के प्रकारों का विस्तारपूर्वक वर्णन कर सकें।

12.1 प्रस्तावना

किसी भी देश के उद्यमों को उन्नति की ओर अग्रसर होने का अवसर देने वाली विशिष्ट संस्थाओं को विकास बैंक कहा जाता है, जिनके अवसरों से उद्यम 'संकल्पना' से योजनाओं की पूर्ति की ओर अग्रसर होते हैं। विकास बैंक निजी उद्यमियों की मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ–साथ देश के आर्थिक–विकास में सहायक विभिन्न प्रोन्नत भूमिकायें निभाने का प्रमुख कार्य करते हैं। जैसा कि इनके नाम से ही ज्ञात होता है। विकास बैंक विकासोन्मुख (Development Oriented) हैं, इनका प्रमुख कार्य तथा इनकी स्थापना का मुख्य उद्देश्य ही देश में विकास को गति प्रदान करना होता है। विकास बैंक व्यापारिक/वाणिज्यिक बैंकों से मूल रूप से निम्न प्रकार भिन्न हैं :

(i) विकास बैंक व्यापारिक बैंकों की भाँति जनता से जमा को नहीं स्वीकारते हैं।

(ii) उद्यमियों की अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति मूलतः व्यापारिक बैंकों द्वारा की जाती है, जबकि मध्यकालीन तथा दर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताओं का सम्बन्ध विकास बैंकों से है।

(iii) मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन ऋण प्रदान करने के साथ–साथ विकास बैंक निवेश भी करते हैं तथा उद्यम को बढ़ाकर आर्थिक विकास की गति प्रदान करते हैं, यह कार्य व्यापारिक बैंकों द्वारा प्रायः नहीं किया जाता है। विकास बैंक देश के विकास से जुड़ी सभी सेवायें प्रदान करते हैं। इसमें मुख्य हैं बाजार सूचना एवं प्रबन्ध सुविधायें, तकनीकी परामर्श का प्रावधान जोखिम पूँजी का प्रावधान करना, निवेश परियोजनाओं की पहचान करना, परियोजना रिपोर्टों का मूल्यॉकन करना तथा नये निर्गमों की हामी भरना। यह सभी सेवायें तथा इनके अतिरिक्त वह सेवायें विकास बैंकों द्वारा प्रदान की जाती हैं जिनके द्वारा देश में आर्थिक विकास की गति को तेज किया जा सके।

12.3 विकास बैंक की परिभाषा

(i) डॉ0 देसाई के अनुसार "एक विकास बैंक वह वित्तीय संस्था है जिसका सम्बन्ध उद्यमों को ऋणों, हामी भरने, निवेश और गारन्टी प्रचालनों के तथा प्रोन्नति क्रियाओं के रूप में सभी प्रकार की वित्तीय सहायता प्रदान करता है तथा उन्नति सम्बन्धी उन सभी क्रियाओं को प्रोत्साहन देता है जिनसे कि

धारणीय सामाजिक आर्थिक विकास की प्रक्रिया तीव्र हो सके तथा संवृद्धि और सहयोग बढ़े।" (A development bank is a financial Institution concerned with providing all types of financial assistance to enterprises in the form of loans, underwriting, investment and guarantee operations and promotional activities to accelerate the process of sustainable social economic development and faster growth and co-operation.)

(ii) विलियम डाइमण्ड के अनुसार, "एक विकास बैंक वह बैंक है जो विकास उद्देश्यों की प्राथमिकता देता है।" "A development bank is that bank which gives priority to development activities."

(iii) डॉ0 के0वी0 प्रभाकर के शब्दों में, "विकास बैंक एक बहुउद्देशीय संस्था है जो उद्यमीय जोखिमों को सहन करती है, औद्योगिक वातावरण के साथ समयानुसार अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन लाती है और तीव्र आर्थिक विकास को लाने के लिए नई औद्योगिक परियोजनाओं को प्रोत्साहन देती है।" "A development bank is a multipurpose Institution which shares entrepreneurial risks, changes its approach in time with industrial climate and encourage new industrial projects to bring about speedier economic growth."

12.4 विकास बैंकों की विशेषतायें (Characterstics of Development Banks)

विकास बैंक की विशिष्ट विशेषता प्रोन्नति (Promotion), अभिप्रेरण (Motivation), प्रोत्साहन (Stimulation) और सहायता (Assistance) के चारों ओर घूमती है। इन विशेषताओं के कारण विकास बैंक एक जीवित संगठन की तरह है जो अपने आस पास के वातावरण की चिन्ता करता है, उस पर प्रतिक्रिया करता है तथा विकास गति को आगे बढ़ाता है। इसी भाँति हमारा वातावरण भी इन सब पर अपनी प्रतिक्रिया करता है तथा विकास गति को आगे बढ़ाता है। इसी भाँति हमारा वातावरण भी इस सब पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। एक विकास बैंक की कुछ महत्वपूर्ण विशेषतायें निम्नाँकित हैं :

विकास बैंक आर्थिक विकास को बढ़ाने का प्रयास करता है :–

विकास बैंको की स्थापना का मूल उद्देश्य होता है देश के आर्थिक विकास की गति को बढ़ाना। इसके लिए विकास बैंकों द्वारा उद्यमियों तथा उद्यमों के संदर्भ में वित्त व्यवस्था के साथ–साथ विभिन्न सेवाओं का भी निष्पादन किया जाता है। उनमें मुख्य रूप से देश में उद्यमियों द्वारा निवेश का वातावरण तैयार करना तथा विशेषज्ञ सेवायें प्रदान करना है।

यह बहुउद्देशीय वित्तीय संस्था है :–

विकास बैंक मूल रूप से वित्तीय संस्था होते हुए भी उद्यमियों के विभिन्न कार्यों में सहायता तथा विशेषज्ञ सेवायें प्रदान करता है। उद्यमियों की मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन वित्त आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ–साथ विकास बैंकों द्वारा ऐसी

विभिन्न सेवायें प्रदान की जाती हैं जो किसी भी देश के आर्थिक विकास को गति प्रदान करने में मुख्य भूमिका निभाते हैं।

विकास बैंक वित्त से लेकर प्रबन्ध सेवाओं तक एक पैकेज प्रदान करता है :–

केवल वित्तीय सुविधा प्राप्त होना ही इस बात का निर्धारण नहीं करता है कि आर्थिक विकास की गति तीव्र होगी। धारणीय सामाजिक आर्थिक विकास के लिए वित्त की उपलब्धता के साथ–साथ इसका उचित निवेश, उचित मूल्यांकन तथा उचित प्रबन्ध अत्यधिक आवश्यक है। इन सभी कार्यों के लिए विशेषज्ञों की सेवाओं की आवश्यकता होती है जो आज देश के विकास बैंकों द्वारा एक ही स्थान पर पैकेज के रूप में प्रदान करते हैं।

अन्य वित्तीय संस्थाओं को वित्त प्रदान करता है :–

विकास बैंक द्वारा आर्थिक विकास को गति प्रदान करने के लिए वित्त वितरण (ऋण) अधिकार का विकेन्द्रीयकरण भी किया जाता है। देश में समग्र विकास के लिए विकास बैंकों द्वारा अन्य वित्तीय संस्थाओं को उनकी भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए ऋण के रूप में वित्त प्रदान किया जाता है जिसका वितरण क्षेत्र तथा आवश्यकतानुसार उद्यमियों को ऋण के रूप में किया जाता है।

उद्यमियों के लिए प्रोत्साहन तथा अभिप्रेरण का पैकेज प्रदान करता है :–

आर्थिक विकास की सुनिश्चितता के लिए विभिन्न जोखिम भरे परियोजनाओं में निवेश की आवश्यकता होती है । जैसा कि हम जानते हैं कि अधिक जोखिम वाले परियोजनाओं में उद्यमियों की रुचि कम होती है। विकास बैंक अपने मुख्य कार्य के रूप में ऐसे उद्यमियों को प्रोत्साहन तथा अभिप्रेरण का पैकेज देकर उनसे इन परियोजनाओं में निवेश सम्भव कराता है। इन कार्यों के लिए विकास बैंक विशेषज्ञों की सेवायें प्रदान करता है।

यह विकास के लिए संस्थागत नये परिवर्तन लाता है :–

समय तथा तकनीकी परिवर्तनों के साथ–साथ देश के समग्र आर्थिक विकास के लिए कुछ संस्थागत परिवर्तन समय–समय पर करने पड़ते हैं, इनके बिना किसी भी देश का विकास गति प्राप्त नहीं कर सकता है। ऐसे संस्थागत परिवर्तन को सहज बनाने के लिए विकास बैंक समय–समय पर निरन्तर कार्य करता रहता है।

यह एक कड़ी है जो आर्थिक विकास को चारों ओर फैलाता है :–

जैसा कि पूर्व में वर्णन किया जा चुका है कि विकास बैंक उद्यमियों को तथा विभिन्न वित्तीय संस्थाओं को वित्त प्रदान करने के साथ–साथ अन्य अति महत्वपूर्ण कार्यों को विशेषज्ञों की सहायता से पूर्ण कर देश में धारणीय सामाजिक आर्थिक प्रगति/विकास का वातावरण तैयार करने के साथ इस विकास को जन–जन तथा विभिन्न अन्तरसम्बन्धित विभागों तक फैलाता है।

12.5 विकास बैंक तथा व्यापारिक बैंक में अन्तर (Difference Between Commercial Banks And Development Banks)

		व्यापारिक बैंक	विकास बैंक
1	ऋण की अवधि	व्यापारिक बैंक मूलतः उद्यमियों तथा जनता को अल्प अवधि के लिए ऋण प्रदान करता है।	विकास बैंक देश में आर्थिक विकास की प्रगति के लिए उद्यमियों की वित्त सम्बन्धी मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।
2	जनता से जमा स्वीकारना	व्यापारिक बैंक नियमित रूप से जनता से जमा स्वीकार करता है।	विकास बैंक किसी भी दशा में जनता से सीधे जमा स्वीकार नहीं करता है।
3	अन्य कार्य	व्यापारिक बैंक ऋण देने, जमा स्वीकार करने के अतिरिक्त देश के विकास से सीधे सम्बन्धित कुछ ही कार्यों को करता है।	व्यापारिक बैंको की तुलना में विकास बैंक औद्योगिक ईकाइयों को वित्त प्रदान करने के साथ–साथ उनका मार्गदर्शन, निरीक्षण तथा उद्यमियों को परामर्श देने का कार्य भी करता है।
4	मूल उद्देश्य	व्यापारिक बैंक पारम्परिक दृष्टि से 'सुरक्षा परक' (security oriented) होते हैं।	विकास बैंकों का दृष्टिकोण 'परियोजना परक' (project oriented) होता है।
5	व्यवसाय विस्तार	आज व्यापारिक बैंक भी परियोजना वित्त के क्षेत्र में प्रवेश कर चुके हैं तथा विकास बैंकों के साथ मिलकर विकास कार्य में सहयोग कर रहे हैं।	विकास बैंकों ने भी अब अपने व्यवसाय का विस्तार कर अल्पकालीन ऋण प्रदान करना प्रारम्भ कर दिया है।

12.6 विकास बैंकिंग के उद्देश्य (Objectives of Development Banks)

आर्थिक विकास को गति प्रदान करने के मूल उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए विकास बैंकिंग के निम्नांकित उद्देश्य होते हैं :

ऐजेन्ट के रूप में सेवायें प्रदान करना :–

देश में विकास बैंकों की स्थापना का उद्देश्य विकास बैंकों द्वारा सरकार के ऐजेन्टों के रूप में विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करना है। कृषि, उद्योग तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार जैसे कुछ क्षेत्र किसी भी देश के विकास की गति पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालते हैं।

इन क्षेत्रों में विकास की गति सम्पूर्ण देश के विकास की गति तय करती है। अतः कृषि, उद्योग तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के तीव्र विकास के लिए विकास बैंक सरकार के ऐजेन्ट के रूप में कार्य करता है। इस कार्य से नियमों का पालन तथा निर्णय लेने में शीघ्रता से अनेकों लाभ प्राप्त होते हैं।

अर्थव्यवस्था की प्रगति को तीव्र गति प्रदान करना :—

किसी भी देश की सम्पूर्ण विकास से ही उस देश के आर्थिक विकास को गति प्रदान होती है। केवल वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति से ही किसी भी देश का आर्थिक विकास गति प्राप्त नहीं कर सकता है। विकास बैंक उद्यमियों की अल्पकालीन, मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकतानुसार सुझाव, परामर्श, वित्त प्रबन्धन जोखिम वितरण तथा तकनीकी सहायता सम्बन्धी सेवायें प्रदान करता है जिससे अर्थव्यवस्था की प्रगति को तीव्र गति प्रदान होती है।

तीव्र औद्योगिक विकास :—

तीव्र औद्योगिकरण विशेषतः निजी क्षेत्र में करवाना विकास बैंकों की प्राथमिकता में सम्मिलित होता है क्योंकि तीव्र औद्योगिकरण से रोजगार के अधिक अवसर उत्पन्न होते हैं तथा अधिक रोजगार से अधिक उत्पादन सम्भव है। यह प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से आर्थिक विकास की गति निर्धारित करता है।

उद्यमीय कौशल विकास :—

विकास बैंक देश के विभिन्न क्षेत्रों का अवलोकन कर ज्ञात करते हैं कि किस क्षेत्र में अधिक प्रयास करने की आवश्यकता है। इसी क्रम में विकास बैंक द्वारा उद्यमियों के कौशल विकास हेतु विशेषज्ञों के साथ विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन तथा संचालन किया जाता है।

जोखिम युक्त परियोजनाओं का वित्त प्रबन्ध :—

किसी भी उद्यमी द्वारा लाभ कमाने के उद्देश्य से परियोजना में कार्य किया जाता है। अतः अधिक जोखिम युक्त परियोजनाओं में उद्यमी अधिक रूचि नहीं लेगा इसलिए उद्यमी को विभिन्न सेवायें प्रदान करते हैं जिसमें मुख्य है वित्त प्रबन्ध।

निर्यातों के लिए वित्त की व्यवस्था करना :—

विदेशी मुद्रा की प्राप्ति के लिए निर्यात आवश्यक हैं। निर्यात हेतु विभिन्न नियमों तथा अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का पालन जरूरी है। अतः विकास बैंक उद्यमियों को निर्यात व्यवसाय करने के लिए आवश्यक परामर्श तथा वित्त की व्यवस्था करता है।

तकनीकी तथा प्रशासकीय सेवायें प्रदान करना :—

किसी भी परियोजना की सफलता तथा देश के आर्थिक विकास के लिए वित्तीय आवश्यकताओं के साथ तकनीकी तथा प्रशासकीय क्षमता या कौशल भी आवश्यक होता है। यह कौशल विकास बैंकों द्वारा विभिन्न आयोजनों में प्रदान किया जाता है जिसकी सहायता से परियोजनायें सफल होने के साथ आर्थिक विकास की गति प्रमाणित होती है।

बाजार तथा निवेश सम्बन्धी अनुसंधान तथा सर्वेक्षण कार्यों को करना :—

विकास बैंकों का एक महत्वपूर्ण कार्य है बाजार तथा निवेश सम्बन्धी विभिन्न क्षेत्रों की गतिविधियां आवश्यकतानुसार हैं अथवा नहीं। यदि नहीं तो क्यों? क्यों का

उत्तर अनुसन्धान से ज्ञात होगा तथा ज्ञात होने के पश्चात् विकास बैंक उन विभिन्न क्षेत्रों में प्राथमिकता स्वरूप आवश्यक सेवायें प्रदान करते हैं जहाँ इनकी आवश्यकता है।

12.7 विकास बैंकों की आवश्यकता (Need of Development Banks)

भारतीय अर्थव्यवस्था के योजनाबद्ध विकास, तकनीकी क्रान्ति और विविधीकरण के युग ने विकास बैंकों की स्थापना की जरूरत को महसूस कराया है। विकास बैंकों की स्थापना की आवश्यकता निम्नांकित रूप से स्पष्ट की जा सकती है :

मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन पूँजी की पूर्ति :–

कृषि के रूपान्तरण, मध्यम उद्योगों का आधुनिकीकरण तथा बड़े पैमाने पर बड़े उद्योगों की स्थापना के लिए मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन निवेश की आवश्यकता होती है। व्यापारिक बैंक मुख्यतः इन उद्यमियों की केवल अल्पकालीन पूँजी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं अतः इस विकास प्रणाली को अग्रसर करने हेतु उचित ब्याज दर पर मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन पूँजी उपलब्ध कराने वाली संस्थाओं की महती आवश्यकता महसूस की जाने लगी। विकास बैंकों की स्थापना मुख्यतः इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए की गई।

औद्योगिक वित्त सुविधा :–

आधारभूत तथा भारी बड़े पैमाने के उद्योगों के वित्तीय विकास से ही भारतीय अर्थव्यवस्था को सशक्त बनाया जा सकता था। इन उद्योगों हेतु भारी वित्तीय आवश्यकताओं के साथ–साथ इस वित्त के विशिष्ट प्रबन्धन की भी आवश्यकता थी। इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति वर्तमान वित्तीय प्रणली के दायरे से बाहर थी, तभी सरकार द्वारा इन विशिष्ट उद्देश्यों की आवश्यकता हेतु विकास बैंकों की स्थापना प्रारम्भ की तथा इनके द्वारा दीर्घकालीन भारी मात्रा में ऋण देने के साथ इसके विशेषज्ञ प्रबन्धन की सुविधायें प्रदान की जाने लगी।

व्यापार परक विकास :–

भारत को तीव्र आर्थिक विकास के लिए आवश्यकता थी आयात–प्रतिस्थापन संवृद्धि से निर्यात–परक संवृद्धि की ओर जाने की तथा निर्यात परक संवृद्धि के लिए यह आवश्यक था कि निर्यात करने वाले उद्योगों के विकास में सस्ते दर पर बड़ी राशि निवेश की जाये। निर्यात परक उद्योगों के लिए विदेशी मुद्रा की उपलब्धता भी अति आवश्यक है। तत्कालीन वित्तिय संस्था में विकास की निर्यात परक नियोजन के अनुसार नहीं थी। इस कमी को पूरा करने के लिए भारतीय निर्यात–आयात बैंक तथा अन्य विकास बैंकों की स्थापना की गई।

अल्प विकसित पूँजी बाजार :–

भारत में प्राथमिक तथा द्वितीयक पूँजी बाजार की उपस्थिति है लेकिन दोनों ही बाजार पूर्ण विकसित नहीं है तथा आज के दौर के ओद्योगिक संरचना की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति में सक्षम नहीं हैं। पूँजी बाजार की अल्पविकसित होने के कारण देश में पूँजी निर्माण की आवश्यकताओं हेतु देश में विकास बैंकों की स्थापना हुई।

क्षेत्रीय असन्तुलन दूर करना :–

भारतीय अर्थव्यवस्था में आर्थिक विकास के दृष्टिकोण से व्यापक क्षेत्रीय असंतुलन पाये जाते हैं। कुछ ही क्षेत्र हैं जिन पर विशेष ध्यान दिया गया है, अन्य क्षेत्र काफी पिछड़े हुए हैं। इन पिछड़े क्षेत्रों के आर्थिक विकास के दृष्टिकोण से व्यापक क्षेत्रीय असंतुलन पाये जाते हैं। इन पिछड़े क्षेत्रों के आर्थिक विकास के लिए दीर्घ/मध्य कालीन ऋण की कम ब्याज दरों पर आवश्यकता है और इन शर्तों पर विकास बैंक ही इन पिछड़े क्षेत्रों के विकास में कार्यरत हो सकते हैं।

निजीकरण :–

अर्थव्यवस्था में निजीकरण को अपनाने के साथ कुछ लाभ तथा कुछ हानियाँ नजर आती हैं। निजीकरण के साथ ही मुख्य आवश्यकता होती है वित्तीय सुविधा (ऋण) की, इसके साथ वित्त प्रबन्धन, तकनीकी ज्ञान तथा उद्यमी कौशलता जैसी सुविधायें केवल विकास बैंकों द्वारा ही प्रदान की जा सकती थी अतः इनकी स्थापना की गई।

वैश्वीकरण :–

वैश्वीकरण के साथ ही भारतीय अर्थव्यवस्था को तथा उद्योगों को विश्व स्तर के उद्योगों से प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा। भारतीय उद्योग इस प्रतिस्पर्धा में तभी जीवित रह सकते थे जब वह कम दाम में उचित क्वालिटी की वस्तुऐं पैदा कर सकें। उस समय विकास बैंकों की आवश्यकता महसूस हुई क्योंकि इसी तरह की संस्थायें इस दौर में भारतीय उद्योगों को वित्तीय तथा अन्य विशेषज्ञ सेवायें प्रदान कर सकती थीं।

कृषि का रूपान्तरण :–

जीवन निर्वाह हेतु खेती से लाभकारी तथा आधुनिक खेती के रूप में कृषि का रूपान्तरण करने के लिए सस्ती दरों पर काफी मात्रा में मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन ऋणों की आवश्यकता थी तथा भारतीय मुद्रा बाजार इस आवश्यकता की पूर्ति में सक्षम नहीं था अर्थात् विकास बैंक की स्थापना की आवश्यकता हुई।

12.8. विकास बैंकों के प्रमुख कार्य (Functions of Development Banks)

केवल वित्तीय सुविधा या ऋण प्रदान करने के लिए विकास बैंकों की स्थापना नहीं की गई। विकास बैंकों की स्थापना का मुख्य उद्देश्य वित्तीय सुविधा के साथ देश की विकास जरुरतों को प्रभावी ढंग से पूरा करने के लिए संसाधनों करे गतिशील करने तथा इनके उचित उपयोग में महत्वपूर्ण भूमिका निभाना मुख्य था। विकास बैंकों के सामान्य कार्यों को निम्नवत स्पष्ट किया जा सकता है :

1. नियोजन, संगठन तथा सुविधायें :–

विकास बैंकों का सामान्य प्रमुख कार्य है देश के विभिन्न क्षेत्रों का सर्वेक्षण एवं अनुसंधान कर पिछड़े क्षेत्रों या अल्पविकसित क्षेत्रों के लिए योजना बनाना, परियोजनाओं तथा कार्यक्रमों को तैयार करना, उसके लिए आवश्यक वित्त का प्रबन्ध करना तथा इस योजना को सफलता पूर्वक उद्देश्य प्राप्ति के लिए तकनीकी सहायता उपलब्ध कराना।

2. पूँजी निवेश को प्रोत्साहित करना :–

नियोजन के साथ प्रोन्नति तथा अभिप्रेरण भी विकास बैंकों का प्रमुख सामान्य कार्य है। विकास को गति देने के लिए विकास बैंकों को सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र की पूँजी को निवेश के लिए प्रोत्साहित करना होगा।

3. साधनों का एकत्रीकरण :–

विभिन्न क्षेत्रों के समुचित आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है वित्त के साथ अन्य साधनों की उपलब्धता तथा विकास बैंकों की स्थापना के बाद इनके द्वारा कार्य को अन्जाम दिया जाता है।

4. विभिन्न संस्थाओं से सहयोग :–

समुचित और तीव्र गति से विकास के लिए विकास बैंकों का सरकार, भारतीय रिजर्व बैंक तथा अन्य सभी संस्थाओं/संगठनों को सहयोग देना अतिआवश्यक है जिसका सम्बन्ध विकास कोषों के निवेश से है।

5. संस्थागत आधारित संरचना को प्रोत्साहित तथा परिवर्तित करना :–

आर्थिक विकास दर तेज करने तथा आर्थिक विकास में क्षेत्रीय असन्तुलन को दूर करने के लिए विकास बैंक संस्थागत आधारित संरचना को प्रोत्साहित करते हैं तथा आवश्यक हो तो इसको परिवर्तित करने का सम्पूर्ण कार्य सरकार के साथ सहयोग कर सम्पन्न करते हैं।

6. प्रशिक्षण देना :–

उद्यमियों तथा प्रबन्धकों को विभिन्न तरह के प्रशिक्षण प्रदान करना विकास बैंकों का विशेषज्ञता वाला कार्य है। विशेषज्ञों द्वारा उद्यमियों तथा प्रबन्धकों को प्रशिक्षण प्रदान करने का मुख्य उद्देश्य है कि निवेशित पूँजी के उचित उपयोग तथा आर्थिक विकास की गति में कोई व्यवधान उत्पन्न न हों।

(अ) भारतीय औद्योगिक विकास निगम के कार्य

भारतीय औद्योगिक विकास निगम को निम्नाँकित विषयों में विशेष भूमिका निभाने का कार्य सौंपा गया है।

- उद्योगों के प्रोत्साहन, प्रबन्ध तथा विकास। विस्तार के लिए प्रशासनिक तथा तकनीकी सहायता प्रदान करना।
- औद्योगिक संरचना के अन्तराल को खत्म करने के लिए औद्योगिक संरचना सम्बन्धी योजना बनाना, उन्हें प्रोत्साहित करना तथा विकसित करना।
- उद्योगों के बाजार तथा निवेश सम्बन्धी अनुसंधान तथा सर्वेक्षण करना और तकनीकी, आर्थिक अध्ययन करना।
- उद्योगों के सावधि वित्त के लिए उच्यतम संस्था के रूप में सर्वेक्षण करना, संस्थाओं की कार्यप्रणाली में समन्वय स्थापित करना और इन संस्थाओं के विकास में सहायता करना।
- उन परियोजनाओं जो राष्ट्रीय प्राथमिकता पर हैं के लिए वित्त का प्रबन्ध करना तथा अन्तिम ऋणदाता के रूप में कार्य करना।

(ब) भारतीय औद्योगिक वित्त निगम का एक मुख्य कार्य है कि वह औद्योगिक ईकाइयों के लिए मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन ऋण का प्रावधान करेगा।

(स) भारतीय औद्योगिक साख तथा निवेश निगम

भारतीय औद्योगिक साख तथा निवेश निगम के प्रमुख कार्य निम्नवत हैंः

- औद्योगिक विकास में निजी पूँजी (देशी एवं विदेशी) की सहभागिता को प्रोत्साहित करना।
- औद्योगिक निवेश के प्रोत्साहन के साथ निवेश बाजारों का विस्तार करना।
- उद्योगों के सृजन, विकास तथा आधुनिकीकरण में सहायता प्रदान करना।

(द) भारतीय औद्योगिक पुनर्निमाण बैंक, औद्योगिक पुनरुत्थान सहायक एवं औद्योगिक विकास और औद्योगिक इकाइयों की पुनः स्थापना में प्रमुख भारतीय साख एवं पुनर्निमाण ऐजेन्सी के रूप में कार्य करेगा।

(य) राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक

राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक के कार्य निम्नवत हैं :

- कृषि तथा ग्रामीण विकास से सम्बन्धित परामर्श, अनुसंधान तथा प्रशिक्षण प्रदान करना।
- कृषि तथा ग्रामीण विकास से सम्बन्धित सभी पहलुओं की योजना बनाना, उन्हें प्रोत्साहित करना तथा उनकी कार्यविधि में निरन्तर सुधार लाना।
- कृषि तथा ग्रामीण विकास के कार्यों में लगी अन्य संस्थाओं से समन्वय स्थापित करना।

(स) भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक

यह लघु उद्योगों को वित्त प्रदान करने वाली एक उच्चतम संस्था है जो सावधि वित्त तथा पुनर्वित्त की व्यवस्था के साथ निम्न कार्य भी करता हैः

- लघु तथा सहायक उद्योगों, प्रोत्साहन, वित्त प्रबन्धन तथा विकास के लिए कार्य करना।
- लघु तथा सहायक उद्योगों के प्रोत्साहन, वित्त प्रबन्धन तथा विकास के क्षेत्र में कार्य कर रही विभिन्न संस्थाओं के कार्यों में समन्वय स्थापित करना।

12.9 विकास बैंकों का विकास (Development of Development Banks)

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में विकास बैंकों की स्थापना प्रारम्भ हुई। प्रथम विकास बैंक की स्थापना सन् 1948 में 'भारतीय औद्योगिक विकास निगम' (Industrial Finance Corporation of India) के रूप में हुई। भारतीय औद्योगिक विकास बैंक राष्ट्रीय होने के बाद राज्य स्तर पर भी विकास बैंकों की स्थापना होने लगी। भारत सरकार ने सन् 1951 में राज्य वित्त निगम (State Fomamcoa; Corporation) स्थापित करने के विचार से 'राज्य वित्त निगम कानून' पारित किया। सन् 1955 में विश्व बैंक के प्रोत्साहन पर भारतीय औद्योगिक साख एवं निवेश निगम (Industrial Credit And Investment Corporation of India) की स्थापना की गई। सन् 1964 में सरकार ने भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (Industrial Development

Bank of India), सन् 1971 में भारतीय औद्योगिक पुनर्निमाण बैंक (Industrial Reconstruction Bank of India), सन् 1989 में भारतीय लघु उद्योग विकास निगम बैंक (The Smalll Industries Development Corporation Bank of India), सन् 1982 में कृषि तथा ग्रामीण विकास के लिए राष्ट्रीय बैंक (National Bank for Agriculture And Rural Development) तथा सन् 1987 में भारतीय निर्यात–आयात बैंक (The Export-Import Bank of India) की स्थापना की।

12.10 आर्थिक विकास के लिए केन्द्रीय तथा राज्य स्तर के विकास बैंक

भारत में निम्नाँकित विकास बैंक भारतीय अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास को गति प्रदान करने के लिए कार्य कर रहे हैं।

12.10.1 भारतीय औद्योगिक वित्त निगम लिमिटेड (Industrial Finance Corporation of India Limited)

भारत में औद्योगिक विकास बैंक की स्थापना का सुझाव केन्द्रय बैंकिंग जाँच समिति द्वारा दिया गया, लेकिन कई वर्षों तक इस सुझाव पर अमल नहीं हुआ। तत्पश्चात् भारतीय वित्त निगम अधिनियम के आधीन 1 जुलाई सन् 1948 को भारतीय औद्योगिक वित्त निगम लिमिटेड की स्थापना की गई। इस अधिनियम में सन् 1964, 1972 और 1980 को महत्वपूर्ण संशोधन किये गये तथा जून 1993 में इसका एक सार्वजनिक लिमिटेड कम्पनी के रूप में पुनर्गठन किया गया।

इस संस्था का मुख्य उद्देश्य निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र तथा प्राइवेट एवं पब्लिक कम्पनियों, शिपिंग कम्पनियों तथा होटलों को मध्यकालीन तथा अल्पकालीन ऋण प्रदान करना था।

- यह निगम अधिकतम 25 वर्षों के लिए ऋण देता है।
- यह शेयरों तथा डिवेन्चरों के निर्गमन की हानी (underwriting) भरता है।
- यह आवश्यकता पड़ने पर विदेशी मुद्रा का ऋण भी देता है।
- उद्योगों द्वारा खुले बाजार से लिए गये ऋणों की गारन्टी देता है।
- स्टाक तथा शेयर खरीदने का कार्य करता है।
- पूँजी वस्तुओं के आयात के लिए भावी भुगतान के सम्बन्ध में गारन्टी देता है।

भारतीय औद्योगिक वित्त निगम लिमिटेड को निदेशकों के 13 सदस्यों वाला मण्डल प्रावधित करता है। इस 13 सदस्यों वाले दल मे महानिदेशक का नामाँकन भारत सरकार द्वारा, 4 सदस्यों का नामाँकन औद्योगिक विकास बैंक द्वारा, 6 सदस्यों का अनुसूचित बैंकों द्वारा तथा अन्य संस्थाओं द्वारा होता है। इसके अतिरिक्त 2 सदस्यों को आई0डी0बी0आई0 द्वारा नामित किया जाता है जो उद्योग, श्रम तथा आर्थिक मामलों के विशेषज्ञ होते हैं। इसके अतिरिक्त प्रबन्ध निदेशक को मिलाकर कुल 5 सदस्यों की एक केन्द्रीय समिति है।

इस संस्था द्वारा अधिकांश ऋण उर्वरक, सीमेन्ट, कपड़ा, कागज, चीनी पैदा करने वाले उद्योगों को दिये गये। ऋणों का मूल्य रू0 दस लाख से रू0 एक कराड़ के बीच रहा, अधिकांश ऋण चालीस से पचास लाख मूल्य के थे। ऋण सामान्यतः 12 वर्ष की अवधि के दिये गये लेकिन यह अवधि 25 वर्ष तक उढ़ायी जा सकती है। निगम ने

विकास सुरक्षित कोष और प्रबन्ध विकास संस्थान की स्थापना की। जून 1976 में निगम ने जोखिम पूँजी संस्थान (Risk Capital Foundation) की स्थापना की। इसका उद्देश्य नये उद्योगों को तकनीकी तथा ब्याज मुक्त साख सुविधायें प्रदान करना था।

12.10.2 राज्य वित्त निगम (State Finance Corporation)

सन् 1951 में छोटे पैमाने के उद्योगों की दीर्घकालीन ऋण/साख आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भारत सरकार ने राज्य वित्त निगम अधिनियम पारित किया, इसका उद्देश्य राज्य स्तर पर वित्त निगमों की स्थापना करना था। पंजाब सरकार ने सबसे पहले वित्त निगम की स्थापना की थी। इन निगमों का मुख्य उद्देश्य राज्य स्तर पर छोटे स्तर के तथा मध्यम आकार के उद्योगों को दीर्घकालीन ऋण प्रदान करता है। राज्य वित्त निगमों द्वारा सार्वजनिक, निजी, सहकारी, साझेदारी तथा निजी स्वामित्व वाले सभी उद्योगों को आवश्यक वित्तीय सुविधायें बिना किसी भेदभाव के प्रदान की जाती है।

निगम का प्रबन्ध निदेशकों के मण्डल द्वारा किया जाता है जिसमें कुल 10 सदस्य होते हैं। इनमें से एक प्रबन्ध निदेशक चुना जाता है। इनमें से तीन को राज्य सरकार द्वारा नामित किया जाता है, अन्य सदस्य विभिन्न क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

12.10.3 भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (Industrial Development Bank of India)

भारत में अब एक ऐसे संस्थान की आवश्यकता महसूस की जाने लगी जिसके पास देश के औद्योगिक विकास हेतु विशाल संसाधन हों और वह उद्योगों की बढ़ती साख जरुरतों को पूरा करते हुऐ विभिन्न संस्थाओं के कार्यों में समन्वय स्थापित कर सके। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए 1 जुलाई 1964 को भारतीय विकास बैंक की स्थापना की गयी। इसका प्रारम्भ भारतीय रिजर्व बैंक के सहायक के रूप में किया गया। 16 फरवरी 1976 को इसे रिजर्व बैंक से अलग कर दिया गया। तत्पश्चात् 2004 में आई0डी0बी0आई0 को वाणिज्यिक बैंक में बदल दिया गया।

औद्योगिक विकास बैंक का मुख्य उद्देश्य सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र के उद्यमों को वस्तु उत्पादन, खनन तथा सेवाओं के क्षेत्र में ऋण देता है। यह औद्योगिक शेयरों में निवेश करता है तथा उपक्रमों के प्रतिभूतियों के निर्गमों की हामी भरता है। खुले बाजार से लिए गये ऋणों की उपक्रमों के हित में गारन्टी देता है। यह बैंक टेंडिंग बिलों में छूट देने के साथ–साथ पुनः वित्त की सुविधा भी प्रदान करता है। यह उद्योगों को प्रबन्धकीय तथा तकनीकी सहायता उपलब्ध कराता है तथा निवेश सर्वेक्षणों की व्यवस्था करता है। सन् 1976 में इस बैंक को पुनः व्यवस्थित किया गया तथा पिछड़े क्षेत्रों का औद्योगिक विकास, लघु तथा मध्यम आकार के उद्योगों के विकास को प्रोत्साहन तथा निर्यातों तथा आयात प्रतिस्थापन का बढ़ाना इसके उद्देश्यों में शामिल किया गया। सन् 2004 में आई0डी0बी0आई0 उपक्रम आई0डी0बी0आई0 लिमिटेड में अन्तरित कर लिया गया। आई0डी0बी0आई0 लिमिटेड की पूर्ण स्वामित्व वाली संस्था आई0डी0बी0आई0 बैंक लिमिटेड का आई0डी0बी0आई0 लिमिटेड में समामेलन कर लिया गया। यह समामेलन 2 अप्रेल 2005 से प्रभावी हुआ।

12.10.4 भारतीय लघु उद्योग विकास निगम (Small Industries Development Bank of India)

सन् 1989 में भारतीय औद्योगिक बैंक के सहयोगी के रूप में भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक की स्थापना हुई। इसने अपना कार्य 2 अप्रैल 1990 से प्रारम्भ किया। इस बैंक के मुख्य उद्देश्य छोटे पैमाने के उद्योगों को पर्याप्त वित्तीय तथा गैर वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना था। इसमें सम्मिलित बैंक के कुछ मुख्य उद्देश्य निम्नाँकित हैं:

- वर्तमान में कार्य कर रही औद्योगिक इकाईयों का आधुनिकीकरण करना तथा तकनीकी उन्नयन करना।
- श्रम प्रधान उद्योगों को विशेष सहायता प्रदान करना ताकि देश में श्रमिकों को अधिक रोजगार मिल सके तथा इसके चलते अर्थव्यव्स्था तीव्र आर्थिक विकास की गति पकड़ सके।
- भारत तथा विदेशों में छोटे पैमाने के उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुओं के विपणन की सुविधा प्रदान करना ताकि छोटे उद्योग कड़ी प्रतिस्पर्धा का सामना करने में सक्षम हो सकें।
- लघु क्षेत्र को पुनवर्त्ति, साधन उपलब्धता तथा लीजिंग सेवायें उपलब्ध करवाना।

सन् 2009–2010 भारतीय लघु उद्योग विकास, निगम के लिए महत्वपूर्ण वर्ष रहा है क्योंकि इस वर्ष इस निगम ने सूक्ष्म, लघु तथा मध्यम दर्जे के उद्योगों की सेवा में परिचालन के 20 वर्ष पूर्ण किये। यह दो दशक चुनौतियों तथा अवसरों से मिलेजुले रहे, जो वित्तीय क्षेत्र में खुलापन आने, विनियाभकीय पर्यवेक्षण तथा वैश्विक आर्थिक संकट से उपजे हैं। बैंक इन अवसरों तथा चुनौतियों से पूर्ण रूप से अनुकूलन साधने में कामयाब रहा तथा सूक्ष्म, लघु तथा मध्यम उद्यमों की विभिन्न स्तरों पर उभरती हुई ऋण तथा गैर वित्तीय आवश्यकताओं का भी समाधान किया।

12.10.5 भारतीय निवेश केन्द्र (Indian Investment Centre)

इस केन्द्र की स्थापना, इसका मुख्य कार्यालय यू0एस0ए0 में होने के साथ, सन् 1961 में हुई थी। इसका उद्देश्य भारतीय उद्योगपतियों को विदेशी पूँजी तथा औद्योगिक तकनीक प्राप्त करने में सहायता प्रदान करना था। इसके अतिरिक्त भारतीय तथा विदेशी उद्योगपरियों की सहायता से, यह उद्यमों की स्थापना में सहायता देता है, इस संदर्भ में यह भारतीय उद्योगपतियों को आवश्यक सूचना प्रदान करने का कार्य भी करता है।

12.10.6 भारतीय औद्योगिक पुनर्निर्माण बैंक (Industrial Reconstruction Bank of India)

सन् 1971 में औद्योगिक बैंक की सिफारिशों के पश्चात इसकी स्थापना की गयी। अगस्त सन् 1984 में इसको औद्योगिक पुनर्निर्माण निगम से भारतीय औद्योगिक पुनर्निमाण बैंक में परिवर्तित कर दिया गया। 27 मार्च 1997 को पुनः इसका नाम भारतीय औद्योगिक निवेश बैंक लिमिटेड रख दिया गया। इसकी अधिकतम पूँजी दो

सौ करोड़ रूपये निश्चित कर दी गयी। इसकी स्थापना का प्रमुख उद्देश्य बीमार तथा बन्द पड़ी इकाईयों को पुनर्निर्माण के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करना तथा तकनीकी एवं प्रबन्धकीय सहायता/सुविधायें प्रदान करना है।

12.10.7 राष्ट्रीय आवास बैंक (National Housing Bank)

राष्ट्रीय आवास बैंक की स्थापना जुलाई 1980 को की गयी। इसकी स्थापना राष्ट्रीय आवास बैंक कानून 1987 के अन्तर्गत की गयी है। यह आवास वित्त की सबसे बड़ी संस्था होने के साथ इसका उद्देश्य देश में आवास वित्तीय प्रणाली का कुशलता पूर्वक विकास करना है। इस बैंक का उद्देश्य आवास के विकास को ऋण प्रदान करने के साथ–साथ निम्नांकित हैः

- पुराने मकानों का विस्तार तथा आधुनिकीकरण के लिए ऋण देना
- नये मकानों के निर्माण को प्रोत्साहित करना
- मलिन बस्तियों (slums) के विकास के लिए योजना तथा वित्तीय प्रबन्ध करना
- कमजोर तथा निर्धन वर्ग के लोगों को अपने मकान बनाने तथा खरीदने के लिए दिये गये ऋण का पुनर्वित्त करना

राष्ट्रीय आवास बैंक के कार्य (Functions of National Housing Banks)

राष्ट्रीय आवास बैंक द्वारा प्रथम दो मुख्य कार्यों के साथ निम्नांकित कार्य किये जाते हैं।

- **पुनर्वित्त (Refinance) :–**

राष्ट्रीय आवास बैंक द्वारा आवास वित्त कम्पनियों, व्यापारिक बैंकों, सहकारी क्षेत्र की वित्तीय संस्थाओं को पुनर्वित्त की सुविधा प्रदान की जाती है। इन संस्थाओं की मुख्य रूप से आवासीय भूमि के विकास (Land Development) तथा गृह निर्माण (Shelter Project) पर दिये गये ऋण के अनुसार वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है।

- **सीधे ऋण (Direct Finance) :–**

इसके उद्देश्यों के अनुरूप भूमि विकास एवं गृह निर्माण परियोजनाओं, मलिन बस्तियों के विकास की परियोजनाओं तथा आवास अधोसंरचना परियोजनाओं के लिए यह बैंक सार्वजनिक ऐजेन्सियों को सीधे ऋण प्रदान करता है। इसके लिए इन एजेन्सियों को बैंक के वित्तीय अनुशासन सम्बन्धी नियमों का कड़ाई से पालन करना होता है।

- **आवास वित्त कम्पनियों को दिशा निर्देश :–**

भारत वर्ष में आवास वित्त के क्षेत्र में कार्य कर रही सभी कम्पनियों को समय–समय पर राष्ट्रीय आवास बैंक द्वारा निर्देशित किया जाता है। यह निर्देश आवास वित्त कम्पनियों को जमा स्वीकारने के संदर्भ में इन कम्पनियों की कार्य क्षमता में सुधार के लिए परिसम्पत्तियों के वर्गीकरण के लिए तथा ऋण संकेंद्रण (Credit Contraction) आदि विषयों में सावधानी बरतने के संदर्भ में दिये जा सकते हैं। आवास वित्त के क्षेत्र में सर्वोच्च संस्था होने के कारण यह इसका मूल उद्देश्य है।

- **विकासात्मक कार्य :–**

यह बैंक आवास परियोजनाओं के विकास के लिए आवास वित्त कम्पनियों की शेयर पूँजी में निवेश कर इन वित्ता कम्पनियों के क्रियाकलापों में सक्रिय प्रतिभाग करता है ताकि देश के आवास विकास के लिए वृहद योजनाबद्ध तरीके से कार्य किया जा सके।

- **स्वर्ण जयन्ती ग्रामीण आवास विकास योजना :–**

देश की स्वतंत्रता के 50 वर्ष पूर्ण होने पर राष्ट्रीय आवास बैंक द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों को प्राथमिकता देते हुए स्वर्ण जयन्ती ग्रामीण आवास विकास योजना का शुभ आरम्भ किया। इसका उद्देश्य आवास विकास क्षेत्र की वित्तीय संस्थाओं को ग्रामीण क्षेत्र में व्यक्तियों को व्यक्तिगत आवास ऋण प्रदान करने के लिए प्रोत्साहित करना था।

12.11 विकास बैंकों का मूल्याँकन (Evaluation of Development Banks)

डॉ0 लोकनायक ने कहा था "विशिष्ट वित्तीय संस्थानों की स्थापना के परिणामस्वरूप देश के औद्योगिक वित्त संगठन की कई कमियाँ दूर कर दी गयी हैं। इन संस्थानों की अनुपस्थिति में, तेज गति से औद्योगिकरण कभी भी सम्भव नहीं हो पाता।"

(As a result of the establishment of specialised financial institutes, many shortcomings of the industrial finance organisation of the country have been removed. In the absence of these institutes, rapid industrialization would never have been possible – Dr. Lok Nayak.)

इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि विकास बैंकों का देश की अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास गति पर किस तरह का प्रभाव पड़ा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात देश के विकास बैंकों ने देश में औद्योगीकरण की प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इन संस्थाओं ने विभिन्न प्रकार के उद्योगों की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ वित्त प्रबन्ध, निवेश प्रोत्साहन, परामर्श तथा तकनीकी सेवायें भी प्रदान की हैं, इन सेवाओं को प्रदान करने के लिए विशेषज्ञ सेवाओं का आहूत किया जाता है। इसमें नई उद्योगों की स्थापना को प्रोत्साहन किया गया, विशिष्ट प्रशिक्षण देने का प्रबन्ध भी किया गया। उद्योगों के विकास के लिए विदेशी पूँजी का प्रबन्ध के साथ–साथ देश के पिछड़े क्षेत्रों में उद्योगों को फैलाने का विशेष प्रयत्न किया जा रहा है। विकास बैंकों का आकलन निम्नाँकित तथ्यों से ज्ञात किया जा सकता हैः

पर्याप्त निवेश कोषों की आपूर्ति :–

किसी भी प्रकार के उद्योगों/उद्यमों की स्थापना, आधुनिकीकरण तथा विकास के लिए पर्याप्त मात्रा में वित्तीय आवश्यकता होती है। अपने प्रारम्भ से ही विकास बैंकों में उद्यमों के लिए आवश्यक पर्याप्त वित्त की आपूर्ति की है। इसमें उद्योगों को दिये गये मियादी ऋण एवं अग्रिम, शेयरों तथा बाण्डों की खरीद, नये शेयरों तथा बाण्डों के निर्गमन की हामी भरने के रूप में बड़ी मात्रा में धन उपलब्ध कराया है।

गुणवत्ता सुधार :–

किसी भी उद्यम अथवा उद्योग को वित्तीय स्वीकृती से पूर्व विकास बैंकों द्वारा इनके प्रस्तावों की कड़ी जाँच तथा विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षणों को प्रदान करने से औद्योगिक परियोजनाओं की गुणवत्ता में सुधार आया है। यह देश तथा विशिष्ट उद्यम के लिए अति लाभकारी है।

प्रतिभूतियों के निर्गमन में सहायक :–

किसी भी उद्योग/उद्यम द्वारा पूँजी प्राप्त करने के लिए बाजार में प्रतिभूतियों को बेचा जाता है तथा इस बेचान में आत्मनिर्भरता प्रदान करने के लिए प्राथमिक बाजार में विकास बैंक महत्वपूर्ण हामी भरने वाली संस्थाओं के रूप में उभर कर आयी हैं।

विकास बैंकों द्वारा देश में पारस्परिक कोष (Mutual Fund), सौदागर बैंक (Merchant Bank) आदि विभिन्न विशिष्ट संस्थाओं को उन्नत किया गया।

समुचित विकास :–

विकास बैंकों द्वारा देश की आर्थिक विकास दर को बढ़ाया गया है। इसके लिए विकास बैंकों द्वारा पिछड़े क्षेत्रों की परियोजनाओं के विकास में विशेष रूचि ली गयी है। इन्होने पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगिक प्रगति तथा विकास के लिए विशाल वित्तीय उपायों का प्रावधान किया है। विकास बैंकों द्वारा न केवल बड़े उद्योगों को बल्कि छोटे पैमाने के उद्योगों को विकास एवं प्राप्ति के लिए प्रेरित किया है। राज्य वित्त निगम, लघु उद्योग विकास बैंक तथा अन्य विकास बैंकों की स्थापना ने लघु क्षेत्र के विकास के लिए पर्याप्त वित्तीय सहायता उपलब्ध करायी है।

पुनर्निर्माण एवं पुनर्वास :–

बीमार औद्योगिक इकाईयों की समस्याओं के संदर्भ तथा समाधान के क्षेत्र में भी विकास बैंकों ने महत्वपूर्ण कार्य किया है, इन बीमार इकाईयों के पुनर्वास (Rehabilitation) के लिए भारतीय औद्योगिक पुनर्निर्माण निगम ने विभिन्न प्रकार से वित्तीय तथा गैर वित्तीय सहायता प्रदान की है।

12.12 पारस्परिक कोष (Mutual Funds)

पारस्परिक कोष (Mutual Funds) शब्द का प्रयोग कनाडा और अफ्रीका में गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं (Non Banking Financial Institutions) के लिए किया जाता है, अब इस नाम का प्रयोग भारत में भी बढ़ता जा रहा है। वित्तीय बचतों के प्रोत्साहन एवं एकीकरण के लिए पारस्परिक कोष, गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं का एक महत्वपूर्ण रूप है। यह महत्वपूर्ण निवेश संस्थाओं, मुख्यतः निगम क्षेत्र के लिए भी महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। 90 के दशक में विशेषकर 1980 के बाद ऐसी संस्थाओं ने परस्परिक कोषों के शीर्षक को अपने नामों के साथ जोड़कर इस क्षेत्र का प्रसार तथा प्रचार करते हुए इसका विकास किया है। पारस्परिक कोष, जैसा कि इनके नाम से ही स्पष्ट है यह संस्थायें समान, विशेषकर समाज के मध्यम वर्ग या छोटे निवेशकों की छोटी–छोटी बचतों को एकत्रित करने के लिए महत्वपूर्ण माध्यम के रूप में कार्य कर रहे हैं। एक पारस्परिक कोष इस कार्य के जोखिम को कम करके और परिसम्पत्ति विकेन्द्रीकरण द्वारा आय की दर को बढ़ाकर समाज को सम्पन्न बनाते हुए इन

छोटी–छोटी बचतों की अर्थव्यवस्था विकास हेतु उत्पादन कार्यों में लगाने/निवेश करने का कार्य करते हैं। इसके लिए वह विशेषज्ञों की सहायता से प्रतिभूतियों का उपर्युक्त मिश्रण रखकर, बाजारी क्रियाओं पर विशेषज्ञों को नजर रखकर और सदा परिवर्तित होने वाले बाजार दृश्य हेतु परिसम्पत्ति को अधिकतम लाभ के रूप में बदलकर चला सकता है। परिसम्पत्ति चयन तथा प्रबन्धकीय गुणवत्ता निश्चित करता है कि पारस्परिक कोषों के अंशधारियों को कितना लाभ प्राप्त होगा।

पारस्परिक कोष क्या है? (What is a Mutual Fund?)

पारस्परिक कोष एक न्यास या ट्रस्ट के रूप में स्थापित किये जाते हैं जिसमें एक स्पोन्सर, न्यासी, परिसम्पत्ति प्रबन्ध कम्पनी तथा कस्टोडियन होते हैं। इस पारस्परिक कोष का न्यास के रूप में स्थापना एक या एक से अधिक स्पोनसर्स के द्वारा किया जाता है। यह स्पोन्सर्स इस न्यास के प्रमोशन का भी कार्य करते हैं तथा इस न्यास (कम्पनी) का पंजीकरण भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड के अन्तर्गत किया जाता है। पारस्परिक कोष का न्यासी इसकी परिसम्पत्तियों पर इसके अंशधारियों के लाभ के लिए अधिकार रखता है। भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड द्वारा संस्तुत परिसम्पत्ति प्रबन्ध कम्पनी इस न्यास के कोषों की विभिन्न प्रकार की निवेश विकल्पों का विशेषज्ञता के आधार पर चयन कर न्यास के अंशधारियों के लाभ के लिए निवेश करने की अनुमति प्रदान करती है। न्यासी का परिसम्पत्ति प्रबन्ध कम्पनी पर सामान्य तौर पर नियंत्रण रहता है। भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड की नियमावली के अनुसार न्यास के दो तिहाई निदेशक स्वतंत्र होने चाहिए अर्थात् इन निदेशकों का स्पोन्सर्स से कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए, इसके साथ ही बोर्ड द्वारा बनाये गए कानून द्वारा परिसम्पत्ति प्रबन्ध कम्पनी के 50 प्रतिशत निदेशक भी स्वतंत्र होने चाहिए। यह सब अंशधारियों के हितों की रक्षा हेतु किया गया है। इन सबके आधार पर निषकर्षतः कहा जा सकता है कि एक पारस्परिक कोष एक न्यास/ट्रस्ट है जो उन निवेशकर्ताओं की की बचतों को सामान्य निधि में जमा करता है जो एक सामान्य वित्तीय लक्ष्य को आपस में बाँटते हैं। इस न्यास/ट्रस्ट द्वारा एक समान लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मध्यम वर्ग तथा छोटे निवेशकर्ताओं से छोटी–छोटी मात्रा में जमायें स्वीकार कर या इनका पूल बनाकर एक बड़ी रकम को विशेषज्ञों की राय से बाजार में उपलब्ध बेहतर निवेश विकल्पों में निवेश किया जाता है। पारस्परिक कोष में निवेश हेतु व्यक्ति को पारस्परिक कोष योजना (Mutual Fund Scheme) की इकाई/अंश खरीदना पड़ता है। यह अंश व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा पारस्परिक कोष योजना के उद्देश्यों तथा कार्यप्रणाली को समझने के पश्चात् क्रय किया जाता है

इस प्रकार से एकत्रित धन, कोष प्रबन्धक द्वारा विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों में निवेशित किया जाता है। ये प्रतिभूतियों पारस्परिक कोष योजना (Mutual Fund Scheme) में लिखित स्पष्ट उद्देश्यों के आधार पर, शेयरों से ऋणपत्रों तथा ऋणपत्रों से मुद्रा बाजार प्रपत्रों तक हो सकते हैं। इन निवेशों से अर्जित आय और पारस्परिक कोष योजना द्वारा प्राप्त पूँजी वृद्धि यूनिट होल्डरों द्वारा अपनी खरीदी गयी यूनिटों के अनुपात में, आपस में बाँट ली जाती है। अतः एक मध्यम वर्ग के निवेशक तथा छोटे निवेशकों के लिए पारस्परिक कोष निवेश का बेहतर विकल्प है । क्योंकि पारस्परिक

कोषों द्वारा छोटी–छोटी राशियों को एकत्रित कर पूल बनाया जाता है, निवेश विशेषज्ञों की सलाह से तथा पारस्परिक कोष योजना के उद्देश्य के अनुरूप उपलब्ध विशेष विकल्पों में किया जाता है। भारत में सन् 1964 में पहला पारस्परिक कोष की स्थापना सार्वजनिक क्षेत्र में की गयी। इसके पश्चात् केन्द्रीय वित्त मंत्रालय ने 14 फरवरी 1992 को निजी क्षेत्र को बाजार में पारस्परिक कोष प्रवाहित करने की अनुमति दी। इस अनुमति के साथ उनसे यह उपेक्षा की गयी कि वह भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड के प्रत्यक्ष नियंत्रण/निरीक्षण में कार्य करेंगे।

12.13 पारस्परिक कोष स्कीमों के प्रकार (Types Of Mutual Fund Schemes)

समाज के मध्यम वर्ग तथा छोटे निवेशकों की आवश्यकतानुसार जैसे आयु, वित्तीय स्थिति, जोखिम, सहनशक्ति तथा आय सम्भावना, पारस्परिक कोष योजनाओं के अनेक प्रकार हैं। निष्पादन तथा प्रचालन के रूप में पारस्परिक कोषों का वर्गीकरण निम्नांकित श्रेणियों में किया जा सकता है:

संरचना द्वारा पारस्परिक कोषों का वर्गीकरण :–

पारस्परिक काषों की संरचना के आधार पर इन कोषों को निम्नलिखित वर्गों में समझा जा सकता है :

(1) खुली–लक्ष्यीय स्कीमें (Open ended schemes)

खुली–लक्ष्यीय योजनाओं की एक विशेषता यह है कि इन योजनाओं में निवेशक के लिए बंधी परिपक्वता (maturity) नहीं है। निवेशक इन कोषों में निवेश तथा शोधन के लिए प्रत्यक्ष रूप से व्यवहार करते हैं। इसका मुख्य लक्षण तरलता (liquidity) है, निवेशक अपनी इकाईयों को आवश्यकतानुसार शुद्ध परिसम्पत्ति मूल्य (net assets value) कीमत पर आसानी से खरीद तथा बेच सकता है। इन योजनाओं में अंश या इकाईयाँ समय–समय पर घोषित पुनः क्रम दरों पर दोबारा क्रय की जाती हैं। क्रय करने तथा बेचने की कीमत कोष के शुद्ध परिसम्पत्ति मूल्य (NAV) पर आधारित होती है जिसकी घोषणा समय–समयपर की जाती है। इसके कुछ उदाहरण हैं यू0टी0आई0 की यूनिट स्कीम 1964, यू0लिप0 चिल्ड्रन ग्रोथ, केन बैंक की केन गिल्ट और केन सीगों।

(2) बन्द लक्ष्यीय योजनायें (Close ended schemes)

यह योजनायें बधीं परिपक्वता वाली योजनायें होती हैं जिनकी परिपक्वता सामपन्यतः 2 वर्ष से 15 वर्षों तक होती है। निवेशक प्रारम्भिक निर्गमन के समय (initial issue) इस योजना के अंश/इकाईयाँ खरीद सकता है तथा बाद में वह इन इकाईयों को उन स्टॉक एक्सचेंज पर खरीद या बेच सकता है जहाँ यह सूचित हैं। क्योंकि इनकी खरीद और बेचना बाजार में तय होता है इसलिए इनका मूल्य माँग और पूर्ति पर निर्भरता की वजह से शुद्ध परिसम्पत्ति मूल्य (NAV) से अलग (कम/अधिक) हो सकता है।

कुछ योजनायें एक अतिरिक्त विकल्प निवेशक को देती हैं जिसमें निवेशक अपनी इकाईयों को शुद्ध परिसम्पत्ति मूल्य (NAV) सम्बन्धित कीमतों पर आवधिक पुनः क्रय (periodic re-purchase) द्वारा पारस्परिक कोषों को प्रत्यक्ष रूप से बेच सकता

है। यू0टीआई0–मास्टर शेयर, एल0आई0सी0 धन भी, केन बैक–केन भी आदि इस प्रकार के पारस्परिक कोष योजनाओं के उदाहरण हैं।

(3) अन्तराल योजनायें (Interval schemes)

पारस्परिक कोषों की यह योजनायें खुली लक्ष्यीय योजनायें (open ended schemes) तथा बन्द लक्ष्यीय योजनायें (close ended schemes) का मिश्रण हैं। शुद्ध परिसम्पत्ति मूल्य (net assets value) सम्बन्धित कीमतों पर पहले से निर्धारित अन्तराल (interval) के बीच इनका व्यापार स्टॉक एक्सचेंज पर किया जा सकता है अथवा इनकी बिक्री के लिए खुली छूट दी जा सकती है।

संवृद्धि निवेश उद्‌देश्यों के आधार पर वर्गीकरण :–

निवेशकों के निवेश उद्‌देश्यों के आधार पर पारस्परिक कोष योजनाओं का वर्गीकरण निम्न प्रकार किया जा सकता है :

(1) संवृद्धि योजनायें (Growth schemes)

नाम से जैसा प्रतीत होता है यह योजनायें पूँजी में वृद्धि करने के उद्‌देश्य से चलायी जाती हैं तथा प्रायः मध्यकालीन से दीर्घ अवधि के निवेशों को आकर्षित करती हैं। यह योजनायें सामान्यतः अपने कोषों का अधिकांश भाग (equities) में निवेश करती हैं और भावी सम्भावित वृद्धि/लाभ के लिए इकाईयों के मूल्य में अल्पकालीन गिरावट को सहन करने के लिए तैयार रहते हैं। यह योजनायें उन निवेशकों के लिए होती हैं जो अपना पैसा निवेश कर कुछ समय के लिए इसे भूल जाना चाहते हैं क्योंकि इन योजनाओं में नियमित आय प्राप्त नहीं होती है इनमें परिपक्वता के समय कुल मूल्य वृद्धि से निवेश का लाभ प्राप्त होता है। एस0बी0आई0 मेगनम तथा केन शेयर आदि इसके उदाहरण हैं।

(2) आय योजनायें (Income schemes)

पारस्परिक कोषों की यह योजना संवृद्धि योजना के विपरीत है। इन योजनाओं का उद्‌देश्य निवेशकों को नियमित तथा स्थिर आय प्रदान करना है। यह योजनायें अधिकतम रकम को बन्धी आय प्रतिभूतियों जैसे बाण्ड या डिवेन्चर्स में निवेश करती हैं। इन योजनाओं में पूँजी मूल्य वृद्धि सीमित होती है। यह योजनायें सेवानिर्वत व्यक्तियों तथा उन निवेशकों के लिए उपयुक्त हैं जिन्हें नियमित आय की आवश्यकता है।

(3) सन्तुलित योजनायें (Balanced schemes)

यह योजनायें संवृद्धि योजना तथा आय योजना का मिश्रण हैं जिसमें नियमित आय के साथ–साथ पूँजी वृद्धि भी सम्भव है। इन योजनाओं का उद्‌देश्य आय तथा कमाये गये पूँजी लाभों के एक भाग को बांटकर समय–समय अनुसार आय तथा संवृद्धि दोनों लाभ निवेशक को प्रदान करना है। यह योजनायें अपने लिखित दस्तावेज के अनुसार निवेशक की रकम अनुपातिक रूप से साम्यों (equities) तथा बंधी परिपक्वता वाले विकल्पों (बाण्डों, डिवेन्चरों) में निवेश करते हैं जिससे नियमित तथा स्थिर आय के साथ पूँजी वृद्धि एक साथ चाहते हैं।

(4) मुद्रा बाजार योजनायें (Money market schemes)

इन योजनाओं द्वारा निवेशकों की रकम सरल/तरल परिरक्षण (preservation)

तथा सामान्य आय प्रदान करने वाले विकल्पों में निवेश किया जाता है। इन योजनाओं से प्राप्त होने वाली आय, बाजार में प्रचलित ब्याज दरों पर निर्भर करती है इसलिए ब्याज दरों में परिवर्तन के साथ आय भी घटती बढ़ती रहती है। यह निवेश अधिकतर सुरक्षित अल्पकालीन पत्रों जैसे वाणिज्यक पेपर, जमा प्रमाण पत्र, ट्रेजरी बिल आदि में किया जाता है। यह निवेश हमेशा ही अल्पकालीन होता है।

अन्य योजनायें (Other schemes) :–

उपरोक्त वर्णित विभिन्न प्रकार के पारस्परिक कोष योजनाओं के अतिरिक्त निम्न योजनायें भी संचालित की जाती हैं जो किसी भी विशेष उद्देश्य के लिए निवेशक द्वारा चुनी जाती हैं। यह निम्नलिखित हैं :

(1) **कर बचत योजनायें (Tax saving schemes)**

विभिन्न श्रेणी के करदाताओं को ध्यान में रखकर पारस्परिक कोषों की इन योजनाओं को चलाया जाता है तथा समय–समय पर निर्धारित कर नियमों के आधीन ये योजनायें करों से छूट प्रदान करती हैं। आयकर अधिनियम के विभिन्न संशोधनों के अनुसार निवेशक पारस्परिक कोषों में निवेश कर पूँजी लाभ की बचत पर कर माफी पा सकते हैं। यह योजनायें उन निवेशकों के लिए उपयोगी है जो करों में छूट प्राप्त करना चाहते हैं।

(2) **विशेष योजनायें (Special schemes)**

यह मूलतः सूचक योजनायें (Indexed schemes) होती हैं जैसे BSE sensex या NSE 50 या उद्योग विशिष्ट योजनायें (जो विशिष्ट उद्योगों में निवेश करती हैं) या खण्डीय योजनायें। यह योजनायें उन निवेशकों के लिए लाभकारी हैं जो सूचक (Index) के लगभग बराबर आय से सन्तुष्ट हैं।

(3) **समुद्र तट से दूर पारसपरिक योजायें (Off-shore mutual fund schemes)**

विदेशी कोषों को लाने तथा विदेशों में व्यापार बढ़ाने तथा कोषों का प्रवाह करने के लिए यह योजनायें संचालित की जाती हैं। इन कोषों को विदेशों में व्यापार बढ़ाने तथा कोषों का प्रवाह करने के लिए यह योजनायें संचालित की जाती हैं। इन कोषों को विदेशों में एकत्रित किया जाता है और भारत में निवेश के लिए लाया जाता है।

उपरोक्त वर्णित पारस्परिक कोष योजनाओं के वर्गीकरण की आवश्यकता इसलिए समझी गयी कि बाजार में निवेशकर्ता के निवेश के अपने उद्देश्य होते हैं तथा कभी–कभी निवेशक के एक से अधिक उदेश्य भी हो सकते हैं। निवेशक को चाहिए कि वह अपने निवेश उद्देश्य को भली भाँति समझे तथा उसके अनुसार निवेश विकल्प चुने। उपरोक्त में से कोई एक योजना निवेशक की सभी आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकती है। इसलिए निवेश इस प्रकार से किया जाना चाहिए कि संवृद्धि, आय और स्थिरता का संयोग प्राप्त हो सके। यह एक सामान्य नियम है कि निवेशक जितना अधिक लाभ या आय की कामना करेगा उसको उतना अधिक जोखिम उठाना पड़ेगा।

12.14 पारस्परिक कोष सेवायें (Mutual Fund Services)

पारस्परिक कोष निवेशकर्ताओं के विभिन्न श्रेणियों की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं, प्रतिफल/आमदनी के साथ पारस्परिक कोष विभिन्न सेवायें प्रदान करते हैं। यह सेवायें निवेशकर्ता के लिए सुभेहा (vulnerable) हैं तथा निवेशों को आकर्षित करने का कार्य करती हैं। पारस्परिक कोषों द्वारा प्रदान की जाने वाली कुछ महत्वपूर्ण सेवाओं को नीचे समझाया गया है :

12.14.1 बीमा योजना (Insurance scheme)

इस तरह की सेवायें विभिन्न पारस्परिक काषों की रक्षा करता है। यू0एस0ए0 पारस्परिक कोष, बीमा कार्यक्रम के रूप में यह सेवा प्रदान कर रहा है। बीमा आवरण 10 से 15 वर्ष की अवधि के लिए उपलब्ध है। यदि एक अवधि में पारस्परिक कोषों में निवेशित राशि अधिक है, बीमा आवरण निवेशकर्ताओं को बेहतर क्षेत्र प्रदान करता है और पारस्परिक योजनाओं में उनके विश्वास को बनायें रखता है।

12.14.2 स्थानान्तरण लाभ/परिवर्तन अधिकार (Shifting advantage or conversion privileges)

विभिन्न पारस्परिक कोष योजनाओं द्वारा निवेशकर्ताओं को ऐसी सुविधायें प्रदान की जा रही हैं जिसके द्वारा पारस्परिक कोष की एक योजना से दूसरी योजना में न्यूनतम लागत पर या बिना किसी लागत के अथवा कर लाभ के साथ निवेशकर्ता अपने निवेश योजना को परिवर्तित कर सकता है।

12.14.3 स्वतः पुनः निवेश योजना (Automatic re-investment schemes)

इस योजना से तात्पर्य है कि निवेशकर्ता द्वारा जो निवेश पारस्परिक कोष योजना में किया गया है उस पर प्राप्त होने वाली आय स्वतः ही उस योजना में निवेश हो जाय। अर्थात् उस आय से निवेशकर्ता के खाते में उस योजना की अतिरिक्त इकाईयाँ अपने आप खरीदी जाय। भारत में यू0टी0आई0 ने भी यू0एस0ए0 की भाँति यह योजना प्रारम्भ की जिसमें लाभाँश तथा पारस्परिक कोष निवेशों पर प्राप्त अन्य आय स्वतः ही योजना की अतिरिक्त इकाईयाँ खरीदने या खुले उद्देशीय योजनाओं के अंशों में पुनः निवेश हो जाता है।

12.14.4 बचत योजनायें (Saving schemes)

बचतों को अन्तर्निहित करना निवेशकों का मुख्य उद्देश्य हमेशा से ही रहा है। इस योजना में निवेशकर्ता मासिक या त्रैमासिक या छः मासिक आधार पर बचत कर उनका निवेश पारस्परिक कोष योजना में करता है जिससे समाज में बचत करने की आदत को बढ़ावा मिलता है तथा पारस्परिक कोषों द्वारा प्रदान की जाने वाली इस सेवा से सामाजिक आर्थिक स्तर में सुधार लाया जाता है। इस प्रकार के निवेशों से पारस्परिक काषों के विभिन्न योजनाओं के इकाईयों की खरीद भी बढ़ती है।

12.14.5 नियमित आय योजना (Regular income scheme)

विभिन्न पारस्परिक कोष योजनाओं द्वारा निवेशकर्ताओं की विभिन्न आवश्यकताओं को देखते हुए नियमित आय के रूप में पारस्परिक कोष निवेशों की धनराशि, मासिक या किसी अन्य प्रकार से क्रमबद्ध वापसी या निकालने की अनुमति दे दी गयी है। ऐसी योजनाओं में प्रारम्भिक निवेश अनुबन्धित है जिस पर ब्याज की एक

विशिष्ट दर निर्धारित है पुर्नभुगतान किस्तों का निर्धारण इस प्रकार किया गया है कि पहले आमदनी दी जाय और बाद में मूलधन दिया जाय।

12.14.6 सेवानिवृत्त पेंशन योजनायें (Retirement pension schemes)

सेवा निवृत्त पेंशन योजनाओं से भी अब पारस्परिक कोष योजनाओं को जोड़ दिया गया है। यह योजनायें विभिन्न विभागों के कर्मचारियों के लिए व्यक्तिगत या कम्पनियों द्वारा स्थापित कर आस्थगित (Tax deffered) सेवा निवृत्त योजनाओं की सुविधा प्रदान करते हैं। भारत में इस प्रकार की सेवायें यू0टी0आई0 तथा राष्ट्रीयक्रत बैंकों द्वारा चलाये जा रहे पारस्परिक कोष योजनाओं द्वारा निवेशकर्ताओं को इस प्रकार की सेवायें प्रदान की जा रही हैं।

12.15 सारांश

भारतवर्ष में स्वतंत्रता के पश्चात् विकास बैंकों का तथा पारस्परिक कोषों का प्रचलन हुआ। विकास बैंकों की बात कही जाय तो किसी भी देश के अर्थव्यवस्था को सुचारु तथा तीव्र गति से चलाने के लिए अर्थव्यस्था के विभिन्न क्षेत्रों में निवेश की आवश्यकता होती है, प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है, प्रोत्साहन की, तकनीकी सुविधा की तथा जोखिम हस्तान्तरण की आवश्यकता होती है। आर्थिक विकास को प्रदान करने के लिए विभिन्न ऐसे क्षेत्रों में विशेष निवेश की आवश्यकता होती है जो मूलतः लाभकारी नहीं होते हैं इसलिए विकास बैंकों ने भारत की अर्थव्यवस्था को गति प्रदान करने के लिए उपरोक्त सभी कार्य किये हैं। विकास बैंकों के महल को देखते हुऐ केन्द्र सरकार ने राज्य सरकारों द्वारा इनके गठन को मंजूरी देकर राज्यों को मजबूत बनाने का कार्य किया है। इनके सहायता तथा सहयोग से हर क्षेत्र का यथोचित विकास प्रयासरत है।

पारस्परिक कोषों की विभिन्न योजनाओं का चलन मूलतः मध्यम वर्ग के निवेशक तथा छोटे निवेशकों को ध्यान में रखकर किया गया। पारस्परिक कोष छोटी–छोटी रकमों का पुल बनाकर विभिन्न कम्पनियों के अंशों, बाण्डों, डिवेन्चरों तथा मुद्रा बाजार के अन्य प्रपत्रों में सीधे निवेश करते हैं। इस निवेश के चयन के लिए निवेशकर्ता के निवेश उद्देश्यों को ध्यान में ररखकर विशेषज्ञ निर्धारित करते हैं कि किस प्रकार की प्रतिभूतियों में निवेश निवेशकर्ता के हित में रहेगा। पारस्परिक कोषों द्वारा निवेशकर्ताओं के उद्देश्यों के अनुरूप अनेक योजनायें प्रारम्भ की हैं। इन योजनाओं में निवेश के लिए प्रेरित करने के उद्देश्य से विभिन्न पारस्परिक कोष निवेशकों को विभिन्न प्रकार की सेवायें प्रदान कर रहे हैं। पारस्परिक कोषों के चलन की वजह से देश का छोटा निवेशक अपनी छोटी–छोटी रकम को उत्पादक कार्यों में लगाकर, देश के विकास का सहायक बनकर अपना जीवन स्तर भी उठा रहा है।

12.16 शब्दावली

विकास बैंकः एक बहुउद्देशीय संस्था है जो उद्यमीय जोखिमों को सहन करती है, औद्योगिक वातावरण के साथ समयानुसार अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन लाती है और तीव्र आर्थिक विकास को लाने के लिए नई औद्योगिक परियोजनाओं को प्रोत्साहन देती है।

पारस्परिक कोष (Mutual Fund): पारस्परिक कोष एक न्यास या ट्रस्ट के रूप में स्थापित किये जाते हैं जिसमें एक स्पोन्सर, न्यासी, परिसम्पत्ति प्रबन्ध कम्पनी तथा कस्टोडियन होते हैं। इस पारस्परिक कोष का न्यास के रूप में स्थापना एक या एक से अधिक स्पोनसर्स के द्वारा किया जाता है। इस न्यास/ट्रस्ट द्वारा एक समान लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मध्यम वर्ग तथा छोटे निवेशकर्ताओं से छोटी–छोटी मात्रा में जमायें स्वीकार कर या इनका पूल बनाकर एक बड़ी रकम को विशेषज्ञों की राय से बाजार में उपलब्ध बेहतर निवेश विकल्पों में निवेश किया जाता है।

बन्द लक्ष्यीय योजनायें (Close Ended Schemes): यह योजनायें बधीं परिपक्वता वाली योजनायें होती हैं जिनकी परिपक्वता सामपन्यतः 2 वर्ष से 15 वर्षों तक होती है। निवेशक प्रारम्भिक निर्गमन के समय (initial issue) इस योजना के अंश/इकाईयाँ खरीद सकता है तथा बाद में वह इन इकाईयों को उन स्टॉक एक्सचेंज पर खरीद या बेच सकता है ।

अन्तराल योजनायें (Interval Schemes): पारस्परिक कोषों की यह योजनायें खुली लक्ष्यीय योजनायें (Open Ended schemes) तथा बन्द लक्ष्यीय योजनायें (Close Ended Schemes) का मिश्रण हैं।

संवृद्धि योजनायें (Growth Schemes): यह योजनायें पूँजी में वृद्धि करने के उद्देश्य से चलायी जाती हैं तथा प्रायः मध्यकालीन से दीर्घ अवधि के निवेशों को आकर्षित करती हैं।

आय योजनायें (Income Schemes): पारस्परिक कोषों की यह योजना संवृद्धि योजना के विपरीत है। इन योजनाओं का उद्देश्य निवेशकों को नियमित तथा स्थिर आय प्रदान करना है।

12.17 बोध प्रश्न

बताइये निम्न कथन सत्य है या असत्य

1. विकास बैंक व्यापारिक बैंकों की भाँति जनता से जमा को नहीं स्वीकारते हैं।
2. विकास बैंक मध्यकालीन तथा दीर्धकालीन ऋण प्रदान करते हैं।
3. विकास बैकों का दृष्टिकोण परियोजना परक होता है।
4. विकास बैंक औद्योगिक वित्त सुविधा प्रदान नहीं करतें हैं।
5. भारतीय औघोगिक विकास बैंक की स्थापना सन् 1948 मे हुई थी।
6. राज्य वित्त निगम का जन्म सन् 1951 मे छोटे पैमाने के उद्योगों की दीर्धकालीन ऋण आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किया जाता हैं।
7. 1976 मे भारतीय औद्योगिक विकास बैंक को रिजर्ब बैंक से अलग किया गया।
8. राष्टीय आवास बैंक की स्थापना 1988 मे की गयी।
9. खुली लक्ष्यीय स्कीम पारस्परिक कोष स्कीमों का एक प्रकार नही है।
10. पारस्परिक कोषों की संवृदि योजनाओ पूंजी मे वृद्धि करने के उददेश्य से चलायी जाती है।

12.18 बोध प्रश्नों के उत्तर

(1) सत्य (2) असत्य (3) सत्य (4) असत्य (5) सत्य

(6) सत्य (7) सत्य (8) सत्य (9) असत्य (10) सत्य

12.19 स्वपरख प्रश्न

1. विकास बैंको को परिभाषित कर इनके उद्देश्यों पर प्रकाश डालिए।
2. क्या विकास बैंकों के बिना किसी अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास सम्भव है? विश्लेषण करें।
3. व्यापारिक बैंकों के चलन के साथ विकास बैंकों की आवश्यकता क्यों हुई? प्रकाश डालिए।
4. विकास बैंकों के प्रमुख कार्यों को समझाये। किन्हीं चार विकास बैंकों को विस्तार से समझाइये।
5. पारस्परिक कोष की धारणा की व्याख्या करें। पारस्परिक कोष योजनाओं के विभिन्न प्रकारों को समझाइये।
6. भारत के संदर्भ में विभिन्न पारस्परिक कोष सेवाओं को विस्तार से समझाइये।
7. पारस्परिक कोष की भूमिका का वर्णन करें।

12.20 सन्दर्भ पुस्तकें

- अग्रवाल, दीपक (2010), मुद्रा बैंकिंग, लोक वित्त एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, हिमालया पब्लिशिंग हाउस मुबई।
- बिशनोई, आर0के0, बीमा के सिद्धांत, साहित्य भवन पब्लिसर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा।
- श्रीवास्तव, आर0एम0 और निगम, दिब्या मैनेजमैन्ट ऑफ इंडियन फाइनैन्शियल इंस्टीट्यूशन्स
- सेठी, टी0टी0 (2015), मुद्रा बैंकिंग एवं लोक वित, आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिसर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- विभिन्न इंटरनैट साइट्स।
- जैन, टी0आर0 इंडियन फाइनैन्शियल सिस्टम्स, वी0के0 ग्लोबल पब्लिकेशन्स और खन्ना, ओ0पी0, प्राईवेट लिमिटेट, 2014–15।
- गुप्ता, शान्ति के0 और अग्रवाल, निशा, इंडियन फाइनैन्शियल सिस्टम्स, कल्याणी पब्लिसर्स, 2016।
- प्रतियोगिता दर्पण, जुलाई 2016।
- इंडियन इकोनोमी, जुलाई 2016।

इकाई 13 मुद्रा बाजार के उपकरण (MONEY MARKET INSTRLEMENTS)

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
13.2 मुद्रा बाजार का अर्थ
13.3 मुद्रा बाजार के कार्य एवं महत्व
13.4 मुद्रा बाजार के अंग अथवा सदस्य
13.5 मुद्रा बाजार के उपकरण एवं उप–बाज़ार
13.6 मुद्रा बाजार के स्वरूप
13.7 भारतीय मुद्रा बाजार
13.7.1 भारतीय मुद्रा बाजार की विशेषताएं एवं दोष
13.7.2 भारतीय मुद्रा बाजार में किये गये प्रमुख सुधार एवं सुझाव
13.7.3 भारतीय मुद्रा बाजार की आधुनिक प्रवृत्तियां
13.8 सारांश
13.9 शब्दावली
13.10 बोध प्रश्न
13.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
13.12 स्वपरख प्रश्न
13.13 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- मुद्रा बाजार का अर्थ समझ सकें ।
- मुद्रा के कार्य एवं महत्व को समझ सकें ।
- मुद्रा बाजार की सदस्य संस्थाओं एवं उपकरणों को बता सकें ।
- भारतीय मुद्रा बाजार के स्वरूप एवं दोषों को बता सकें ।
- भारतीय मुद्रा बाजार की आधुनिक प्रवृत्तियों को स्पष्ट कर सकें।

13.1 प्रस्तावना

आधुनिक अर्थव्यवस्था के लिये एक सुविकसित मुद्रा बाजार का होना आवश्यक है। ऐतिहासिक रूप में औद्योगिक एवं वाणिज्यिक प्रगति के साथ–साथ मुद्रा बाजार स्वयं तो विकसित हुआ ही है साथ ही स्वयं मुद्रा बाजार ने भी देश में भावी औद्योगीकरण एवं आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त किया है। इस इकाई में हम मुद्रा बाजार का अर्थ, कार्य, महत्व इसकी संस्थाओं एवं इसके विभिन्न उपकरणों के स्वरूप की विवेचना करेंगे एवं इस सन्दर्भ में भारतीय मुद्रा बाजार की जटिलताओं को समझकर उसकी समस्याओं को सरल करने हेतु समाधान ढूंढने का भी प्रयास करेंगे।

13.2 मुद्रा बाजार का अर्थ

मुद्रा बाजार का अर्थ समझने के पूर्व हमें 'वित्त' का अर्थ समझना आवश्यक है। सरल रूप में वित्त से अर्थ धन के प्रबन्ध से लिया जाता है। वित्तीय प्रणाली से अभिप्राय एक संस्थागत प्रबन्ध से है जिसके माध्यम से अर्थ व्यवस्था में बचतों को जुटा कर अन्तिम उधारकर्ताओं एंव निवेशकों के बीच आवंटन किया जाता है। वित्तीय प्रणाली को दो भागों में वर्गीकृत किया जाता है–मुद्रा बाजार एवं पूंजी बाजार। मुद्रा बाजार अल्पकालीन निधियों का लेन–देन करता है जबकि पूंजी बाजार दीर्घावधिक की निधियों का लेन–देन करता है।

मुद्रा बाजार वह संगठन है जिसमें अल्पकाल (एक वर्ष से कम समय) हेतु मौद्रिक राशियों अथवा मौद्रिक परिसंपत्तियों का क्रय–विक्रय होता है। मौद्रिक परिसंपत्तियों से अर्थ उन वित्तीय परिसंपत्तियों से है जो अत्यन्त तरल एवं शीघ्रता से विनिमय योग्य होती हैं जिससे इन्हें शीघ्रता से बिना कोई हानि उठाये मुद्रा में परिवर्तित किया जा सकता है। इस प्रकार मुद्रा बाजार एक वर्ष से कम परिपक्वावधि वाले अल्पकालीन ऋण पत्रों के शीघ्र स्थानान्तरण की सुविधा प्रदान करने वाला बाजार है और इन प्रपत्रों का उपयोग उपभोक्ताओं, व्यवसाय और सरकार की आवश्यकताओं को वित्त उपलब्ध कराने हेतु किया जाता है। विकसित देशों में मुद्रा बाजार पूर्णतः संगठित है किन्तु कुछ अल्पविकसित देशों विशेषकर भारत में मुद्रा बाजार का एक भाग अभी भी असंगठित है। एक संगठित मुद्रा बाजार की गतिविधियों पर केन्द्रीय बैंक का प्रभावी नियन्त्रण होता है किन्तु असंगठित मुद्रा बाजार में केन्द्रीय बैंक का प्रभावी नियन्त्रण स्थापित नहीं हो पाता।

13.3 मुद्रा बाजार के कार्य एवं महत्त्व

किसी अर्थव्यवस्था के लिये मुद्रा बाजार अपने निम्नलिखित कार्यों के कारण अत्याधिक महत्त्वपूर्ण होता है–

1. **उद्योग एवं व्यापार का विकास–** मुद्रा बाजार उन सार्वजनिक एवं निजी संस्थाओं एवं व्यक्तियों को अल्पावधिक निधियां उपलब्ध कराता है जिन्हें अपनी कार्यशील पूंजी की आवश्यकताओं के लिये ऐसे धन की आवश्यकता होती है। यह कार्य वाणिज्य बैंकों, बट्टा गृहों, स्वीकृति गृहों एवं दलालों के जरिये व्यापारिक बिलों पर बट्टा (डिस्काउन्ट) काट कर किया जाता है।
2. **अतिरेक निधियों का लाभदायक प्रयोग–** मुद्रा बाजार बैंकों एवं अन्य वित्तीय संस्थाओं को उनकी अतिरेक अर्थात बची हुई निधियों को अल्पकाल के लिये लाभदायक रूप में इस्तेमाल करने का अवसर प्रस्तुत करता है जो अन्यथा ऐसे ही पड़ी रह जातीं।
3. **सरकार को सहायता–** मुद्रा बाजार सरकार को ट्रेज़री बिलों के आधार पर कम ब्याज दर पर अल्पकालिक निधियाँ उधार के रूप में उपलब्ध कराने में सहायक होता है। इसके स्थान पर यदि सरकार कागजी मुद्रा निर्गमित करती है अथवा केन्द्रीय बैंक से ऋण लेती है तो अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी स्थितियां उत्पन्न होती है।

4. **वाणिज्यि बैंकों की केन्द्रीय बैंक पर निर्भरता में कमी–** जब वाणिज्यक बैंकों को अल्पकालीन निधियों की आवश्यकता होती है तो वे मुद्रा बाजार से आवश्यक राशि उधार ले सकते हैं। इस प्रकार मुद्रा बाजार वाणिज्यक बैंकों की केन्द्रीय बैंक पर अत्याधिक निर्भरता को कम करने में सहायक होता है।
5. **मौदिक नीति के क्रियान्वयन में सहायक–** एक संगठित मुद्रा बाजार में केन्द्रीय बैंक का वाणिज्यि बैंकों पर प्रभावी–नियन्त्रण होता है और मुद्रा बाजार के महत्वपूर्ण अंग 'वाणिज्य बैंकों' के माध्यम से यह अपनी मौद्रिक नीति को सफलतापूर्वक क्रियान्वित कर पाता है।
6. **तरलता एवं सुरक्षा–**बैंकों को अपनी सुरक्षा के उद्देश्य से अपनी परिसम्पत्तियों का एक बड़ा भाग तरल परिसंपत्तियों के रूप में रखना अनिवार्य है। मुद्रा बाजार वाणिज्य बैंकों को तरलता की विभिन्न श्रेणियों वाली परिसम्पत्तियाँ उपलब्ध कराकर उनको सुरक्षित रखता है।
7. **नकदी के प्रयोग में किफायत–**चूँकि मुद्रा बाजार मुद्रा विशेष की अपेक्षा लगभग निकट मुद्रा परिसंपत्तियों में लेन–देन करता है इसलिये इसके कारण नकदी के इस्तेमाल में भी किफायत होती है।
8. **निधियों के स्थानान्तरण में सहायक–**मुद्रा बाजार निधियों को एक स्थान से दूसरे स्थान पे अंतरित करने के सुविधाजनक और सुरक्षित उपाय प्रदान करता है जिससे वाणिज्य एवं उद्योग को बहुत सहायता मिलती है।

13.4 मुद्रा बाजार के अंग अथवा सदस्य

मुद्रा बाजार के अंग से अर्थ उन सदस्य संस्थाओं से है जो कि अल्पकालीन मौद्रिक परिसंपत्तियों का क्रय एवं विक्रय करती हैं। मुद्रा बाजार के दो पक्ष होते हैं–ऋण प्राप्त करने वाले तथा ऋण देने वाले। ऋण प्राप्त कर्ताओं में व्यापारिक एवं औद्योगिक कम्पनियां–अथवा व्यक्ति, सट्टे का व्यवसाय करने वाले व्यापारी, सरकारी अथवा अर्द्धसरकारी संस्थाएं आदि को सम्मिलित किया जा सकता है। ऋण देने वालों में वाणिज्य बैंक, वित्तीय संस्थाएं, पारस्परिक निधियां (म्यूचुअल फण्ड्स) गैर बैंक वित्तीय कंपनियां एवं अन्य संस्थाएं, कटौती गृह, स्वीकृति गृह, साहूकार एवं महाजन आदि को सम्मिलित किया जाता है। अंतिम ऋणदाता के रूप में केन्द्रीय बैंक को भी ऋण प्रदान करने वालों की श्रेणी में रखा जाता है। मुद्रा बाजार के अंगों का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है–

1. **केन्द्रीय बैंक–**केन्द्रीय बैंक मौद्रिक परिसंपत्तियों का प्रत्यक्ष क्रय विक्रय नहीं करता बल्कि यह मुद्रा बाजार के संरक्षक के रूप में कार्य करता है व आर्थिक स्थिरता बनाये रखने के लिये बैंक दर, रेपो दर एवं खुले बाज़ार की क्रियाओं के द्वारा साख व मुद्रा की पूर्ति को बढ़ा व घटा कर मुद्रा बाजार को प्रभावित करता है।
2. **वाणिज्यि बैंक–**वाणिज्यि बैंक भी अल्पकालीन परिसंपत्तियों का लेन–देन करते हैं और व्यापार एवं व्यवसाय को उधार देते हैं। ये विनिमय बिलों तथा ट्रेज़री बिलों की डिस्काउंटिग करते हैं तथा वचन प्रपत्रों के आधार पर अग्रिमों और ओवर ड्राफ्टों द्वारा उधार देते हैं।

3. **गैर बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थ–**इसमें वे संस्थाएं आती हैं जो वाणिज्य बैंकों के समान ही वित्तीय परिसंपत्तियों का लेन–देन करती है परन्तु केन्द्रीय बैंक तथा बैंकिंग नियामक अभिकर्ताओं के नियन्त्रण से बाहर होती हैं। जैसे भारत में IDBI, IFCI, ICICI, SFC's जैसी बड़ी संस्थाएं जो कि सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम है, तो इसमें सम्मिलित हैं ही साथ ही कुछ निजी विनियोग एवं वित्तीय कंपनियाँ भी सम्मिलित हैं।
4. **डिस्काउन्ट हाउसेज तथा बिल ब्रोकर्स–** कुछ निजी कंपनियां डिस्काउन्ट हाउस (बट्टा घर) भी चलाती हैं। डिस्काउन्ट हाउस वे कंपनियां या संस्थाएं होती हैं जो विनिमय बिल्स, ट्रेज़री बिल्स, प्रॉमिसरी नोट्स, सरकारी बाण्डस आदि का क्रय एवं बट्टा करती हैं। मुद्रा बाजार में डिस्काउन्ट हाउसेज के साथ–साथ कुछ बिल ब्रोकर्स भी होते हैं जो साधारण कमीशन पर विनिमय बिल, ट्रेजरी बिल्स, प्रॉमिसरी नोट्स आदि को क्रय विक्रय एवं बट्टा करते है।
5. **स्वीकृति गृह (Acceptance House)–** ये वे संस्थाएं है जो व्यापारियों के लिखे गये विनिमय बिलों को स्वीकार करते हैं और बिलों के परिपक्व होने पर उनके भुगतान की गारंटी देते हैं। विगत कुछ दशकों से व्यावसायिक बैंकों द्वारा भी यह कार्य शुरू कर दिये जाने के कारण स्वीकृति गृहों के महत्व में कमी आती जा रही है।

13.5 मुद्रा बाजार के उपकरण एवं उप–बाजार

मुद्रा बाजार के उपकरणों से अर्थ उन प्रपत्रों से है जिनका उपयोग करके अल्पकालीन ऋण लिये अथवा दिये जाते हैं दूसरे शब्दों में वो मौद्रिक परिसंपत्तियां जिनको मुद्रा बाजार में खरीदा अथवा बेचा जाता है मुद्रा बाजार के उपकरण (Instruments) कहलाते हैं। प्रत्येक उपकरण का अपना एक बाजार होता है जो केवल उस विशिष्ट मौद्रिक उपकरण का क्रय विक्रय करता है इस प्रकार मुद्रा बाज़ार में कई प्रपत्रों के उप बाजार आ जाते हैं। इनका संक्षिप्त विवेचन निम्नवत् है–

1. **माँग एवं सूचना मुद्रा (Call and Notice Money)–** माँग मुद्रा बाजार में निधियों का लेन–देन अत्यन्त अल्पकाल के लिये (कुछ घण्टों से लेकर कुछ दिन तक) होता है। अतः माँग मुद्रा अल्पावधि निधियों के तत्कालिक स्रोत के रूप में कार्य करती है। जब मुद्रा को एक दिन अथवा रातों रात के लिये उधार दिया अथवा लिया जाता है तब उसे माँग मुद्रा कहते हैं। उधार अवधि में अवकाश की अवधि सम्मिलत नहीं होती। इस प्रकार जिस मुद्रा को एक कार्य दिवस में उधार लेकर अगले कार्य दिवस में चुका दिया जाता है उसे माँग मुद्रा कहते हैं। इसमें बिना किसी प्रतिभूति के फण्ड का उधार लेन–देन होता है। इसे माँग मुद्रा (call money) इसलिये कहा जाता है क्योंकि इसमें ऋण लेने वाले अथवा देने वाले की माँग पर ही ऋण का भुगतान कर दिया जाता है। जब मुद्रा बिना किसी जमानत के 1–14 दिन तक की अवधि के

लिये उधार ली अथवा दी जाती है तब उसे सूचना मुद्रा (notice money) कहा जाता है।

माँग मुद्रा के अत्यन्त अल्पकालीन की होने के कारण इसकी तरलता नकदी के समान ही होती है। माँग मुद्रा बाजार में सभी भाग नहीं ले सकते हैं, तथा भाग लेने वालों में भी कुछ को केवल ऋण लेने की तथा कुछ को केवल ऋण देने की सुविधा ही प्राप्त होती है। काल मुद्रा की दर को रात भर की दर (over night rate) भी कहा जाता है। वाणिज्य बैंक माँग मुद्रा बाजार के प्रमुख भागेदार हैं। बैंक अपनी सामान्य आर्थिक क्रियाओं के लिये माँग मुद्रा बाजार से ऋण नहीं लेते परन्तु जब बैंकों द्वारा दिये जाने वाले ऋणों की माँग बहुत अधिक हो या बैंकों को अपनी CRR एवं SLR सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति तत्काल करनी हो या एक साथ बहुत अधिक मात्रा में जमा की अवधि पूरी हो जाये और उनका भुगतान तत्काल करना हो तो बैंक एवं वित्तीय संस्थाओं को माँग अथवा सूचना मुद्रा की आवश्यकता पड़ जाती है। इसी प्रकार कुछ गैर वित्तीय संस्थाएं भी जैसे LIC, GIC, DFHI जिनके पास बहुत अधिक फण्ड आ गया हो परन्तु जिसे वे लम्बी अवधि के लिये निवेशित नहीं करना चाहते हों वे भी अपनी निधियों माँग सूचना मुद्रा बाजार में डाल देते हैं क्योंकि यहाँ पर उनके द्वारा माँग करने पर उन्हें धन वापस मिल जाता है। माँग मुद्रा बाजार में ब्याज की दर माँग मुद्रा की माँग एवं पूर्ति के आधार पर निर्धारित होती है एवं इसमें तीव्र उच्चावचन भी होता रहता है जो माँग एवं पूर्ति की सापेक्षिक शक्तियों पर निर्भर करता है।

भारत में माँग मुद्रा बाजार के प्रमुख भागीदारों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वर्ग में वे भागीदार आते हे जिन्हें ऋणदाता एवं ऋणी दोनों रूपों में कार्य करने की अनुमति दी गई है। इनमें भारतीय स्टेट बैंक, सभी वाणिज्य बैंक, सहकारी बैंक भारतीय बट्टा एवं वित लिमिटेड (DFHI), भारतीय प्रतिभूति व्यापार निगम–STCI आते है। द्वितीय वर्ग में उन संस्थानों को सम्मिलित किया जाता है। जिन्हें केवल ऋणदाता की भूमिका निभाने की अनुमति प्राप्त है इसमें बिल रीडिस्काउंटिंग बाजार में कार्यशील विशिष्ट संस्थाएं, ऋण देने योग्य कोषों की बड़ी मात्रा में रखने वाले निगम एवं पारस्परिक निधियाँ, LIC, GIC, NABARD, IDBI आदि आते हैं।

2. **ट्रेजरी बिल्स**–ये भी अल्पकालीन मौद्रिक उपकरण हैं जो एक वर्ष से कम परिपक्वावधि के लिये जारी किये जाते हैं और उनका उद्देश्य सरकार की आय एवं व्यय में होने वाले अल्पकालीन असंतुलन को कम करना होता है। वह दर जिस पर केन्द्रीय बैंक ट्रेज़री बिलों को बेचता है ट्रेज़री बिल्स दर कहलाती है। टी–बिल्स सरकार की तरफ से केन्द्रीय बैंक द्वारा जारी किये जाते है। ट्रेज़री बिल्स या टी–बिल्स अपने अंकित मूल्य पर कुछ छूट देते हुए जारी किये जाते हैं परन्तु परिपक्व होने के पश्चात ये अंकित मूल्य के बराबर भुगतान प्राप्त कराते हैं।

भारत में टी बिल्स पहली बार 1917 में निर्गमित किये गये थे। ट्रेज़री बिल्स 3 प्रकार के हो सकते हैं–(क) आन टैप बिल्स जिन्हें आर बी आई से जब चाहे तब खरीदा जा सकता है परन्तु 1 अप्रैल 1997 से इनका निर्गमन बंद कर दिया गया है। (ख) नीलामी ट्रेज़री बिल्स– ये सबसे अधिक सक्रिय मुद्रा बाज़ारीय प्रपत्र है जिन्हें अप्रैल 1992 से शुरू किया गया है। इन पर प्रतिफल की दर बाजार द्वारा निर्धारित होती है। इनकी पुनर्कटौती नहीं हो सकती है। इस समय आरबीआई 91 दिन तथा 364 दिन की अवधि का टी बिल्स निर्गमित करता है व इनकी न्यूनतम राशि 25,000 तथा इसके गुणनफल के रूप में होती है। (ग) एडहाक ट्रेजरी बिल्स– ये रिजर्व बैंक के नाम में ही निर्गमित होती है तथा इनको निर्गमित करने का उद्देश्य सरकार की अस्थायी फण्ड सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति करना है। उनकी विशेषता यह है कि इनका प्रत्यक्ष एवं तत्काल मौद्रीकरण हो जाता है क्योंकि इनके निर्गमित होने के साथ ही रिजर्व बैंक की संपत्ति बढ़ जाती है और अनुषंगी रूप से मुद्रा दायित्व में वृद्धि होती है। अतएव एडहाक ट्रेजरी बिल्स को हीनार्थ प्रबन्धन के एक अस्त्र के रूप में स्वीकार किया जाता है। ये जनता तथा बैंकों के लिये नहीं होते तथा इनको छोड़कर बाकी ट्रेजरी बिल्स नीलमी में बेची जाती हैं। एडहाक ट्रेजरी बिल्स का प्रारम्भ 1955 में किया गया था तथा 1997–98 के बजट से इनका निर्गमन बंद कर दिया गया है और इसके स्थान पर अर्थोपाय अग्रिम नाम की एक नयी योजना लागू ली गई है। वर्तमान समय में भारत में 14 दिन, 91 दिन, 182 दिन तथा 364 दिनों की परिपक्वता वाले ट्रेजरी बिल्स जारी किये जाते है।

3. **विनियम बिल/व्यापारिक बिल या कमर्शियल बिल–** विनिमय बिल एक उधारदाता द्वारा हस्ताक्षरित एक वचन पत्र अथवा दस्तावेज होता है। जिसमें एक निर्धारित तिथि पर एक विशिष्ट व्यक्ति को निर्धारित राशि का भुगतान करने के लिये लिखित वचन होता है। विनिमय बिल एवं वचन पत्र में यह अंतर होता है कि जहाँ वचन पत्र ऋणी द्वारा दिया जाता है वहीं विनिमय पत्र/बिल उधारदाता द्वारा दिया जाता है। विनिमय बिल एक विक्रय योग्य प्रपत्र होता है। बिल का भुगतान प्राप्त करने वाले व्यक्ति को हम अदाता (payee) कहते है और पेयी जब चाहे बैंक से बिल का बट्टा करवा सकता है। विनिमय बिल मुद्रा बाजार का सर्वाधिक प्रचलित एवं लोकप्रिय उपकरण माना जाता है। यह ऋणदाता द्वारा ऋणी पर लिखा गया एक आदेश है कि ऋणी बिल में उल्लिखित राशि का निर्धारित तिथि को भुगतान करे ऋणी जब इस बिल पर अपनी स्वीकृति के हस्ताक्षर कर देता है तो यह उपकरण कानूनी रूप ले लेता है। इन बिलों की व्यापारिक बैंकों अथवा कटौती गृहों से कटौती कराकर अल्पकालीन साख का उपयोग किया जा सकता है।

विनिमय बिल अनके प्रकार के हो सकते हैं जैसे माँग बिल तथा समय बिल, अन्र्देशीय बिल तथा विदीशी बिल, अनुग्रह बिल आदि। हुण्डी एक प्रकार का देशी बिल है। हुण्डी दो प्रकार की हो सकती हैं। दर्शनी हुण्डी तथा मुद्दती

हुण्डी। दर्शनी हुण्डी 'माँग विनिमय बिल' के समान होती है, जिसका भुगतान उसी समय करना पड़ता है। जबकि ये भुगतान के लिये उपस्थित की जाती हैं मुद्दती हुण्उी समय विपत्र की तरह होती हैं जिसका भुगतान एक समयावधि के बाद होता है। विनिमय बिल प्रायः 90 या 180 दिन की अवधि के होते हैं।

भारत में विनिमय/वाणिज्य बिल बाजार बहुत विकसित नहीं है। रिजर्व बैंक ने जनवरी 1952 और नवम्बर 1970 में दो बिल बाजार योजनाएं प्रस्तुत की जिनका उद्देश्य रिजर्व बैंक के साथ इन बिलों की पुनः कटौती सुविधा की उपलब्धता में वृद्धि करना था। बिल बाजार को सक्रिय बनाने के लिये 1988 में भारतीय बट्टा एवं वित्त गृह लिमिटेड (Discount and Finance House of India Ltd.-DFHI) की स्थापना की गई। इसके बावजूद भी भारत में बिल बाजार अधिक विकसित नहीं हो सका है जिसके अग्रलिखित कारण हैं – (i) बैंक द्वारा 'नकद साख' उधार की लोकप्रिय पद्धति है। (ii) स्टाम्प ड्यूटी की दरें ऊँची है। (iii) विनिमय बिल लेखन में एकरूपता नहीं है। (iv) व्यापारिक जगत में इनके प्रयोग के प्रति उदासीनता पायी जाती है।

(4) **जमा प्रमाण पत्र (Certificate of Deposits)**–जमा प्रमाण पत्र वाणिज्य बैंकों द्वारा निर्गमित किये जाते है। जमा प्रमाण पत्र एक निश्चित अवधि के लिये सावधि जमा के स्वामित्व का बाजार में विपणन योग्य दस्तावेज हैं। यह प्रदर्शित करता है कि प्रमाणपत्र में उल्लिखित धनराशि की सावधि जमा बैंक के पास है। सी.डी. सावधि जमा प्रमाण पत्र (FD) से भिन्न है क्योंकि यह विपणन योग्य होता है जबकि FD विपणन योग्य नहीं होती। सी0डी0 अपने अंकित मूल्य से कम मूल्य पर जारी किये जाते हैं। सी.डी. में कोई व्यक्ति, बैंक, कम्पनी, निगमित व गैर निगमित संस्थाएं व अनिवासी भाग में सकते है। इनकी परिवक्वावधि 30 दिन से 1 वर्ष तक की होती है। इन पर स्टाम्प शुल्क देय होता है। इनका खुले रूप से हस्तांतरण किया जा सकता है। सीडी जब अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में जारी किये जाते है तो उसे यूरो जमा प्रमाण पत्र कहा जाता है।

सीडी को अंकित मूल्य से कम मूल्य पर अर्थात् बट्टे पर निर्गमित किया जाता है तथा बट्टे की दर का निर्धारण माँग एवं पूर्ति की शक्तियों द्वारा होता है। सामान्यतः यह दर सावधि जमा की दर से ऊँची होती है। भारत में इसे जून 1989 में शुरू किया गया था जबकि अमेरिका में 1961 से ही इनका निर्गमन किया जा रहा है। भारत में CD के आकार के बारे में न्यूनतम एवं उच्चतम सीमाएं निर्धारित की गई हैं। ये 5 लाख रूपये से कम एवं 25 लाख रूपये मूल्य से अधिक राशि में जारी नहीं किये जा सकते है। भारत में बैंकों को जमा प्रमाण पत्रों के जारी मूल्य पर CRR एवं SLR रखने आवश्यक होते है। अनेक बैंकों ने जमा प्रमाण पत्रों को जारी किया है। वाणिज्य बैंकों के अतिरिक्त DFHI, IDBI, ICICI, IFCI, IRBI, SIDBI और EXIM BANK को भी जमा प्रमाण पत्र जारी करने का अधिकार दिया गया है।

5. **वचन पत्र (Promisory Note)**– वचन पत्र सबसे पुराने प्रकार का बिल होता है। यह किसी व्यवसायी की ओर से स्वीकृत, हस्ताक्षरित, भविष्य की किसी तारीख पर एक निश्चित रकम दूसरे व्यावसायी को चुकाने का लिखित वचन होता है। वचन पत्र पर वचनकर्ता के हस्ताक्षर होते हैं। वचन पत्र ऋणी द्वारा दिया जाता है व जिस बैंक में ऋणी का खाता होता है उस बैंक द्वारा स्वीकृत वचन पत्र ही मान्य होता है। उधार दाता वचन पत्र की परिपक्वावधि तक अपने बैंक से उसकी डिस्काउन्टिंग करवा सकता है। इसका प्रचलन पूर्व की तुलना में अब काफी कम हो गया है।

6. **अन्तर बैंक भागीदारी के प्रमाण पत्र (Inter Bank Participation Certificate, IBPC)** – मुद्रा बाजार में तरलता की समस्या की समाप्त करने के लिये एक अतिरिक्त प्रपत्र IBPC की शुरूआत की गयी। अन्तर–बैंक भागेदारी प्रमाण पत्र दो प्रकार का हो सकता है। जोखिम भागिता के साथ एवं जोखिम भागिता रहित। जोखिम भागिता युक्त अन्तर बैंक भागेदारी प्रमाण पत्र भारत में 91–180 दिनों तक की अवधि के लिये जारी किये जा सकते हैं। ये उन अग्रिमों के लिये जारी किये जाते है जिनकी सुरक्षा के सम्बन्ध में कोई संदेह नहीं हो। जोखिम भागिता हीन अन्तर बैंक भागीदारी प्रमाण पत्र 90 दिन तक के लिये ही जारी किये जाते हैं। उन पर ब्याज की दर निर्धारित करने में बैंकों को मुक्त अधिकारी प्राप्त हैं।

7. **पुनर्खरीद समझौता (Repurchase Agreements)** –रीपोज़ एक प्रतिभूति की बिक्री और बाद में पुनर्खरीद का एक समझौत होता है। यह प्रतिभूति के धारक को प्रतिभूति को जमानत के रूप में रखकर नकदी प्राप्त करने का एक तरीका है। Repo अथवा RP एक प्रकार का ''हाजिर तथा वायदा समझौता''(Ready and Forward Agreement) अथवा लेन–देन है जिसमें एक पक्षकार इस आश्वासन के साथ दूसरे पक्षकार को प्रतिभूति बेचता है कि भविष्य में 'पूर्व निश्चित' मूल्य तथा तिथि पर वह प्रतिभूति को वापस क्रय कर लेगा। इस प्रकार RP एक प्रकार से गिरवी (Pledge) रखने जैसा लेन–देन है। बाजार में रिवर्स रेपो (Reverse Repo) शब्द का भी प्रचलन है जो कि वास्तव में Repo का ही प्रतिबिम्ब है। इसके अन्तर्गत प्रतिभूति इस वचन के साथ ग्रहण की जाती है कि भविष्य में एक निश्चित मूल्य तथा तिथि पर विक्रेता को वापस कर दी जायेगी। अतः रेपो तथा रिवर्स रेपो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक पक्ष के लिये जो रेपो है दूसरे पक्ष के लिये वही रिवर्स रेपो होगा। प्रतिभूति की पुनर्खरीद हो जाने के कारण इस व्यवस्था में जोखिम शून्य रहता है।

   रीपो एवं रिवर्स रीपो व्यवहार का प्रयोग आम तौर पर मौद्रिक प्राधिकारी द्वारा अर्थव्यवस्था में तरलता प्रबन्धन एवं तरलता समायोजन हेतु किया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर रीपो का प्रयोग तरलता डालने के लिये एवं रिवर्स रीपो का प्रयोग तरलता निकालने के लिये किया जाता है। रीपो के माध्यम से तरलता तब डाली जायेगी जब मौद्रिक अधिकारी प्रतिभूतियों को व्यापारिक

बैंकों से क्रय करें अर्थात् इस प्रकार प्रतिभूतियों के क्रय के माध्यम से वह बैंकों को उधार दें जिससे तरलता में वृद्धि होती है। वह दर जिस पर यह कार्य किया जाता है अर्थात् जिस पर सार्वजनिक एवं निजी बैंक अपनी अल्प अवधि की जरूरतों के लिये रिजर्व बैंक से उधार लेती हैं उसे 'रेपो दर' कहते हैं। इस प्रकार रेपो दर मौद्रिक अधिकारी द्वारा बैंकों को उधार देने की दर है। रेपो के विपरीत रिवर्ज रेपो का प्रयोग अर्थ व्यवस्था से तरलता निकालने के लिये किया जाता है। इस क्रिया में मौद्रिक अधिकारी बैंकों को प्रतिभूतियों बेचेंगे और इससे बैंकों के पास तरलता में कमी आयेगी। इस प्रकार मौद्रिक अधिकारी की दृष्टि से रिवर्स रेपो बैंकों से जमा स्वीकार करने या उधार लेने की दर होगी।

भारत में रिजर्व बैंक द्वारा दिसम्बर 1992 से केन्द्रीय सरकार की दिनांकित प्रतिभूतियों की पुनर्खरीद नीलमियाँ चालू करके रेपो व्यवहार का आरम्भ किया परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर रेपों की शुरूआत सबसे पहले 1917 में यू.एस.ए. के वित्तीय बाजार से हुई थी। 29 अक्टूबर 2004 से पहले भारत में रीपो का प्रयोग तरलता निकालने के लिये तथा रिवर्स रीपो का प्रयोग तरलता डालने के लिये किया जाता था, इस स्थिति में रीपो उधार लेने की दर एवं रिवर्स रीपो उधार देने की दर प्रदर्शित करती थीं पर 29 अक्टूबर 2004 के बाद भारत में भी रीपो एवं रिवर्स रीपो का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रचलित अर्थ स्वीकार कर लिया गया है। व इस प्रकार भारत में भी अब रीपो का प्रयोग तरलता डालेन (उधार देने) व रिवर्स रीपो का प्रयोग तरलता निकालने (उधार लेने) की दर के रूप में स्वीकार किया जाने लगा है। प्रतिभूतियों के विक्रय मूल्य (या स्पॉट प्राइस) तथा पुनक्रेय मूल्य (या फारवर्ड प्राइस) का अन्तर ही उस अवधि का ब्याज होता है।

मंदी की स्थिति में जबकि अर्थव्यवस्था में तरलता की मात्रा बढ़ानें की आवश्यता होती है रिजर्व बैंक द्वारा रीपो एवं रिवर्स रीपो की दर में कमी लाई जाती है तथा स्फति को नियंत्रित करने के लिये दोनों दरों में वृद्धि लाई जाती है। इस प्रकार रीपो एवं रिवर्स रीपो खुले बाजार की क्रिया के समान ही तरलता प्रबन्धन के अस्त्र हैं। खुले बाजार की क्रिया दीर्घकालीन अस्त्र है जबकि ये दोनों अल्पकालीन हैं। हाल के वर्षों में रिजर्व बैंक द्वारा रीपो एवं रिवर्स का रीपो का प्रयोग बहुत अधिक किया जाने लगा है। 9 मई 2011 के पूर्व रीपो तथा रिवर्स रीपो दो स्वतन्त्र अस्त्र के रूप में थे और रिजर्व बैंक दोनों के सम्बन्ध में अलग–अलग दर घोषित करता था किन्तु इसके बाद रिजर्व बैंक ने रीपो दर को प्रमुख दर के रूप में घोषित कर दिया है जबकि रिवर्स रीपो उसकी अनुषंगी दर होगी तथा यह रीपो दर से 1 प्रतिशत कम होगी। मुद्रा बाजार से तरलता खीचनें के लिये, काल मनी रेट में होने वाले उग्र उच्चावचनों को नियंत्रित करने के लिये एवं इस प्रकार मुद्रा बाजार में प्रभाव पूर्ण हस्तक्षेप की दृष्टि से रिजर्व बैंक द्वारा दिसम्बर 1992 से रीपो का प्रयोग किया जा रहा है।

8. **मुद्रा बाजार पारस्परिक निधियां (Money Market Mutual Funds MMMFs)** – म्यूचुअल फण्ड मार्केट को भारत में रिजर्व बैंक द्वारा अप्रैल 1992 से प्रारम्भ किया गया है। इस योजना का उद्देश्य निवेशकों को अल्प कालीन कोष में निवेश कर सकने की सुविधा प्रदान करना है। रिजर्व बैंक ने 1995 में निजी क्षेत्र की संस्थाओं को मनीमार्केट म्यूचुअल फण्ड स्थापित करने की स्वीकृति दी है। ये निधियाँ जुटाये गये संसाधनों को माँग/नोटिस मुद्रा, जमा प्रमाण पत्रों, वाणिज्यक पत्रों, वास्तविक व्यापार, वाणिज्य लेन–देन से होने वाले वाणिज्यक बिलों एवं ट्रेजरी बिलों, तथा एक वर्ष तक की न समाप्त हुई सरकारी दिनांकित प्रतिभूतियों एवं रेटेड कम्पनी बाण्डों और डिबेंचरो में निवेश कर सकती हैं।

   निवेशकों की एक बड़ी संख्या द्वारा जमा पैसा एक म्यूचुअल फण्ड का निर्माण करता है। फण्ड मैनेजर इस पैसे को वित्तीय साधनों में निवेश करने के लिये अपने निवेश प्रबन्धन कौशल का उपयोग करता है। म्यूचुअल फण्ड कई तरह से निवेश करता है जिससे उसका रिस्क (जोखिम) एवं रिटर्न (प्रतिफल) निर्धारित होता है। जब बहुत से निवेशक मिलकर एक फण्ड में निवेश करते हैं तो फण्ड को बराबर–बराबर हिस्सों में बाँट दिया जाता हैं जिसे इकाई (unit) कहते है। म्यूचुअल फण्ड में एक फण्ड प्रबन्धक होता है जो फण्ड के निवेशों को निर्धारित करता है और लाभ एवं हानि का हिसाब रखता है। लाभ या हानि को निवेशकों में बाँट दिया जाता है। भारत में 1995 से बैंकों के अतिरिक्त सरकारी एवं निजी वित्तीय संस्थान भी म्यूचुअल फण्ड की स्थापना कर सकते है मार्च 2000 से इनका नियमन SEBI के अधिकार क्षेत्र में है।

9. **अन्य–** अन्य उपकरणों में बैंकों की स्वीकृति (Banker's Acceptance) एवं समपार्श्विक ऋण (Collateral Loans) आते हैं। बैंकों की स्वीकृति बाजार में बैंकों द्वारा ग्राहकों के स्वीकृत किये गये बिलों तथा ड्राफ्ट आदि का क्रय विक्रय होता है। समपार्श्विक ऋण बाजार में इस प्रकार के ऋण सम्मिलित किये जाते हैं जिनमें प्रतिभूतियों, शेयरों, स्कन्ध, बाण्डस आदि की जमानत के आधार पर वाणिज्य बैंकों द्वारा अल्पकालीन ऋण दिये जाते हैं। वाणिज्य बैंकों द्वारा इस प्रकार के ऋण काफी मात्रा में दिये जाते हैं। इस बाजार के प्रमुख ग्राहक दलाल, अंशों एवं प्रतिभूतियों के क्रय विक्रय में संलग्न व्यक्ति ही होते है।

13.6 मुद्रा बाजार का स्वरूप–विकसित एवं अविकसित मुद्रा बाजार

मुद्रा बाजार प्रत्येक देश में होता है, परन्तु कुछ देशों में मुद्रा बाजार का स्वरूप विकसित अथवा संगठित प्रकृति का होता है तो कुछ देशों में अविकसित एवं असंगठित प्रकार का। किसी देश का मुद्रा बाजार विकसित तब कहलायेगा जब उसमें निम्नलिखित विशेषताएं हो :–

1. **सुसंगठित व्यापारिक बैंकिंग प्रणाली–** विकसित मुद्रा बाजार की प्रमुख विशेषता यह हे कि इसमें विकसित एवं सुसंगठित व्यापारिक बैंकिंग प्रणाली होती है। ये व्यापारिक बैंक सम्पूर्ण मुद्रा बाजार के केन्द्र का कार्य करते है।

2. **केन्द्रीय बैंक की विद्यमानता –** मुद्रा अधिकारी के रूप में केन्द्रीय बैंक की विद्यमानता भी विकसित मुद्रा बाजार का आवश्यक लक्षण है। यह केन्द्रीय बैंक ही है जो मुद्रा बाजार का नेतृत्व, नियामन एवं निर्देशन करता है। कुशल नेतृत्व के अभाव में मुद्रा बाजार अपनी जटिलताओं के कारण विकसित ही नहीं हो सकता।
3. **उपयुक्त प्रपत्रों (उपकरणों) की उपलब्धता –** विकसित मुद्रा बाजार के अस्तित्व के लिये आवश्यक है कि पूर्णतया स्वीकार योग्य और विक्रय योग्य प्रपत्र जैसे व्यापारिक बिल, प्रतिज्ञा पत्र, ट्रेजरी बिल्स, अल्प कालीन सरकारी बाण्ड्स पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हों साथ ही उनके क्रय विक्रय के इच्छुक व्यावसायी एवं कारोबारी भी होने चाहिये।
4. **अनेक उप.बाजारों का अस्तित्व –** यह भी आवश्यक है कि मुद्रा बाजार अनके उपबाजारों में विभाजित हो और प्रत्येक उपबाजार किसी विशेष प्रकार के अल्पकालीन साख पत्रों का कारोबार करता हो। उदाहरण के लिये लंदन मुद्रा बाजार जो संसार का सबसे विकसित मुद्रा बाजार है, में माँग पर देय ऋणों का बाजार, व्यापरिक बिल बाजार और विदेशाी विनिमय बाजार आदि हैं। विकसित मुद्रा बाजार के विभिन्न उपबाजारों में बिल बाजार की विद्यमानता को केन्द्रीय बैंक के मुद्रा बाजार पर नियन्त्रण की दृष्टि से सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है।
5. **प्रेषण सुविधाएं–** विकसित मुद्रा बाजार एक बाजार से दूसरे बाजार को निधियों का स्थानान्तरण करने के लिये सहज व सस्ती प्रेषण सुविधाएं उपलब्ध कराता है।
6. **एकीकृत ब्याज दर ढाँचा–** विकसित मुद्रा बाजार की एक विशेषता यह है कि इसमें एकीकृत ब्याज दर ढांचा होता है। विभिन्न उपबाजारों में चालू ब्याज दरें एक दूसरे से जुड़ी होती हैं तथा बैंक दर में परिवर्तन चालू बाजार दर में आनुपातिक परिवर्तन लाता है।
7. **पर्याप्त वित्तीय संसाधन–** विकसित मुद्रा बाजार में देश के भीतर और बाहर दोनों ओर से वित्तीय स्रोतों पर आसान पहुंच होती है। वास्तव में ऐसा बाजार लंदन मुद्रा बाजार की तरह दोनों स्रोतों से पर्याप्त निधियों को आकर्षित करता है।
8. **विविध घटकों का प्रभाव–**उपर्युक्त महत्वपूर्ण विशेषताओं के अतिरिक्त एक विकसित मुद्रा बाजार ऐसे घटकों से बहुत अधिक प्रभावित होता है जैसे अन्तर्राष्ट्रीय लेन देनों पर प्रतिबंध, मुद्रा संकट, तेजी, मंदी, युद्ध परिस्थितियों एवं राजनीतिक स्थिरता आदि।

संक्षेप में संगठित मुद्रा बाजार में ऋण देने वाली अथवा अल्पकालीन बिलों का क्रय विक्रय करने वाली बैंकिंग संस्थाएं किसी एक केन्द्रीय नियंत्रण एवं निर्देशन में कार्य करता है। और उन पर केन्द्रीय संस्थाओं का प्रभावी नियंत्रण होने के कारण उनकी ऋण नीति, ब्याज दरों ऋणों के उपयोग उनकी जमानत आदि नीतियों में यथासंभव एकरूपता रहती है।

अधिकांश अल्प विकसित देशों में मुद्रा बाजार प्रायः अविकसित या असंगठित होता है। वास्तव में वह दोहरे प्रकार का होता है–विकसित एवं अविकसित विकसित मुद्रा बाजार में केन्द्रीय बैंक, वाणिज्य बैंक, बिल ब्रोकर्स, बट्टा गृह, स्वीकृति गृह आदि शामिल होते हैं दूसरी ओर अविकसित मुद्रा बाजार में मुद्रा उधारदाता, देशी बैंकर्स, व्यापारी, सर्राफ, भू–स्वामी, धनी व्यक्ति, दलाल आदि सम्मिलित व होते हैं। चूँकि अल्पविकसित देशों में अधिकतर लोग ग्रामीण क्षेत्रों में ही रहते हैं एवं साक्षारता भी कम होती है अतएव वे विकसित मुद्रा बाजार की जटिलाताओं को नहीं समझ पाते इसलिये इन देशों के मुद्रा बाजार में अविकसित मुद्रा बाजार के तत्व एवं प्रभुत्व अधिक पाया जाता है इतना अवश्य है कि आर्थिक विकास के साथ–साथ इन देशों के मुद्रा बाजार में भी असंगठित एवं अविकसित तत्वों का महत्व कम होता जा रहा है। एक अविकसित अथवा असंगठित मुद्रा बाजार की निम्नलिखित विशेषतायें होती है –

1. **व्यक्तिगत संबंध**–उधार दाताओं का उधार लेने वालों से व्यक्तिगत संबंध होता है। गाँव में उधारदाता प्रत्येक उधार लेने वाले को व्यक्तिगत रूप से जाता है क्योंकि वे वहाँ रहते है।
2. **ऋणों में लोचशीलता**–ऋण लेन देन में कठोरता नहीं होती है। उधार लेने वाला अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप ऋण की अधिक या कम रकम ले सकता है जो जमानत की प्रकृति एवं उधारदता की साख पर निर्भर करती है।
3. **उधार देने की क्रियाओं की विविधता**–अधिकांश लोग सिर्फ मुद्रा उधार देने की क्रिया में विशिष्टता नहीं रखते। वे मुद्रा उधार देने की क्रिया को अन्य आर्थिक क्रियाओं के साथ जोड़ देते है। कई बार वे मुद्रा की बजाय वस्तुओं की पूर्ति द्वारा उधार देते हैं तो कमी ऋण एवं ब्याज का भुगतान वस्तुओं की पूर्ति के रूप में प्राप्त करते है।
4. **ब्याज दरों में भिन्नता**– व्यक्तिगत ऋणों की ब्याज दरों में भी काफी भिन्नता पायी जाती है। विकसित मुद्रा बाजार की तुलना में अविकसित मुद्रा बाजार में ब्याज दर बहुत ऊँची होती है। ब्याज की दर ऋण लेने वालों की आवश्यकता की तीव्रता, ऋण की राशि, अवधि और जमानत की प्रकृति पर निर्भर करती है।
3. **दोषपूर्ण लेखा प्रणाली**–असंगठित क्षेत्र में ऋण एवं ब्याज का हिसाब–किताब रखने से संबंधित लेखा प्रणाली भी दोषपूर्ण होती है। ऋण वर्ग द्वारा लौटाये गये मूल धन एवं ब्याज भुगतान की विधिवत रसीद प्रायः जारी नहीं की जाती एवं लेखा प्रणाली में पारदर्शिता के स्थान पर गोपनीयता की प्रवृति पायी जाती है।
4. **विकसित मुद्रा बाजार से स्वतंत्रता**– अविकसित मुद्रा बाजार विकसित मुद्रा बाजार से स्वतंत्र रूप से कार्य करता है और विकसित बाजार के नियंत्रण में नहीं होता। इसकी उपस्थिति का एक प्रभाव यह होता है कि इससे बचतों एवं मौद्रिक लेन देनों का परिमाण घटता है एवं बचतों के उत्पादक निवेश की ओर में गतिशीलता में बाधा उत्पन्न होती है।

13.7 भारतीय मुद्रा बाजार

भारतीय मुद्रा बाजार स्पष्ट रूप से दो क्षेत्रों में बंटा हुआ है–संगठित एवं असंगठित। इसके संगठित क्षेत्र में रिजर्व बैंक, सभी अनुसूचित बैंक, अन्य वाणिज्य बैंक, विदेशी बैंक, सहकारी बैंक, भारतीय जीवन बीमा निगम, भारतीय साधारण बीमा–निगम, विदेशी विनिमय बैंक, भारतीय मितिकाटा एवं वित्त ग्रह लिमिटेड (DFHI) और भारतीय प्रतिभूति व्यापार निगम (STCI) सम्मिलित हैं। मुद्रा बाजार के असंगठित क्षेत्र में स्वदेशी बैंकर्स, साहूकार व्यवसायी ओर गैर व्यवसायी, व्यापारी, विक्रेता जमींदर, चिटफण्ट, महाजन, चेट्टी, सर्राफ आदि शामिल हैं।

13.7.1 भारतीय मुद्रा बाजार की विशेषताएं एवं दोष

भारतीय मुद्रा बाजार की विशेषताओं का बिंदुवार विवेचना नीचे प्रस्तुत किया गया है

1. **दो क्षेत्र–** भारतीय मुद्रा बाजार दो अलग–अलग भागों में बंटा हुआ है। एक ओर संगठित क्षेत्र है जिसमें बैंक एवं वित्तीय संस्थाएं आती हैं जो रिजर्व बैंक के नियन्त्रण में है। जबकि दूसरी ओर असंगठित क्षेत्र है जिसमें साहूकार महाजन, सर्राफ, शाह एवं देशी बैंकर्स आते है जो स्वतंत्र एवं मनमाने ढंग से कार्य करते है और इन पर रिजर्व बैंक का प्रभावी नियंत्रण नहीं है।
2. **दोनों क्षेत्रों में परस्पर सहयोग का अभाव–** संगठित एवं असंगठित दोनों क्षेत्रों में परस्पर न सम्पर्क है न सहयोग। दोनों क्षेत्रों की नीतियों ब्याज दरों, कार्य पद्यतियों आदि में काफी भिन्नता दृष्टिगोचर होती है।
3. **विकसित बिल बाजार का अभाव–**भारतीय मुद्रा बाजार की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि काफी प्रयासों के बावजूद देश में एक सुव्यवस्थित बिल बाजार विकसित नहीं हो पाया है।
4. **सीमित संख्या के मौद्रिक अस्त्र–**भारतीय मुद्रा बाजार में सीमित संख्या के मौद्रिक अस्त्रों द्वारा ही लेन देन हो रहा है और अल्पावधि माँग मुद्रा, ट्रेजरी बिल्स, व्यावसायिक बिल, व्यावसायिक पत्र तथा जमा प्रमाण पत्र (CDs) के द्वारा ही अधिकतर लेन–देन किया जा रहा है जब कि विश्व के विकसित मुद्रा बाजारों में मुद्रा बाजार के कई नये–नये अस्त्रों का विकास हो चुका है।
5. **ब्याज दरों में भिन्नता–**संगठित क्षेत्र मे रिजर्व बैंक का प्रभावी नियंत्रण होने के कारण उसकी ब्याज की दरें लगभग समान है पर असंगठित क्षेत्र मे रिजर्व बैंक का नियंत्रण नगण्य होने से उनकी ब्याज दरों, कार्य संचालन तथा उधार देने की नीतियों में काफी भिन्नता पायी जाती है।
6. **ऋणों की मौसमी आवश्यकता–**भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का कमी भी बहुत महत्व हैं मुद्रा बाजार में ऋणें की माँग भी कृषि क्षेत्र की सफलता एवं विफलता से प्रभावित होती है। इस कारण साख की माँग एवं पूर्ति पर मौसमी प्रभाव पड़ता है। अक्टूबर से मई तक व्याप्त मौसम माना जाता है और इस मौसम में अल्पकालीन ऋणों की मॉग और ब्याज दरें बढ़ जाती है और शेष अवधि में मुद्रा की माँग कम रहती है।
7. **बैंकिग सेवाओं का असंतुलित एवं अपर्याप्त विकास–**भारतीय मुद्रा बाजार में 1969 के पूर्व तक तो बैंकिंग सेवाओं की बहुत ही कमी थी लेकिन

राष्ट्रीयकरण के लगभग पाँच दशक बीत जाने के बाद भी देश की विशालता एवं अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं को देखते हुये बैंकिंग सेवाओं का असंतुलित एवं अपर्याप्त विकास हुआ है। शहरी क्षेत्रों में तो बैंकों का पर्याप्त विकास हो चुका है तथापि ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकों की अभी भी भारी कमी है जो मुद्रा बाजार के पर्याप्त विकास में बाधा का कार्य कर रही है।

8. **विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं का अपर्याप्त विकास**—विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं से अर्थ अलग—अलग प्रकार के ऋणों के लिये अलग—अलग विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं से है। विकसित राष्ट्रों में इस प्रकार की विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं का पर्याप्त विकास हो चुका है किन्तु भारत में इस प्रकार की संस्थाएं बहुत कम है।

9. **बचतों की सीमित मात्रा**—भारत में गरीबी एवं पिछड़ापन भी मुद्रा बाजार के विकास में भी बाधक रहा है। लोगों का आय स्तर कम होने से बचतें भी कम है। लोगों में बैंकिंग आदतों का पर्याप्त विकास भी अभी तक नहीं हो पाया है इस कारण बैंकों को जमा की प्राप्ति भी कम ही है। स्फीतिकारी प्रवृत्तियों के कारण भी बचतें अधिक नहीं प्राप्त हो पातीं। यही नहीं लंदन एवं न्यूयार्क जैसे विदेशी मुद्रा बाजारों की भांति की भारत को विदेशी कोषों भी पूर्ति भी नहीं हो पाती अतः इसका व्यवहार मात्र भारतीय प्रतिभूतियों तक ही सीमित रह जाता है।

10. **सीमित सेकण्डरी बाजार**—भारतीय मुद्रा बाजार सेकण्डरी बाजार के रूप में मात्र ट्रेजरी बिलों एवं व्यापारिक बिलों की पुनर्कटौती तक ही सीमित है। अन्य प्रतिभूतियों पुनर्खरीद के लिये प्रायः उपलब्ध नहीं होती है।

11. **सीमित संख्या में भागेदारी**—भारतीय मुद्रा बाजार में मुख्य रूप से DFHI, व्यापारिक बैंक, प्रमुख वित्तीय संस्थान एवं कुछ बड़ी कंपनियों ही व्यवहार करती है। अन्य हाई नेटवर्थ निवेशक भारतीय मुद्रा बाजार में व्यवहार नहीं करते।

12. **सीमित समाशोधन सुविधाएं** —यद्यपि भारतीय मुद्रा बाजार में बैंकों के लेन देनों का निपटारा तो समाशोधन गृहों के माध्यम से किया जा रहा है किन्तु अन्य वित्तीय संस्थाओं एवं असंगठित क्षेत्र के लेन देन के निपटारों के लिये समाशोधन गृहों का अभाव दृष्टिगोचर होता है। व्यापारिक बैंकों चेकों हुण्डियों आदि के भुगतान को समाशोधन गृहों द्वारा निपटाने की व्यावस्था बड़े—बड़े शहरों तक ही सीमित है। जहाँ यह सुविधा नहीं है वहॉ नकद राशि भेजने मँगवानें आदि में दिक्कते आती हैं।

13.7.2 भारतीय मुद्रा बाजार में किये गये प्रमुख सुधार एवं सुझाव

भारतीय मुद्रा बाजार की उपर्युक्त वर्णित विशेषताएं वस्तुतः भारतीय मुद्रा बाजार के दोष अथवा कमियाँ ही हैं जो इसे संगठित एवं विकसित स्वरूप प्राप्त नहीं करने दे रही है। इन कमियों को दूर करने के लिये भारत सरकार एवं रिजर्व बैंक द्वारा समय—समय पर काफी प्रयास भी किये गये है। भारतीय मुद्रा बाजार के विकास

हेतु किये गये प्रमुख सुधारों से निम्नलिखित उल्लेखनीय है एवं भावी सुधार के सुझाव भी साथ ही दिये जा रहे हैः–

1. **समाशोधन सेवा का विस्तार**–देश में बैंकिंग के विकास के साथ–साथ समाशोधन सेवाओं का भी तेजी से विकास हुआ है। अब सभी शहरों एवं बड़े–बड़े नगरों में भारतीय मुद्रा बाजार उस सुविधा के अतिरिक्त कम्प्यूटरीकरण की ओर अग्रसर है। प्रति माह 55 से 75 हजार करोड़ रुपये से अधिक बिलों का समाशोधन होता है फिर भी अभी काफी सुधार की आवश्यकता है। अतः इस सुविधा का विस्तार करने के साथ–साथ कम्प्यूटरों का प्रयोग बढ़ाया जाना चाहिये।
2. **विशिष्ट संस्थाओं की स्थापना**–विकसित देशों की भाँति भारत में विशिष्ट प्रकार के ऋणों के लिये विशिष्ट संस्थाओं को स्थापित करने के प्रयास किये गये है। उदाहरणार्थ–आयात एवं निर्यात वित्त की व्यवस्था हेतु निर्यात–आयात बैंक स्थापित किया गया। ग्रामीण एवं कृषि विल की व्यवस्था के लिये 1982 में शीर्ष वित्तीय संस्था के रूप में नाबार्ड (NABARD) की स्थापना की गई। विदेशी विनियम के बिलों की कटौती एवं स्वीकृति हेतु अलग निगम बनाया गया है। लघु उद्योगों के लिये लघु उद्योग वित्त निगमों की स्थापना की गई है।

   भारत की विशलता को देखते हुए और अधिक संख्या में विशिष्ट संस्थाओं की स्थापना की जानी चाहिये ताकि मुद्रा बाजार का पर्याप्त विकास हो सके।
3. **असंगठित क्षेत्र पर प्रभावी नियंत्रण**–यद्यपि देश में देशी बैंकर्स की गतिविधियों एवं कार्य पद्यतियों पर नियंत्रण के लिये कई नियम एवं कानून बनाये गये हैं तथापि अभी तक उन पर प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित नहीं हो पाया है। अतः इन पर प्रभावी नियंत्रण के उपाय तेज किये जाने चाहिये।
4. **हुण्डियों तथा देशी बिलों का मानकीकरण**–असंगठित मुद्रा बाजार की हुण्डियों एवं देशी बिलों में मानकीकरण करने के प्रयास विशेष सफल नहीं हो पाये हैं क्योंकि ये हुण्डियाँ क्षेत्रीय भाषा में लिखी जाती है, जिनके स्वरूप तथा लेखन विधि में काफी अन्तर होने से वे सर्वत्र स्वीकार नहीं की जाती जिससे मुद्रा बाजार का विकास अवरूद्ध हुआ है। अतः भारत में प्रचलित हुण्डियों की भाषा स्वरूप एवं लेखन विधि में एकरूपता एवं मानकीकरण का प्रयास करना चाहिये।
5. **संगठित बिल बाजार का विकास**– रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया ने भारत में संगठित बिल बाजार के विकास में महती भूमिका निभाई है। 1952 में बिल बाजार योजना की घोषणा की गई और 1954 में कई प्रकार की सुविधाओं की व्यवस्था की गयी। 1958 में विदेशी विनिमय बिल भी इस योजना में शामिल कर लिये गये, 1962 में क्रय विक्रय तथा पुनर्कटौती के निर्यात बिलों की अवधि 180 दिन कर दी, 1960 में निर्यात साख बिल योजना प्रारम्भ की, फिर भी विकास मंद रहा। अब धीरे–धीरे विकास हो रहा है।

बिल बाजार के और अधिक विकास की काफी गुंजाइश है और इसके लिये और अधिक प्रयास किये जाने की जरूरत है।

6. **लाइसेंस शुदा माल गोदामों की स्थापना की बढ़ावा**– यद्यपि योजना काल में देश में गोदामों की स्थापना के काफी प्रयास हुये हैं तथा केन्द्र एवं राज्य स्तर पर बहुत सारे गोदाम बनाये गये हैं, परन्तु आवश्यकताओं को देखते हुए ये अभी भी बहुत कम हैं एवं इस हेतु और अधिक गोदाम बनाये जाने चाहिये ताकि बैंक उन गोदामों की माल जमा रसीदों के आधार पर ऋण दे सकें।

7. **धन प्रेषण सुविधाओं का विस्तार**–राष्ट्रीयकरण के बाद से देश में बैंकिंक सुविधाओं का यद्यपि काफी विकास हुआ है फिर भी बैंकों को धन के एक स्थान से दूसरे स्थान पर हस्तांतरण में अभी भी काफी असुविधाएं है। अतः मुद्रा बाजार के विकास के लिये रिजर्व बैंक तथा स्टेट बैंक द्वारा धन की प्रेषण सुविधाओं को बढ़ाया जाना चाहिये।

8. **बैंकिंग सुविधाओं का विस्तार**–जून 1969 अर्थात् बैंकों के राष्ट्रीयकरण के पूर्व देश में बैंकों की शाखाओं की संख्या 8,262 तथा जमा राशियाँ 20,4645 करोड़ रुपये थी, वहीं मार्च 2013 के अंत तक बैंकों की शाखायें बढ़कर 1,09,811 हो गई है तथा उनकी कुल जमाएं बढ़कर 15 मार्च 2013 को बढ़कर 76,92,309 करोड़ पहुँच गई। फिर भी इन शाखाओं का वितरण अपर्याप्त है देश के ग्रामीण क्षेत्रों के कई भाग अभी भी असेवित है। देश की विशालता को देखते हुये यह अत्यन्त आवश्यक है कि बैंकिंग सेवाओं का और अधिक विकास एवं विस्तार कर बैंकिंग सेवाओं को सुदृढ़ किया जाये विशेषकर उन क्षेत्रों में जहाँ असंगठित क्षेत्र का प्रभुत्व है।

13.7.3 भारतीय मुद्रा बाजार की आधुनिक प्रवृत्तियां

हाल ही के वर्षों में रिजर्व बैंक तथा भारत सरकार ने मुद्रा बाजार के विकास तथा सुधार के लिये निम्नलिखित कदम उठाये हैं–

1. **भारतीय बट्टा एवं वित्त लिमिटेड (Discount and Finance House of India Ltd)** – वाघुल समिति की सिफारिशों के आधार पर मुद्रा बाजार को तरलता प्रदान करने के उद्देश्य से 1988 को भारतीय बट्टा एवं वित्त गृह लिमिटेड की स्थापना की गई है। इसका मुख्यालय मुम्बई में स्थित है। DFHI की स्थापना रिजर्व बैंक, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं द्वारा संयुक्त रूप से की गई है। DFHI मुद्रा बाजार के उपकरणों में द्वितीयक स्तर का क्रियाशील बाजार तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इसके क्रिया कलापों में माँग व नोटिस फण्ड, 182 दिवसीय ट्रेज़री बिल्स, व्यावसाइक बिल जमा प्रमाण पत्र, व्यापारिक पेपर, समय जमा इत्यादि सम्मिलित है।

2. **व्यापारिक पत्रों का निर्गमन (Issue of Commercial Paper)** – 1 अप्रैल, 1989 से बड़ी कंपनियों को यह सुविधा दी गई है कि वे भी मुद्रा बाजार से वित्त प्राप्त करने के लिये व्यापारिक पत्र निर्गमित कर सकती हैं। एक कंपनी रू0 4 करोड़ के मूल्य तक का व्यापारिक पत्र निर्गमित कर सकती है। यह सुविधा व्यापारिक बैंकों की भी उपलब्ध है। इन्हें एक से अधिक स्टॉक

एक्सचेंज केन्द्रों में सूचीबद्ध किया जा सकता है। इनकी परिपक्वता अवधि 3 से लेकर 12 माह तक की होती है।

3. **जमा प्रमाण पत्र योजना (Scheme of Certificate of Deposit)** – यह योजना जून 1989 से प्रारम्भ की गई है। यह एक वाहक पत्र होता है और एक व्यक्ति, संस्था एवं कम्पनियों द्वारा जमा की गई रकम के विरूद्ध जारी किया जाता है। न्यूनतम जमा प्रमाण पत्र आरम्भ में रू0 1 करोड़ फिर 50 लाख किन्तु अब 5 लाख रूपये तक सीमित कर दिया गया है। इनकी परिपक्वावधि 15 दिन की है तथा ये जमा प्रमाणपत्र केवल बैंक द्वारा ही जारी किये जा सकते है। व्यापारिक बैंकों के अतिरिक्त IDBI, ICICI, IFCI, SIDBI बैंकों को जमा प्रमाणपत्र जारी करने का अधिकार प्राप्त है।
4. **मुद्रा बाजार पारस्परिक कोष (Money Market Mutual Fund)** – विभिन्न व्यापारिक बैंकों एवं सार्वजनिक संस्थाओं को अप्रैल 1992 से कुछ नियमों एवं शर्तो के अन्तर्गत पारस्परिक कोष बनाये जाने की स्वीकृति दी गई है। नवम्बर 1995 से इन नियमों व शर्तों के और उदार बनाया गया है। पारस्परिक कोष को रेटेड (Rated) निगम के बाण्डस, डिबेन्चर्स एवं प्रतिभूतियों में विनियोग के लिये छूट दी गई है। इन पर रिजर्व बैंक के मार्गदर्शी सिद्धान्त लागू होते हैं। व्यापारिक बैंकों को स्वतंत्र रूप से पारस्परिक कोष ट्रस्टी के रूप में स्थापित करने की छूट प्रयास की गई है।
5. **माँग मुद्म बाजार (Call Money Market)** – भारत के मौद्रिक बाजार के क्षेत्र में माँग मुद्रा बाजार भी एक प्रमुख उपकरण के रूप में विकसित हुआ है। कम अवधि के ऋण, अन्तर्बैंक ऋण एवं मौसमी ऋणों की उपलब्धि इसी बाजार में होती है। माँग मुद्रा बाजार में ऋण पूर्तिकर्ताओं में व्यापारिक बैंक, LIC, GIC, AXIS बैंक आदि और ऋण लेने वाले व्यापारिक बैंक, प्रतिभूति दलाल, वित्त एवं बट्टा गृह आदि होते है।
6. **व्यापारिक बिल बाजार (Commerical Bill Market)** – हमारे देश में व्यापारिक बिल का बाजार सीमित रूप में ही विकसित हो पाया है। इसे विकसित करने के लिये रिजर्व बैंक ने 1970 में पुनर्कटौती योजना लागू की है जिसके तहत वाणिज्य बैंक, रिजर्व बैंक से व्यापारिक बिलों की पुनर्कटौती (rediscounting) करवा सकते हैं। व्यापारिक बिल बाजार के माध्यम से वित्त व्यवस्था को प्रोत्साहित करने के लिये रिजर्व बैंक ने 1997 में यह भी सुझाव दिया है कि ऋणी द्वारा अन्तर्देशीय साख के 25 प्रतिशत का क्रय बिलों के माध्यम से किया जाये।
7. **ट्रेज़री बिल बाजार (Treasury Bills Market)** – मुद्रा बाजार में यह भी एक आधुनिक उपकरण के रूप में प्रचलित होता जा रहा है ये 91, 182, 364 एवं 14 दिनों की परिपक्वावधि वाले होते हैं। इनमें सर्वाधिक प्रचलित 91 दिनों के बिल रिजर्व बैंक, व्यापारिक बैंक, राज्य सरकार और अन्य वित्तीय संस्थाएं 90 प्रतिशत बिलों की खरीद करती हैं। अन्य ट्रेजरी बिलों को विदेशी बैंक भारत में खरीदते है।

8. **भारतीय प्रतिभूति व्यापार निगम (Securities Trading Corparation of India)** – इस निगम की स्थापना वषर्ज 1994 में इस उद्देश्य से की गई थी कि सहायक बाजार का विकास होगा। सरकारी प्रतिभूतियों से विक्रय में यह प्राथमिक डीलर है। यह निगम सरकारी दिनांकित प्रतिभूतियाँ का क्रय विक्रय करता है।

9. **प्राइमरी डीलर्स (Primary Dealers) –** प्राइमरी डीलर्स 'सरकारी प्रतिभूति बाजार' तथा 'माँग' मुद्रा बाजार में कार्यरत है। मार्च 1990 को 13 संस्थाओं को प्राइमरी डीलर्स के रूप में सरकारी प्रतिभूतियों में लेन–देन करने की मंजूरी प्राप्त थी। इन प्राइमरी डीलर्स को जारी की गई सभी सरकारी प्रतिभूतियों का अभिगोपन (Underwriting) राशि का अधिकतम 50 प्रतिशत तक प्राप्त होता है। इन्हें रिजर्व बैंक से सरकारी दिनांकित प्रतिभूतियाँ और 91/364 दिवसीय ट्रेज़री बिल की जमानत पर तरलता समर्थन प्राप्त होता है। माँग मुद्रा बाजार में प्राइमरी डीलर्स द्वारा किये जाने वाले लेनदेनों के सम्बन्ध में उधार देने की न्यूनतम सीमा रू0 5 करोड़ है।

10. **पुनर्खरीद नीलामी (Repurchase Auctions-Repos)** – दिसम्बर, 1992 में रिजर्व बैंक ने केन्द्रीय सरकार की दिनांकित प्रतिभूतियों की पुनर्खरीद नीलामियां चालू कीं, ताकि 'माँग मुद्रा बाजार' में ब्याजदरों को समरूप किया जा सके। रीपोज एक प्रतिभूति की बिक्री और बाद में पुनर्खरीद का समझौता होता है। यह प्रतिभूति के धारक को प्रतिभूति के जमानत के रूप में रखकर नकदी प्राप्त करने का एक तरीका है, बैंक प्रतिभूति के बदले में या नकदी अथ्ज्ञवा रिजर्व बैंक के पास शेष द्वारा रेपोज लेन देन करते है। रीपोज नीलामियां रिजर्व बैंक द्वारा समय–समय पर की जाती हैं।

13.8 सारांश

मुद्रा बाजार में अल्पकाल (सामान्यतः) एक वर्ष से कम की अवधि हेतु मुद्रा अथवा मौद्रिक परिसम्पत्तियों का लेन–देन किया जाता है। ये मौद्रिक परिसम्पत्तियां अत्यन्त तरल एवं शीघ्रता से विनिमय योग्य होती हैं जिन्हें बिना कोई हानि उठाये मुद्रा में परिवर्तित किया जा सकता है। मुद्रा बाजार कृषि, उद्योग एवं व्यापार को ऋण उपलब्ध कराकर आर्थिक वृद्धि को प्रोत्साहित करता है, सरकार की अल्पकालीन आवश्यकताओं को पूरी करता है, व्यक्तियों एवं संस्थाओं को अपनी बची हुई निधियों को लाभदायक रूप से निवेश करने का अवसर उपलब्ध कराता है, बैंकों को तरलता एवं सुरक्षा प्रदान करता है, वाणिज्य बैंकों की केन्द्रीय बैंक पर निर्भरता में कमी लाता है, नकदी के प्रयोग में किफायत लाता है व साथ ही केन्द्रीय बैंकों द्वारा अपनी मौद्रिक नीति के क्रियान्वयन में सहायता करता है। मुद्रा बाजार दो प्रकार का हो सकता है संगठित एवं असंगठित। संगठित मुद्रा बाजार स्पष्ट नियमों के अनुरूप चलता है एवं इस पर केन्द्रीय बैंक का प्रभावी नियंत्रण होता है। केन्द्रीय बैंक, वाणिज्य बैंक, वित्तीय संस्थाएं, पारस्परिक निधियां, गैर बैंकिग वित्तीय कंपनिया, कटौती गृह, स्वीकृति ग्रह और बिल ब्रोकर्स संगठित मुद्रा बाजार के प्रमुख अंग है। असंगठित मुद्रा बाजार के अंग महाजन, साहूकार, चेट्टी सर्राफ आदि है। असंगठित मुद्रा बाजार में ब्याज की

दर बहुत अधिक होती है और उसके विभिन्न घटक केन्द्रीय बैंक के नियन्त्रण से बाहर होते हैं और मनमाने ढंग से कार्य करते है। संगठित मुद्रा बाजार के प्रमुख उपकरण है– माँग मुद्रा नोटिस मुद्रा, ट्रेजरी बिल्स, विनिमय बिल, जमा प्रमाण पत्र, वचन पत्र, पुनर्खरीद समझौता आदि।

भारतीय मुद्रा बाजार में संगठित क्षेत्र के साथ असंगठित तत्व भी विद्यमान है। स्वतंत्रता प्राप्ति इतने वर्षों के उपरान्त भी असंगठित क्षेत्र का महत्व अभी भी बना हुआ है क्योंकि देश के अधिकांश लोग ग्रामीण क्षेत्र में निवास करते है। वे संगठित मुद्रा बाजार के उपकरणों से प्रायः परिचित नहीं होते अथवा उसे जटिल मानते है साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में उनकी उपलब्धता भी कम है। भारतीय मुद्रा बाजार के संगठित क्षेत्र में रिजर्व बैंक, सभी अनुसूचित बैंक, अन्य वाणिज्य बैंक, विदेशी बैंक, सहकारी बैंक, भारतीय जीवन बीमा निगम, भारतीय साधारण जीवन बीमा निगम विदेशी विनिमय बैंक, भारतीय नितिकाय एवं वित्त गृह लिमिटेड (DFHI), और भारतीय प्रतिभूति व्यापार निगम (STCI) सम्मिलित हैं। भारत में पिछेडपन, निर्धनता आदि के चलते बचतों की मात्रा सीमित है, बैंकिग सेवाओं का असंतुलित एवं अपर्याप्त विकास हुआ है, विशिष्ट वित्तीय संस्थाएं जो विशिष्ट उद्देश्यों हेतु ऋण देती है वे भी बहुत कम है, भारतीय मुद्रा बाजार में मांग मुद्रा, ट्रेजरी बिल्स, व्यावसायिक बिल, व्यापसायिक पत्र तथा जमा प्रमाण पत्र में (CDS) द्वारा ही अधिकांश लेन देन होता है। समाशोधन सुविधाएं भी बहुत कम है व बड़े–बड़े शहरों तक ही सीमित है। यद्यपि हाल के वर्षों में भारतीय मुद्रा बाजार के दोषों को दूर करने के कई प्रयास किये गये है जैसे DFHI एवं STCI की स्थापना, म्यूचअल फण्ड्ज़ बनाये जाने की स्वीकृति देना, Repos की व्यवस्था शुरू करना आदि, तथापि अभी भी ये सुधार अपर्याप्त हैं। देश की विशलता देखते हुये बैंकिग सेवाओं एवं विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं के विस्तार की आवश्यकता है खासकर उन क्षेत्रों में जहाँ असंगठित क्षेत्र का अभी तक प्रभुत्व बना हुआ है।

13.9 शब्दावली

वित्त : धन का प्रबंध ।

मौद्रिक परिसंपत्तियां : अत्याधिक तरल एवं शीघ्र विनिमय योग्य परिसंपत्तियां ।

तरल परिसंपत्तियां : वे परिसम्पत्तियां जिन्हें शीघ्रता से बिना कोई हानि उठाये मुद्रा में परिवर्तित किया जा सकता है।

गैर–बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थ : वे वित्तीय संस्थाएं जो ऋण का लेन–देन करती है किन्तु केन्द्रीय बैंक के नियंत्रण में नहीं होतीं।

मांग मुद्रा : मुद्रा बाजार में रातों रात के लिये उधार ली जाने वाली मुद्रा।

पुनर्कटौती : एक बार कटौती कर के भुगतान किये जाने के बाद किसी बिल अथवा प्रतिभूति की दोबारा कटौती।

समपार्श्विक ऋण : प्रतिभूतियों, शेयर, बाण्डस आदि की जमानत पर दिये जाने वाले ऋण उपकरण : प्रपत्र

13.10 बोध प्रश्न

बोध प्रश्न क

1. निम्नलिखित कथनों में से कौन सा कथन सही है और कौन सा गलत।

i) वित्त का अर्थ है ऋण लेना अथवा देना। .

ii) मुद्रा बाजार में अल्पकाल हेतु मौद्रिक परिसम्पतियों का क्रय–विक्रय होता है। .

iii) जिस मुद्रा को एक कार्य दिवस में उधार लेकर अगले कार्य दिवस में चुका दिया जाता है उसे मांग मुद्रा कहते हैं।

iv) एडहॉक ट्रेजरी बिल्स का निर्गमन बंद कर दिया गया है।

v) महाजन एवं साहूकार संगठित मुद्रा बाजार के महत्वपूर्ण अंग हैं। .

vi) भारत में विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं का पर्याप्त विकास हो चुका है।

2. रिक्त स्थानों को भरिये

i) .... मुद्रा बाज़ार के संरक्षक के रूप में कार्य करता है।

ii) जब मुद्रा बिना किसी जमानत के 1–14 दिन तक की अवधि के लिये उधार ली जाती है तब उसे .... कहा जाता है।

iii) भारत में रेपो व्यवहार का आरम्भ .... से किया गया था।

iv) भारत में रिवर्स रेपो दर, रेपो दर से .... प्रतिशत कम होती है।

बोध प्रश्न ख

1. रिक्त स्थानों को भरिये

i) ग्रामीण विकास एवं कृषि वित्त हेतु शीर्षस्थ संस्था .... है।

ii) DFHI की स्थापना .... में की गई।

iii) रेपोज़ नीलामियां .... द्वारा की जाती हैं।

iv) ट्रेज़री बिल मार्केट में सर्वाधिक प्रचलित हैं .... दिन के बिल

v) सरकारी प्रतिभूतियों की बिक्री का प्राथमिक डीलर .... है।

2. निम्नलिखित कथनों में से कौन सा सही है और कौन सा गलत

i) STCI की स्थापना लघु उद्योगों को ऋण उपलब्ध कराने के उद्देश्य से की गई है।

ii) भारत में व्यापारिक बैंकों एवं सार्वजनिक संस्थाओं को पारस्परिक कोष (Mutual Funds) बनाये जाने की स्वीकृति अप्रैल 1990 में दी गई।

iii) महाजन एवं साहूकार भारत के संगठित मुद्रा बाजार के महत्वपूर्ण सदस्य है।

iv) भारतीय मुद्रा बाजार में सीमित संख्या के मौद्रिक अस्त्रों द्वारा लेन देन होता है।

v) भारतीय मुद्रा बाजार द्विक्षेत्रीय है।

13.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 1. i) गलत, ii) सही, iii) सही iv) सही v) गलत vi) गलत

2. i) केन्द्रीय बैंक ii) सूचना मुद्रा iii) 1992 iv) 1

ख 1. i) NABARD ii) 1988 iii) रिजर्व बैंक iv) 91 v) STCI

2. i) गलत ii) गलत iii) गलत iv) सही v) सही

13.12 स्वपरख प्रश्न

1. मुद्रा बाजार के सदस्य एवं उपकरणों की विवेचना कीजिये।

2. मुद्रा बाजार का स्वरूप स्पष्ट करते हुए एक विकसित मुद्रा बाजार की प्रमुख विशेषताएं बताइये।
3. भारतीय मुद्रा बाजार के स्वरूप की विवेचना करते हुए इसके दोषों को इंगित कीजिये।
4. भारतीय मुद्रा बाजार की आधुनिक प्रवृतियों पर प्रकाश डालिये।

13.13 सन्दर्भ पुस्तकें

- अग्रवाल, दीपक (2010), मुद्रा बैंकिंग, लोक वित्त एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, हिमालया पब्लिशिंग हाउस मुबई।
- बिशनोई, आर0के0, बीमा के सिद्धांत, साहित्य भवन पब्लिसर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा।
- श्रीवास्तव, आर0एम0 और निगम, दिब्या मैनेजमैन्ट ऑफ इंडियन फाइनैन्शियल इंस्टीट्यूशन्स
- सेठी, टी0टी0 (2015), मुद्रा बैंकिंग एवं लोक वित, आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिसर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- विभिन्न इंटरनैट साइट्स।
- जैन, टी0आर0 इंडियन फाइनैन्शियल सिस्टम्स, वी0के0 ग्लोबल पब्लिकेशन्स और खन्ना, ओ0पी0, प्राईवेट लिमिटेट, 2014—15।
- गुप्ता, शान्ति के0 और अग्रवाल, निशा, इंडियन फाइनैन्शियल सिस्टम्स, कल्याणी पब्लिसर्स, 2016।
- प्रतियोगिता दर्पण, जुलाई 2016।
- इंडियन इकोनोमी, जुलाई 2016।

इकाई 14 वित्तीय बाजार के उपकरण (Financial Market Instruments)

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना
14.2 वित्तीय बाजार का अर्थ एवं प्रकार
14.3 पूंजी बाजार
14.4 पूंजी बाजार के प्रमुख कार्य अथवा महत्व
14.5 पूंजी बाजार के उपकरण
14.5.1 अंश
14.5.2 ऋणपत्र
14.5.3 सरकारी प्रतिभूतियाँ
14.5.4 बंधक
14.5.5 उपभोक्ता एवं कमर्शियल कर्जे
14.5.6 विदेशी बांड
14.6 पूंजी बाजार एवं मुद्रा बाजार में भिन्नता एवं सम्बन्ध
14.7 भारतीय पूंजी बाजार
14.8 भारतीय पूंजी बाजार के उपकरण
14.9 भारतीय पूंजी बाजार का गठन
14.9.1 श्रेष्ठ प्रतिभूति बाजार
14.9.2 औद्योगिक प्रतिभूति बाजार
14.10 भारतीय पूंजी बाजार की समस्याएं
14.11 सुझाव
14.12 सारांश
14.13 शब्दावली
14.14 बोध प्रश्न
14.15 बोध प्रश्नों के उत्तर
14.16 स्वपरख प्रश्न
14.17 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्‌देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- वित्तीय बाजार का अर्थ समझ सकें ।
- वित्तीय बाजार के प्रकार समझ सकें ।
- पूंजी बाज़ार का अर्थ, कार्य एवं महत्व समझ सकें ।
- पूंजी बाज़ार के उपकरणों का स्वरूप बता सकें ।
- भारतीय पूंजी बाज़ार के स्वरूप एवं उपकरणों की विवेचना कर सकें ।

- भारतीय पूंजी बाज़ार के विकास हेतु अपनाये गये विभिन्न उपायों को समझा सकें ।
- भारतीय पूंजी बाजार में निवर्तमान कमियों को जान सके एवं उन्हें दूर करने के उपाय बता सकें।

14.1 प्रस्तावना

आर्थिक विकास के लिये आवश्यक है कि उद्योगों एवं व्यवसाइयों को सही समय एवं मात्रा में ऋण एवं पूंजी की प्राप्ति होती रहे, और ऐसा तभी संभव है जब उस देश में एक सुविकसित वित्तीय बाजार हो। वित्तीय बाजार से अर्थ उन संस्थाओं एवं विलेखों से है जो अर्थव्यवस्था में बचतों में वृद्धि करने एवं उनका कुशलतम एवं ईष्टतम प्रयोग की ओर गतिशीलन करने में सहायक होते हैं। वित्तीय बाजार का प्राथमिक कार्य आधिक्य वाले क्षेत्रों से कमी वाले क्षेत्रों की ओर निधियों के गतिशीलन को सुनिश्चित करना है। सामान्यतः घरेलू क्षेत्र बचत आधिक्य का क्षेत्र होता है। वित्तीय बाजार घरेलू क्षेत्र से बचत को निकालकर निगमों तथा सार्वजनिक क्षेत्र की ओर ले जाता है। वित्तीय प्रणाली दो बाजारों के माध्यम से कार्य करती है—मुद्रा बाजार तथा पूँजी बाजार। मुद्रा बाजार तथा उसके संघटक उपकरण एवं उपबाजारों की विवेचना हम गत इकाई में कर चुके हैं इस इकाई में हम वित्तीय बाजार के दूसरे प्रकार पूंजी बाजार एवं इसका स्वरूप, घटक एवं उपकरणों की विवेचना करेंगे।

14.2 वित्तीय बाजार का अर्थ एवं प्रकार

वित्तीय बाजार वह संस्था अथवा व्यवस्था है जो वित्तीय परिसंपत्तियों जैसे जमा और ऋण, स्टॉक और बाण्ड्स, सरकारी प्रतिभूतियों, चैक, बिल आदि के लेन—देन को सुविधाजनक बनाती है। वित्तीय बाजार में ब्रोकर्स, बैंक, गैर बैंक वित्तीय संस्थायें, विकासात्मक वित्तीय संस्थान बट्टा गृह आदि सदस्य संस्थाएं होती हैं।

वित्तीय बाजार का वर्गीकरण अनेक ढंग से किया जाता है। एक वर्गीकरण का आधार परिसंपत्तियों की सौदेबाजी का काल है। जिस बाजार में अल्पकालीन वित्तीय उपकरणों की सौदेबाजी होती है उसे मुद्रा बाजार कहते हैं एवं जिस बाजार में दीर्घकालीन परिसंपत्तियों का क्रय—विक्रय होता है उसे पूंजी बाजार कहते हैं। यह वित्तीय बाजार का कार्यात्मक वर्गीकरण भी कहलाता है।

वित्तीय बाजार का प्राथमिक एवं द्वितीयक बाजारों में भी वर्गीकरण किया जाता है। प्राथमिक बाजार (primary market) में वित्तीय परिसंपत्तियां पहली बार बिकने के लिये आती हैं अर्थात् इस बाजार में परिसम्पत्तियों के नये निर्गमों का क्रय एवं विक्रय किया जाता है। प्राथमिक बाजार में निर्गमित परिसंपत्तियां इक्विटी (समता अंश) तथा ऋणपत्र के रूप में हो सकती हैं एवं प्राथमिक बाजार में घरेलू तथा विदेशी दोनों ही प्रकार के फण्ड की उगाही हो सकती है। प्राथमिक बाजार से सम्बन्धित प्रतिभूतियों को हम इस प्रकार व्यक्त कर सकते है— (i) घरेलू—(क) कंपनियों द्वारा निर्गमित समता अंश (ख) कंपनियों, सरकार तथा वित्तीय मध्यस्थों द्वारा निर्गमित ऋण पपत्र (ii) विदेशी— (क) ग्लोबल डिपाज़ीटरी रसीद (GDR) तथा अमेरिकन डिपाज़ीटरी रसीद (ADR) के माध्यम से निर्गमित समता अंश (ख) विदेशी वाणिज्यिक उधारी

(FCB) के द्वारा उधारी (iii) अन्य विदेशी उधारी–इसमे निम्नलिखित का समावेश रहता है–

(1) समता अंश तथा ऋणों के रूप में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI)

(2) पोर्टफोलियो निवेश के रूप में विदेशी संस्थागत निवेश (FII)

(3) गैर प्रवासी भारतीय जमा (NRI deposit) जो अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन हो सकते हैं।

(4) इण्डियन डिपाजीटरी रसीद के माध्यम से विदेशी कंपनियों द्वारा भारतीय पूंजी बाजार से पूंजी की उगाही।

वित्तीय बाजारों का एक वर्गीकरण उनमें क्रय विक्रय किये गये उपकरणों के आधार पर भी किया जाता है। इस वर्गीकरण में ऋण इक्विटी और वित्तीय सेवा बाजार सम्मिलित होते हैं। ऋण बाजारों में उधारदाता एक निश्चित समय के लिये उधार लेने वालों को निधियां देते हैं। निधियों के बदले उधार लेने वाले उधारदाता को ऋण का मूल धन एवं ब्याज की एक निश्चित दर देना स्वीकार करता है। लोग ऋण बाजार से घर, कार आदि उधार पर लेते हैं। कंपनियां कार्यकारी पूंजी और नये उपकरणों के लिये बाण्ड निर्गमित करके निवेशकों से ऋण लेती हैं। केन्द्रीय, राज्य और स्थानीय सरकारें विभिन्न सार्वजनिक परियोजनाओं के वित्त प्रबन्धन हेतु ऋण बाजार से निधियां प्राप्त करती हैं। कंपनियों एवं सरकारों द्वारा नये बाण्ड ईशू का क्रय प्राथमिक ऋण बाजार में होता है एवं मौजूदा बाण्डों का क्रय विक्रय द्वितीयक बाजार में होता है। आगे बाजारों को बाण्डों की अवधि के अनुसार अल्पकालीन, मध्यकालीन और दीर्घकालीन बाजारों में बांटा जाता है जैसे एक वर्ष और उससे कम अवधि के लिये अल्पकालीन, एक से 10 वर्ष तक, मध्यकालीन व दस वर्ष से अधिक समय के लिये दीर्घकालीन। जैसा कि ऊपर वर्णन किया, इक्विटी बाजार का प्राथमिक एवं द्वितीयक बाजारों में वर्गीकरण किया जाता है जिनमें शेयरों का क्रय विक्रय दलालों एवं स्टाक एक्सचेंजों द्वारा होता है।

वित्तीय सेवा बाजार–वित्तीय संस्थायें एवं ब्रोकर्स कुछ वित्तीय सेवाएं भी उपलब्ध कराते हैं जैसे वे अपने ग्राहकों की तरफ से बाण्ड एवं शेयर बेचते एवं खरीदते हैं, एवं ऋण आदि के लिये गारन्टी भी देते हैं।

14.3 पूंजी बाजार

पूंजी बाजार भारतीय वित्तीय प्रणाली का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण खण्ड है। यह कंपनियों को उपलब्ध एक ऐसा बाजार है जो उनकी दीर्घकालिक निधियों की आवश्यकता को पूरी करता है। पूंजी बाजार निधियां उधार लेने एवं उधार देने वाली सभी सुविधाओं एवं संस्थागत व्यवस्थाओं से संबंधित है। दूसरे शब्दों में यह दीर्घावधि निवेश के प्रयोजनों के लिये पूंजी जुटाने के कार्य से सम्बन्धित है। इस बाजार में वे सभी व्यक्ति एवं संस्थाएं सम्मिलित हैं जो दीर्घावधि पूंजी की माँग और आपूर्ति को सारणीबद्ध करते है। दीर्घावधि पूंजी की माँग मुख्य रूप से निजी क्षेत्र, विनिर्माण उद्योगों, कृषि क्षेत्र व्यापार और सरकारी एजेन्सियों की तरफ से होती है जबकि पूंजी बाजार के लिये निधियों की आपूर्ति व्यक्तिगत एवं कार्पोरेट बचतों, बैंकों, बीमा कंपनियों विशिष्ट वित्तीय संस्थानों और सरकार के अधिशेषों से होती है।

14.4 पूंजी बाजार के प्रमुख कार्य अथवा महत्व

पूंजी बाजार के प्रमुख कार्य अथवा महत्व निम्नवत् हैं :—

1. **बचतों को प्रोत्साहन**—पूंजी बाजार बचतकर्ताओं को उनकी बचतों के बदले ब्याज एवं लाभांश के रूप में प्रोत्साहन देता है और इस प्रकार यह देश में बचत को प्रेरित कर उनकी मात्रा में वृद्धि करने में सहायक है।
2. **पूंजी निर्माण में सहायक**—पूंजी बाजार बचतकर्ताओं से निधियां प्राप्त करके उन्हें निवेशकों को ऋण के रूप में देता है और इस प्रकार पूंजी निर्माण में सहायक होता है। पूंजी बाजार का अभाव बचतों को स्वर्ण, आभूषण, वास्तविक संपदा, प्रदर्शन उपभोग जैसे अनुत्पादक निवेशों को ओर प्रवाहित कर देता है जो देश के विकास में सहायक नहीं होते।
3. **बचतकर्ताओं एवं निवेशकों के बीच कड़ी**—पूंजी बाजार बचतकर्ताओं एवं निवेशकों के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी का कार्य करता है। यह एक ऐसा तन्त्र है जिसके जरिये बचत करने वाली इकाइयाँ अपनी बचतों को निवेश करने हेतु ऋणियों को उधार देती हैं। पूंजी बाजार के माध्यम से ही बचतकर्ताओं की बचतें निवेशकों के पास पहुंच पाती हैं। निवेशक अपनी निधियां जुटाने हेतु प्रतिभूतियों को बेचते हैं और बचतकर्ता अपनी बचतों के द्वारा इन प्रतिभूतियों को क्रय करते हैं।
4. **आर्थिक विकास में सहायक**— आर्थिक विकास हेतु यह आवश्यक है कि देश के प्राथमिक, द्वितीय एवं तृतीयक तीनों ही उत्पादन क्षेत्रों को पर्याप्त मात्रा में और उचित समय में ऋण मिलता रहे जिससे वे अपनी स्थिर एवं कार्यशाली पूंजी एवं उत्पादन सम्बन्धी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। पूंजी बाजार निवेशक को आवश्यक ऋण उपलब्ध कराकर देश में वाणिज्य, उद्योग एवं कृषि के विकास सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरी कर देश के आर्थिक विकास में योगदान देता है।
5. **सट्टा गतिविधियों को कम करने में सहायक**— एक सुविकसित पूंजी बाजार स्टॉक एवं प्रतिभूतियों के मूल्यों में स्थिरता लाने में सहायक होता है। यह जरूरतमंदों को उचित ब्याज दर पर पूंजी प्रदान करके सट्टा गतिविधियों को कम करने में सहायक होता है।

14.5 पूंजी बाजार के उपकरण

पूंजी बाजार मे निम्नलिखित उपकरणों के माध्यम से लेन—देन किया जाता है—

14.5.1 अंश (Shares)

पूंजी बाजार का एक महत्वपूर्ण उपकरण अंश पूंजी अर्थात् शेयर हैं। किसी भी कंपनी को खोलने के लिये भारी मात्रा में पूंजी की आवश्यकता होती है। जिसकी पूर्ति अकेले या कुछ लोगों द्वारा कर पाना प्रायः सम्भव नहीं होता। बड़ी पूंजी की व्यवस्था करने के लिये कंपनी को शुरू करने वाले लोग (प्रमोटर्स) उस बड़ी पूंजी को छोटे—छोटे अंशों अथवा शेयरों में बांट देते हैं फिर उन शेयरों की बिक्री करके

आवश्यक पूंजी की व्यवस्था कर लेते हैं। इस प्रकार बड़ी पूंजी को छोटे–छोटे अंशों अथवा शेयरों में बांट कर उनकी बिक्री कर दिये जाने पर बहुत से व्यक्ति उन अंशों को खरीद दर उस कंपनी के स्वामी बन सकते हैं। कोई भी व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार शेयर खरीद कर कंपनी के उतने हिस्से का स्वामी बन सकता है। अतएव शेयर के धारक कंपनी के वास्तविक स्वामी बन जाते हैं। कंपनी के लाभों में से कंपनी की देनदारियाँ चुकाने के पश्चात् जो शेष बचता है उस पर अंशधारकों का ही अधिकार होता है फिर चाहे वह उन्हें तत्काल लाभांश के रूप में वितरित कर दिया जाये अथवा संचित कोष में सुरक्षित रख दिया जाये। कंपनी के संपत्ति मूल्य में वृद्धि के परिणामस्वरूप जो पूंजीगत लाभ होता है तो उसके भी अधिकारी अंशधारी ही होते हैं। तेजी काल में अथवा कंपनी द्वारा अधिक मात्रा में लाभों का संचय कर लेने के परिणामस्वरूप शेयरों के बाजार मूल्य में वृद्धि हो जाती है और इन्हें बेचकर अच्छा लाभ कमाया जा सकता है। जोखिम उठाने को तत्पर निवेशकों के लिये यह पूंजी लगाने का अच्छा साधन है। साथ ही स्वामित्व का तत्व संलग्न रहने के कारण ऐसे अंशधारी कंपनी की प्रगति एवं संपन्नता में अधिक रूचि लेते हैं।

कोई भी व्यक्ति आसानी से किसी कंपनी के शेयर खरीद सके इसके लिये यह आवश्यक है कि वह कंपनी किसी न किसी स्टॉक एक्सचेंज में लिस्टेड (सूचीबद्ध) हो। लिस्टेड हो जाने के बाद उस कंपनी के शेयरों की ट्रेडिंग उस स्टॉक एक्सचेंज में शुरू हो जाती है।

जो व्यक्ति अथवा व्यक्तियों का समूह किसी कंपनी को शुरू करने की योजना बनाते हैं उन्हें कंपनी के प्रमोटर्स कहा जाता है। प्रमोटर्स शेयरों का एक हिस्सा अपने पास रखते हैं, और वह हिस्सा आम तौर पर शेयर मार्केट में ट्रेडिंग के लिये नहीं आता है। शेयर मार्केट में वही हिस्सा ट्रेड होता है जो सामान्य जनता (पब्लिक) के पास होता है।

किसी भी शेयर की वास्तविक बाजार कीमत उसकी अंकित कीमत (फेस वैल्यू) से कम अथवा अधिक हो सकती है औार इसका अधिक या कम होना उस शेयर की माँग व पूर्ति पर निर्भर करता हे। जिस शेयर की माँग अधिक होती है उसकी कीमत अधिक व जिसकी माँग कम उसकी कीमत भी कम हो जाती है।

शेयर मुख्यतः चार प्रकार के हो सकते है :–

1. **समता अंश (Equity Shares) –** ऊपर अंश के सामान्य अर्थ का जो विवेचन किया है वह वस्तुतः समता अंश के ही विषय में है इसके बारे में पुनः कथन की आवश्यकता नहीं है।

2. **अधिमान्य अथवा पूर्वाधिकार अंश (Preference Shares) :–** इस श्रेणी के अंशधारियों को निश्चित दर से लाभांश प्राप्त करने का तथा कंपनी के समापन के समय पूंजी के पुनर्भुगतान का पूर्वाधिकार होता है। पूर्वाधिकार प्रायः लाभ के वितरण के विषय में प्रत्येक दशा में दिया जाता है और इन्हें लाभ का भुगतान ऋणदाताओं के ब्याज के भुगतान के पश्चात्, किन्तु सामान्य अंशधारियों को लाभांश दिये जाने के पहले एक निश्चित दर से दिया जाता है। इसी प्रकार का पूर्वाधिकार इन्हें पूंजी की वापसी के विषय में भी होता है।

अधिमान्य अंश कई प्रकार के हो सकते है यथा–

(i). संचयी एवं असंचयी– यदि अधिमान्य अंश संचयी हैं तो ऐसी दशा में निश्चित दर से उन पर देय लाभांश अवश्यक दिया जाता है, चाहे कंपनी ने उस वर्ष लाभ कमाया हो अथवा नहीं। यदि कंपनी को किसी वर्ष लाभ नहीं होता है तो उस वर्ष के बकाया लाभांशों को अगले वर्ष में होने वाले लाभों में से प्राप्त किया जाता है। असंचयी पूर्वाधिकार अंश की दशा में लाभांश उसी वर्ष दिया जाता है जब कंपनी को लाभ होता है अर्थात् लाभ न होने वाले वर्ष में इन्हें लाभांश का भुगतान अगले वर्षों के लाभों में से नहीं किया जाता।

(ii) भागग्राही एवं अभागग्राही (Participating and Non Participating) :– भागग्राही अधिमान्य अंशों की दशा में अधिमान्य अंशों पर पूर्व निश्चित दर से लाभांश दे देने तथा समता अंशों पर भी समुचित लाभांश दे दिये जाने के बाद भी यदि लाभ बचता है तो अधिमान्य अंशधारियों को कुछ और लाभांश दे दिया जाता है। अतिरिक्त लाभांश की दर एव अन्य शर्तें अनुबंध की अवस्थाओं के अनुसार भिन्न–भिन्न हो सकती हैं।

(iii) परिवर्तनशील एवं अपरिवर्तनशील अधिमान्य अंश (Convertible and Non-convertible Preference shares) – यदि कंपनी के सीमा नियमों में ऐसी व्यवस्था होती है कि अधिमान्य अंशों को सामान्य अंशों में परिवर्तित किया जा सकता है तो इस प्रकार के अधिमान्य अंशों को परिवर्तनशील अधिमान्य अंश कहते हैं। ऐसी व्यवस्था न होने की दशा में अधिमान्य अंश अपरिवर्तनशील कहलाते हैं।

(iv) शोध्य एवं अशोध्य अधिमान्य अंश (Redeemable and Irredeemable Preference Share) :– साधारणतया किसी भी कंपनी को अपने अंश स्वयं क्रय करने का अधिकार नहीं होता किन्तु यदि कंपनी के अंतनिर्यमों में ऐसा अधिकार हो तो कंपनी अधिनियम की व्यवस्थाओं के अनुसार ऐसे अंश भी निर्गमित किये जा सकते हैं जिनका शोधन हो सकता है अर्थात् कंपनी के पास इन अंशों को वापस क्रय करने का अधिकार हो।

(v) संरक्षित एवं प्रत्याभूतित अंश (Protected and Guaranteed Preference Shares) – संरक्षित अधिमान अंशों की दशा में एक पृथक संचित कोष का निर्माण किया जाता है जिसमें से कम लाभ के वर्षों में इस प्रकार के अंशों पर लाभांश देने की व्यवस्था होती है। इस प्रकार इन अंशों पर लाभांश के विषय में पूर्ण संरक्षण प्राप्त होता है। प्रत्याभूतित अधिमान्य अंश वे अंश हैं जिन पर लाभांश के लिये किसी अन्य कंपनी अथवा संस्था द्वारा गारंटी दी जाती है अर्थात् यदि अंश जारी करने वाली कंपनी स्वयं लाभांश नहीं दे पाती है तो गारन्टी देने वाली कंपनी या संस्था लाभांश देती है।

3. बोनस अंश (Bonus Shares) – संचित कोषों में वृद्धि हो जाने पर कंपनी कोषों के एक भाग का पूंजीकरण (capitalisation of part of reseve fund) करके समता अंशधारियों को समय–समय पर बोनस अंश उनके द्वारा पारित इक्विटी अंशों के अनुपात में देती रहती है।

14.5.2 ऋणपत्र (Debentures)

ऋणपत्र कंपनी द्वारा लिये गये ऋण का एक स्वीकृति पत्र होता है, जिसे कंपनी ऋण की राशि, ब्याज दर एव अन्य आवश्यक शर्तों के साथ निर्गमित करती है। यह कंपनी द्वारा लिये गये ऋण का प्रमाण पत्र है जो कंपनी की ओर से ऋणदाता को दिया जाता है।

डिबेंचर और शेयर में यह अंतर होता है कि डिबेंचर पूंजी का हिस्सा न होकर कंपनी द्वारा जनता से माँगा गया ऋण होता है। डिबेंचर पर कंपनियां डिविडेन्ड की जगह ब्याज देती हैं। कई कंपनियां डिबेंचर्स को अंशों में स्थानान्तरित करने का प्रावधान भी रखती हैं। डिबेंचर्स बहुत ज्यादा सुरक्षित होते है क्योंकि यदि कंपनी डूब भी जाये तो उसे ऋणपत्र धारकों का पैसा लौटाना पड़ता है फिर चाहे कंपनी को इसके लिये अपनी जमीन, बिल्डिंग या मशीन आदि ही क्यों न बेचनी पड़े। कुछ देशों में डिबेंचर्स की जगह बान्ड, ऋण स्टॉक या नोट आदि पदों का प्रयोग किया जाता है। बहुत ज्यादा सुरक्षित होने के बाद भी ऋणपत्रों का महत्व धीरे–धीरे कम होता जा रहा है। आम तौर पर ऋणपत्र, धारकों द्वारा स्वतन्त्र रूप से हस्तान्तरणीय होते हैं। ऋणपत्र परिवर्तनीय एवं अपरिवर्तनीय दोनों प्रकार के हो सकते हैं। परिवर्तनीय ऋणपत्र वे होते हैं जिनके धारकों को कंपनी यह विकल्प देती है कि वे किसी निश्चित अवधि के पश्चात् यदि चाहें तो अपने ऋणपत्रों को कंपनी के समता अंशों में परिवर्तित करा सकते हैं। ऐसी व्यवस्था समाहित न करने वाले ऋणपत्र अपरिवर्तनीय ऋणपत्र कहलाते हैं।

ऋणपत्र गारंटी युक्त एवं गारन्टी हीन भी हो सकते हैं। गारन्टीयुक्त ऋणपत्रों की दशा में ब्याज एवं मूल्यधन के भुगतान की गारन्टी किसी अन्य कंपनी या संस्था द्वारा की जाती है। गारन्टीहीन ऋणपत्रों की दशा में ऐसी व्यवस्था नहीं होती।

14.5.3 सरकारी प्रतिभूतियाँ

सरकार को भी अपने काम काज चलाने के लिये पूंजी की आवश्कयता होती है। इस पूंजी की पूर्ति के लिये वह बाण्ड्स जारी करती है। सरकारी प्रतिभूतियों पर ब्याज थोड़ा कम मिलता है लेकिन इसमें पूंजी की गारंटी सरकार देती है इसलिये यह एक सेफ इनवेस्टमेन्ट की तरह माना जाता है। एक वर्ष से कम परिवक्वाधि वाले बाण्ड्ज़ या सर्टीफिकेट को टी–बिल्स अथवा ट्रेजरी बिल्स कहते हैं। भारत में केन्द्र सरकार ही टी बिल्स जारी करती है राज्य सरकारें केवल बाण्ड्स जारी करती हैं। सरकार बचत बाण्डस भी जारी करती है। उदाहरण के लिये नेशनल सेविंग सर्टिफिकेट (एनएससी)। विशेष परिस्थितियों में सरकार फूड बाण्डस, फर्टिलाइजर बाण्डस, ऑइल बाण्ड्स भी जारी करती है। सरकारी प्रतिभूतियों पे जोखिम न के बराबर होता है। इन्हें गिल्ट इन्सट्रुमेन्ट्स भी कहा जाता है।

14.5.4. बंधक (Mortgages)

बंधक एक ऋण उपकरण होता है जिसे बंधक नोट भी कहते हैं। बंधक नोट के तहत किसी वास्तविक संपत्ति जैसे, भूमि, घर, सोना आदि को गिरवी रख कर ऋण प्राप्त किया जाता है। गृह एसोसिएशन, बीमा कंपनिया, वाणिज्य बैंक गृह विकास निगम आदि बंधकों के आधार पर ऋण देते हैं। इसके तहत ऋण लेने में संपत्ति का

स्वामित्व ऋणदाता की ओर हस्तांतरित करना पड़ता है किन्तु कब्जा हस्तांतरित नहीं करना पड़ता। ऋण चुकता हो जाने के उपरांत हस्तांतरण समाप्त हो जाता है।

14.5.5 उपभोक्ता एवं कमर्शियल कर्जे

उपभोक्ता कर्जे व्यक्तियों द्वारा गृह, कार, घरेलू वस्तुएं आदि खरीदने के लिये एवं कमर्शियल कर्जे व्यवसाइयों द्वारा व्यवसाय सम्बन्धी उद्देश्यों के लिये मध्यम अवधि के लिये प्राप्त किये जाते हैं।

14.5.6 विदेशी बांड

कई कंपनियां विश्व पूंजी बाजार में अपने बाण्ड जारी करती हैं जो जिस देश में कंपनी स्थापित हो उसी देश की करेन्सी में होते हैं। लेकिन विकासशील देशों की कंपनियों द्वारा जारी बाण्ड प्रायः डालर में होते हैं।

14.6 पूंजी बाजार एवं मुद्रा बाजार में भिन्नता एवं सम्बन्ध

पूंजी बाजार तथा मुद्रा बाजार वित्तीय बाजार के ही दो अंग अथवा प्रकार हैं। दोनों में कुछ भिन्नता तो कुछ सम्बन्ध भी है। इन दोनों बाजारों में निम्नलिखित भिन्नताएं हैं –

1. मुद्रा बाजार व्यवसाइयों एवं सरकार की अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये अल्पकालीन संपत्तियों का लेन–देन करता है जबकि पूंजी बाजार सरकार एवं उद्योगों द्वारा अपेक्षित दीर्घकालीन निधियों का लेन–देन करता है। मुद्रा बाजार की निधियों की परिपक्वाधि प्रायः एक वर्ष से कम होती है जबकि पूंजी बाजार की निधियों की अवधि 25 वर्ष तक की होती है।
2. मुद्रा बाजार में प्रयोग किये जाने वाले उपकरण हैं–विनिमय बिल, ट्रेज़री बिल, जमा प्रमाण पत्र, वाणिज्य पत्र दूसरी ओर पूंजी बाजार के प्रमुख उपकरण हैं, शेयर, ऋणपत्र सरकारी बाण्डस एवं प्रतिभूतियाँ आदि।
3. मुद्रा बाजार एवं पूंजी बाजार में कार्यरत संस्थाओं में भी भिन्नता होती है। केन्द्रीय बैंक, वाणिज्यक बैंक, गैर बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थ तथा बिल दलाल मुद्रा बाजार में लेन–देन करते हैं जबकि स्टॉक एक्सचेंज, पारस्परिक निधियां, लीजिंग कंपनियां, निवेशक बैंक, निवेश ट्रस्ट बीमा कंपनियां आदि पूंजी बाजार प्रपत्रों में व्यवहार करती हैं।

पूंजी बाजार एवं मुद्रा बाजार में संबंध–पूंजी बाजार एवं मुद्रा बाजार में परस्पर संबंध भी है। अधिकांश निगम एवं वित्तीय संस्थाएं दोनों ही में सक्रिय होती हैं। फर्में, मुद्रा बाजार से अल्पावधिक ऋण एवं पूंजी बाजार से दीर्घकालिक ऋण लेती हैं। फर्मों की अल्पकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति मुद्रा बाजार से एवं दीर्घाकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति पूंजी बाजार से होती है। अतः ये दोनों बाजार एक दूसरे के पूरक हैं।

14.7 भारतीय पूंजी बाजार

पूंजी बाजार का अर्थ एवं उपकरणों की सामान्य विवेचना ऊपर प्रस्तुत की गई है। परन्तु पूंजी बाजार का अर्थ, इसकी संस्थाओं एवं इसमें प्रयुक्त होने वाले प्रपत्रों

अथवा उपकरणों का स्वरूप भलीभांति एवं गहन रूप में समझने के लिये आवश्यक है कि इसका विवेचन भारतीय पूंजी बाजार के परिप्रेक्ष्य में किया जाय।

मुद्रा बाजार की तरह ही भारत का पूंजी बाजार भी संगठित एवं असंगठित दो क्षेत्रों में विभाजित है। असंगठित अथवा अनौपचारिक क्षेत्र के अन्तर्गत देशी बैंकर, साहूकार, माहजन व धनी कृषक आदि सम्मिलित हैं जो कृषि, लघु उद्योग क्षेत्र एवं व्यापार आदि में कारोबार करते हैं। असंगठित पूंजी बाजार में वित्तीय परिसंपत्तियों एवं ऋण पर ली जाने वाली ब्याज दरों के सम्बन्ध में कोई समान नीति नहीं है। भारत सरकार एवं SEBI का इस बाजार में कोई प्रभावी नियंत्रण भी नहीं है।

संगठित पूंजी बाजार में वे वित्तीय संस्थाएं आती हैं जो अनेक प्रकार की निजी बचतों को जुटाकर पूंजी बाजार में दीर्घकालीन निधियां प्रदान करती हैं। भारतीय पूंजी बाजार के संगठित क्षेत्र की कुछ महत्वपूर्ण वित्तीय संस्थाएं इस प्रकार से हैं–इण्डस्ट्रियल फाइनांस कारपोरेशन ऑफ इण्डिया (IFCI), आई सी आई, सी आई बैंक, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (आई.डी.बी.आई), भारतीय औद्योगिक पुनर्निमाण बैंक, जीवन बीमा निगम (LIC), साधारण बीमा निगम, (GIC), भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (SIDBI), राज्य वित्तीय संस्थाएं, राज्य औद्योगिक विकास निगम, लीजिंग कंपनियां, म्यूचुअल फण्ड्स, स्टॉक होल्डिंग कॉरपेरेशन ऑफ इण्डिया आदि। भारतीय पूंजी बाजार का संगठित क्षेत्र भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (SEBI) द्वारा नियंत्रित किया जाता है। सेबी एक विनियामक प्राधिकरण है जिसकी स्थापना प्रतिभूतियों में निवेशकों के हितों की सुरक्षा करने एवं पूंजी बाजार के विकास को प्रोत्साहित करने के लिये सेबी अधिनियम 1992 के अधीन की गई है। सेबी के प्रमुख कार्य है– शेयर बाजारों के व्यापार को विनियमित करना, शेयर दलालों, शेयर हस्तांतरण एजेन्टों, व्यापारी बैकरों, आदि का निरीक्षण करना एवं उनका पंजीकरण करना, प्रतिभूतियों के बाजार से संबंधित अनुचित व्यापार व्यवहारों को समाप्त करना, प्रतिभूति बाजार में निवेशकों के हितों का संरक्षण करना आदि।

14.8 भारतीय पूंजी बाजार के उपकरण

भारतीय पूंजी बाजार ऋणियों तथा निधि निवेशकों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये जिन प्रतिभूतियों अथवा उपकरणों का विनिमय करता है वे अपने स्वरूप, परिपक्वता, ब्याजदर, लाभांश, स्वामित्व, मतदान, अधिकार आदि में भिन्नता रखती हैं। भारतीय पूंजी बाजार के विभिन्न उपकरण इस प्रकार से हैं

1. **कार्पोरेट प्रतिभूति–** कार्पोरेट प्रतिभूतियों में समता अंश, अधिमान अंश, बोनस एवं राइट इश्यू, शेयर, स्टॉक बाण्डस, परिवर्तनीय एवं अपरिवर्ततनीय ऋणपत्र, सार्वजनिक क्षेत्र के बाण्ड्स आदि शामिल हैं।
2. **सरकारी प्रतिभूतियाँ–** इनमें केन्द्र एवं राज्य सरकारों तथा स्थानीय निकायों द्वारा जारी सरकारी बाण्ड एवं प्रतिभूतियाँ आती है। इन्हें सर्वोत्तम प्रतिभूतियों के रूप में जाना जाता है।
3. **विदेशी वित्तीय उपकरण**–विदेशी मुद्रा को प्राप्त करने के लिये भारतीय कार्पोरेट क्षेत्र द्वारा नये–नये उपकरणों की व्यवस्था की गई है जो संक्षेप में इस प्रकार से हैं–

(i) डिपाज़ीटरी रसीद–19 जनवरी 2000 को भारत सरकार ने भारतीय कंपनियों को अंतर्राष्ट्रीय पूंजी बाजार से पूंजी उगाही की अनुमति प्रदान की। भारतीय कंपनियों द्वारा विदेशी समता निवेश (Foreign Equity Investment) को भारतीय मार्केट में विदेशी संस्थागत निवेश (FII) तथा विदेशी बाजारों में प्राथमिक निर्गमन के द्वारा जो समता अंशों के सीधे विक्रय परिवर्तनीय बाण्ड या बाण्ड के निर्गमन के रूप में हो सकता है, प्राप्त किया जा सकता है। समता अंशों की सीधी बिक्री अमेरिकन डिपाज़ीटरी रसीद (ADR), ग्लोबल डिपाज़ीरी रसीद (GDR) तथा इन्टरनेशनल डिपाज़ीटरी रसीद (IDR) के द्वारा की जा सकती है।

सभी डिपाजीटरी रसीद अर्थात् ए.डी.आर. एवं जी.डी.आर. आवश्यक रूप से समता विलेख (equity investment) हैं जो विदेशों में भारतीय कंपनियों द्वारा प्रत्यक्ष निर्गमित नहीं किया जा सकते बल्कि भारतीय कंपनियों द्वारा अधिकृत ओवरसीज डिपाज़ीटरी बैंकों (ODB) द्वारा भारतीय कंपनियों के समता अंशों की आड़ में विदेशी निवेशकों को निर्गत किये जाते हैं। भारतीय कंपनियों के ये समता अंश जिनकी आड़ में डिपाज़ीटरी रसीद निर्गत की जाती है वे ODB द्वारा अधिकृत किसी भारत स्थित बैंक या डिपाजीटरी में जमा रखे रहते हैं। सभी डिपाज़ीटरी रसीद नेगोशिएबल होती हैं अर्थात् इनका हस्तान्तरण हो सकता है। इनकी खरीद तथा बिक्री उसी स्टॉक एक्सचेंज में होती है जिसमें इनकी लिस्टिंग हुई होती है। ADR तथा GDR दोनों की लिस्टिंग न्यूयार्क स्टॉक एक्एचेज या NASDAQ में हो सकती है। ADR यू.एस.ए. में सार्वजनिक निर्गमनों तथा ट्रेडिंग के लिये निर्गत किये जाते हैं। GDR को यूरो मार्केट तथा यू.एस.ए. में तथा IDR को यूरोप में निर्गमन तथा ट्रेडिंग को सुविधा जनक बनाने के लिये किया जाता है। ADR में व्यक्ति तथा संस्थागत निवेशक दोनों ही निवेश कर सकते हैं जबकि GDR में केवल संस्थागत निवेशक ही निवेश कर सकते हैं। ADR को अंशों में तथा अंशों को पुनः ADR में परिवर्तति किया जा सकता है परन्तु GDR को यदि अंशों में परिवर्तित किया जाये तो उसे पुनः GDR में परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। GDR की तुलना में ADR में तरलता अधिक होती है।

यूरो निर्गम (Euro Issues) :– भारत सरकार, रिजर्व बैंक तथा सेबी ने कतिपय प्रावधानों के तहत चुनिंदा कंपनियों को विदेशी बाजारों में निर्गम द्वारा विदेशी मुद्रा में पूंजी एकत्रित करने की छूट प्रदान की है। इसी के तहत जब कोई भारतीय कंपनी विदेश में अपना निर्गम जारी करती है तो उसे यूरो निर्गम कहा जाता है।

14.9 भारतीय पूंजी बाजार का गठन

भारतीय पूंजी बाजार को दो भागों में विभाजित किया गया है (क) श्रेष्ठ प्रतिभूति बाजार (ख) औद्योगिक प्रतिभूति बाजार–

14.9.1 श्रेष्ठ प्रतिभूति बाजार (Gilt Edged Market) :– श्रेष्ठ प्रतिभूति बाजार अथवा सर्वोत्तम बाजार सरकारी प्रतिभूतियों का बाजार है। केन्द्र और राज्य सरकारें तथा स्थानीय निकाय, बैकों, वित्तीय संस्थाओं एवं लोगों को दीर्घाकालीन बाण्डस एवं प्रतिभूतियां बेचते हैं। ये सरकारी प्रतिभूतियां पूरी तरह से सुरक्षित प्रतिभूतियां होती हैं और सरकारी होने के नाते इनके मूलधन एवं ब्याज की रकम में किसी प्रकार का जोखिम नहीं होता। इसलिये इन्हें श्रेष्ठ प्रतिभूति या स्वर्ण रेखांकित प्रतिभूति का नाम

दिया गया है। आमतौर पर इन बाण्ड्स की ब्याज दर कंपनियों द्वारा जारी बाण्ड्स पर ब्याज की दर से कम होती है तथापि इन बाण्ड्स की ओर निवेशक अत्यधिक आकर्षित रहते हैं क्योंकि एक तो इनमें जोखिम कम रहता है दूसरा, इन बाण्ड्स में निवेश पे प्रायः आयकर एवं संपत्ति कर में कुछ छूट भी प्राप्त होती है। ऐसे बाण्ड्स औद्योगिक प्रतिभूतियों की अपेक्षा कम जोखिमपूर्ण, अधिक सुरक्षित एवं अधिक तरल होते हैं।

14.9.2 औद्योगिक प्रतिभूति बाजार – औद्योगिक प्रतिभूति बाजार वह बाजार है जो कंपनियों के नये और पुराने शेयरों व ऋण पत्रों का क्रय विक्रय करता है। यह बाजार प्राथमिक एवं द्वितीयक बाजारों में विभाजित है।

(क) **प्राथमिक बाजार अथवा नये इश्यूओं का बाजार** (The Primary or New Issues Market) – यह बाजार नयी प्रतिभूतियों अर्थात् ऐसी प्रतिभूतियां जो पहले उपलब्ध नहीं होतीं और पहली बार प्रस्तुत की जाती हैं, का लेन–देन करता है। यह बाजार शेयरों और डिबेंचरों के रूप में नये सिरे से पूंजी जुटाने के लिये है। यह निगमकर्ता कंपनी को नया उद्यम शुरू करने अथवा मौजूदा उद्यम का विस्तार करने अथवा उसमें विविधता लाने के लिये अतिरिक्त धनराशि प्रदान करता है और इस प्रकार कंपनी के वित्तपोषण में इसका स्थान प्रत्यक्ष है। कंपनियों द्वारा नयी पेशकश या तो प्रारम्भिक सार्वजनिक पेशकश (IPO) अथव राउट ईश्यू के रूप में की जाती है। प्राथमिक बाजार की प्रतिभूतियां सीधे ही जनसाधारण के लिये होती हैं। कंपनियों द्वारा प्राथमिक बाजार में निजी स्थापन (private placement) द्वारा भी पूंजी जुटाई जाती है जिसमें उसी औद्योगिक समूह या घराने के सगे सम्बन्धियों मित्रों और शेयरधारकों के विशिष्ट निवेशक समूह को शेयरों की बिक्री की जाती है। मर्चेन्ट बैंकर्स, म्यूचुयल फण्ड्स और अन्य वित्तीय संस्थाएं हामीदारों (Underwriters) और प्रमुख प्रबन्धकों के रूप में कार्य करते हैं। वे जनसाधारण की बचते, नये ईश्यू बाजार में जुटानें में मदद करते हैं तथा इन्हें व्यापार और उद्योग द्वारा उत्पादक इस्तेमाल के लिये प्रयोग करते हैं।

(ख) द्वितीयक बाजार–द्वितीयक बाजार वह बाजार है जिसमें पुरानी अर्थात् पूर्व में निर्गमित की गयी प्रतिभूतियों में व्यापार होता है। द्वितीयक बाजार के अन्तर्गत स्टाक एक्सचेंज में शयरों एवं ऋणपत्रों का क्रय विक्रय किया जाता है। इस बाजार को स्टॉक मार्केट भी कहा जाता है। स्टॉक एक्सचेंज एक प्रकार का संगठित बाजार है जहॉ केन्द्र सरकार, राज्य सरकार, सार्वजनिक संस्थायें संयुक्त स्टॉक कंपनियों द्वारा निर्गमित पहले से बिक्री हुई प्रतिभूतियों में व्यापार होता है।

समता अंश (इक्विटी शेयर) एक बार कंपनियों द्वारा निर्गमित हो जाने के बाद बाजार में तब तक बने रहते हैं जब तक कि इन्हें निर्गमित करने वाले कंपनी बंद नहीं हो जाती इसलिये ये स्थायी रूप से स्टॉक मार्केट में क्रय विक्रय हेतु बने रहते है जबकि ऋणप्रपत्र एक बार निर्गमित हो जाने के बाद अपनी परिपक्वाधि तक बने रहते है इसलिये शेयर बाजार में इनका बाजार इनकी परिपक्वाधि तक ही होता है।

उल्लेखनीय है कि द्वितीयक बाजार या स्टॉक एक्सचेंज बाजार में उन्हीं प्रतिभूतियों (अंश अथवा ऋणपत्र) की ट्रेडिंग होती है जो स्टॉक मार्केट में सूचीबद्ध

अर्थात् लिस्टेड हों। लिस्टिंग से आशय किसी मान्यता प्राप्त स्टॉक एक्सचेंज द्वारा प्रतिभूति को ट्रेडिंग के लिये स्वीकार किये जाने से है।

भारतीय द्वितीयक बाजार के भी निम्नलिखित दो उपभाग किये जा सकते है–

(क) **कंपनियों एवं वित्तीय मध्यस्थों द्वारा पूर्व निगमित प्रतिभूतियों के लिये सेकन्डरी मार्केट** – इसके अंदर अग्रलिखित संस्थान आते है–(1) मान्यता प्राप्त स्टॉक एक्सचेंज, (2) नेशनल स्टॉक एक्सचेंज लिमिटेड (NSE) (3) ओवर द काउंटर एक्सचेंज ऑफ इण्डिया लिमिटेड (OCTEI) (4) इंटरकनेक्टेड स्टॉक एक्सचेंज ऑफ इण्डिया लिमिटेड (ISE)। इस बाजार में भाग लेने वाले पंजीकृत ब्रोकर्स होते हैं जो व्यक्ति अथवा संस्था दोनों के रूप में हो सकते हैं।

(ख) **सरकारी प्रतिभूतियों तथा पब्लिक सेक्टर बाण्ड के लिये सेकण्डरी मार्केट** – सरकारी प्रतिभूतियों में मुख्य डीलर्स बैंक, वित्तीय संस्थाएं, म्यूचुअल फण्डस आदि हैं। सितम्बर 1994 से सरकारी प्रतिभूतियों में सेकण्डरी मार्केट व्यवहार सबसीडियरी जनरल लेजर (SGL) के द्वारा व्यवस्थित किया जाता है। सरकारी प्रतिभूतियों में ट्रेडिंग बाम्बे स्टॉक एक्सचेज (BSE) ओवर द काउण्टर एक्सचेंज ऑफ इण्डिया तथा नेशनल स्टॉक एक्सचेंज ऑफ इण्डिया के होलसेल डेट मार्केट (WDM) भाग में होती है।

1947 में विभाजन के पश्चात् भारत में 8 स्टॉक एक्सचेंज थे जिनके नाम इस प्रकार से है – बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, अहमदाबाद, दिल्ली, कानपुर, हैदराबाद और बंगलौर। 1980 के दशक के दौरान पूंजी बाजार की तेज वृद्धि के बावजूद आन्तरिक लेन–देन, कीमतों में हेरा–फेरी, कम्पनियों के अधूरे, अस्पष्ट और गुमराह करने वाले प्रोस्पेक्टस (परिचय पुस्तिकाएं), शेयर आवंटन तथा धन वापसी में विलम्ब तथा स्टॉक एक्सचेंज में कीमतों में जोड़ तोड़ आदि जैसी अनेक बुराइयाँ मौजूद थीं। पूंजी बाजार कम तरल था और इसमें पारदर्शिता का भी अभाव था जिससे निवेशकों को कम सुरक्षा प्राप्त हो पाती थी। इन कारणों से पूंजी बाजार सुधार में समय–समय पर अनेक सुधार किये गये हैं। इन सुधारों का क्रमवार संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार से है –

(क) **भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड की स्थापना (Establishment of Securities And Exchange Board Of India (SEBI)** शेयर बाजार में चलने वाले वृहद कारोबार को नियंत्रित और विनियमित करने का काम सेबी द्वारा किया जाता है। यह बोर्ड कंपनियों द्वारा शेयर बाजार में होने वाली गड़बड़ियों को रोकने के लिये बने विभिन्न कानूनों के लागू करवाने के लिये उत्तरदायी बनाया गया है। एशिया के सबसे पुराने भारतीय शेयर बाजार में निवेशकों का विश्वास बनाये रखने और उन्हें संरक्षण प्रदान करने में इसका विशेष योगदान रहा है। सेबी एक गैर संवैधानिक संस्था है जिसकी स्थापना केन्द्र सरकार द्वारा संसद में एक कानून पास करके 12 अप्रैल 1988 को की गई। 30 जनवरी 1992 को एक अध्यादेश द्वारा उस संस्था को वैधानिक दर्जा भी प्रदान कर दिया गया। सेबी का मुख्यालय मुम्बई में है। सेबी के लिये निर्धारित किये गये प्रमुख कार्य निम्नांकित हैं–

(1) प्रतिभूति बाजार को उचित उपायों के माध्यम से विकसित एवं विनियमित करना एवं प्रतिभूति बाजार में निवेशकों के हितों का संरक्षण करना।
(2) स्टॉक ब्रोकर्स, सब ब्रोकर्स, शेयर ट्रान्सफर एजेन्टस, ट्रस्टीज़, मर्चेन्ट बैंकर्स, अण्डर राइटर्स, पोर्टफोलियो मैनेजर आदि के कार्यों का नियमन करना एवं उन्हें पंजीकृत करना।
(3) म्यूचुअल फण्ड की सामूहिक निवेश योजनाओं को पंजीकृत करना तथा उनका नियमन करना।
(4) निगमित संगठनों को प्रोत्साहित करना।
(5) प्रतिभूति बाजार से जुड़े लोगों को प्रशिक्षित करना तथा निवेशकों की शिक्षा को प्रोत्साहित करना।
(6) प्रतिभूतियों के बाजारों से सम्बन्धित अनुचित व्यापार व्यवहारों को समाप्त करना।
(7) प्रतिभूतियों की इनसाइडर ट्रेडिंग पर रोक लगाना।
(8) प्रतिभूति बाजार में कार्यरत विभिन्न संगठनों के कार्य कलापों का निरीक्षण करना एवं सुव्यवस्था सुनिश्चित करना।

सेबी द्वारा अपने निर्धारित दायित्वों का काफी सीमा तक समुचित प्रकार से निर्वहन किया जा रहा है। इसे और भी अधिक क्रियाशील एवं व्यापक बनाने के लिये सरकार द्वारा लगातार अतिरिक्त प्रयास भी किये जा रहे हैं। शेयर बाजार में गड़बडियों के दोषियों को अधिक कठोर सजा देने के लिये सेबी को व्यापक अधिक उपलब्ध कराने के उद्‌देश्य से सेबी (संशोधन) अधिनियम, 2002 लागू कर दिया गया है। इस अधिनियम के अन्तर्गत इनसाइडर ट्रेडिंग के लिये 25 करोड़ रूपये तक का जुर्माना किया जा सकता है। लघु निवेशकों के साथ धोखाधड़ी के मामलों में रू0 1 लाख प्रतिदिन की दर से रू0 1 करोड़ का जुर्माना आरोपित करने का प्रावधान भी इस अधिनियम में किया गया है। विगत 29 वर्षों से सेबी ने देश के पूंजी बाजार का सफलतापूर्वक आधुनिकीकरण किया है तथा भारतीय द्वितीयक बाजार में सर्वोत्कृष्ट अन्तर्राष्ट्रीय पद्यतियाँ लागू की हैं, जिनके चलते भारत के शेयर बाजार की गणना विश्व के श्रेष्ठतम शेयर बाजारों में की जाने लगी है।

(ख) प्राथमिक बाजार सुधार– निर्गम प्रक्रियाओं में अपर्याप्तताओं और कमियों को दूर करने के लिये प्राथमिक अथवा नये निर्गम पूंजी बाजार में सुधार के लिये निम्नलिखित उपाय किये गये हैं :–

(1) शेयरों के मूल्यों एवं अधिमूल्यों (प्रीमियम) पर नियन्त्रण हटा दिया गया है। कंपनियां अब सेबी से अनुमोदन लेने के उपरान्त शेयरों और डिबेंचरों की कीमतें एवं अधिमूल्य निर्धारित करने के लिये स्वतंत्र हैं।
(2) प्राथमिक बाजार में शेयरों व ऋणपत्रों का निर्गम करने वाली कंपनियों के लिये यह अनिवार्य कर दिया गया है कि वे अपनी परियोजनाओं से जुड़े सभी महत्वपूर्ण तथ्य और विशिष्ट जोखिम कारकों को प्रकट करें।
(3) जनसाधारण हेतु इश्यू किया जाने वाला प्रतिभूतियों का न्यूनतम प्रतिशत 25 प्रतिशत निर्धारित कर दिया गया है।

(4) सेबी द्वारा एक विज्ञापन संहिता बना कर यह सुनिश्चित कर दिया गया है कि विज्ञापनों में ऐसा विवरण न हो जो निवेशकों को गुमराह करने वाला हो।

(5) आवंटन प्रक्रिया में ये अनिवार्य किया गया है कि शेयर आनुपातिक आधार पर आवंटित किये जाते हों और म्यूचुअल फण्ड्स और विदेशी संस्थागतों को पब्लिक इश्यूओं में से निश्चित आवंटन की अनुमति दी गई है।

(6) सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के बाण्डस को सेबी के नियामक प्राधिकरण के अन्तर्गत लाया गया है।

(7) अनिवासी भारतीय और विदेशी कंपनियां रिजर्व बैंक के पूर्व अनुमोदन के बिना भारतीय पूंजी बाजार में निवेश के लिये स्वतंत्र हैं।

(8) विदेशी निवेशक संस्थाएं सेबी में पंजीकरण कराकर पूंजी बाजार में निवेशकर सकती हैं तथा विदेशी ब्रोकर्स को एक समान शर्तों पर विदेशी निवेशको की सहायता करने की अनुमति दी गई है।

(9) सेबी द्वारा स्टॉक एक्सचेजों को यह निर्देश दिया गया है कि वे पब्लिक ईश्यू लाने वाली कंपनियों से ईश्यू राशि का 1 प्रतिशत अपने पास जमा करें। यदि कंपनियाँ सूचीकरण करार का पालन नहीं करती हैं तथा आवंटन के तीन माह के भीतर पंजीकृत डाक द्वारा वापसी धन और शेयर प्रमाण पत्र प्रेषित नहीं करती हैं तो ऐसी स्थिति में उपरोक्त 1 प्रतिशत राशि स्टॉक एक्सचेंजों द्वारा–जब्त कर ली जायेगी।

(10) राइट ईश्यूज के विषय में रजिस्ट्रार की अनुमति अनिवार्य है।

(11) केवल कंपनियों को ही मर्चेन्ट बैंकरों के रूप में कार्य करने की अनुमति दी गई है

(ग) द्वितीयक बाजार सुधार (Secondary Market Reforms) – सेबी द्वारा द्वितीयक बाजार में मध्यस्थों के लिये अनेक नियामक और निरीक्षणात्मक उपाय शुरू किये गये हैं। द्वितीयक बाजार में जिन मध्यस्थों के लिये विशिष्ट नियम एवं विनियम निर्धारित किये गये है वे हैं – मर्चेन्ट बैंकर्स, निवेश प्रबन्धक, हामीदार, रजिस्ट्रार, ब्रोकर और सब ब्रोकर तथा शेयर हस्तांतरण एजेन्ट्स। इनके लिये यह अनिवार्य है कि वे विशिष्ट पूंजी पर्याप्तता मानदंड को पूरा करें और निवेशकों के लिये आचार संहिता का अनुकरण करें। चूक की स्थिति में सेबी द्वारा उनके विरूद्ध कड़ी कार्रवाई का भी प्रावधान है। द्वितीयक क्षेत्र से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण सुधार निम्नलिखित हैं –

(1) सभी दलालों के लिये यह अनिवार्य कर दिया गया है वे उस स्टॉक एक्सचेंज में स्वयं को पंजीकृत करायें जहॉ वे कार्य करना चाहते हैं।

(2) स्टॉक दलालों के लिये सेबी द्वारा निर्धारित पूंजी पर्याप्तता मापदण्ड को पूरी करना आवश्यक है।

(3) स्टॉक एक्सचेंजों को यह निर्देशित किया गया है कि वे यह सुनिश्चित करें कि दलालों द्वारा ग्राहकों को जारी अनुबंध टिपण्णियाँ सौदे होने के 24 घंटे के भीतर जारी हो जाएं।

(4) ग्राहकों द्वारा दलालों को कीमत अन्तरों का भुगतान और दलालों द्वारा हस्तातरणें एवं बिक्री प्राप्तियों के भुगतानों के लिये समय सीमा निर्धारित की गई है। त्रुटियों के लिये दण्ड का भी प्रावधान है।

(5) विनिमय में अधिक पारदर्शिता लाने के लिये, दलालों द्वारा ग्राहकों और अपने लिये प्रथक खाते रखना अनिवार्य है। ग्राहकों को जारी अनुबन्ध टिपण्णियों पर विनिमय मूल्य और दलाली का उल्लेख प्रथक रूप में होना चाहिये।

(6) स्टॉक–दलालों के लिये यह अनिवार्य किया गया है कि वे अपने बही खातों का लेखा परीक्षण कराएं और हर वर्ष सेबी को लेखा परीक्षित रिपोर्ट प्रस्तुत करें।

(7) सेबी ने स्टॉक एक्सचेंज के गवर्निंग बोर्डों को व्यापक आधार वाला बना दिया है और उनके मध्यस्थता, चूक और अनुशासनात्मक समितियों के संघटन में परिवर्तन कर दिया है।

(8) स्टाक एक्सचेंज में धोखाघड़ियों और कीमतों में कृत्रिम उतार चढ़ाव को नियंत्रित करने के लिये सेबी ने निर्धारण (settlement) के अंत में न दिये गये भाग पर दण्ड अंतर : (penalty margin) के रूप में, शेयर कीमतों में वृद्धि की स्थिति में खरीदारों के लिये विशेष कीमत अन्तर कीमतों में गडबड़ी करने पर स्टॉक एक्सचेंज द्वारा व्यापार का सामूहिक स्थगन आदि जैसे उपायों की शुरूआत की है।

(9) भारत में स्टॉक एक्सचेंज के प्रचालनों को पुन ठीक करने के लिये शेयरों के क्रय विक्रय की 120 वर्ष पुरानी खुली बोली प्रणाली (open outcry system) के स्थान पर 1995 से स्क्रीन बेस्ट बोल्ट (BOLT-BSE ON Line Trading) प्रणाली को अपनाया गया है। जिसके तहत शेयर दलाल अब अपने चैम्बर्स में बैठे–बैठे ही कम्प्यूटरों की स्क्रीन पर मूल्यों के उतार चढ़ाव को देख कर सौदे संपन्न कर सकते हैं।

मुम्बई स्टॉक एक्सचेंज के BOLT की भांति दिल्ली स्टॉक एक्सचेंज ने (DOTS-Delhi On Line Trading System) 1996 से प्रारम्भ की है। जबकि NSE तथा OCTEI में कम्यूटरीकृत आन लाइन ट्रेडिंग को पहले ही लागू किया जा चुका है।

(10) भारत में 1992 के शेयर घोटाले के बाद ऐसे घोटालों की पुनरावृत्ति को रोकन के लिये एक तकनीकि समिति की सिफारिश पर पूर्व में प्रचलित शेयर प्रमाण पत्रों के भौतिक अदान–प्रदान के स्थान पर निक्षेप निधि प्रणाली को अपनाने का निर्णय लिया गया है। निक्षेप निधि प्रणाली एक ऐसी व्यवस्था है जिसके तहत स्वामित्व सम्बन्धी परिवर्तन इलेक्ट्रानिक बही प्रविष्टि अन्तरण के द्वारा किया जाता है। इस प्रणाली में प्रतिभूतियों का भौतिक आदान–प्रदान नहीं किया जाता।

(11) सरकार द्वारा 2 मार्च, 2004 को अधिसूचित किये गये दिशा निर्देशों के अनुसार अब विदेशों में निगमित कंपनियाँ भी भारतीय पूंजी बाजार से संसाधन जुटाव हेतु इण्डियन डिपॉजिटरी रिसीप्ट्स (Indian Dipository Receipts IDRs)

भारत में जारी कर सकती हैं (परन्तु सेबी की अनुमति लेने के बाद)। इन दिशा निर्देशों के तहत निर्गमित IDRs की किसी भी विदेशी शेयर बाजार में सूचीबद्धता आवश्यक नहीं है किन्तु भारत में किसी मान्यता प्राप्त स्टॉक एक्सचेंज में इनकी सूचीबद्धता (listing) आवश्यक है।

(12) बाजार सुरक्षा बढ़ाने के उद्देश्य से सेबी द्वारा दलालों के लिये कार्य प्रणाली में पारदर्शिता लायी गयी है।

(13) पूर्व में भारतीय कंपनियां अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी बाजार से केवल ऋण के माध्यम से पूंजी प्राप्त कर सकती थीं किन्तु 19 जनवरी, 2000 को सरकार ने भारतीय कंपनियों को अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी बाज़ार से पूंजी उगाही की अनुमति प्रदान की है। भारतीय कंपनियों द्वारा विदेशी समता निवेश (foregin equity investment) को भारतीय मार्केट में विदेशी संस्थागत निवेश (FII) तथा विदेशी बाजारों में प्राथमिक निर्गमन के द्वारा जो समता अंशों के सीधे विक्रय परिवर्तनीय बाण्ड या बाण्ड के निर्गम के रूप में हो सकता है प्राप्त किया जा सकता है। समता अंशों की सीधे बिक्री अमेरिकन डिपाजीट्री रसीद (ADR), ग्लोबल डिपाजीटरी रसीद (GDR) तथा इण्टरनेशनल डिपाजीटरी रसीद IDR के द्वारा की जा सकती है। ADR एवं GDR आवश्यक रूप से समता विलेख (Equituy Investment) हैं जो विदेशों में भारतीय कंपनियों द्वारा प्रत्यक्ष निर्गमित नहीं किये जाते बल्कि भारतीय कंपनियों द्वारा अधिकृत ओवरसीज़ डिपाजटरी बैंकों (ODBs) द्वारा भारतीय कंपनियों के समता अंशों की आड़ में विदेशी निवेशकों को निर्गत किये जाते हैं। उल्लेखनीय है कि ADR/GDR को प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) के एक भाग के रूप में लिया जाता है, इसलिये यह आवश्यक है कि इसका निर्गमन वर्तमान FDI नीति के अन्तर्गत हो तथा उन्हीं क्षेत्रों में हो जिनमें वर्तमान FDI नीति अनुमति देती है।

(14) 18 सितम्बर 2001 को रिजर्व बैंक ने शेयर में मार्जिन ट्रेडिंग की वित्तीय व्यवस्था करने की अनुमति दी है। मार्जिन ट्रेडिंग के अन्तर्गत कोई भी निवेशक अपनी वित्तीय क्षमता से अधिक विनियोग कर पाता है। इसके अन्तर्गत कोई भी व्यक्ति शेयर के क्रय मूल्य का केवल 40 प्रतिशत मार्जिन के रूप में लगाता है, शेष रकम की वित्तीय व्यवस्था बैंक अथवा स्टॉक ब्रोकर के द्वारा होती है। शेयर का स्वामित्व तो विनियोजक के पास होता है पर बैंक द्वारा दिये गये ऋण के पीछ शेयर प्रत्याभूति (Collateral) के रूप में बने रहते हैं। मार्जिन ट्रेडिंग का मुख्य उद्देश्य बाजार में तरलता की वृद्धि करना है।

(15) विशिष्ट पहचान संख्या (Unique Identificateam Number UIN) – 1 जनवरी 2005 को सेबी ने समस्त निर्गमित निवेशकों के लिये प्रतिभूति बाजार में सभी क्रय–विक्रय के लिये गतिविधियों में UIN अनिवार्य कर दिया गया है। साथ ही भविष्य में UIN के अन्तर्गत फुटकर निवेशकों को सम्मिलित किया जाना भी विचाराधीन है। UIN के अन्तर्गत निगमित निवेशकों के साथ–साथ कम्पनी के प्रोत्साहाकों (promotors) तथा निवेशकों को भी सम्मिलित किया

गया है। निकट भविष्य में इस प्रणाली को समस्त दलालों एवं उपदलालों तक विस्तृत करने की योजना है ताकि उनके बारें में जानकारियाँ सामान्य निवेशक इन्टरनेट से भी प्राप्त कर सकें।

(16) डीमैट एवं मिन (DMAT & MIN) – सेबी ने शेयर खरीदने एवं बेचने के लिये सब शेयरों का एक खाता खुलवाना अनिवार्य कर दिया है जिसे डीमैट खाता (डीमैट्रियलाइजेशन अकाउन्ट) कहते है। इस खाते को खोलने के लिये ऐड्रेस प्रूफ एवं पैन न0 की आवश्यकता होती है। इस खाते के खुलने पर सदस्यों को एक कोड नम्बर दिया जाता है, उसी नम्बर के आधार पर शेयरों की खरीद तथा बिक्री होती है। ठीक इसी प्रकार म्यूचुअल फण्ड्स के लिये मिन अकाउन्ट (म्यूचअल फण्ड आईडेनिटफिकेशन अकाउण्ट) तथा मिन नम्बर की आवश्यकता होती है।

14.10 भारतीय पूंजी बाजार की समस्याएं

इन सुधारों के बावजूद अभी भी भारतीय पूंजी बाजार के कार्य प्रणाली में बहुत से दोष व्याप्त हैं जो इस प्रकार से हैं –

1. **अपर्याप्त तरलता** –भारतीय पूंजी बाजार में पर्याप्त तरलता नहीं है। एक अध्ययन के अनुसार भारत में प्रतिदिन 20 प्रतिशत शेयरपत्रों वह भी समूह 'ए' के शेयरपत्रों का ही व्यवहार किया जाता है अन्य 20 प्रतिशत शेयरपत्रों का व्यापार सप्ताह में 2 से 3 बार और 10 प्रतिशत शेयर पत्रों का व्यापार 15 दिन में एक बार किया जाता है।
2. **आन्तरिक व्यापार (Insider Trading) –** भारतीय पूंजी बाजार में इनसाइडर ट्रेडिंग भी बहुत होती है। कम्पनी में कार्य करने वाले व्यक्ति प्रायः कम्पनी की प्रत्याशित लाभप्रदता और हानियों के आधार पर शेयरों का क्रय विक्रय करते हैं जिससे कम्पनी के शेयरों की कीमतों में उच्चावचन आता है परिणामस्वरूप छोटे निवेशकों के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
3. **अपर्याप्त उपकरण**– भारत में पूंजी बाजार के उपकरणों में मात्र शेयर एवं डिबेंचर ही मुख्य हैं। अन्य उपकरण (जैसे जीरो कूपन बाण्डस आदि) निवेशकों के बीच अभी भी लोकप्रिय नहीं हो पाये है।
4. **निवेशकों को गुमराह करने की प्रवृत्ति**–भारत में निवेशकों खासकर नये निवेशकों को वित्तीय विश्लेषकों द्वारा नयें शेयर में निवेश करने के लिये प्रेरित किया जाता है। जबकि ये विश्लेषक न तो सही होते हैं और न ही निष्पक्ष। वे कम्पनियों के कहने पर प्रायः निवेशकों को गुमराह करते है। परिणामस्वरूप छोटे निवेशक सर्वाधिक घाटे में रहते है।
5. **अस्पष्ट प्रौस्पेक्टस**–सेबी के दिशा निर्देशों के बावजूद, निजी कम्पनियाँ द्वारा जारी प्रास्पेक्टस में पूरी सूचना नहीं होती। प्रीमियम निर्धारण में भी पारदर्शिता नहीं रहती परिणामस्वरूप कई निवेशक कंपनियों द्वारा छले जाते है।
6. **अपर्याप्त स्टॉक एक्सचेंज**–स्टॉक एक्चेजों की वर्तमान संख्या अपर्याप्त है। इसके परिणामस्वरूप अनधिकृत और गैर पूंजीकृत निजी स्टॉक एक्सचेंज पूरे

देश में खासकर दक्षिण भारत में फैल रहे हैं। ये शेयर का व्यापार करने वाले 'घर' और 'संघ' सट्टा विनिमय में लिप्त रहते हैं। ऐसे गैर कानूनी व्यापारिक घरों की मौजूदगी प्रतिभूति अनुबंध विनिमय, 1956 में होने वाली कमियों के कारण है जो अनिवार्य पंजीकरण के कार्यक्षेत्र से हाजिर विनिमय की छूट देती है।

14.11 सुझाव

भारतीय पूंजी बाजार के दोषों को दूर करने के लिये निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं—

1. आन्तरिक व्यापार और कीमतों के उतार चढ़ाव को नियंत्रित करने के लिये सेबी एवं स्टॉक एक्सचेंजों द्वारा कड़े विनियामक और दंडात्मक उपाय अपनायें जाने चाहिये।
2. अधिक पूंजी ससाधन जुटाने के लिये ऐसे नये उपकरण तैयार किये जाने चाहिये जिनमें पर्याप्त मात्रा में तरलता एवं सुरक्षा का गुण मौजूद हो।
3. स्टॉक एक्सचेंजों की संख्या बढ़ाई जानी चाहिये। ग्रामीण निवेशकों को इस पूंजी बाजार की ओर आकर्षित करना चाहिये इसके लिये बैंकों एवं डाकखानों द्वारा भी शेयरों के क्रय विक्रय को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये।
4. वे कंपनियाँ जो पब्लिक ईश्यू के समय अपने प्रास्पेक्टस में दिशा निर्देशों के अनुसार पर्याप्त जानकारी नहीं देती हैं उन्हें दण्डित किया जाना चाहिये।
5. स्टॉक बाजार को प्रेरित करने के लिये पूंजी लाभ एवं लाभांश पर न्यूनतम कर मुक्त स्तरों को बढ़ाकर निवेशकों को अधिक कर रियायतें देनी चाहिये।

14.12 सारांश

आर्थिक विकास के लिये एक सुविकसित वित्तीय बाजार का होना आवश्यक है ताकि उद्योगों एवं व्यावसाइयों को सही समय एवं मात्रा में ऋण एवं पूंजी की प्राप्ति होती रहे। वित्तीय बाजार का प्रमुख कार्य अधिक्य वाले क्षेत्रों से कमी वाले क्षेत्रों की ओर निधियों के गतिशीलन को सुनिश्चित करना है वित्तीय बाजार के दो भाग होते है—मुद्रा बाजार एवं पूंजी बाजार। मुद्रा बाजार में अल्पकालीन उपकरणों का जबकि पूंजी बाजार में दीर्घकालीन परिसंपत्तियों का क्रय विक्रय होता है।

पूंजी बाजार बचतकर्ताओं को उनकी बचतों के बदले ब्याज एवं लाभांश के रूप में प्रोत्साहन देकर बचतों की मात्रों में वृद्धि करता है साथ ही बचतकर्ताओं से निधियां प्राप्त करके उन्हें निवेशकों को ऋण के रूप में देता है और इस प्रकार पूंजी निर्माण में सहायक होता है। सुदृढ पूंजी बाजार के अभाव में बचत अनुत्पादक निवेशों की ओर प्रवाहित होने लगती है। अंश, ऋणपत्र एवं सरकारी प्रतिभूतिया पूंजी बाजार के प्रमुख उपकरण है। पूंजी बाजार का सबसे महत्वपूर्ण उपकरण अंश हैं। कंपनी को खोलने के लिये पूंजी की व्यवस्था करने हेतु प्रोमोटर्स उस बड़ी पूंजी को छोटे—छोटे अंशों अथवा शेयरों में बांट देते हैं फिर उन अंशों की बिक्री कर आवश्यक पूंजी की व्यवस्था करते है। अंश मुख्यतः 3 प्रकार के हो सकते हैं समता अंश, अधिमान्य अंश एवं बोनस अंश।

ऋणपत्र कंपनी द्वारा लिये गये ऋण का स्वीकृति पत्र होता है जिसमें ऋण की राशि, ब्याज दर परिपक्वावधि एवं अन्य शर्तों का उल्लेख रहता है। डिबेंचर या ऋणपत्र शेयर से इस अर्थ में भिन्न है कि शेयर कंपनी की पूंजी का हिस्सा होते हैं जबकि डिबेंचर कंपनी द्वारा जनता से मांग गया ऋण होता है। अंश पर कंपनियां लाभांश देती है जबकि ऋणपत्र पे ब्याज देती हैं। ऋणपत्र भी कई प्रकार के हो सकते है जैसे परिवर्तनशील अथवा परिवर्तनशील, गारन्टी युक्त एवं गारन्टीहीन आदि।
सरकार अपने काम काज चलाने के लिये आवश्यक पूंजी की व्यवस्था बाण्ड जारी करके करती है। सरकारी प्रतिभूतियों पर ब्याज थोड़ा कम मिलता है तथापि सरकार की गारन्टी प्राप्त होने के कारण यह सुरक्षित निवेश होता है। भारत में केन्द्र सरकार द्वारा जारी एक वर्ष से कम परिपक्वावधि वाले बाण्ड्स को टी–बिल्स अथवा ट्रेज़री बिल्स कहते है। सरकार बचत बाण्डस भी जारी करती है जैसे NSC। बंधक, उपभोक्ता एवं कमर्शियल कर्जे एवं विदेशी बाण्ड पूंजी बाजार के कुछ अन्य उपकरण हैं।

भारतीय पूंजी बाजार के संगठित क्षेत्र की कुछ महत्वपूर्ण वित्तीय सस्थाएं IFCI, ICICI, BANK, IDBI, IIRB, LIC, GIC, SIDBI, SFC & SIDCs म्यूचअल फण्ड्स, लीजिंग कंपनियां STCI आदि हैं। भारतीय पूंजी बाजार की नियामक संस्था SEBI है, जिसकी स्थापना प्रतिभूतियों में निवेशकों के हितों की रक्षा करने एवं पूंजी बाजार के विकास को प्रोत्साहित करने के लिये 1988 में की गयी थी। कारपोरेट प्रतिभूतियां (अंश, ऋणपत्र आदि), सरकारी प्रतिभूतियां (टी– बिल्स एवं अन्य) व विदेशी वित्तीय उपकरण– (ADR, GDR आदि) भारतीय पूंजी बाजार के प्रमुख उपकरण हैं। भारतीय पूंजी बाजार श्रेष्ठ प्रतिभूति बाजार एवं औद्योगिक प्रतिभूति बाजार में विभाजित है। श्रेष्ठ प्रतिभूति बाजार सरकारी प्रतिभूतियों का बाजार है। औद्योगिक प्रतिभूति बाजार प्राथमिक एवं द्वितीयक बाजारों में विभाजित है। प्रारम्भिक बाजार नये निर्गमों का बाजार है जबकि द्वितीय बाजार में पूर्व में निर्गमित प्रतिभूतियों बिकती हैं। विगत कुछ वर्षों में भारतीय पूंजी बाजार प्रणाली में सुधार लाने हेतु काफी–काफी प्रयत्न किये गये है।

14.13 शब्दावली

प्राथमिक बाजार : नये निर्गमों के क्रय विक्रय का बाजार ।

द्वितीयक बाजार : पुरानी प्रतिभूतियों के क्रय विक्रय का बाजार ।

प्रमोटर्स : किसी कंपनी की शुरूआत करने के लिये पूंजी की व्यवस्था करने वाले लोग

टी बिल्स : केन्द्र सरकार द्वारा एक वर्ष से कम की परिपक्वावधि वाले जारी बाण्ड्स ।

बंधक : एक ऋण उपकरण जिसके माध्यम से वास्तविक सम्पदा को गिरवी रखकर ऋण प्राप्त किया जाता है।

श्रेष्ठ प्रतिभूति बाजार : सरकारी प्रतिभूतियां का बाजार ।

UIN : विशिष्ट पहचान संख्या (यूनीक आइडेटिफिकेशन नम्बर) जिसे SEBI द्वारा प्रतिभूति बाजार में सभी क्रय विक्रय के लिये अनिवार्य कर दिया गया है।

डीमैट : शेयरों की खरीद एवं बिक्री से सम्बन्धित खाता।

14.14 बोध प्रश्न

बोध प्रश्न क

1. निम्नलिखित कथनों में से कौन सा सही है और कौन सा गलत।

i) बचतों में वृद्धि एवं उनके ईष्टतम प्रयोग की ओर गतिशीलन करने के लिये वित्तीय बाजार आवश्यक है। .

ii) प्राथमिक वित्तीय बाजार में पुराने निर्गमों का क्रय एवं विक्रय किया जाता है।

iii) शेयर के धारक कम्पनी के वास्तविक स्वामी होते हैं।

iv) परिवर्तनशील अधिमान्य अंश कम्पनी के नियमों के अधीन ऋणपत्रों में परिवर्तनीय होते है।

v) भारत में ट्रेजरी बिल्स केवल केन्द्र सरकार ही जारी कर सकती है।

vi) पूंजी बाजार दीर्घकालीन एवं मुद्रा बाजार अल्पकालीन परिसम्पत्तियों के क्रय विक्रय का बाजार है।

2. रिक्त स्थानों को भरिये ।

i) वित्तीय बाजार दो बाजारों के माध्यम से कार्य करता है मुद्रा बाजार तथा .... ।

ii) कंपनी द्वारा लिये गये ऋण के स्वीकृति पत्र को .... कहते है।

iii) परिवर्तनीय ऋणपत्र, ... में परिवर्तन होते है।

iv) भारतीय पूंजी बाजार का संगठित क्षेत्र .... द्वारा नियंत्रित किया जाता है।

v) SEBI का स्थापना वर्ष .... है ।

बोध प्रश्न ख

1. रिक्त स्थान को भरिये।

i) समता अंश, अधिमान अंश, बोनस एवं राइट ईश्यू, शेयर, बाण्ड्स एवं डिबेंचर्स .... प्रतिभूतियां हैं।

ii) .... रसीदें अंतर्राष्ट्रीय पूंजी बाजार से पूंजी उगाही के उपकरण हैं।

iii) यू.एस.ए. में सार्वजनिक निर्गमनों तथा ट्रेडिंग के लिये निर्गत की जाने वाली रसीदें ....है।

iv) भारतीय पूंजी बाजार दो भागों में विभाजित किया जाता है। (1) औद्योगिक प्रतिभूति बाजार एवं (2) ....

v) स्टॉक एक्सचेंज में शेयरों एवं ऋणपत्रों का क्रय विक्रय .... बाजार की गतिविधि है।

vi) शेयरों की खरीद एवं बिक्री से संबंधित खाते का नाम है .... अकाउंट

2. निम्नलिखित कथनों में से कौन से सही है और कौन से गलत हैं ?

i) असंगठित पूंजी बाजार में भारत सरकार एवं SEBI का प्रभावी नियन्त्रण होता है।

ii) सर्वोत्तम प्रतिभूतियां सरकारी प्रतिभूतियां होती है।

iii) ADR, GDR विदेशी बाजारों से पूंजी प्राप्त करने के उपकरण है।

iv) GDR की तुलना में ADR अधिक तरल होता है।

v) भारत में शेयरों की आन लाइन बिक्री के लिये अपनायी गयी सबसे पहली प्रणाली DOTS है।

vi) भारतीय पूंजी बाजार के प्रमुख उपकरण शेयर एवं ऋणपत्र हैं।

14.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 1. i) सही ii) गलत iii) सही iv) गलत v) सही vi) सही

2. i) पूंजी बाजार ii) ऋण पत्र iii) समता अंश iv) SEBI v) 1988

ख 1. i) कार्पोरेट ii) डिपाज़ीटरी iii) ADR iv) श्रेष्ठ प्रतिभूति बाजार v) द्वितीयक vi) डीमैट

2. i) गलत ii) सही iii) सही iv) सही v) गलत vi) सही

14.16 स्वपरख प्रश्न

1. वित्त बाजार से आप क्या समझते हैं। इसका वर्गीकरण किस प्रकार से किया जाता है ?
2. पूंजी बाजार क्या है ? इसके प्रमुख उपकरणों की विवेचना करिये।
3. भारतीय पूंजी बाजार के स्वरूप उपकरण एवं दोषों पर प्रकाश डालिये।
4. हाल के वर्षों में भारतीय पूंजी बाजार में सुधार हेतु क्या उपाय किये गये हैं ?

14.17 सन्दर्भ पुस्तकें

- अग्रवाल, दीपक (2010), मुद्रा बैंकिंग, लोक वित्त एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, हिमालया पब्लिशिंग हाउस मुबई।
- बिशनोई, आर0के0, बीमा के सिद्धांत, साहित्य भवन पब्लिसर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा।
- श्रीवास्तव, आर0एम0 और निगम, दिब्या मैनेजमैन्ट ऑफ इंडियन फाइनैन्शियल इंस्टीट्यूशन्स
- सेठी, टी0टी0 (2015), मुद्रा बैंकिंग एवं लोक वित, आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिसर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- विभिन्न इंटरनैट साइट्स।
- जैन, टी0आर0 इंडियन फाइनैन्शियल सिस्टम्स, वी0के0 ग्लोबल पब्लिकेशन्स और खन्ना, ओ0पी0, प्राईवेट लिमिटेट, 2014–15।
- गुप्ता, शान्ति के0 और अग्रवाल, निशा, इंडियन फाइनैन्शियल सिस्टम्स, कल्याणी पब्लिसर्स, 2016।
- प्रतियोगिता दर्पण, जुलाई 2016।
- इंडियन इकोनोमी, जुलाई 2016।

इकाई 15 विदेशी विनिमय बाजार एवं उपकरण (FOREIGN EXCHANGE MARKET AND ITS INSTRUMENTS)

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना
15.2 विदेशी विनिमय एवं विदेशी विनिमय बाजार का अर्थ
15.3 विदेशी विनिमय बाजार में भुगतान के तरीके
15.4 विदेशी विनिमय दर का अर्थ
15.5 विनिमय दरों के विभिन्न प्रकार
15.5.1 तात्कालिक एवं अग्रिम विनिमय दर
15.5.2 स्थिर एवं लोचपूर्ण विनिमय दर
15.5.3 अनुकूल एवं प्रतिकूल विनिमय दर
15.6 विदेशी विनिमय दर निर्धारण के सिद्धान्त
15.6.1 स्वर्ण टकसाली समता सिद्धान्त
15.6.2 क्रय–शक्ति समता सिद्धान्त
15.6.3 भुगतान संतुलन सिद्धान्त
15.7 विदेशी विनिमय दर को प्रभावित करने वाले घटक
15.8. विदेशी विनिमय बाजार के उपकरण
15.9 सारांश
15.10 शब्दावली
15.11 बोध प्रश्न
15.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
15.13 स्वपरख प्रश्न
15.14 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्‌देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- विदेशी विनिमय एवं विदेशी विनिमय बाजार का अर्थ समझ सकें।
- विदेशी विनिमय बाजार में भुगतान के महत्वपूर्ण तरीके बता सकें।
- विदेशी विनिमय दर का अर्थ स्पष्ट कर सकें।
- विनिमय दरों के विभिन्न प्रकार बता सकें।
- विनिमय दर निर्धारण के सिद्धान्त समझ सकें।
- विनिमय दरों को प्रभावित करने वाले घटकों की व्याख्या कर सकें।
- विदेशी विनिमय बाजार के उपकरण समझ सकें।

15.1 प्रस्तावना

प्रत्येक देश में अपनी अलग–अलग मुद्राएं प्रचलित होती है और एक देश की मुद्रा दूसरे देश में विधिगृाह्य नहीं होने से विदेशी भुगतानों के लिये एक देश की मुद्रा को दूसरे देश की मुद्रा में प्रत्यक्ष बदलने की समस्या उत्पन्न होती है। यह कार्य

विदेशी विनिमय बाजार में होता है। विदेशी विनिमय बाजार वह बाजार है जिसमें संसार के विभिन्न देशों की राष्ट्रीय करेंन्सियों को खरीदा अथवा बेचा जाता है। विदेशी विनिमय बाजार लेन–देन के समय की दृष्टि से या तो (1) हाजिर अथवा तात्कालिक (चालू) बाजार (Spot Market) या (2) वायदा या अग्रिम बाजार (Forward Market) के रूप में कार्य करता है। हाजिर या चालू बाजार से अर्थ उस बाजार से है जिसमें केवल चालू या हाजिर लेन–देन किया जाता है। हाजिर बाजार में जो विनिमय दर निर्धारित होती है उसे तात्कालिक विनिमय दर कहते हैं। विदेशी विनिमय से सम्बन्धित वायदा बाजार वह बाजार है, जिसमें भविष्य की किसी तिथि पर पूरे होने वाले लेन–देन का कारोबार होता है। ऐसे लेन–देन के प्रपत्रों पर हस्ताक्षर तो आज किये जाते हैं लेकिन यह लेन–देन भविष्य में किसी भी दिन पूरा होता है। इस इकाई में हम विदेशी विनिमय का अर्थ, विदेशी विनिमय बाजार का अर्थ, विनिमय दर निर्धारण के विभिन्न सिद्धान्त, विनिमय दर को निर्धारित करने वाले घटक एवं विदेशी विनिमय बाजार के उपकरणों की विवेचना करेंगे।

15.2 विदेशी विनिमय एवं विदेशी विनिमय बाजार का अर्थ

विदेशी विनिमय से अर्थ विदेशी मुद्रा से है। डालर, पौण्ड आदि भारत के लिये विदेशी विनिमय हैं। प्रत्येक देश की अपनी एक मुद्रा होती है। आन्तरिक व्यापार में तो प्रत्येक देश में उसकी अपनी मुद्रा का ही प्रयोग किया जाता है। परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार (ऋण निवेश, ब्याज, लाभांश आदि) में दो मुद्राओं का प्रयोग होता है, एक तो गृह देश की मुद्रा, दूसरी उस देश की मुद्रा या कोई अन्य मुद्रा जो अन्तर्राष्ट्रीय भुगतानों में स्वीकार की जाती है। चूंकि अलग–अलग देशों में अलग–अलग मुद्रा प्रणालियां तथा अलग–अलग लेखा–जोखा की इकाइयां विद्यमान होती है अतएव एक देश की मुद्रा को दूसरे देश की मुद्रा में बदलने की आवश्यकता उत्पन्न होती है। एक देश की मुद्रा को दूसरे देश की मुद्रा में बदलने का कार्य विदेशी विनिमय बाजारों द्वारा संपन्न किया जाता है। विदेशी विनिमय बाज़ार में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारी अपनी–अपनी विदेशी प्राप्तियों को स्वदेशी मुद्राओं में परिवर्तित करते हैं, अथवा स्वदेशी मुद्रा कों विदेशी मुद्राओं में परिणत करके विदेशों के भुगतान करते हैं। अतः हम कह सकते है कि विदेशी विनिमय बाजार वह प्रणाली अथवा व्यवस्था है जिसके माध्यम से ऐसे दो देशों के बीच भुगतान संपादित होता है जिनमें अलग–अलग चलन प्रणालियाँ विद्यमान होती है। दूसरे शब्दों में जिस बाजार में घरेलू मुद्रा के संदर्भ में विदेशी मुद्रा के दायित्वों का क्रय विक्रय किया जाता है, उसे विदेशी विनिमय बाज़ार कहते हैं। इस बाजार में विदेशी विनिमय की व्यवस्था इस प्रकार होती है कि आयात करने वाला देश अपने देश की मुद्रा में भुगतान कर देता है तथा निर्यात करने वाला देश अपने देश की मुद्रा में भुगतान प्राप्त कर लेता है। विदेशी विनिमय बाजार में केन्द्रीय बैंक, विदेशी विनिमय बैंक, वाणिज्यिक बैंक तथा ट्रेजरी आदि वित्तीय संस्थाओं का समावेश रहता है जो इस कार्य में संलग्न रहती है।

15.3 विदेशी विनिमय बाजार में भुगतान के तरीके

विदेशी विनिमय बाजार में भुगतान के कुछ महत्वपूर्ण तरीके निम्नवत् प्रस्तुत हैं–

1. **विदेशी विनिमय बिल (Bill of Foreign Exchange)**– जिस प्रकार एक विनियम बिल से आन्तरिक भुगतान किया जाता है, उसी प्रकार जब विनिमय बिल का प्रयोग विदेशी भुगतान हेतु किया जाये तो उसे विदेशी विनिमय बिल कहते हैं। इसके अन्तर्गत वस्तु बेचने वाला क्रय करने वाले को विनिमय पत्र लिखता है, जिसमें यह आदेश होता है कि वह एक निश्चित अवधि (90 दिन) के अन्दर उसमें अंकित राशि का भुगतान लेनदार के अथवा उसके द्वारा नियुक्त व्यक्ति को कर देगा। इस बिल के स्वीकार हो जाने पर यह विनिमय–पत्र अपने ही देश में उन व्यक्तियों को बेच दिया जाता है, जिन्हें आयात करने वाले देश को भुगतान करना है तथा यह विनिमय पत्र विदेशों में उन व्यक्तियों को भेज दिये जाते हैं जिन्हें वे भुगतान करना चाहते हैं। इन लेनदारों के द्वारा विनिमय पत्रों की यह राशि उन व्यक्तियों से वसूल कर ली जाती है जिन्होंने प्रारम्भ में इस वस्तु को आयात करने के कारण स्वीकार किया था।
2. **ड्राफ्ट (Draft)**– ड्राफ्ट एक बैंक द्वारा अपनी शाखा अथवा अन्य बैंक जिसके साथ उसका लेन–देन रहता है को लिखा गया आदेश है जिसमें ड्राफ्ट में अंकित राशि का भुगतान (जो ड्राफ्ट जारी करने वाले बैंक ने प्राप्त कर लिया है) वाहक द्वारा माँग करने पर दिया जाये। अन्तर्राष्ट्रीय भुगतानों में भी अन्तर्राष्ट्रीय बैंकों अथवा विदेशी विनिमय बैंकों द्वारा ड्राफ्ट का प्रयोग किया जाता है।
3. **तार द्वारा स्थानान्तरण (Telegraphic Transfer)** – इसमें एक देश के बैंक द्वारा विदेश में अपनी शाखा को तार द्वारा सूचना दी जाती है कि एक निश्चित राशि का भुगतान व्यक्ति विशेष को कर दिया जाये।
4. **साख पत्र (Letter of Credit)**– साख पत्र जारी करने वाला बैंक किसी व्यक्ति को एक निश्चित राशि चेक या बिल द्वारा एक निश्चित अवधि में निकालने का अधिकार देता है। इस साख पत्र के आधार पर जो राशि आयातकर्ता बैंक से प्राप्त करता है, निर्यातकर्ता उतनी ही राशि का निर्यात कर देता है। इसमें भुगतान की गारण्टी साख पत्र जारी करने वाले बैंक की होती है।

   उपर्युक्त माध्यमों के अतिरिक्त विदेशी विनिमय का भुगतान यात्री चेक (Traveller's Cheques), अन्तर्राष्ट्रीय मनी आर्डर आदि के द्वारा भी किया जाता है।

15.4 विदेशी विनियम दर

विदेशी विनिमय दर वह दर है जिस पर किसी देश की मुद्रा की एक इकाई का दूसरे देश की मुद्रा की इकाइयों से विनिमय किया जाता है। यह एक देश की करेन्सी की दूसरे देश की करेन्सी के रूप में कीमत होती है। माना 21 मार्च 2016 को

एक **US** डालर को भारत के 55 रूपये 8 पैसे से बदला जा सकता है तो 1 **US $ = ₹** 55.08 **US** डालर के रूप में भारतीय रूपये की विनिमय दर है। इसका अर्थ यह है कि इस दिन यदि किसी व्यक्ति को अपने रूपये को डालर में परिवर्तित करना हो तो उसे 1 डालर क्रय करने हेतु **₹** 55.08 देने पड़ेंगे तथा यदि वह अपने डालर को **₹** में परिवर्तित कराना चाहे तो उसे 1 डालर के बदले में **₹** 55.08 प्राप्त होंगे। यदि 5 जनवरी 2017 को यह विनिमय दर परिवर्तित होकर 1 **$ = ₹** 56.50 हो गई है तो इसका अर्थ है कि इस अवधि में भारतीय मुद्रा रूपया का मूल्य ह्रास हुआ है क्योंकि अब 1 **$** क्रय करने के लिये पहले से अधिक रूपयों का भुगतान करना होगा या जबकि इसे डालर के मूल्य में वृद्धि कहा जायेगा।

साधारणतया राष्ट्रीय सम्मान की दृष्टि से विदेशी विनिमय दर को स्वदेशी मुद्रा के रूप में ही व्यक्त किया जाता है। उदाहरणार्थ यदि भारत में प्रचलित विनियम दर 1 **$ = ₹** 55 है तो इस विनियम दर को यू.एस.ए. में व्यक्त करने का तरीका होगा **₹** $1=\frac{1}{55}$ **$** अर्थात् **₹** 1= 0.018 या **₹ 1 = 1.8 सेंट (1 डालर में 100 सेंट होते हैं)।**

विनिमय दर अनुकूल अथवा प्रतिकूल हो सकती है। जब विनिमय दर अपने देश की मुद्रा में व्यक्त की जाती है जब गिरती हुई विनिमय दर हमारे अनुकूल होगी और बढ़ती हुई विनिमय दर हमारे प्रतिकूल होगी। उदाहरणार्थ किसी समय **$** व ` के बीच विनिमय दर 1 **$ = ₹** 55 रूपये है जो कुछ समय बाद गिरकर 1 **$ = ₹** 53 रूपये हो जाती है तो यह गिरती हुई विनिमय दर हमारे देश के पक्ष में होगी, इसके विपरीत जब यह बढ़कर 1 **$ = ₹** 60 रूपये हो जाती है तब यह विनिमय दर देश के विपक्ष में या प्रतिकूल हो जायेगी। जब विनिमय दर को विदेशी मुद्रा में प्रकट करते हैं तब बढ़ती हुई विनिमय दर स्वदेश के पक्ष में होगी तथा गिरती हुई विनिमय दर स्वदेश के विपक्ष में होगी। उदाहरण के लिये माना किसी समय 1 रू0 = 3 सेंट है। कुछ समय बाद यह बढ़कर 1 रू0 =3.5 सेंट हो जाता है तो यह विनिमय दर देश के पक्ष में होगी क्योंकि अब हमें 1 रू0 के बदले में पहले से अधिक सेंट मिलेंगे। इसके विपरीत 1 रु0 =2.5 सेंट हो जाने पर यह विनिमय दर हमारे विपक्ष में अथवा प्रतिकूल होगी। जब विनिमय दर में परिवर्तन एक देश के अनुकूल या पक्ष में होता है तो निश्चित रूप से वह दूसरे देश के विपक्ष में अथवा प्रतिकूल होगा एवं विलोमशः भी सत्य है।

15.5 विनिमय दरों के विभिन्न प्रकार अथवा व्यक्त करने के तरीके

विनिमय दरों को कई प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है जिनका संक्षिप्त विवेचन निम्नवत है–

(i) तात्कालिक एवं अग्रिम विनिमय दर (Spot and Forward Exchange Rate)

(ii) स्थिर एवं लोचपूर्ण विनिमय दर (Fixed and Floating Exchange Rate)

(iii) अनुकूल एवं प्रतिकूल विनिमय दर (Favourable and Unfavourable Exchange Rate)

15.5.1 तात्कालिक एवं अग्रिम विनिमय दर – तात्कालिक अथवा वर्तमान विनिमय दर देश की मुद्रा में वह मूल्य होता है जिसका भुगतान विशिष्ट विदेशी मुद्रा की तत्काल

प्राप्ति के लिये किया जाता है। अतएव यह प्रचलित विनिमय दर ही होती है। तात्कालिक दर को केबिल दर cable rate भी कहते हैं, क्योंकि विदेशी विनिमय दर का शीघ्र हस्तांतरण विदेशी बैंकों द्वारा तार से इसी दर पर किया जाता है। इस दर को चैक दर, मेल ट्रान्सफर अथवा टेलिग्राफिक ट्रान्सफर दर भी कहते हैं। अग्रिम विनिमय दर वह विनिमय दर है जिस पर क्रय विक्रय का सौदा तो कर लिया जाता है किन्तु जिसकी सुपुर्दगी भविष्य की किसी निश्चित तिथि को की जाती है। इस प्रणाली के अन्तर्गत एक मुद्रा का दूसरी मुद्रा में विनिमय भविष्य में किया जाता है किन्तु विनिमय की दर उसी समय निश्चित कर दी जाती है। अग्रिम विनिमय दर की दशा में यह संभव है कि जब वस्तविक विनिमय किया जाये तो उस समय की विनिमय दर, उस विनिमय दर से भिन्न हो जिस पर सौदा किया गया था। स्वतंत्र विनिमय दर प्रणाली में विदेशी विनिमय दर में उच्चावचन होते रहते हैं जिस कारण विदेशी मुद्रा में सौदा करने वालों को अनिश्चिताओं एवं जोखिमों का सामना करना पड़ता है। अग्रिम विनिमय दर निर्धारित कर सौदा करने पर इन अनिश्चितताओं एवं जोखिमों से बचा जा सकता है।

अग्रिम विनिमय दर के कार्यकरण को समझने के लिये उसका तत्काल विनिमय दर के साथ सम्बन्ध जानना आवश्यक है। अनुबन्ध करते समय जब अग्रिम विनिमय दर तत्काल विनिमय दर के बिलकुल बराबर हो तब वह अग्रिम विनिमय दर सममूल्य पर (at par) कहलाती है। जब अग्रिम मार्केट में एक करेन्सी तत्काल मार्किट के मुकाबले दूसरी करेन्सी की अधिक मात्रा खरीदती है तो अग्रिम विनिमय दर को अधिमूल्य पर (at premium) कहते हैं। तत्काल दर का अग्रिम दर से जो अंतर है वही अधिमूल्य अथवा प्रीमियम है जिसको प्रतिशतता में व्यक्त किया जाता है। इसके विपरीत, यदि अग्रिम मार्केट में तत्काल मार्केट की अपेक्षा एक करेन्सी दूसरी करेन्सी की कम मात्रा क्रय कर पाती है तब अग्रिम दर को बट्टे पर (at- a discount) कहते हैं। इसे भी तत्काल दर से अग्रिम दर में प्रतिशत अंतर द्वारा व्यक्त किया जाता है।

15.5.2 स्थिर एवं परिवर्तनशील विनियम दर–स्थिर विनिमय दर वह दर है जिसमें परिवर्तन एक निश्चित सीमा तक ही हो सकते हैं। स्वर्णमान के अंतर्गत विनिमय दर स्थिर बनी रहती है क्योंकि इनमें एक निश्चित सीमा तक ही परिवर्तन होते थे और ये सीमाएं स्वर्ण बिन्दुओं द्वारा निर्धारित होती थीं। इन सीमाओं के के बाद स्वर्ण का आयात एवं निर्यात होने लग जाता था। अतः विनिमय दर उन सीमाओं के बाहर नहीं जा पाती थी। स्थिर विनिमय दर प्रणाली के अन्तर्गत विनिमय दर विदेशी विनिमय की माँग एवं पूर्ति के आधार पर निर्धारित नहीं होती है बल्कि सरकार द्वारा एक स्थिर दर निश्चित कर दी जाती है। स्थिर विनिमय दर प्रणाली में यदि भुगतान संतुलन में असाम्य अथवा असन्तुलन होता है जो विदेशी विनिमय की अतिरिक्त माँग या पूर्ति उत्पन्न कर देता है तो अतिरिक्त माँग या पूर्ति को समाप्त करने के लिये देश के केन्द्रीय बैंक को विदेशी विनिमय की आवश्यक मात्राएं खरीदनी अथवा बेचनी पड़ती हैं। दिसम्बर 1945 में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना के बाद बहुत से देशों ने स्थिर विनिमय दर अपना ली थी। मुद्रा कोष विनिमय दर को स्थिर बनाये रखने में सहायता करता था किन्तु 1971 में डालर के अवमूल्यन एवं अन्य अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक

स्थितियों में परिवर्तन के कारण विनिमय दर को स्थिर बनाये रखने में कठिनाईयाँ ज्यादा आने लगीं परिणामस्वरूप धीरे–धीरे स्थिर विनिमय दर व्यवस्था का त्याग किया जाने लगा। वर्तमान में लगभग सभी देशों ने परिवर्तनशील विनिमय दर को स्वीकार कर लिया है।

परिवर्तनशील विनिमय दर को अस्थिर अथवा लोचपूर्ण विनिमय दर भी कहते हैं। लोचपूर्ण विनिमय दर वह दर है जिसमें विदेशी मुद्रा की माँग एवं पूर्ति की शक्तियों में परिवर्तन के फलस्वरूप परिवर्तन होने लगता है और सरकार का इस पर कोई नियन्त्रण नहीं होता।

15.5.3 अनुकूल एवं प्रतिकूल विनिमय दर–जब विनिमय दर को अपने देश की मुद्रा में व्यक्त किया जाता है तो समय के साथ कम होती हुई विनिमय दर देश के लिये अनुकूल विनिमय दर मानी जाती है और बढ़ती हुई विनिमय दर देश के लिये प्रतिकूल होती है। जब विनिमय दर को विदेशी मुद्रा में व्यक्त किया जाये तो ठीक उल्टी स्थिति होती है।

15.6 विदेशी विनिमय दर निर्धारण के सिद्धान्त

विदेशी विनिमय दर के निर्धारण के तीन सिद्धान्त मिलते हैं–

(1) स्वर्ण टकसाली समता सिद्धान्त (2) क्रय शक्ति समता सिद्धान्त व (3) विदेशी मुद्रा की माँग एवं पूर्ति पर आधारित भुगतान संतुलन सिद्धान्त। तीनों का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है–

15.6.1 टकसाली समता सिद्धान्त – जब दो देश धातुमान पर आधारित होते हैं तब उन देशों की मुद्राओं के बीच विनिमय दर का निर्धारण टकसाली समता सिद्धान्त के आधार पर होता है। माना कोई दो देश हैं जो स्वर्णमान पर आधारित हैं तब टकसाली समता सिद्धान्त के अनुसार उनकी मुद्राओं के बीच विनिमय दर का निर्धारण उनकी मुद्रा में निहित शुद्ध स्वर्ण की मात्रा की समता के आधार पर होता है। अर्थात् इस विधि में दो मुद्राओं की विनिमय दर ज्ञात करने के लिये उनमें निहित शुद्ध स्वर्ण की मात्राओं का अनुपात निकाल लिया जाता है। उदाहरण के लिये माना दो देश हैं x तथा y और दोनों में स्वर्ण चलनमान है। लेकिन x देश की मुद्रा की एक इकाई में 4 ग्रेन शुद्ध स्वर्ण है तथा y देश की मुद्रा की एक इकाई में 2 ग्रेन शुद्ध स्वर्ण है तो इन दोनों मुद्राओं की टकसाली समता निम्न प्रकार की होगी :

4 ग्रेन शुद्ध स्वर्ण = x देश की मुद्रा की 1 इकाई

4 ग्रेन शुद्ध स्वर्ण = y देश की मुद्रा की 2 इकाई

अतः x देश की मुद्रा की एक इकाई = y देश की मुद्रा की 2 इकाइयाँ। इसे एक वास्तविक उदाहरण के द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है प्रथम विश्वयुद्ध के पूर्व इंग्लैण्ड और अमेरिका पूर्ण स्वर्णमान पर आधारित थे– परन्तु 1 पौण्ड (£) में 113. 0016 ग्रेन शुद्ध स्वर्ण था एवं डालर ($) में 23.2200 ग्रेन शुद्ध स्वर्ण की मात्रा थी। इन दोनों मुद्राओं की टकसाली समता (स्वर्ण की मात्रा का अनुपात) के आधार पर पौण्ड तथा डालर के बीच विनिमय दर ज्ञात की जाती थी। इस आधार पर ब्रिटिश पौण्ड और अमरीकन डालर के बीच विनिमय दर £1= $ 4.8665 थी।

विनिमय की टकसाली दर, विनिमय की सामान्य दर अर्थात् दीर्घकालीन प्रवृत्ति को स्पष्ट करती है। वास्तव में जो विनिमय दर बाजार में प्रचलित होती है वह दर इससे कुछ भिन्न हो सकती है। कुछ निश्चित सीमाओं के बीच इस दर में उच्चावचन हो सकता है। इन सीमाओं को स्वर्ण बिन्दु (gold points) कहते हैं। स्वर्ण बिन्दुओं का निर्धारण एक पौण्ड स्वर्ण के अमेरिका से ब्रिटेन भेजने अथवा मंगाने की लागत पर (जिसमें स्वर्ण की परिवहन लागत + पैकिंग व्यय + बीमा व्यय सम्मिलित हैं) निर्भर करता है। माना अमेरिका के आयाताकर्ताओं को £1 प्राप्त करने के लिये $ 4.8665 देने पड़ते हैं (क्योंकि विनिमय दर £1= $ 4.8665 है) अब यदि एक पौण्ड मूल्य के स्वर्ण को अमेरिका से ब्रिटेन भेजने की लागत 0.03 डालर है तब इसको यदि विनिमय की टकसाली दर में जोड़ दिया जाये तो विनिमय दर की उच्चतम सीमा ज्ञात हो जाती है जो 1 पौण्ड = $ 4.8665 +$ 0.03 =$ 4.8965 होगी अर्थात विनिमय की अधिकतम दर £1= $ 4.8665 होगी। विनिमय दर इस उच्चतम स्तर से आगे इसीलिये नहीं जा सकती क्योंकि इस उच्चतम दर के बाद अमेरिका के लोग इंग्लैण्ड को पौण्ड में भुगतान न करके स्वर्ण में भुगतान करना शुरू कर देंगे इसीलिये उच्चतम स्वर्ण बिन्दु को अमेरिका की दृष्टि से स्वर्ण निर्यात बिन्दु (gold export point) भी कहा जाता है। इसी प्रकार विनियम की टकसाली दर की न्यूनतम सीमा जिसे स्वर्ण आयात बिन्दु भी कहते है, को ज्ञात करने के लिये विनिमय की टकसाली दर £1= $ 4.8665 में स्वर्ण के निर्यात व्यय 0.03 डालर को घटा देंगे तब इस प्रकार हमे विनियम की न्यूनतम दर £1= $ 4.6685 –$ 0.03 डालर = $ 4.6385 प्राप्त होगी तो अब 1 पौण्ड का मूल्य $ 4.6385 से नीचे नहीं गिर सकता क्योंकि पौण्ड का मूल्य इतना गिर जाने के पश्चात् ब्रिटेन के आयातकर्ता अमेरिका को भुगतान करने के लिये पौण्ड के बदले डालर क्रय न करके स्वर्ण के द्वारा भुगतान करना आरम्भ कर देंगे अमेरिका की दृष्टि से यह स्वर्ण का आयात बिन्दु एवं ब्रिटेन की दृष्टि से ये स्वर्ण का निर्यात बिन्दु होगा।

स्वर्ण आयात बिन्दु एवं स्वर्ण निर्यात बिन्दु को सामूहिक रूप से स्वर्ण बिन्दु (gold points) कहते हैं और स्वर्णमान के अंतर्गत विनिमय दर पूर्ण रूप से स्थिर नहीं रहती वरन इसमें स्वर्ण बिन्दुओं के द्वारा निश्चित की गई सीमा के भीतर उच्चावचन होते रहते हैं।

पत्र मुद्रा मान के अन्तर्गत विनिमय दर

जब व्यापार करने वाले देशों में अपरिवर्तिनीय पत्र मुद्रामान (अर्थात कागजी मुद्रा) चलन में होती है तब इनके बीच विनिमय दर स्वर्ण मान के समान निर्धारित नहीं हो सकती और न ही विनिमय दर में परिवर्तन की सीमाएं ही स्वर्णमान के समान निश्चित होती है। पत्र मुद्रा मान के अन्तर्गत विनियम दर निर्धारण निम्न दो सिद्धान्तों पर आधारित होता है–

(1) क्रय शक्ति समता सिद्धान्त (Purchasing Power Parity Theory)

(2) भुगतान शेष अथवा विदेशी मुद्रा की माँग एवं पूर्ति का सिद्धान्त (Balance of Payment Theory or the Theory of Demand and Supply of Foreign Exchange)

15.6.2 क्रय शक्ति समता सिद्धान्त– क्रय शक्ति समता सिद्धान्त का प्रतिपादन स्वीडिश अर्थशास्त्री गुस्टव कैसल (Gustav Cassel) ने 1922 में प्रकाशित अपनी पुस्तक ''Money and Foreing Exchange After 1914'' में विश्व युद्ध के पश्चात् सभी देशों द्वारा पत्र मुद्रा अपना लिये जाने के बाद विभिन्न देशों की मुद्राओं के बीच विनिमय दर निर्धारण की व्याख्या करने के लिये किया।

गुस्टव कैसल के शब्दों में, ''दो मुद्राओं की विनिमय दर आवश्यक रूप से इन मुद्राओं की आन्तरिक क्रय शक्ति के भागफल पर निर्भर करती है।'' तात्पर्य यह है कि जब एक देश की मुद्रा की क्रय शक्ति का विदेशी मुद्रा से विनिमय किया जाता है तो उस देश की मुद्रा की क्रय शक्ति का विदेशी मुद्रा की क्रय शक्ति से विनिमय किया जाता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि विनिमय दर को निर्धारित करने वाला मुख्य कारक दो देशों की सापेक्षिक क्रय शक्ति है तथा इस आधार पर विनिमय की संतुलन दर ऐसी होनी चाहिये कि मुद्राओं के विनिमय से समान क्रय शक्ति का विनिमय हो। माना वस्तुओं का एक बण्डल जिसे इंग्लैण्ड में £1 में खरीदा जा सकता है उसी बण्डल को भारत में क्रय करने के लिये रू0 80 देने पड़ते हैं तो क्रय शक्ति समता सिद्धान्त के अनुसार विनिमय की दर दर £1= रू0 80 होगी। इस प्रकार इस सिद्धान्त के अनुसार दो देशों के बीच विनिमय की दर उस बिन्दु पर निर्धारित होती है जहाँ दोनों देशों की अपनी–अपनी क्रयशक्तियाँ समान होती हैं। यद्यपि बाजार विनिमय दर विदेशी मुद्रा की माँग एवं पूर्ति की सापेक्षिक शक्तियाँ द्वारा निर्धारित होगी, पर दीर्घकाल में वह क्रयशक्तियों समता के बराबर होने की प्रवृत्ति रखेगी।

समय के साथ–साथ विभिन्न देशों की मुद्राओं की क्रय शक्ति में परिवर्तन होते रहते हैं और यह आवश्यक नहीं है कि सभी देशों की मुद्राओं की क्रय शक्ति में समान अनुपात में ही परिवर्तन हों। मुद्रा की क्रय शक्ति में परिवर्तन विनिमय दर में भी परिवर्तन को जन्म देता है और नया बिन्दु स्थापित होता है। उदाहरण के लिये विनिमय दर के निर्धारण के समय दोनों देशों का सूचकांक (Index Number) 100 था और विनिमय दर दर £1= रू 80 थी, अब यदि भारत में कीमत स्तर में तेजी से वृद्धि होने से सूचकांक 200 हो जाता है जबकि इंग्लैण्ड में सूचकांक 150 हो जाता है तो नयी विनिमय दर ज्ञात करने के लिये पुरानी विनिमय दर को तत्संबंधी देशों के नये सूचकांकें से गुणा करके ज्ञात किया जा सकता है। उदाहरण के लिये 2015 में विनिमय पर थी दर £1= रू0 80, 2015 में दोनों देशों के सूचकांक 100 मान लेते है वर्ष 2016 में भारत का सूचकांक 200 व इंग्लैण्ड का सूचकांक बढ़कर 150 हो गया है तो इस दशा में नई विनिमय दर निम्न प्रकार से आकलित की जायेगी।

£1= रू0 80

1£x150= रू0 80X 200

£150= रू0 16000

1£= रू0 $\frac{16000}{150}$ = ₹ 106.67

इससे स्पष्ट है कि भारत में मंहगाई तेजी से बढ़ने के कारण भारत की मुद्रा की क्रय शक्ति इंग्लैण्ड की मुद्रा की क्रयशक्ति की अपेक्षा तेजी से घटी है और इसलिये अब एक पौण्ड के बदले में अधिक रूपये देने पड़ते हैं।

क्रय शक्ति समता में परिवर्तन की सीमाएं इतनी निश्चित नहीं होती है जितनी कि विनिमय की टकसाली दर के अन्तर्गत होती हैं। वास्तविक विनिमय दर जिसे बाजार विनिमय दर भी कहते हैं, क्रय शक्ति समता दर से कम या अधिक हो सकती है। विनिमय दर में किन सीमाओं तक परिवर्तन होंगे यह वस्तुओं के परिवहन व्यय, प्रशुल्क, बीमा शुल्क, पैंकिंग व्यय आदि पर निर्भर करता है। यद्यपि क्रय शक्ति समता सिद्धान्त विनिमय दर निर्धारण का दीर्घकालीन सिद्धान्त है फिर भी यह विदेशी विनिमय के क्षेत्र में सही मार्गदर्शन देता है। इस सिद्धान्त की कमियों के कारण भुगतान संतुलन सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ है।

15.6.3 भुगतान संतुलन सिद्धान्त अथवा विदेशी विनिमय का माँग एवं पूर्ति सिद्धान्त–

भुगतान संतुलन सिद्धान्त विनिमय दर निर्धारण का आधुनिक सिद्धान्त है। चूँकि विदेशी विनिमय की माँग एवं पूर्ति की स्थितियां भुगतान संतुलन की स्थितियों में ही निहित होती है, इसलिये इसे हम विनिमय दर का माँग एवं पूर्ति का सिद्धान्त भी कहते हैं।

भुगतान शेष सिद्धान्त यह बताता है कि विनिमय दर विदेशी मुद्रा की माँग एवं पूर्ति का फलन है। हम भारत एवं अमेरिका की मुद्राओं के बीच विनिमय दर के निर्धारण की विवेचना करते हैं। US डालर की माँग उन भारतीय लोगों तथा फर्मों से उत्पन्न होती है जो कि USA से वस्तुओं एवं सेवाओं का आयात करना चाहते है, अथवा वे USA में परिसम्पत्तियाँ जैसे US ऋणपत्र, अमेरिकी कंपनियों के शेयर्स खरीदना चाहते है, अथवा USA में कारखाना, बिक्री सुविधाएं या भवन निर्माण करना चाहते है, अथवा जो ऋण अथवा USA में किसी को उपहार भेजना चाहते हों। ये सभी विदेशी विनिमय (डालर) की माँग के संघटक हैं। जब रूपये के रूप में डालर की कीमत में कमी होती है अर्थात् जब डालर का मूल्य ह्रास होता है तो एक डालर प्राप्त करने के लिये पहले की तुलना में कम रूपये देने पड़ते हैं परिणामस्वरूप, एक डालर मूल्य की अमेरिकी वस्तुएं अब पहले की तुलना में कम रूपये में खरीदी जा सकेंगी। अतः भारतीय रूपयों के सन्दर्भ में अमेरिकी वस्तुएं सस्ती हो जायेंगी परिणामस्वरूप भारत में अमेरिकी वस्तुओं की माँग व आयात बढ़ेंगे व भारतीयों द्वारा डालर की माँग में वृद्धि होगी। इसके विपरीत यदि डालर की मूल्य वृद्धि होती है तो रूपयों के रूप में एक डालर मूल्य की अमेरिकी वस्तुओं की लागत अब अपेक्षाकृत अधिक हो जायेगी जो अमेरिकी वस्तुओं को पहले की तुलना में मंहगी बना देगी परिणामस्वरूप अमेरिकी वस्तुओं का भारत में आयात हतोत्साहित होगा व डालर की अपेक्षाकृत कम मात्रा की माँग की जायेगी। इस विवेचना का तात्पर्य यह है कि डालर की अपेक्षाकृत कम कीमत पर भारतीयों द्वारा इस विदेशी मुद्रा की अधिक मात्रा की माँग की जायेगी तथा डालर की अपेक्षाकृत अधिक कीमत पर उसकी कम मात्रा की माँग की जायेगी परिणामस्वरूप डालर का माँग वक्र बांये से दायें नीचे गिरता हुआ होगा जैसा कि चित्र 15.1 में DD द्वारा प्रदर्शित किया है।

अब प्रश्न उठता है कि कौन से तत्व विदेशी मुद्रा बाजार में डालर की पूर्ति निर्धारित करते हैं? भारत में डालर की पूर्ति उन व्यक्तियों अथवा फर्मों द्वारा की जाती है अमेरिका को वस्तुएं तथा सेवायें निर्यात करते हैं व जिसके बदले अमेरिका के निवासी उन्हें डालर के रूप में भुगतान करते हैं। इसके अतिरिक्त भारत में परिसम्पत्ति जैसे ऋणपत्र, भारतीय कंपनियों के शेयर खरीदने के इच्छुक या भारतीय व्यक्तियों या फर्मों को ऋण देने के इच्छुक अमेरिकी फर्में या व्यक्ति डालर की पूर्ति करेंगे। इसके अतिरिक्त अमेरिका से प्रेषण (remittances) के रूप में भी भारत को डालर की प्राप्ति होती है। उपर्युक्त सभी तत्व भारत में डालर की पूर्ति निर्धारित करते है। रूपयों के रूप में डालर की कीमत से सम्बन्धित डालर का पूर्ति वक्र धनात्मक ढाल वाला होता है जो चित्र 15.1 में SS प्रदर्शित किया है। धनात्मक ढाल यह प्रदर्शित कर रहा है कि जब रूपये के रूप में डालर का मूल्य कम होता है जब डालर की पूर्ति भी कम होती है क्योंकि इस अवस्था में डालर के पूर्तिकता को 1 डालर के बदले कम रूपये प्राप्त होते हैं इसके विपरीत जब डालर का रूपये में मूल्य अधिक होता है तो डालर की पूर्ति भी अधिक होती है।

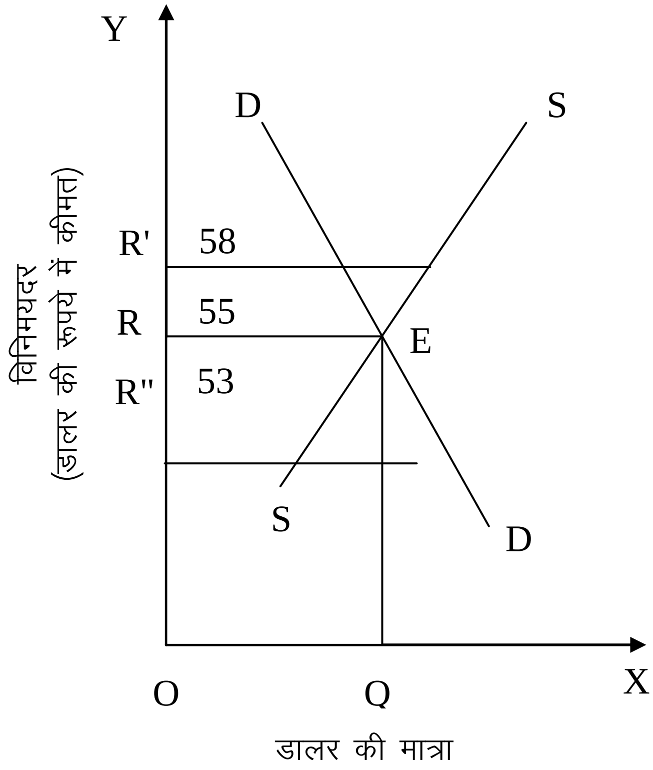

रेखाकृति 15.1 : विदेशी विनिमय दर का निर्धारण

रेखाचित्र 15.1 में विनिमय दर निर्धारण की प्रक्रिया स्पष्ट की गयी है। वक्र DD, रूपये के रूप में डालर की विभिन्न कीमतों से संबंधित डालर का माँग वक्र है व वक्र SS रूपये के रूप में डालर की विविध कीमतों से संबंधित डालर का पूर्ति वक्र है। चित्र से स्पष्ट है कि साम्य विनिमय दर अर्थात् रूपयों के रूप में डालर की संतुलन

कीमत OR या 55 रूपये प्रति डालर है जिस पर डालर के माँग तथा पूर्ति वक्र परस्पर प्रतिच्छेद करते हैं तथा इस दर पर डालर का बाजार संतुलित हो जाता है। डालर की OR या 55 रूपये की अपेक्षा अधिक दर होने पर उदाहरण के लिये विनिमय दर OR’ (i.e. $1= ₹ 58) होने पर डालर की पूर्ति उसकी माँग की अपेक्षा अधिक हो जाती है। डालर की अतिरिक्त पूर्ति होने से पूर्तिकर्ताओं में प्रतियोगिता होगी जिसके परिणाम स्वरूप इसकी कीमत अर्थात् विनिमय दर पुनः गिरकर OR या 55 रूपये हो जायेगी। दूसरी ओर यदि विनिमय दर OR की अपेक्षा कम होती है जैसे OR” या 53 रूपये तो डालर के लिये अतिरिक्त माँग उत्पन्न होगी। डालर की यह अतिरिक्त माँग डालर की कीमत को OR स्तर या 55 रूपये तक बढ़ा देगी।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि देश के भुगतान संतुलन की विविध मदें विदेशी करेन्सी की माँग तथा पूर्ति का आधार होती हैं। यही कारण है कि माँग तथा पूर्ति के माध्यम से विनिमय दर की व्याख्या को विदेशी विनिमय का भुगतान संतुलन सिद्धान्त भी कहा जाता है। विदेशी विनिमय की माँग भुगतान संतुलन में ऋणात्मक मदों के कारण उत्पन्न होती है जबकि विदेशी विनिमय की पूर्ति धनात्मक मदों से उत्पन्न होती है। यदि भारत के भुगतान शेष में घाटे की स्थिति है तो विदेशी विनिमय जैसे US डालर की माँग उसकी पूर्ति की अपेक्षा अवश्य अधिक होगी जिसके परिणामस्वरूप US डालर की रूपये के रूप में कीमत में अवश्य ही वृद्धि हो जायेगी या डालर के रूप में रूपये का बाह्य मूल्य अवश्य ही कम हो जायेगा। व यदि भारत के भुगतान शेष में आधिक्य की स्थिति है तो डालर की रूपये के रूप में कीमत में कमी आयेगी अर्थात् डालर के रूप में रूपये का बाह्य मूल्य अवश्य ही बढ़ जायेगा।

विदेशी विनिमय की माँग तथा पूर्ति के माध्यम से विनिमय दर निर्धारण के उपर्युक्त विश्लेषण में हमने यह माना है कि विदेशी विनिमय की माँग तथा पूर्ति को निर्धारित करने वाली शक्तियाँ स्थिर बनी रहती हैं, और केवल विनिमय दर में परिवर्तन ही विदेशी विनिमय की माँग एवं पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन लाते हैं और विदेशी विनिमय की माँग और पूर्ति के बीच साम्य स्थापित करते हैं। वास्तविकता में विदेशी मुद्रा की माँग एवं पूर्ति को प्रभावित करने वाले कुछ अन्य तत्व भी होते हैं जैसे आयातकर्ता देश में आय का स्तर, बचत स्तर, टेस्ट, फैशन इत्यादि और ये भी आयातों की मात्रा को प्रभावित करके विनिमय बाजार में साम्य को भंग कर देते हैं, जैसे माना कि अमेरिका में तेजी से स्थिति आ जाती है जिससे वहाँ के लोगों की आय में वृद्धि होती है आय के बढ़ने से वहाँ भारत से आयातित वस्तुओं की माँग बढ़ जाती है परिणामस्वरूप अब वे भारतीय वस्तुओं पर पहले से अधिक मात्रा में डालर व्यय करेंगे। यह तथ्य भारतीय विनिमय बाजार में डालर की पूर्ति में वृद्धि कर देगा जिससे डालर का पूर्ति वक्र SS से परिवर्तित हो कर SS’ हो जायेगा जैसा कि चित्र 15.2 में दिखाया गया है जिसके परिणामस्वरूप पुरानी विनिमय दर OR = 55 पर डालर की EN के बराबर अतिरिक्त पूर्ति होती है, और डालर की कीमत कम हो कर OR’ अथवा 53 रूपये प्रति डालर हो जाती है। दूसरी ओर यदि भारतीय लोगों की आय में वृद्धि के कारण भारत को अमेरिकी वस्तुओं के आयात में वृद्धि होती है अथवा भारत में औद्योगिक गतिविधियाँ तेज हो जाती हे जिनके लिये भारत USA से अधिक यन्त्र,

उपकरण अथवा कच्चा माल इत्यादि आयात करता है तो इन सबका भुगतान भारत द्वारा अमेरिका को डालर में करना होगा इसके परिणामस्वरूप डालर की माँग में वृद्धि होगी व डालर का नया माँग वक्र DD से विपर्तित हो कर DD' हो जायेगा (रेखा चित्र 15.3) अब पुरानी विनियम दर (1$ = रू0 55) पर डालर की पूर्ति OQ की तुलना में डालर की माँग (OQ'') अधिक है, डालर की यह अतिरिक्त माँग विनिमय दर को बढ़ा कर OR'' (58) पर कर देगी जिस पर डालर की माँग तथा पूर्ति के बीच पुनः संतुलन स्थापित हो जाता है। इस स्थिति को चित्र 15.3 में प्रदर्शित किया है इस स्थिति में भारतीय रुपये का मूल्य ह्रास हुआ है।

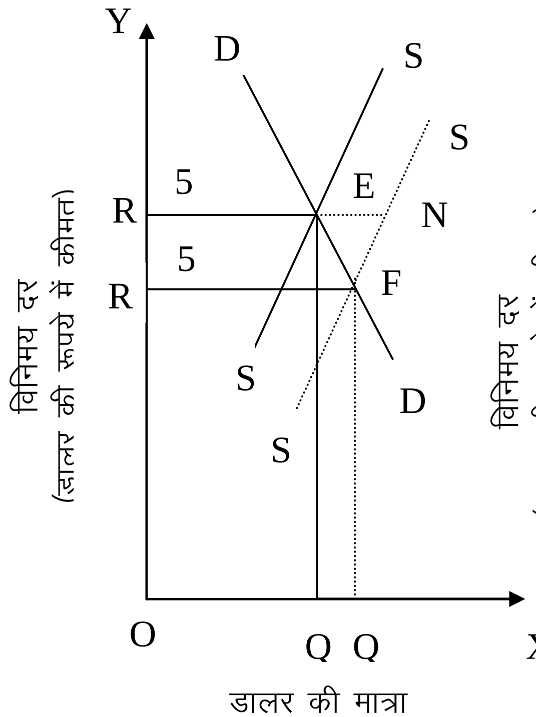

रेखाचित्र 15.2

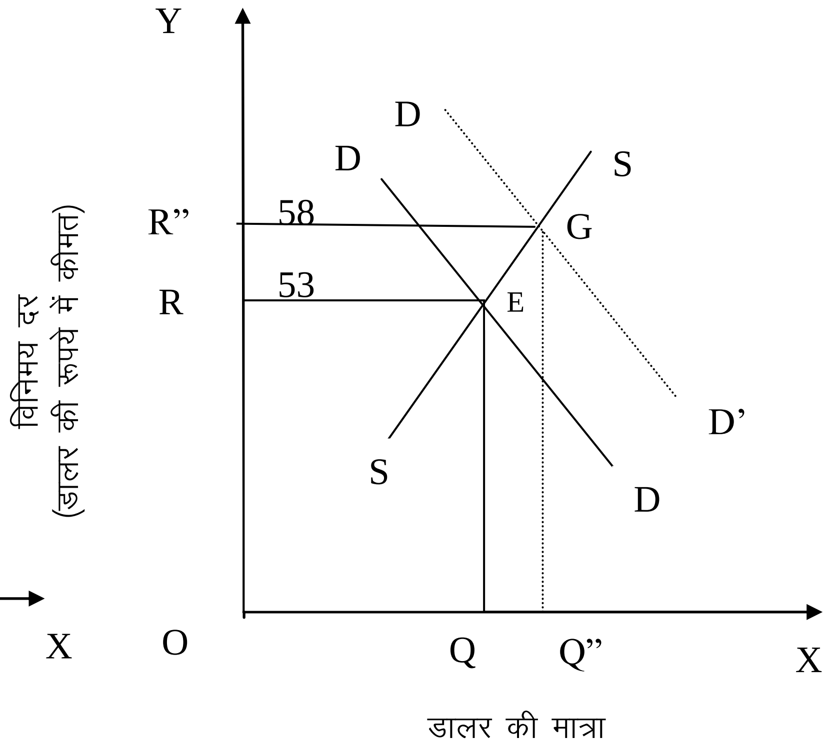

रेखाचित्र 15.3

15.7 विदेशी विनिमय दर को प्रभावित करने वाले घटक

विदेशी विनिमय दर सदैव स्थिर नहीं रहती वरन इसमें उच्चाचन की स्थिति पायी जाती है जो अनिश्चितता की स्थिति उत्पन्न करती है। विदेशी विनिमय में उच्चावचन हेतु उत्तरदायी घटकों का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है–

(1) **कीमतों में परिवर्तन**–सापेक्ष कीमत स्तर में परिवर्तन, विनिमय दर को भी प्रभावित करते हैं। माना अमेरिका के कीमत स्तर की अपेक्षा भारत का कीमत स्तर बढ़ जाता है। इससे भारत की वस्तुओं की कीमत रूपये के रूप में बढ़ जायेगी अर्थात् भारत की वस्तुएं अमेरिका में महंगी हो जायेंगी जिससे भारत के अमेरिका को निर्यात घट जाएंगे परिणामस्वरूप भारत को डालर की आपूर्ति घट जायेगी। डालर का पूर्ति वक्र पीछे की ओर विवर्तित हो जायेगा दूसरी ओर अमेरिकी वस्तुयें भारत में पूर्व की तुलना में सस्ती हो जायेंगी और अमेरिका से भारत को आयात बढ़ेगा परिणामस्वरूप भारत में डालर की माँग बढ़ेगी और डालर का माँग वक्र दायीं ओर विवर्तित होगा। इनका सम्मिलित प्रभाव यह होगा कि रूपये के रूप में डालर की कीमत अर्थात् विनिमय दर बढ़ जायेगी।

(2) **ब्याज दरों में परिवर्तन** –यदि हमारे देश में ब्याज दर अधिक होती है तो विदेशों से पूंजी का अन्तर्प्रवाह हमारे देश में होता है इससे विदेशी करेन्सी की पूर्ति बढ़ जाती है व रूपये के पदों के में डालर की कीमत अर्थात् विनिमय दर घट जाती है। हमारे देश में ब्याज की दर कम होने पर इसके विपरीत स्थिति होती है।

(3) **निर्यात एवं आयात की मात्रा में परिवर्तन** –यदि किसी देश के निर्यात उसके आयातों की तुलना में अधिक हैं तो उस देश की करेन्सी की माँग एवं मूल्य बढ़ जाएंगे और विनिमय दर उस देश के पक्ष में परिवर्तित हो जायेगी। इसके विपरीत किसी देशों के निर्यातों की अपेक्षा आयात अधिक हैं तो जिस देश से आयात किया जा रहा है उस देश की मुद्रा की माँग व परिणामस्वरूप उसकी कीमत बढ़ेगी व विनिमय दर आयात करने वाले देश के लिये प्रतिकूल हो जायेगी।

(4) **पूंजी गतियां**– किसी देश में पूँजी का अन्तःप्रवाह उस देश जिसमें पूंजी आई है अर्थात् पूंजी आयातक देश की करेन्सी का मूल्य बढ़ा देता है और पूंजी के निर्यातक देश की करेन्सी का मूल्य घटा देता है परिणामस्वरूप विनिमय दर पूँजी आयातक देश के पक्ष में और पूंजी निर्यातक देश के विपक्ष में परिवर्तित हो जाती है।

(5) **बैकों का प्रभाव** – बैंकों की विविध क्रियाओं जैसे बैंके ड्राफ्ट, साख पत्रों, विदेशी विनिमय का क्रय विक्रय और हुण्डियों आदि का व्यापार के परिणामस्वरूप विदेशी विनिमय की माँग और पूर्ति प्रभावित होती है। यदि कमर्शियल बैंक, विदेशी बैंकों के नाम बहुत अधिक राशि के ड्राफ्ट तथा साख पत्र जारी कर देते हैं, तो विदेशी करेन्सी की माँग एवं मूल्य बढ़ जायेंगे।

(6) **सट्टे का प्रभाव –** सट्टे के प्रभाव से विनिमय दर में अल्पकालीन उतार चढ़ाव आता है। सट्टे की क्रियाओं के अन्तर्गत विनिमय दर में भविष्य में होने वाले परिवर्तनों का पूर्व अनुमान करके विदेशी मुद्राओं का क्रय विक्रय किया जाता है। यदि किसी समय सटोरियों द्वारा अधिक मात्रा में विदेशी मुद्रा को खरीदा जाता है तो उस मुद्रा की माँग व परिणामस्वरूप विनिमय दर भी बढ़ने लग जाती है। इसके विपरीत सटोरियों द्वारा अधिक मात्रा में विदेशी मुद्रा बेचे जाने पर उस मुद्रा व मूल्य एवं विनिमय दर घटने लग जाती है।

(7) **मध्यस्थों की क्रियाएं अथवा मूल्यान्तर के सौदे –** मध्यस्थों की क्रियाओं को अन्तर्पणन अथवा मूल्यान्तर सौदे (Arbitrage operation) कहा जाता है। अन्तर्पणन की क्रिया दो विदेशी से मुद्रा बाजारों में विनिमय दरों के अंतर से लाभ उठाने के लिये की जाती है। जिस बाजार में मुद्रा सस्ती होती है उसे वहाँ से खरीद कर ऐसे बाजार में बेचा जाता है जहाँ वह मंहगी होती है। मुद्रा के क्रय विक्रय का यह कार्य व्यापारिक बैकों द्वारा अपने विदेशी प्रतिनिधियों के माध्यम से किया जाता है।

(8) **स्टॉक एक्सचेंज की क्रियाएं–** यदि स्टॉक एक्सचेंज इस बात में सहायता करते हैं कि विदेशियों को प्रतिभूतियाँ, डिबेंचर, शेयर आदि बेचे जाये तो विदेशी पूंजी भारत में प्रवाहित होगी, रूपये की मूल्य वृद्धि (appreciation) व डालर के मूल्य में कमी (depreciation) होगी व विनिमय दर घट जायेगी। इस प्रकार विदेशों से ब्याज व लाभांश प्राप्त होने पर विदेशी मुद्रा की पूर्ति बढ़ती है व विदेशी मुद्रा की रूपये कीमत या विनिमय दर घट जाती है व विदेशों को ब्याज व भुगतान किये जाने पर विपरीत परिवर्तन होता है।

(9) **युद्ध आदि परिस्थितियां –** युद्ध की स्थिति में किसी देश को विदेशों से बहुत अस्त्र–शस्त्र मंगाने होते हैं जिनका भुगतान विदेशी मुद्रा में करना होता है। साथ ही युद्ध आदि स्थिति में विदेशी पूंजी का भी पलायन होता है परिणामस्वरूप विदेशी मुद्रा की पूर्ति घटती है व विनिमय दर बढ़ कर देश के प्रतिकूल हो जाती है। देश में शान्ति एवं राजनीतिक स्थिरता की स्थिति में विदेशी व्यापार एवं पूंजी विनियोग बढ़ता है और विनिमय दर पक्ष में रहने की स्थिति उत्पन्न होती है।

अन्य– विनिमय दर को प्रभावित करने वाले अन्य तत्व हैं सरकार की संरक्षण नीति, वितीय नीति व विनिमय नियंत्रण आदि। संरक्षण की नीति आयातों को हतोत्साहित कर विदेशी मुद्रा की माँग एवं विनिमय दर को नियंत्रित रखती है। वित्तीय नीति के तहत यदि सरकार घाटे की वित्त के व्यवस्था अपनाती है तो मुद्रा प्रसार के कारण आयात बढ़ते हैं व निर्यात कम होते हैं व विनिमय दर में वृद्धि होती है। इसी प्रकार विनिमय नियंत्रण की नीति विदेशी मुद्रा की माँग और पूर्ति को स्थिर बनाये रख कर विनिमय दरों में उच्चावचन को रोकती है।

15.8 विदेशी विनिमय बाज़ार के उपकरण

विभिन्न विदेशी करेन्सियों की माँग एवं पूर्ति के आधार पर उनके बीच विनिमय दर का निर्धारण होता है। विदेशी विनिमय बाजार के कुछ प्रमुख उपकरण इस प्रकार से है।

(1) **स्पॉट (Spot) -** जब किसी समझौते के तहत विदेशी विनिमय की तत्काल सुपुर्दगी करनी होती है तब उस समझौते को स्पॉट एग्रीमेंट कहा जाता है तथा ऐसी स्थिति में प्रचलित दर को स्पॉट रेट कहते हैं। 'स्पाट'' शब्द से अर्थ करेंसियों की तुरंत सुपुर्दगी अथवा विनिमय है। व्यवहार में ऐसा सौदा दो दिन में हो जाता है। ऐसे सौदों के लिये मार्केट को स्पाट मार्केट कहते हैं। बैकों के सट्टा संबंधी सौदे, हेज फण्ड, वित्तीय कंपनियां और विदेशी विनिमय बाजार के अन्य भागीदार स्पॉट मार्केट में व्यवाहार करते हैं। विदेशी विनिमय बाजार का लगभग 65 प्रतिशत कारोबर स्पॉट मार्केट में या स्पॉट एग्रीमेण्टस के तहत ही किया जाता है।

(2) **फारवर्ड (Forward)–** फारवर्ड या अग्रिम विनिमय एक ऐसी प्रणाली है जिसके द्वारा एक मुद्रा के बदले दूसरी मुद्रा के क्रय विक्रय की दर तो उसी समय निश्चित कर दी जाती है परन्तु इसे किसी भविष्य की तिथि में कार्यान्वित किया जाता है। विदेशी विनिमय दर में उच्चावचन होते रहते हैं जिसके कारण विदेशी मुद्रा में सौदा करने वालों को जोखिम उठाना पड़ता है। इन जोखिमों को समाप्त नहीं किया जा सकता परन्तु अग्रिम विनिमय दर तय करके इन जोखिमों को टाला जा सकता है।

(3) **करेन्सी स्वैप** – स्वैप का अर्थ है एक साथ किसी मुद्रा के फारवर्ड क्रय के लिये उसे मुद्रा का स्पॉट विक्रय करना अथवा स्पॉट फारवर्ड विक्रय के लिये उसी मुद्रा का स्पॉट क्रय करना। इस प्रकार की क्रिया को हम स्वैप या दोहरा व्यवहार कहते है।

(4) **आबिट्रेज (Arbitrage) –** विदेशी मुद्राओं का एक ही साथ एक उद्देश्य से खरीदना तथा विक्रय करना जिससे कि विभिन्न बाजारों में प्रचलित विदेशी विनिमय दरों में पाये जाने वाले अन्तर से लाभ उठाया जा सके आर्बिट्रेज कहलता है। इस क्रिया से जहाँ एक ओर अनतरपणनकर्ता (arbitrager) को लाभ प्राप्त होता है वही दूसरी ओर यह क्रिया विभिन्न बाजारों में विनिमय दरों में समानता स्थापित करने में भी सहायक होती है।

विदेशी विनिमय बाजार से सम्बन्धित महत्वपूर्ण शब्द

हेजिंग (Hedging)– हेजिंग का अर्थ होता है स्वयं को विविध प्रकार के जोखिमों से उत्पन्न हानि से सुरक्षित करना। हेजिंग की क्रिया एक ऐसी व्यवस्था प्रदान करती है जिसके तहत आयातक तथा निर्यातक विदेशी विनिमय दरों में होने वाले उच्चावचनों से उत्पन्न हानियों से अपने को सुरक्षित कर सकें।

डाकूमेन्टरी विदेशी विनिमय विपत्र (Documentary Foreign Bill of Exchange)– एक विनिमय विपत्र एक शर्त रहित लिखित आदेश पत्र है जिसमें लिखने वाला, जिसको लिखा गया, को आदेश देता है कि बिल में लिखित राशि का मांग पर या किसी निर्दिष्ट तिथि पर भुगतान कर दे। जब विपत्र में एक पार्टी विदेशी

हो तो उसे हम विदेशी विनिमय विपत्र कहते हैं। आजकल अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भुगतान के लिए अधिकांशतया एक विशिष्ट प्रकार के विनिमय विपत्र का प्रयोग करते हैं जिसे डाक्यूमेन्टरी विनिमय प्रपत्र कहते हैं, यह वैसे विनिमय विपत्र ही होता है, अन्तर केवल यह है कि माल के जहाज से भेजने से सम्बन्धित प्रपत्र जैसे लदान बिल, बीमा प्रमाण पत्र, बीजक आदि उसी के साथ लगे रहते हैं। निर्यातक बैंक को यह आदेश दे सकता है कि जब तक आहरित बिल का भुगतान नहीं प्राप्त हो या आहरित बिल स्वीकार नहीं करे जब तक विपत्र में लगे प्रपत्रों को आयातक को नहीं दिया जाय।

नोस्ट्रो एकाउन्ट्स (Nostro Accounts) – विदेशों में स्थित विदेशी बैंकों के साथ विदेशी मुद्रा में भारतीय बैंकों द्वारा रखे गये खाते को नोस्ट्रो एकाउन्ट्स कहते हैं, जिसका अर्थ होता है– आपके साथ हमारे खाते (Our accounts with you) जिस देश में यह खाता खोला जायेगा खाते की मुद्रा उसी देश की होगी। सभी विदेशी विनिमय व्यवहार उसी खाते के माध्यम से होंगे।

वोस्ट्रो खाता (Vostro Accounts) – विदेशी बैंकों द्वारा भारतीय बैंकों के साथ खोले जाने गये रूपया खाता (Your accounts with us) को वोस्ट्रो खाता कहते हैं। विनिमय नियंत्रण की दृष्टि से खाते को नान रेजीडेन्ट एकाउन्ट्स (Non-Resident accounts) कहते है।

BID - जिस दर पर अधिकृत डीलर विदेशी मुद्रा क्रय करेगा उसे BID कहते है।

ASK- जिस दर पर अधिकृत डीलर उसी समय विदेशी मुद्रा की बिक्री करता है, उसे ASK Rate कहते है।

SPREAD-ASK दर तथा BID का अन्तर SPREAD कहलाता है।

वेहिकल करेन्सी (Vehicle Currency)– किसी देश की करेन्सी यदि किसी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवहार में जिसमें वह देश पार्टी नहीं हो, प्रयोग में आये उसे वेहिकल करेन्सी कहते हैं। डालर न केवल एक अन्तर्राष्ट्रीय करेन्सी है, बल्कि एक वेहिकल करेन्सी है क्योंकि यह सामान्यतया सभी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहारों में प्रयोग में आती है, जिसमें यू.एस.ए. पार्टी नहीं है, जैसे भारत तथा यू.ए.ई. के बीच व्यापार।

इस्क्रो एकाउन्ट (Escrow Account)– एक ऐसी व्यवस्था जिसमें स्थानीय फर्म तथा प्रवर्तक कुछ सम्पत्तियों को अलग रखते हैं जिन्हें किसी विशेष खाते से अपतटीय पार्टी को बेचा जा सके, को इस्क्रो एकाउन्ट मेकेनिज्म के रूप में जाना जाता है। इस प्रकार की व्यवस्था विदेशी निवेशकों को अपने विनियोग को (salvage) बचाये रखने का अवसर देती है तथा यदि स्थानीय फर्म कुछ निश्चित दशाओं को नहीं पूरा करे तो वे उस डील या व्यवहार को छोड़ भी सकते हैं। इस स्थिति में विदेशी निवेशक को जो एक व्यक्तिगत इक्विटी में निवेशक हो सकता है, यह अधिकार हो सकता है कि वह अपनी इस सम्पत्ति धारिता को स्थानीय प्रवर्तक को बेच सके। एक बार जब विदेशी निवेशक अपने इस अधिकार का प्रयोग कर लेता है (या पुट आप्शन का प्रयोग कर लेता है) तो भारतीय प्रवर्तक इस्क्रो एकाउन्ट घरेलू सम्पत्तियों के गैर निवासी निवेशकों के हित (interest) को पैदा करता है, जो भारतीय शेयरों या भूमि के

विरूद्ध अपतटीय बैंक उधारी के ही समान है – जो विदेशी विनिमय नियमों का उल्लंघन करते है, इसलिए RBI ने इस्क्रो एकाउन्ट के सम्बन्ध में कठोर व्यवस्था की है।

मौद्रिक प्रभावी विनिमय दर (Nominal effective Exchange Rate- NEER)– तथा वास्तविक प्रभावी विनिमय दर (Real Effective Exchange Rate - REER) मौद्रिक विनिमय दर से आशय विदेशी विनिमय बाजार में प्रचलित किसी विदेशी मुद्रा की एक इकाई का घरेलू मुद्रा के रूप में मूल्य से है जैसे 1 डालर = 40 रूपया। पर जब इसमें स्फीतिक या मूल्य स्तर में वृद्धि का समायोजन कर दिया जाता है तो मौद्रिक दर वास्तविक दर में परिवर्तित हो जाती है। इस प्रकार दो देशों के बीच में पाये जाने वास्तविक विनिमय दर ज्ञात करने के लिए हम दोनों देशों में पाये जाने वाले स्फीतिक अन्तर को मौद्रिक विनिमय दर में समायोजित कर देते हैं।

15.9 सारांश

विदेशी विनिमय से अर्थ विदेशी मुद्रा से है। विभिन्न देशों में भिन्न–भिन्न मुद्राएं प्रचलन में होती हैं तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं व्यवहार से भुगतानों को संपादित करने के लिये देश की मुद्रा का अन्य देशों की मुद्रा से विनिमय करना पड़ता है। जिस बाजार में विदेशी मुद्रा का क्रय विक्रय अथवा लेन–देन होता है उसे विदेशी विनिमय बाजार कहते है। विदेशी विनिमय बाजार तात्कालिक बाजार (spot-market) तथा वायदा अथवा अग्रिम बाजार (forward market) के रूप में कार्य करता है। विदेशी विनिमय बिल, ड्राफ्ट, तार द्वारा स्थानान्तरण, साख पत्र, टैवलर्स चैक्स आदि विदेशी विनिमय बाजार में भुगतान के कुछ तरीके हैं।

विदेशी विनिमय बाजार में जिस दर पर देश की मुद्रा का विदेशी मुद्रा से विनिमय अथवा क्रय विक्रय होता है उसे विनिमय दर कहते हैं। यह एक देश की करेन्सी की दूसरे देश की करेन्सी में कीमत होती हैं। विनिमय दर अनुकूल अथवा प्रतिकूल हो सकती है। जब विनिमय दर अपने देश की मुद्रा में व्यक्त की जाती है तब गिरती हुई विनिमय दर हमारे अनुकूल होगी व बढ़ती हुई प्रतिकूल होगी और यदि विनिमय दर को विदेशी मुद्रा में व्यक्त किया जाता है तो बढ़ती हुई विनिमय दर हमारे प्रतिकूल व गिरती हुई हमारे अनुकूल होगी। यदि विनिमय दर, विदेशी विनिमय बाजार में विदेशी विनिमय की मांग एवं पूर्ति की शक्तियों के अनुसार स्वतंत्र रूप से निर्धारित होती है तो उसे स्वतंत्र अथवा परिवर्तनशील विनिमय दर कहते है। स्वतंत्ररूप से निर्धारित विनिमय दर में विदेशी मुद्रा की मांग एवं पूर्ति में परिवर्तन के अनुरूप स्वयं ही परिवर्तन होता रहता है। स्थिर विनिमय दर प्रणाली के अन्तर्गत विनिमय दर विदेशी विनिमय की माग एवं पूर्ति के आधार पर निर्धारित नहीं होती बल्कि सरकार द्वारा एक दर निश्चित कर दी जाती है फिर और उसे बनाये रखने के लिये आवश्यकतानुसार विदेशी मुद्रा की खरीद एवं बिक्री की जाती है। विनिमय दर तात्कालिक अथवा अग्रिम प्रकार की भी हो सकती है। तात्कालिक विनिमय दर वह विनिमय दर होती है जिस दर के अनुसार विदेशी मुद्रा की तत्काल प्राप्ति के लिये भुगतान किया जाता है। जबकि अग्रिम विनिमय दर वह विनिमय दर है जिस पर क्रय विक्रय का सौदा तो कर लिया जाता है किन्तु जिसकी सुपुर्दगी भविष्य की किसी

निश्चित तिथि को की जाती है। विनिमय दर निर्धारण के 3 सिद्धान्त प्रचलन में है टकसाली समता सिद्धान्त, क्रय शक्ति, समता सिद्धान्त एवं भुगतान संतुलन सिद्धान्त। जब देश धातुमान पर आधारित थे तब उनकी मुद्राओं के बीच विनिमय दर का निर्धारण टकसाली समता के अनुसार होता था व इस दशा में विनिमय दर में उच्चावचन की सीमाएं निश्चित होती थीं। अपरिवर्तनशील पत्र मुद्रामान पर आधारित देशों की मुद्राओं के बीच विनिमय दर का निर्धारण उन देशों की मुद्राओं की आंतरिक क्रय शक्ति की समता के आधार पर होता है। परन्तु इस विनिमय दर में अल्पकालीन उच्चावचन होते रहते हैं जिनकी व्याख्या भुगतान संतुलन की स्थिति के आधार पर की जाती है। भुगतान संतुलन की स्थिति विदेशी मुद्रा की मांग एवं पूर्ति को प्रभावित कर विनिमय दर में उच्चावचन लाती है।

मुद्राओं की आंतरिक क्रय शक्ति, ब्याजदर, निर्यात एवं आयात की मात्रा, पूंजी गतियां, सट्टेबाजी, मध्यस्थों एवं स्टॉक एक्सचेंज की क्रियाएं विनिमय दर को प्रभावित करती है।

15.10 शब्दावली

विदेशी विनिमय : विदेशी मुद्रा

तात्कालिक दर : वर्तमान विनिमय दर

स्वर्ण बिन्दु : स्वर्ण आयात अथवा निर्यात के बिन्दु

पूंजी गतियां : पूंजी का अन्तर्प्रवाह अथवा बहिर्प्रवाह

अवमूल्यन : अपने देश की मुद्रा का मूल्य जानबूझकर कम करना

मूल्यह्रास : देश की मुद्रा का मूल्य अपने आप घट जाना।

15.11 बोध प्रश्न

बोध प्रश्न क

1. **निम्नलिखित कथनों में से कौन सा सही है और कौन सा गलत**

i) विनिमय दर की अवधारणा आंतरिक व्यापार एवं व्यवहार से संबंधित है।

ii) विनिमय दर £1= ₹ 75 का परिवर्तित होकर £1= ₹ 78 हो जाना भारत के लिये अनुकूल कहलायेगा।

iii) जब विनिमय दर के रूपय में व्यक्त किया जाता है तब गिरती हुई विनिमय दर हमारे अनुकूल होगी।

iv) अवमूल्यन का आश्रय स्थिर विनिमय दर प्रणाली में लिया जा सकता है।

v) स्थिर विनिमय दर प्रणाली में विनिमय दर विदेशी मुद्रा की मांग एवं पूर्ति के आधार पर निर्धारित नहीं होती। .

2. **रिक्त स्थानों को भरिये।**

i) जिस दर पर एक देश की मुद्रा का दूसरे देश की मुद्रा में परिवर्तन किया जाता है उसे .... कहते हैं।

ii) तात्कालिक दर को .... दर भी कहते हैं।

iii) जिस दर पर विदेशी मुद्रा के क्रय विक्रय का सौदा तोकर लिया जाता है परन्तु सुपुर्दगी भविष्य की किसी तिथि को निश्चित की जाती है उसे .... विनिमय दर कहते हैं।

iv) वर्तमान में लगभग सभी देश .... विनिमय दर प्रणाली पर आधारित हैं।

बोध प्रश्न ख

1. निम्नलिखित कथनों में से कौन से सही है और कौन से गलत

i) विनिमय दर निर्धारण की व्याख्या के लिये 2 सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये है।

ii) धातुमान पर आधारित देशों में विनिमय दर का निर्धारण क्रय शक्ति समता के आधार पर होता है।

iii) स्वर्णमान के अंतर्गत विनिमय दर में परिवर्तन की सीमाएं निश्चित होती थी।

iv) मुद्रा की आंतरिक क्रय शक्ति में परिवर्तन उनकी विनिमय दर को प्रभावित करता है।

v) भुगतान शेष सिद्धान्त के अनुसार विनिमय दर विदेशी विनिमय की मांग एवं पूर्ति की फलन है। ......

2. रिक्त स्थानों को भरिये।

i) क्रय शक्ति समता सिद्धान्त .... द्वारा दिया गया हो।

ii) विनिमय दर में परिवर्तन जानने के लिये .... की सहायता ली जाती है।

iii) विदेशी विनिमय की मांग भुगतान शेष की .... मदों के कारण उत्पन्न होती है।

iv) कम विनिमय दर वाले बाजार से विदेशी मुद्रा को क्रय कर उसे महंगी दर वाले बाजार में बेचना .... कहलाता है।

v) किसी मुद्रा के फारवर्ड विक्रय के लिये उसका स्पॉट क्रय कराना .... कहलाता है।

15.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न क

1. i) गलत ii) गलत iii) सही iv) सही v) गलत
2. i) विनिमयदर ii) केवल iii) अग्रिम iv) परिवर्तनशील

बोध प्रश्न ख

1. i) गलत ii) गलत iii) सही iv) सही v) सही
1. i) गस्टव कैसेल ii) सूचकांक iii) ऋणात्मक iv) अन्तर्पणन v) करेन्सी स्वैप

15.13 स्वपरख प्रश्न

1. विदेशी विनिमय बाजार में भुगतान के कुछ तरीके बताइये।
2. विनिमय दर से क्या समझते हैं ? इसके विविध प्रकारों पर प्रकाश डालिये।
3. विनिमय दर निर्धारण के विभिन्न सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिये।
4. विनिमय दर को प्रभावित करने वाले कारकों की विवेचना कीजिये।

15.14 सन्दर्भ पुस्तकें

- अग्रवाल, दीपक (2010), मुद्रा बैंकिंग, लोक वित्त एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, हिमालया पब्लिशिंग हाउस मुबई।
- बिशनोई, आर0के0, बीमा के सिद्धांत, साहित्य भवन पब्लिसर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा।
- श्रीवास्तव, आर0एम0 और निगम, दिब्या मैनेजमैन्ट ऑफ इंडियन फाइनैन्शियल इंस्टीट्यूशन्स।
- सेठी, टी0टी0 (2015), मुद्रा बैंकिंग एवं लोक वित, आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिसर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- विभिन्न इंटरनैट साइट्स।
- जैन, टी0आर0 इंडियन फाइनैन्शियल सिस्टम्स, वी0के0 ग्लोबल पब्लिकेशन्स और खन्ना, ओ0पी0, प्राईवेट लिमिटेट, 2014–15।
- गुप्ता, शान्ति के0 और अग्रवाल, निशा, इंडियन फाइनैन्शियल सिस्टम्स, कल्याणी पब्लिसर्स, 2016।
- प्रतियोगिता दर्पण, जुलाई 2016।
- इंडियन इकोनोमी, जुलाई 2016।